प्रकाशक—

साहित्य-संस्थान
राजस्थान विश्व विद्यापीठ
उदयपुर

प्रथम संस्करण, सवत २०१२

मूल्य १०)

मुद्रक—
व्यवस्थापक
विद्यापीठ प्रेस, उदयपुर

प्रकाशकीय

राजस्थान में प्राचीन-साहित्य, लोक साहित्य, इतिहास, पुरातत्व एवम् कला-विषयक प्रचुर सामग्री यत्र तत्र बिखरी हुई है। आवश्यकता है उसे खोज कर सग्रह और संपादित करने की। राजस्थान विश्व विद्यापीठ (तत्कालीन हिन्दी विद्यापीठ) उदयपुर ने इस आवश्यकता को अनिवार्य समझकर वि० सं० १९९८ में "साहित्य संस्थान" (उस समय प्राचीन साहित्य शोध-संस्थान) की ओर से एक योजना बना कर राजस्थान की साहित्यिक, सांस्कृतिक और सामाजिक निधि को एकत्रित करने का काम हाथ में लिया। योजना के अनुसार "साहित्य-संस्थान" के अन्तर्गत विभिन्न प्रवृत्तियाँ निम्न छः विभागों में विकसित हो रही हैं (१) प्राचीन साहित्य विभाग, (२) लोक साहित्य विभाग, (३) पुरातत्त्व एवं इतिहास विभाग, (४) नव साहित्य-सृजन विभाग, (५) अध्ययन गृह एवं (६) सामान्य-विभाग।

१. साहित्य-संस्थान द्वारा सर्व प्रथम राजस्थान में यत्र तत्र बिखरे हुए हिन्दी और संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज और संग्रह का काम प्रारम्भ किया गया। राजकीय पुस्तकालय, जागीरदारों के ऐसे संग्रहालय एवं जहाँ भी ऐसी पुस्तकें थीं और देखने नहीं दी जाती थीं, धीरे २ इसके लिए वातावरण बना कर काम कराया जाने लगा। सब से पहले साहित्य-संस्थान द्वारा 'राजस्थान मे हिन्दी के हस्त लिखित ग्रन्थों की खोज' (बिबलियोग्राफी) का काम हाथ मे लिया, जिसके अब तक चार भाग 'राजस्थान मे हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज' नाम से प्रकाशित किये जा चुके हैं और पाँचवाँ भाग शीघ्र ही प्रेस में दिया जाने वाला है।

प्राचीन साहित्य विभाग में 'हस्त लिखित ग्रन्थों की खोज' के अतिरिक्त १६०००० चारण गीत विभिन्न विषयों के एकत्रित किये जा चुके हैं।

२ लोक साहित्य-विभाग द्वारा हजारों कहावतें, लोक-गीत, मुहावरे, लोक कहानियाँ, वात-ख्यात ख्याल पहेलियाँ, बैठकों के गीत आदि संग्रह किये जा चुके हैं। लोक साहित्य मे कहावतों के तीन भाग (१) मेवाड़ की कहावतें, (२) मालवी कहावतें तथा (३) राजस्थानी भीलों की कहावतें नाम से छप चुके हैं। लोक गीतों मे

"राजस्थानी-भीलों के लोकगीत भाग १" प्रकाशित हो चुकी है तथा इसीसे सबन्धित 'आदि निवासी-भील' नामक पुस्तक का प्रकाशन हो चुका है। लोक-साहित्य की तीन चार और भी महत्व-पूर्ण पुस्तकें प्रकाशनार्थ तैयार है। आर्थिक सुविधा के प्राप्त होते ही पुस्तकें प्रेस मे देदी जॉयगी।

३ पुरातत्व और इतिहास-विभाग के अन्तर्गत पट्टे, परवाने, ताम्रपत्र एवं ऐतिहासिक महत्त्व के अन्य कागज-पत्रों का संग्रह किया जाता है। प्राचीन मूर्तियॉ, सिक्के, शिलालेख, चित्र तथा अन्य काल कृतियॉ एकत्रित की जाती है। इसमे अच्छी सामग्री एकत्रित करली गई है।

साहित्य-सस्थान के काम और उसकी उपयोगिता देख कर प्रसिद्ध पुरातत्व वेत्ता स्व० डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने अपने समस्त प्रकाशित और अप्रकाशित ऐतिहासिक एव पुरातत्त्व सबन्धी निबन्ध सस्थान को प्रदान कर दिये थे। उन सब का प्रकाशन चार भागों मे 'ओझा-निबन्ध-सग्रह' के नाम से किया जा चुका है। पुरातत्वज्ञों और ऐतिहासिकों के लिए ये निबन्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण और उपयोगी हैं।

इसी विभाग के अन्तर्गत स्व० डॉ० गौरीशकर हीराचन्द ओझा की स्मृति मे राजस्थान के इतिहास कार्य के लिए "ओझा आसन" स्थापित है जिससे प्रतिवर्ष राजस्थान के इतिहास से सबन्धित तीन भाषण लिखित रूप से अधिकारी विद्वान द्वारा कराये जाते हैं इस आसन से "पूर्व आधुनिक राजस्थान" नामक पुस्तक का प्रकाशन हो चुका है, जिसके लिए यू० पी० सरकार ने पुस्तक के लेखक को ७५०) रू० का पुरस्कार भी प्रदान किया है।

४ प्राची साहित्य की शोध-खोज के अलावा नवीन प्रगति शील साहित्य की ओर भी विद्यापीठ का ध्यान गया और इसके अन्तर्गत साहित्य सृजन का कार्य प्रारम्भ किया गया। अब तक इस प्रवृति के अन्तर्गत एक "आचार्य-चाणक्य" नाटक दूसरी बृज भाषा का खंड काव्य 'तुलसी दास" एव तीसरी "नयाचीन" नामकी पुस्तकें प्रकाशित की जा चुकी है।

पुस्तकों के सृजन के साथ साथ नवीन प्रगतिशील लेखकों को प्रत्साहित करने और साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिये "राजस्थान-साहित्य" नामक मासिक पत्र का [illegible]

५. अध्ययन गृह और संग्रहालय में अब तक १००० महत्व पूर्ण हस्त लिखित ग्रन्थ एवं २५०० मुद्रित ग्रन्थ एकत्रित किये जा चुके हैं। इसके अन्तर्गत प्राचीन चित्र, शिल्प कला के नमूने तथा ऐसी ही कलात्मक सामग्री इकट्ठी की जा रही है।

६. सामान्य विभाग में राजस्थानी के प्रसिद्ध महाकवि सूर्यमल की स्मृति में "सूर्यमल आसन" स्थापित है। इस आसन से प्रतिवर्ष "राजस्थानी भाषा और साहित्य" विषय पर किसी अधिकारी विद्वान् के तीन मौलिक भाषण आयोजित किये जाते हैं और उन्हें पुस्तकाकार प्रकाशित किया जाता है। इस आसन से "राजस्थानी भाषा" नामक पुस्तक प्रशिद्ध भाषा तत्वज्ञ डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या की प्रकाशित हो चुकी है।

इसी के अन्तर्गत शोध-खोज सम्बन्धी साहित्य को प्रकाश में लाने के लिये "शोध-पत्रिका" नामक त्रैमासिक का प्रकाशन किया जाता है। इसके सम्पादक मंडल में प्रसिद्ध साहित्य के विद्वान् हैं। देश के सभी विद्वानों का सहयोग इस पत्रिका को प्राप्त है।

इस प्रकार साहित्य-संस्थान अपनी बहुमुखी कार्य-योजना द्वारा राजस्थान के बिखरे हुए साहित्य को एकत्रित कर प्रकाश में लाने का नम्र किन्तु अपनी दृष्टि से महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। हमारे देश की प्राचीन साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक परम्पराओं तथा चिन्तन-स्रोतों को सदैव गतिशील एवं अमर बनाये रखना है तो इस काम को और अधिक व्यापक बनाना होगा। राजस्थान और भारत के विद्वानों, विचारकों और साहित्यकारों का इस प्रकार के शोध-पूर्ण कार्यों की ओर अधिकाधिक प्रवृत होना आवश्यक है।

साहित्य-संस्थान राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर पिछले दस वर्ष से हिन्दी के आदि महाकाव्य "पृथ्वीराज-रासो" का प्रमाणिक संस्करण हिन्दी अनुवाद सहित करवा रहा था, अब वह सम्पूर्ण रूप से तैयार हो चुका है और 'प्रथम खण्ड' का प्रकाशन गत वर्ष किया जा चुका है। प्रथम खण्ड के प्रकाशन में राजस्थान सरकार ने अपनी ओर से कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

इस वर्ष साहित्य-संस्थान, राजस्थान विश्व विद्यापीठ की ओर से राजस्थान सरकार के द्वारा भारत सरकार के शिक्षा-सचिवालय से सहायता के लिये निवेदन

किया गया था। राजस्थान सरकार के शिक्षा-सचिवालय द्वारा भेजे गये साहित्य-संस्थान के प्रार्थना-पत्र पर भारत सरकार के शिक्षा-सचिवालय ने ४८५००) अड़तालीस हजार पाँच सौ रूपये की सहायता निम्न कार्यों के लिये स्वीकार की —

"पृथ्वीराज रासो के तीन खण्डों के प्रकाशन के लिये, पुस्तकालय के विकास के लिये एवं ध्वनि सुरक्षा यंत्र (साउण्ड रेकार्डिंग मशीन) खरीदने के लिये।

उक्त चारों मदों के लिए भारत सरकार के शिक्षा विकास-सचिवालय की ओर से उपर्युक्त सहायता स्वीकार की गई। इस स्वीकृत सहायता की रकम में संस्था की अपनी ओर से ⅓ एक तिहाई रमक मिलाकर मार्च १९५६ के पूर्व उक्त कार्यों को समाप्त करने की शर्त रखी गई थी। उसके अनुकूल ही हमने प्रस्तुत 'रासो' के प्रकाशन का कार्य किया है। भारत सरकार के शिक्षा-विकास-सचिवालय की ओर से प्रदान की गई इस अनिवार्य सहायता के लिये साहित्य-संस्थान की ओर से उक्त सचिवालय के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। साथ ही राजस्थान सरकार के शिक्षा सचिवालय और शिक्षा विभाग का अत्यन्त आभारी हूँ कि जिन्होंने संस्थान के कार्य को ध्यान में रखकर उक्त सहायता प्रदान करवाने में पूरा २ योग दिया। विशेष कर राजस्थान के मुख्य मंत्री (जो शिक्षा मंत्री भी हैं) माननीय श्री मोहन लालजी सुखाडिया का अत्यन्त अनुग्रहीत हूँ जिन्होंने साहित्य-संस्थान के काम को और उसके द्वारा किये जाने वाले परिश्रम को महत्वपूर्ण और अनिवार्य उपयोगी मानकर सहायता प्रदान करने के लिये भारत सरकार के शिक्षा-विकास सचिवालय को सिफारिश की। सच तो यह है कि उक्त सहायता श्री सुखाडिया, भारत सरकार के डिप्टी शिक्षा सलाहकार डॉ० पी० डी० शुक्ला, डॉ० भान तथा असिस्टेंट शिक्षा सलाहकार श्री सोहन सिंह एम० ए० (लंदन) और उपशिक्षा मंत्री डॉ० श्रीमाली की प्रेरणा से ही मिल सकी है। इसलिये इन सबका मैं अत्यन्त आभारी हूँ और आशा करता हूँ कि आगे भी संस्थान के कार्य-विकास में आप सबका सक्रीय योग मिलता रहेगा।

राजस्थान विश्व विद्यापीठ के पीठ मंत्री और मेरे सहयोगी भाई भगवती लाल भट्ट ने इस सहायता को प्राप्त करने में काफी कष्ट उठाया, उसके लिए मैं इनका कृतज्ञ हूँ।

उन सब महानुभावों का भी मैं आभारी हूँ, जिन्होंने रासो के सम्पादन मे ज्ञान * और प्राचीन प्रतियों द्वारा सस्थान और संपादक को सहायता दी है। आशा है भविष्य में भी संस्थान को उन सब की सहायता मिलती रहेगी, क्योंकि संस्था उन्हीं की है।

गिरिधारीलाल शर्मा
अध्यक्ष
साहित्य-संस्थान
राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर

वसन्त पंचमी
वि० सं० २०१२

ाय के कारण ही आज यह
* महापण्डित राहुल सांकृत्यायनजी ने सम्पादन की प्र सहित हिन्दी जगत के सामने
श्री लक्ष्मीलालजी जोशी (प्रचेता, राजस्थान विश्व विद्यापीठ) से ह विभिन्न काल की विभिन्न
उत्साह एव प्रेरणा मिलती रही है, अत मैं उक्त दोनों महानुभावों का आ सम्पादन और प्रकाशन
ओर से किया गया है।

इसके अधिकारी विद्वान कविराव मोहनसिंह पिछले चालीस वर्षों से इस पर परिश्रम करते आरहे हैं और इन्हें 'पृथ्वीराज-रासो' का प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद करने में अनेक कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी हैं लेकिन साहस और हिम्मत के साथ संस्थान के इस काम को इन्होंने आखिर समाप्त किया है। हिन्दी जगत में 'पृथ्वीराज-रासो' जैसे महान आदि काव्य ग्रन्थ के अब तक हिन्दी अनुवाद नहीं होना खटकने वाली बात थी और साहित्य की एक बहुतबड़ी कमी अनुभव की जाती थी। साहित्य-संस्थान ने केवल इसी कमी की पूर्ति के लिये इस महान ग्रन्थ के सम्पादन का काम हाथ में लिया था। सम्पादन के प्रारंभ से ही हमने इस बात को लक्ष्य में रखा था कि हम इसकी ऐतिहासिक प्रामाणिकता के विवाद में नहीं उतरेंगे और यही कारण है कि हमने केवल इसका हिन्दी अनुवाद मात्र ही प्रकाशित किया है। संस्थान ने केवल जमीन तय्यार की है। इस पर इमारत बनाकर मंजिल तक पहुँचाना हिन्दी साहित्य के विद्वानों का काम है।

गत वर्ष राजस्थान-सरकार के शिक्षा-विभाग ने 'पृथ्वीराज रासो' के प्रथम भाग के प्रकाशन के लिये सहायता प्रदान की थी, जिसके कारण प्रथम भाग का प्रकाशन किया जा सका था, उसके लिये मैं सरकार का कृतज्ञ हूँ।

इस वर्ष 'पृथ्वीराज रासो' के शेष तीन भागों के प्रकाशन के लिये राजस्थान-सरकार के द्वारा भारत-सरकार के शिक्षा-सचिवालय के पास साहित्य-संस्थान ने आवेदन किया था। जिस पर शिक्षा-सचिवालय ने सहानुभूति से विचार किया और (इन तीनों भागों के) प्रकाशन के लिये सहायता स्वीकार की। साहित्य संस्थान के काम को देखते हुए अवश्य ही यह सहायता अत्यल्प थी लेकिन हमारा तो केवल यही सन्तोष है कि १० वर्षों के निरन्तर प्रयत्न के बाद आखिर राजस्थान सरकार और उसके द्वारा भारत-सरकार का ध्यान इस ओर गया तो सही। शोध-खोज का काम अन्य कामों की अपेक्षा अत्यन्त कठिन और व्यय साध्य है। सार्वजनिक संस्थाओं के लिये ऐसे कामों को करना और उसके लिये साधन सुविधायें जुटाना अत्यन्त दुष्कर कार्य है।

हमारे निवेदन को राजस्थान-सरकार के द्वारा भारत-सरकार के शिक्षा-विभाग-सचिवालय ने स्वीकार किया, उसके लिये मैं भारत-सरकार और राजस्थान

सरकार के शिक्षाधिकारियों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। सच तो यह है कि यदि भारत-सरकार की ओर से इस वर्ष हमे उक्त प्रकाशन-सहायता नहीं मिलती तो प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रकाशित होना अत्यन्त कठिन था। इस सामयिक सहायता के स्वीकार करवाने मे भारत-सरकार के शिक्षा विकास सचिवालय के उप-सलाहकार डॉ० पी० डी० शुक्ला, डॉ० भान तथा असिस्टेन्ट शिक्षा सलाहकार श्री सोहनसिंह एम० ए० (लंदन) और उप शिक्षा मत्री डॉ० श्रीमाली की ओर से जो सहयोग दिया गया, उसके लिये संस्था की ओर से इन्हें धन्यवाद देना अपना फर्ज समझता हूँ। राजस्थान के प्रगतिशील मुख्य मंत्री (जो शिक्षा मंत्री भी हैं) श्री मोहनलाल सुखाड़िया का भी मैं अत्यन्त आभारी हूँ, जिन्होंने संस्थान के काम को उपयोगी समझा और भारत सरकार से सहायता दिलवाने में पूरा योग दिया। उपर्युक्त सभी महानुभावों के प्रति मैं कृतज्ञता प्रकट करता हू और आशा रखता हूँ कि भविष्य में भी राजस्थान विश्व विद्यापीठ के कार्य-विकास मे आप सब का सम्पूर्ण सहयोग मिलता रहेगा।

मैं उन सभी को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने 'पृथ्वीराज रासो' के सम्पादन में अपनी सलाह और सहायता दी। आशा है आगे भी वे सब सलाह और सहायता देते रहने की कृपा करेंगे।

विनीत

जनार्दनराय नागर

प्रोपकुलपति

राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर

अक्षय-तृतीया
वि० सं० २०१३

काव्य-सौष्ठव

पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता और अनैतिहासिकता को ही केन्द्र विन्दु वनाकर विद्वत्-समुदाय अब तक निष्कर्ष हीन वाग्जाल में भटकता रहा है। इस एकांगी विवेचन के कारण ही अब तक रासो के साहित्यिक मूल्यांकन को प्राय भुला सा दिया है। इधर कुछ समय से इस सत्यांश की ओर ध्यान दिया जाने लगा है, फिर भी यह कार्य-'पाव मे पूणी' भी नहीं कहा जासकता। राजस्थान विश्व विद्यापीठ के तत्वावधान मे कविराव मोहनसिंह द्वारा सम्पादित इस रासो के द्वितीय भाग का साहित्यिक विवेचन एवं मूल्यांकन ही हमारा अभीष्ट है।

रासो (द्वितीय भाग) के काव्यत्व सम्बन्धी विवेचन की दृष्टि से मुख्यत हमे उसमे निहित वस्तु-वर्णन और भाव-व्यञ्जना पर ही दृष्टि निक्षेप करना है। 'रासो' एक वीर रसात्मक महाकाव्य है, अत उसमे युद्धादि के वर्णन की प्रधानता तो है ही, किन्तु साथ ही कवि ने अपनी उदात्त प्रतिभा द्वारा उसमे अपनी भावुकता का रस घोल कर जिस अपूर्व मिश्रण को तैयार किया है, वह हिन्दी साहित्य के अंग-प्रत्यंगों में पौष्टिकता का संचार करने वाला ही सिद्ध हुआ है। इसमे भावपक्ष और कलापक्ष की गंगा-जमुनी का जो संगम हुआ है, वह साहित्य की प्रांगण-भूमि के लिये एक अभूतपूर्व वस्तु है ।

वस्तु वर्णन:—

पृथ्वीराज रासो वीर रस प्रधान एक ऐतिहासिक 'विशालकाय वीर-काव्य' है, जिसमे दिल्लीश्वर पृथ्वीराज के जीवन की आद्यान्त घटनाओं का विवरण प्रस्तुत किया गया है। घटनाओं की प्रमुखता के साथ ही कवि ने अपनी वर्णन कुशलता से उक्त इतिवृत्तात्मक अंशों मे सरसता की वृद्धि की है, जिसकी अनुपस्थिति मे सम्पूर्ण रासो लड़ाई-भिड़ाई का एक नीरस इतिहास मात्र ही रह जाता। रासो के वस्तु वर्णन को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है —

(१) युद्धोत्साह और युद्ध वर्णन:-

जैसा कि कहा जा चुका है, पृथ्वीराज रासो मे युद्ध की घटनाओं की प्रमुखता

है पर उसमे युद्धोत्साह और युद्ध का वर्णन प्रचुर मात्रा में हुआ है। इन वर्णन मे हमे कवि की वास्तविक प्रतिभा और उत्साह के दर्शन होते है। सभी वर्णनों में वीर और रौद्र रस की प्रमुखता होने के कारण इन्हे भाव व्यञ्जना के अंतर्गत लिया जा सकता है। चन्द केवल कवि ही नही थे, वे एक वीर योद्धा भी थे और इसीलिए उनका युद्ध वर्णन सुनी सुनाई घटनाओ के आधार पर न होकर अनुभव सिद्ध सत्य है और इसीलिए युद्धोत्साह और युद्ध के वर्णन मे वे सफल हो सके है। यथा-भोलाराय समय मे पट्टन पति भीम का युद्धार्थ निमंत्रण मिलने पर पृथ्वीराज के उत्साह का वर्णन निम्न पंक्तियो मे कितना सुन्दर किया गया है —

सुनि कग्गर नृप राज प्रथु, भौ आनन्द सुभाइ।
मानौ वल्ली सूकते, वीरा रस जल पाइ॥

युद्ध भूमि की ओर अग्रसर होती हुई सेना इस प्रकार दिखा पडती है —

वद्दल दल वज्ञ उभरि, सेन घु मर घट घुंमरि।
मवन वयन सचयन, मयन मत्ते जनु खु मरि॥
अरि अरिष्ट सम दिष्ट, धिष्ट धारन धर घु मर।
अग्गि झाल विनु घुंम, इसै दिख्खिय गज झु मर॥

इन उद्धरणो से स्पष्ट है कि महाकवि चन्द अपने काव्य मे युद्धोत्साह और युद्ध का वर्णन करने मे कितने सफल हुए है। युद्ध का वर्णन हमे दो प्रकार का दृष्टिगत होता है - प्रथम तो वीर रसान्तर्गत, जिसमे उपमा के प्रयोग का प्राचुर्य मिलता है और दूसरे प्रकार का वर्णन रौद्र और वीभत्स रसों के अन्तर्गत आता है। चन्द के युद्ध वर्णन की यह विशेषता है कि छन्दों का चुनाव वर्णन के अनुकूल हुआ है।

(२) व्यूह वर्णनः—

रासो मे युद्ध वर्णन की प्रचुरता होने के कारण व्यूह रचना के द्वारा युद्ध-कौशल का प्रदर्शन एक मुख्य वस्तु है। शत्रु पर विजय प्राप्त करने हेतु वीर अपनी सेना को अनेकानेक प्रकार के व्यूहो मे सजाते है। इस प्रकार से सेना को व्यूहाकार सजा कर युद्ध का वर्णन करने की महाभारत मे भी प्रचुरता है, जिसमे अभिमन्यु वध वाला व्यूह तो अधिक प्रसिद्ध है। सम्भवतः चन्द को रासो मे वर्णित व्यूह-रचना

की प्रेरणा महाभारत से ही मिली हो। सभी युद्धों में किसी न किसी प्रकार की व्यूह रचना का वर्णन अवश्य मिलता है। जैसे-शशिवृता समय मे यादव और कमधज्ज वीर मिलकर सर्पव्यूह की रचना करते हैं:—

मिलि जद्दव कमधज्ज, अहिय-व्यूहं आरभिय।
पुच्छ सु लखि मनि दंधि, पाइ गुज्जर पारंभिय॥
सुधर मंडि वर वीर, पंग-चंधह रचि ठढ्ढै।
फन अप्पन भय पुंज, जीभ कूंरभ सु गठ्ढै॥

इसी प्रकार अन्य स्थलों पर मयूर व्यूह, गरूड़ व्यूह आदि का भी युद्धोचित् वर्णन मिलता है।

(३) कबंध-युद्ध वर्णनः-

युद्ध करते हुए खड्ग की धार से कट मरना वीरोचित् कार्य है, किन्तु मस्तक के अलग हो जाने पर भी धड का लडते रहना अद्भुत कार्य है। इसका वर्णन करने मे कवि अपनी और उस वीर दोनों की महत्ता समझता है। इसलिए चन्द ने कबंध के युद्ध करते रहने का अनेक स्थलों पर वर्णन किया है—

उठि परत भिरत भंजत अरिन, जै जै जै सुरलोक हुअ।
उठ्यौ कमंध पल पंच चव, कोन भाइ कप्यौ सु धुअ॥

× × × ×

तिहि देखि रुद्र रुद्रह हस्यौ, हय-हय-हय नदि कह्यौ।
कवि चद शैल पुत्री चकित, पिक्खि वीर भारथ नयौ॥

कवि ने इन कबधों के उठने और नाचने का ही वर्णन नहीं किया है अपितु इनके द्वारा युद्ध के अलौकिक दृश्य का भी प्रदर्शन किया है, जो सराहनीय है।

(४) विवाह-वर्णनः-

रासो मे वीर रस की प्रधानता है और शृंगार गौण रूप से आया है। शृगार के अतर्गत विवाह, नायिका भेद, नख-शिख और शृंगार वर्णन एव उद्दीपन के रूप से प्रकृति का भी वर्णन आता है। 'युद्ध और विवाह वर्णन की

प्रधानता होने के कारण ही रासो शृंगार के संयोग पक्ष का काव्य है–इसे हम प्रेम के मिलन पक्ष का काव्य भी कह सकते हैं।' महाकवि चंद रासो में हमारे सम्मुख प्रेम का नया–नया 'रोमांस' प्रस्तुत करते हैं। पृथ्वीराज के अनेकों विवाहों और उनके उपलक्ष में होने वाले युद्धों का रासो में प्रचुर मात्रा में वर्णन मिलता है। इस भाग में भी शशिवृत्ता, इन्द्रावती और हम्मीर कुमारी से पृथ्वीराज का विवाह सम्पन्न हुआ है और प्रत्येक विवाह के लिए युद्ध भी करना पड़ा है। सारंगीपुर की राजकुमारी का विवाह तो पृथ्वीराज की खड्ग से करवाया गया है। इसे कवि ने गंधर्व विवाह कहा है।

(५) नायिका भेद वर्णनः–

प्रारम्भ से ही काव्य-शास्त्रकारों और कवियों का शृंगार के अंतर्गत नायिका-भेद पर अधिक ध्यान रहा है। आगे चलकर रीतिकाल में तो यह प्रवृत्ति इतनी अधिक बढ़ गई थी कि कवियों के लिए नायिका भेद वर्णन के अतिरिक्त कथन योग्य कोई वस्तु ही नहीं रह गई थी। हिन्दी कविता के प्रारम्भ काल में चन्द ने भी यत्र तत्र इस प्रसंग पर प्रकाश डाला है। शशिवृता समय में नायिका के प्रधान चारों भेदों का वर्णन किया गया है। चन्द के अनुसार पद्मिनी के निम्नलिखित लक्षण होते हैं—

कुटिल केस पदमिनी, चक्र हस्तिन तन सोभा।
स्निग्ध दंत सोभा विसाल, गंध पद्म आलोभा॥
सुर समूह हंसी प्रमान, अलय! निद्रा तुछ जपै।
अलप वाद मित काम, रति अभया भै कंपै॥
धीरज्ज छिमा लज्जिन सहज, असव बसन चतुरंग गति।
आवक्र लोइ लग्गे सहज, कामंगान भूलत रति॥

हस्तिनी नायिका वक्र कुचों और वक्र दंतपंक्ति वाली, मधुतुल्य अंगवास युक्त कामेच्छा से भ्रमित, व्यंग वाक्य बोलने वाली, विषयानुरक्त, सम उदर वाली, मृग-नयनी और कृष्णाभिसारिका होती है—

उर्द्ध केश हस्तिनी, वक्र अस्तन दसनानि दुति।
मधुर गंध गरणाट, भुल्लि-भ्रम काम वाम रति॥

गूढ सब्द मन-जा विखान, रंग रंगन छामोदरि ।
चित्र नयन चंचल विसाल, श्याम-बरनी जामोदरि ॥
छिनु रुद्य हसय विहसय लसय, वसि चित्तह चित-पुत्तलिय ।
नीवीय मान जानं चहुत, कंत चित्त जाइ न कलिय ॥

चित्रिणी नायिका के निम्नलिखित लक्षण बताये हैं—

दीर्घ देस चित्रिणी, चित्त हरणी चन्द्राननि ।
गंध म्रगमद विदे, कोक शब्दनि उच्चारणि ॥
सील नील लज्जा प्रमान, रत्ति भै भय धन मारै ।
अलस नयन रस चलित, कलित कल बोल उचारै ॥
धीरज्ज छिमा छवलोक करि, अवलोकन गुन औमरे ।
विस्तीर्ण मंत्र मोहन पढ़ै, चित्त वित्त कथ्थां हु हरै ॥

शंखिनी नायिका—

अलप केस कुच थूल, थूल दंती उच्चारन ।
थूल उदर लकीस, जघ क्रिसलं गंध वारण ॥
घोर निन्द्र तन तास, अलप रसणा रस छंडै ।
अलप सील गंभीर, सबद कल हंतर मंडै ॥
आचार ध्रंम नहि सुद्ध मन, विधि विचार विभचार घन ।
आसंख-सख सखिनि गुनंति, सुख्ख नाह पावै न तन ॥

चन्द ने नायिका भेद का सामान्य वर्गीकरण ही किया है । आगे चलकर रीतिकाल मे किये जाने वाले नायिका भेद के दलदल मे वे नहीं फँसे हैं ।

(६) नखशिख और शृंगार वर्णनः—

यद्यपि नख शिख और शृंगार वर्णन का विवेचन शृंगार रस के अंतर्गत आ जाता है, किन्तु वर्णन की दृष्टि से इसका सूक्ष्म विवेचन यहाँ किया गया है । नायिका भेद के अनुसार ही नख शिख काव्य-शास्त्रकारों का एक मुख्य विषय रहा है और कवियों ने भी इस पर बहुत कुछ लिखा है । चन्द ने भी शृंगार के अतर्गत शशिवृता, इन्द्रावती के नखशिख का वर्णन किया है । शशिवृता समय मे शशिवृता के नखशिख का वर्णन करते हुए नर्तक कहता है—

कहै सु नट राजेंद, अग्ग आमोद इक्क दिन।
चद कला मुख कज, लच्छि गह अह अरूप तन॥
नैन सु मृग शुक नास, अधर वर बिंब पक्क भति।
कठ कपोत गुजवर मृनाल, युगल नारंगि उरज सति॥
कटि लंक-सिंघ जुग जघ रंभ, चलत हंस गति गयंद लजि।
सा नृपति काज त्र मिय तरुनि, मनो मेनिका रूप सजि॥

कवि शशिवृता की वय संधि का वर्णन करता हुआ कहता है कि जिस प्रकार बसन्त के आगमन पर शिशिर का अंत हो जाता है, उसी प्रकार उस बाला से शैशवावस्था के चले जाने पर वह लचकीली लता तुल्य कुमारी वय की वायु के झोंके से नमने लगी और वह सपल्लवित सी होगई। उसकी अगवास पर भ्रमर सिर धुन-धुन कर मधुर गुंजार करते हैं, लेकिन रस का पान इसलिए नहीं करते कि उसके मन मे कामदेव ने निवास कर लिया है—

ससिर अंत आवन वसंत, अंत बालह सैसव गम।
अलिन पत्र कोकिल सुकंठ, सज्जि पौगु ड मिलत भ्रम॥
मुर मारुत मुरि वेलि, मुरे मुरि वैस प्रमान।
तुच्छ को परसिस फुट्टि, आन किस्सोर रगान॥
लीनी न अमी नकस्याम मन, मधुप मधुर धुनि धुनि करिय।
जानी न वयन आवन वसंत, अग्याता जोवन अरिय॥

यहाँ भ्रमर उसके अधरामृत का पान इसलिए नहीं करते है, क्योंकि उन्हे डर है कि इसके मन मे स्थित कामदेव जिसने अपने धनुष पर भ्रमर पंक्ति की प्रत्यचा चढा रखी है और जो अब पुरानी हो गई है, कहीं हमे पकड कर पुन नयी प्रत्यचा नहीं बनाले। यहाँ शशिवृता मुग्धा—अज्ञात-यौवना नायिका प्रदर्शित की गई है।

(७) ऋतु वर्णन:—

महाकाव्यकार अपने काव्यों मे यथास्थान प्रकृति-वर्णन भी करते है, जिसमे उनकी सूक्ष्म-निरीक्षण शक्ति का परिचय मिलता है। जो कवि दृश्य प्रकृति से अपना जितना अधिक रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है, वह प्रकृति वर्णन करने मे

उतना ही सफल होता है। कवि मानव प्रकृति के साथ ही साथ वाह्य प्रकृति का कुशल वर्णन कर अपने काव्य की उत्कृष्टता मे वृद्धि करता है। मुख्यतया प्रकृति-वर्णन दो रूप मे किया जाता है—(१) आलंबन रूप में, (२) उद्दीपन रूप मे। इन दोनों प्रकार के वर्णनों मे ऋतु वर्णन का भी मुख्य स्थान होता है। महाकवि चन्द ने वीरोचित् मानव प्रकृति का तो सांगोपांग वर्णन किया है, किन्तु रासो (द्वि० भा०) में वाह्य प्रकृति का आलम्वन के रूप मे दर्शन प्राय: नहीं ही होता है। यत्रतत्र उद्दीपन के रूप मे वर्णन अवश्य मिलता है। यथा—शशिवृता समय के प्रारम्भ मे ग्रीष्म का वर्णन—

लगि सीत कल मंद, नीर निकट सु रजत घट।
अमित सुरंग सुगंध, तनह उवटंत रजत पट॥
मलय चन्द मल्लिका, धाम-धारा-ग्रह सुव्वर।
रजि विपन वाटिका, सीत द्रुम छांह रजति तर॥

पावस के आगमन पर श्रोतानुरागी पृथ्वीराज के कामोद्दीपन मे वृद्धि हो जाती है और उसे प्रतिक्षण शशिवृता का स्मरण हो आता है —

मोर सोर चिहुँ-ओर, घटा आसाढ़ वंधि नभ।
वच दादुर झिंगुरन, रटत चातिग रजत सुभ॥
नील वरन वसुमतिय, पहरि आभ्रंन अलकिय।
इंद्र-वधू सिर-व्यद, धरे वसुमती सुरज्जिय॥
वरखत वूँद घन मेघ सर, तव सुमरै जदव कुँअरि।
नन हस धीर धीरज सुतन, इख फुट्टै मनमथ्थ करि॥

पावस के वीतने पर शरद् का आगमन हुआ। आकाश इस प्रकार स्वच्छ हो गया, जैसे सद्गुरु के ज्ञान द्वारा आत्मदर्शन (आत्म-वोध) से हृदय निर्मल हो जाता है—

गत पावस आगम शरद, गई गुडल नभ मान।
(ज्यौं) सद्गुरु मिलि अंदर दरस, मिलि प्रकटे गुरु ज्ञान॥

मार्गों का पंक सूख गया, सरिताओं का प्रवाह सूक्ष्म होगया, लताएँ कुम्हला गईं और मेघ रहित पृथ्वी पति हीन स्त्री के सदृश दिखाई देने लगी—

सुक्कि पंक उत्तरि सरित, गय वल्ली कुमिलाय ।
जलधर बिन यों मेदिनी, ज्यों पति हीन त्रियाय ॥

महाकाव्यों मे सूर्योदय, रात्रि, नगर, वन, पनघट आदि सभी का वर्णन किया जाता है। रासो मे प्रसंगानुकूल इनके वर्णन मिलते है। जैत्रराय समय मे रात्रि के समाप्त होकर उज्ज्वल दिशा मे अरुणिमा के उद्भासित होने की तुलना वय सधि के समय शैशवावस्था में यौवनावस्था की तनिक सी झलक दिखाई पडने से की गई है —

निसि घट्टिय फट्टिय तिमिर, दिसि रत्ती धवलाइ ।
सैसव मे जुव्वन कछू, तुच्छ तुच्छ दरसाइ ॥

महाकवि चन्द प्रकृति-निरीक्षण और उसके कुशल वर्णन मे उतने सफल नहीं हुए हैं, जितने उनके परवर्ती कविगण। इसका एक मात्र कारण यह है कि उनकी वृत्ति युद्ध वर्णन और वीरों के आन, बान और शान पर मर मिटने पर ही अधिक टिकी रही, प्रकृति पर नहीं।

(८) अन्यवर्णनः–

रासो मे उपर्युक्त प्रमुख वर्णनों के अतिरिक्त अन्य वर्णन भी देखने को मिलते हैं। ईश्वर विश्वासी कवि भोलाराय समय मे गोकलेश्वर की स्तुति करता हुआ कहता है —

जा रख्या हय गर्व प्रीछित रिख, दावानल जालय ।
सोय मातुलं नन्द बद्धि सलिता, कालिन्दिनौ प्रीनगं ॥
जि रख्यौ वर पानि प्रव्वत महा, गोवर्धन वारण ।
सोय सा हरि रिख्खि भूवति वर, जे दृढ्ढ गोकलेश्वर ॥

राजस्तुति का वर्णन रासो मे अधिकता से मिलता है, क्योंकि इसमे वीरपूजा की भावना की प्रधानता है। प्रत्येक वीर चाहे वह क्षत्रीय हो, चाहे यवन, उसकी स्तुति की गयी है। सलख युद्ध समय मे दूत पृथ्वीराज की स्तुति इस प्रकार करते है —

श्रं चहुआन—नरयद, इ द अवनी भूपाल–भूपालय ।
जम्बू द्वीप महीप दीर्पाण वल, कीत्तिनि विस्तारय ॥

खग्ग त्रास मैवास त्रास असनं गर्भा निगर्भ गलं।
तोयं जैति जिहांन भांन, तपन त्वंनं दिट्ठा जे वलं ॥

धन कथा मे पृथ्वीराज का संदेश ले जाने वाला वीर सामंत चंद पुंडीर रावल समर विक्रम का गुणानुवाद निम्न प्रकार से करता है—

समर सिंघ रावर नरिंद, समर साहस भर जित्तन।
अरु जोगिंद नरिंद, चित्त जोगिन्द समत्तन ॥
कमल माल सोभन्ति, चद लिल्लाट वीय दुति।
नयन रंग आभंग, जोग पारंभ सिंभ मति ॥
मुंजीव ढाल जिप्पन विरद, नाग मुखी सिल्लार वनि।
सा चित्रकोट ओटह नृपति, महन रंभ मंडहि सुमति ॥

आखेट वीरों का एक प्रिय खिलवाड़ हुआ करता है। राजा महाराजा सज-धज कर ससैन्य इस क्रीडा मे प्रवृत्त होते हैं। युद्ध के समान इसमे भी उनकी महत्ता प्रदर्शित होती है। चन्द ने पृथ्वीराज की आखेट-क्रीड़ा का अनेकों स्थलों पर विस्तार से वर्णन किया है। शशिवृता समय मे आखेट-वर्णन करते हुए कवि लिखता है कि पृथ्वीराज के ससैन्य चलने पर वन में भीड़ सी लग गई। सेना राह बेराह चलने लगी —

है भार भरिय कानन सकल, मग अमग्ग दल संचरिय।

उस ऐश्वर्य को देखकर श्रेष्ठ शरीर धारी दिग्गज भी अपनी आँखों द्वारा दृष्टि प्रसार करने लगे। पृथ्वी ने भी इस मांगलिक दृश्य को देखने के लिए चक्षुओं की याचना की और सब कोई उसे देखने को समुख होगये—

यों बंधि राज आखेट वर, वपु सुब सुभ्र दिक्खे सुचख ।
थह मगि अंखि मंगल पवन, सवै होइ जोवन समख ॥

ऐसा था अपार ऐश्वर्य उस आखेट का और इतनी थी तल्लीनता उस कार्य में कि शिकारी अपने साथियों को ही नहीं अपितु ईश्वर को भी भूल गये—

धुर धुरंत धन स्वांन, आप पंजर तीतर वर ।
मच्छ जाल वग्गुरि हि, फंद फंदैत सुवर घर ॥

धनक नान हक्कां सुरान, सिंध पजर जर लखनन ।
खाट खैर विस भिल्ल, तार तारक्क चित्र पन ॥
मरहह चोट लग्गै रमत, भुलै साथ श्री नाथ पति ।
कवि चद विरद ब्रंनन करै, श्रवन सुनै ढिल्लीय त्रपति ॥

चन्द कुशल कवि और वीर योद्धा ही नहीं थे, अपितु उन्हे शकुन-शास्त्र और ज्योतिष-शास्त्र का भी पूर्ण ज्ञान था। कवि ने अपनी इसी बहुज्ञता का परिचय रासो मे अनेक स्थानो पर दिया है। रेवातट समय मे पृथ्वीराज जब युद्धार्थ प्रयाण करते है, तब उन्हे कौन २ से ग्रह थे, इसका वर्णन करते हुए कवि बताता है कि उस समय—

राह केत जय दीन, दुष्ट-टारै सुभ काजं ।
× × ×
गुरु पंचम रवि पच, अष्ट मगल नृप भारी ।

ये ग्रह युद्ध के लिए पृथ्वीराज को शुभ थे। इस प्रकार के वर्णन रासो मे अनेक मिलते है। शहाबुद्दीन की बुरे ग्रहो के कारण ही पराजय होती थी। यही नही, शकुन देखकर ही चन्द पृथ्वीराज को प्रस्थान करने की मत्रणा देता था। शकुन-शास्त्र के ज्ञान का नमूना जैत्रराय समय से लिया जा सकता है—

अट्ठ अट्ठ जोगिनिय, सुक सम्हो सुरतान ।
दिसा सूल दिसि वाम, जेर कन्हा चहुआन ॥
सिंघ वाम भैरवी, गहक बोली गोरी दिसि ।
गुर पचम रवि नवौ, राह ग्यारसौ सुरग ससि ॥
ईसान सध्यदेवी पहकि, गहक सभक्क वृ नृ नहक ।
आकास मद्धि गज्यौ गयन, परी बूंद वे बरा हक ॥

जब पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन मे युद्ध हो रहा था, उस समय चौसठ ही योगिनियाँ और दैत्य, गुरु, शुक्र (इन्द्र) तुल्य पृथ्वीराज शाह को सम्मुख दिखाई दिया। उस दिन पृथ्वीराज को दिशा शूल था। गोरी के लिए निषिद्ध शकुनों मे बायी ओर सिंह और भैरवी उच्च स्वर मे बोल रही थी। पृथ्वीराज को गुरु पाँचवे, रवि नवमे,

स्थान पर था और गौरी शाह को राहु और चन्द्रमा ग्यारहवें स्थान पर अशुभ फल-दायक था। ईशान कोण में देवी स्वरूप फेकडी (जम्बू मादा) और उल्लू बोल रहे थे। इन उदाहरणों से प्रतीत होता है कि चन्द शकुन-शास्त्र और ज्योतिष के प्रकांड पंडित थे और उन्होंने इसका प्रयोग रासो में किया है।

उपर्युक्त वस्तु-वर्णन को देखने से प्रतीत होता है कि कवि ने केवल वर्णन के लिए ही वस्तु-वर्णन नहीं किया है, अपितु उसमे अपनी सहृदयता और भावुकता का मिश्रण करके उसे सर्व ग्राह्य भी बना दिया है। वस्तुओं के ये विस्तृत वर्णन और व्या-पार मनुष्य की रागात्मिक वृत्ति के आलम्बन हुआ करते हैं। इन फड़कने वर्णनों को पढकर ही पाठक के सुप्त मानसिक स्थायी भाव जागृत होकर रस सज्ञा को प्राप्त होते हैं। इसीलिए इन वर्णनों मे रसात्मकता का पूरा आभास मिल जाता है। यह सब देखकर कहा जा सकता है कि वर्णन की दृष्टि से चन्द की समता के हिन्दी साहित्य में इने-गिने कवि ही हैं। चन्द की रचना-कुशलता और कल्पना शक्ति अद्भुत थी। उन्होंने अपनी नवनवोन्मेष शालिनी प्रतिभा और सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति का परिचय रासो मे सर्वत्र दिया है। -

भाव व्यञ्जना:—

मनुष्य मात्र की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है कि एक ओर वह अपने भावों, विचारों, आकांक्षाओं की अभिव्यजना करते है तो दूसरी ओर अपने सौन्दर्य ज्ञान के द्वारा उन्हें सुन्दरतम बनाकर उनमे एक अद्भुत चमत्कार भी उत्पन्न करना चाहते हैं। इन्हीं दो मूल तत्वों के आधार पर काव्य के दो पक्ष हो जाते हैं-भाव पक्ष और कलापक्ष। यद्यपि इन दोनों पक्षों का समुचित सयोग और सामंजस्य ही श्रेष्ठ काव्य का सूचक होता है, फिर भी भावों की प्रधानता सर्वमान्य है। रस, जिसे काव्य का आत्मा कहा गया है, इन्हीं भावों पर आधारित है। मानव हृदय मे निहित ये भाव भी दो प्रकार के होते है-स्थायी और सचारी। किसी काव्य को पढकर मानव हृदय मे वासना रूप से रत्यादि भाव जागृत होकर उद्दीपन विभाव, अनुभाव और सचारी भावों के सयोग से ही रस रूप निर्मित होते है। रस ६ प्रकार के कहे गये हैं। रासो मे हमे इन्हीं रसों का मूल्यांकन करना है।

वीर रस:—

रासो वीर रस प्रधान काव्य है, अन्य रस उसमें गौण रूप में आये हैं। इस रस की प्रधानता होने के कारण श्यामसुन्दर दास ने अपने हिन्दी साहित्य में पृथ्वीराज रासो को 'विशालकाय वीर काव्य' कहा है। रासो में आद्यान्त पृथ्वीराज, उसके सहयोगी सामन्तों और विपक्षियों के शौर्य का वर्णन किया गया है। आदर्श वीरता ही इन वीरों का लक्षण है, ससार में अमर ख्याति प्राप्त करना ही इनकी कामना है। पृथ्वी भी वीर भोग्या होती है, वह वहाँ के वीरों का ही अनुसरण करती है। वीरों के दान स्वरूप जल द्वारा उसका भोग होता है और वीरों की तलवार से ही उसमें भारी पन (अर्थात् गर्भावस्था या क्षेत्रविस्तार) आता है। इस सयोग से वह अन्नपान रस को जन्म देती है। कायर को वह अच्छी नहीं लगती, उसको तो वीर पुरुष ही घोड़े के सूम एवं तलवार की धारा के बल पर अच्छी तरह भोग सकता है—

वीर भोग वसुमति, वीर वका अनुसरई।
वीर दान भोगवै, वीर खग्गह गुर करई॥
अन्न पान रस द्रवै, लगे काइर नह अच्छी।
हैं खुर खग्गह धार, वीर भोगह वर अच्छी॥

इसीलिए यह पृथ्वी न तो किसी कुल में उत्पन्न हुई है और न किसी पुरुष की स्त्री ही है। घोड़े के खुर और तलवार की धार के बल पर ही वीर पुरुष इसका उपभोग कर सकते हैं—

न कस्यापि कुले जाता, न कस्य न॰ नारियम।
हय खुर खड्ग धाराच,' वीर भोग्या वसुन्धरा॥

सच्चा वीर अपने लिए युद्ध नहीं करता, वह लोक मगल की भावना को प्रमुखता देता है। वह प्रजा की रक्षा करना मुख्य कर्त्तव्य समझता है और जब कोई प्रजा में उत्पात प्रारम्भ करता है तो वह उसे नष्ट करने को सन्नद्ध हो जाता है। भोलाराय समय में मलखानी जैत्र अपने भाइयों से कहता है—

दिग्गिये दीन घर घर फिरैं, गस्य अन्न न हरू अन्नतैं।
निन्द्र पियास क्षुध मोह तजि, दुग्ग मुग्ग इक्क न गर्नै॥

'तुम देखते नहीं कि हमारी दीन प्रजा शत्रुओं के उत्पात से घर घर की होरही है। इसमें हमारा गौरव नहीं, हलका पन ही है। अत. हमको पृथ्वी और प्रजा के लिए निन्द्रा,प्यास, भूख और मोह को छोड कर दु:ख-सुख की परवाह नहीं करनी चाहिए।'

वे युद्ध-भूमि में मृत्यु प्राप्त करने के पश्चात् मोक्ष-प्राप्ति की कामना करते हैं। कवि ने भी क्षत्रियों के लिए मोक्ष प्राप्ति का एक मात्र साधन खड्ग द्वारा कट मरना ही बताया है।

रजपूत मुत्ति खिति खड्ग खिरि, विधि विनॉन यों ब्रम्मयौ।

जब उनके मस्तक धड़ से अलग होकर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं, तो उन्हें पद पद पर शिव और पद २ पर मुक्ति के दर्शन होते हैं, साथ ही वे यश भी प्राप्त कर लेते हैं—

पग पगति सिंभ पग पग मुगति, मुगति लभ्य कित्ती सुजग।

मृत्योपरान्त सुन्दरी अप्सराओं की प्राप्ति का लोभ और शिव की मुण्डमाला मे अपने मस्तक का समर्पण ही इनका ध्येय बना रहता है। यहॉ तक कि उसके धराशायी हो जाने पर—

तहँ झगरी मह माय, देवि हुँकारौ पायौ॥
हुँकारै हुँकार, जूह गिद्धनि उड्डायौ।
गिद्धिन ने अपछरा, लियौ चाहत नहीं पायौ॥
अवतरन सोइ उत-पति-गयौ, देव थान विभ्रम भयौ।
जमलोक न शिवपुर ब्रह्मपुर, भान थान भानैं वियौ॥—

'योगिनियॉ, गिद्धनियॉ, और अप्सराओं में परस्पर कलह उत्पन्न हो जाता है और उस वीर की आत्मा यमलोक, शिवलोक और ब्रह्मलोक को भी लॉघकर उच्चलोक मे पहुँच जाती है।' इस ध्येय की प्राप्ति के लिए हॅसते-हॅसते मर मिटना ही इनकी सहज क्रीडा है। अपने भूभाग और स्वामी की रक्षा के लिए युद्ध भूमि में शत्रुओं का सहार कर अपना शिरच्छेदन चाहते हुए इस लोक में यश-प्राप्ति और परलोक मे अप्सरा प्राप्ति ही इनके उत्साह के लिए प्रेरणास्पद वस्तु है। स्वामि-भक्ति इन वीरों की महान् विशेषता है। ये सामन्तगण अपने स्वामी के लिए शारीरिक मृत्यु को तृण तुल्य समझते हैं। यदि स्वामी इन्हें प्राणों से अपनाले, तो ये

वीर उनके लिए अपने पुत्रों और बन्धु-बान्धवों को कोचित होकर युद्ध में कटवाने को तैयार हो जाते हैं—

स्वामि काज सामत, मरण तन तिनुक विचारौ ।

× × ×

अप्पु आगवें सुजीव, पुत्त बवत्र खिम्भि भान ।

स्वामि भक्ति की इसी महानता को देख कर डॉ० त्रिवेदी अपने 'चंद बरदाई और उनका काव्य' मे कहते हैं— "उस युग की वीरता का यह आदर्श कि स्वामि-धर्म ही प्रधान है- कोरा आदर्श मात्र ही नहीं था। उसका संस्थापन सेना के स्थायित्व तथा विशेष रूप से उसकी युद्धोचित् प्रवृत्ति की जागरूकता को ध्यान मे रखते हुए अति आवश्यक अनुशासन को लेकर हुआ था। अनुशासन ही सेवा और युद्ध की प्रथम आवश्यकता है। आदिकाल से लेकर आज तक सेना मे अनुशासन की दृढता रखने के लिये नाना प्रकार के नियमों का विधान पाया जाता है। आज्ञाकारिता को दासता के साथ जोड़ना ठीक नहीं, क्योंकि उस युग मे किराये के टट्टुओं से भारतीय सम्राटों की सेनाएं सुसज्जित नहीं होती थीं। युद्ध क्षत्रियों का व्यवसाय था और स्वामि-धर्म के लिए प्राणोत्सर्ग करना कर्त्तव्य था। सम्राट या सेनापति की आज्ञा-पालन के अनुशासन को चिरस्थायी और व्रत स्वरूप बनाने के लिये स्वामि-धर्म का इतना उत्कट प्रचार किया गया था कि वह सामान्य सैनिकों की नसों मे कूट-कूट कर भर गया था और इसी आदर्श की रक्षा मे उनका युद्ध मे कट मरने का कार्य दुहाई दे रहा है। इसके अतिरिक्त स्वामि-धर्म को दार्शनिक जामा भी पहिना दिया था। स्वामि-धर्म हेतु युद्ध मे वीर गति प्राप्त करने के उपरान्त नाना प्रकार के उच्च लोकों मे स्थान प्राप्ति के निश्चय का विधान असामान्य उच्च श्रेणी के योद्धाओं के लिये किया गया प्रतीत होता है।" सम्भवत युद्धकाल इन योद्धाओं के लिये अलौकिक आनन्द उत्पन्न करने वाला क्षण होता होगा, तभी तो ये योद्धा जीवन-मरण का भय छोड, असार ससार मे निर्मल यश की अमरता और स्वामि-धर्म की रक्षा के लिए निकल पडते थे। कायरों मे भीरुता के गवनाद की ध्वनि फूंक कर माता के स्तन्य की लज्जा के नाम पर मर मिटने वाले इस काल को शुक्लजी ने 'वीर गाथा काल' कहा है।

वीर रस का स्थायी भाव 'उत्साह' होता है, जिसकी रासो मे सर्वत्र व्यञ्जना मिलती है। आलम्बन ज्ञान द्वारा हृदय मे वासना रूप से स्थित अचेतन अवस्था वाले

इस स्थायी भाव की जागृति के पश्चात् इसे तीव्र करने वाले उद्दीपन भावों और उसके फल स्वरूप शारीरिक एवं मानसिक अनुभावों में लवण सागर की तरंगों के अनुरूप संचरित होने वाले संचारी भावों के मिश्रण से जिस अपूर्व रस का उद्भावन भावुक के हृदय मे होता है, वही वीर रस कहलाता है। 'रासो' वीर रस प्रधान काव्य है, अत इस (द्वितीय भाग) में इसके उदाहरण प्रचुर मात्रा में मिल सकते हैं। युद्ध मे दूतों द्वारा मुसलमानी सेना का वर्णन सुन कर—

सुनत सुअन सोमेस, भिख्ख भयमीत भयउ तन ।
रोस रग प्रज्जुलिग, मंगि संनाह-अमर जन ॥
हयनि हुकम किय दैन, मत्त गज अंदुणि खुल्लिय ।
नालि गोल जुत जम, हसम हाजर सह वुल्लिय ॥
लोहान वुल्लि आदर अनंत, विवरि वत्त दूतनि कही ।
विप्फुरे वीर हुंकनि सुनत, जनु कि पुंछ म्यडी अही ॥—

'सोमेश्वर के पुत्र पृथ्वीराज की शरीराकृति भयंकर होगई और वह क्रोध से जल उठा। उसने दासों से अपना अक्षय कवच मॅगवाया और सामन्तों को घोडे देने की आज्ञा दी। मस्त हाथियों को जंजीरों से खोला गया और यान्त्रिक आग्नेयास्त्रों को तैयार किया गया। उपस्थित सैनिकों को सज धजकर आने की आज्ञा दी और सम्मान के साथ लोहाना आजान बाहु को बुलाया तथा दूतों द्वारा दिया गया विवरण सुनाया। दूत-वाक्यों और स्वामी की आज्ञा से बहादुर इस प्रकार उन्मत्त हुए, मानों सॉप की पूँछ मसल दी गई हो।' यहाँ युद्धार्थ आई हुई मुसलमानी सेना आलम्बन है और पृथ्वीराज आश्रय। दूतों द्वारा विपक्षी सेना का अतिरंजित वर्णन करना उसके हृदय मे जागृत उत्साह नामक स्थायी भाव को अधिक तीव्र कर देता है, जिसके फलस्वरूप शरीराकृति का भयंकर हो उठना, युद्धार्थ सज्जित हो जाना, हाथियों को जंजीरों से खोल देना और यान्त्रिक आग्नेयास्त्रों को तैयार करना आदि अनुभाव होते हैं। संचारी भावों मे चपलता, हर्ष और क्रोध के संयोग से यहाँ वीर रस की निष्पत्ति हुए है। इस प्रकार के उदाहरण रासो मे सख्यातीत मिल सकते हैं। युद्ध की सजावट, वीरों का उत्साह, सेना का पृथ्वी को रौंदते हुए चलना, तलवारों की लपक-झपक, रुण्ड-मुण्डों का कट-कट कर गिरना आदि वर्णनों

ने चन्द ने युद्ध के सजीव चित्र उपस्थित कर दिये हैं। यदि यह कहा जाय कि चंद युद्ध-वर्णन करने वाले हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

वीर रस केवल युद्ध-वीरता तक ही सीमित नहीं रहता है। वीर रस का स्थायी भाव 'उत्साह' हृदय की इतनी उदात्त वृत्ति है कि वह जीवन के विभिन्न क्षेत्रों मे भी रस ग्रहण करती है। इसीलिए आचार्यों ने युद्ध वीर के अतिरिक्त दानवीर, दयावीर और धर्मवीर आदि विभाग और किये हैं। रासो (द्वितीय भाग) मे भी इन चारों का वर्णन सहज रूप से मिलता रहता है। पृथ्वीराज की दान वीरता के अनेक उदाहरण मिलते हैं– युद्ध मे विजयी हो जाने पर शत्रु सेना से जो भी धन हाथ लगता था, वह उसे अपनी सेना मे वितरित कर देता था। स्वार्थ उसे उसी प्रकार नहीं छूता था, जैसे चिकने घड़े पर जल नहीं ठहरता या कमल पत्र को जल नहीं छूता या बुद्धिमान व्यक्ति की दूसरों की निन्दा करने की प्रवृत्ति नहीं होती। धनकथा मे पाषाण लेख को पढ़कर जो असंख्य धनराशि निकली, उसे पृथ्वीराज ने इस प्रकार वितरित कर दिया—

वटि दियौ प्रथिराज, भाग किन्नै सह अब्बर।
एक भाग कैमास, बीय अप्पे नर सिंध नर॥
पच भाग चावंड, भाग अद्वौ वर कन्ह।
द्वादस भाग नरिंद, दियौ परिगह सब थन॥
प्रथिराज दिप्ट आये नहीं, चिकट कुंभ ज्यों जल अभिद।
लग्गं न नीर पत्रह कमल, भिदै न मति-छीवे उछिद।

पृथ्वीराज ने तो केवल अपनी ख्याति अक्षुण्ण रखने के लिये यश ही अपने पास रखा—

रक्खन सु गल्ह राजंद्र गुर, जस रक्खौ निज वर सुकर।

इस कथन से पृथ्वीराज की अपार दान शीलता द्योतित होती है। चंद ने अपने काव्य नायक की दया-वीरता के भी अनेक उदाहरण दिये हैं। गौरीशाह के अनेकों वार पराजित होने पर भी उसे बार-बार छोड़ देना, यही नहीं आतिथ्य सत्कार करके द्रव्यादि से उसका सम्मान कर अपने सामंत वीरों से रक्षित कर गजनी तक

भेज देना, पृथ्वीराज जैसे दयावीर की ही उदारता का द्योतक है। रेवातट के युद्ध में गौरीशाह की पराजय के फलस्वरूप बंधन मे लेने के पश्चात् उसे छोड़ दिया गया और उसे नग, मोती, माणिक्क आदि से पिरोई हुई माला पहना कर गजनी भेज दिया—

मोतीय नग्ग मानिक नवल, करि सलाह संमेल करि।
पहिराइ राज मनुहार[१] करि, गज्जनवै पठ्यौ सुघरि॥

इस पर डॉ० त्रिवेदी कहते हैं– "भले ही राजनीति पृथ्वीराज के इस कार्य की भर्त्सना करे, परन्तु धर्मनीति इस अंतिम हिन्दू वीर सम्राट के चरित्र में चार चाँद लगा देती है।" इस प्रकार कहा जा सकता है कि रासो वीर रस का ऐसा अक्षय कोष है जिसकी अजस्र धारा का निरंतर पान करते रहने पर भी हिन्दी संसार उसे उतना ही सजल और प्रवहमान पाता है। वीर रस की इस अपूर्व एव समता-रहित मंजूषा का निर्माण कविवर चन्द की ही लोह लेखनी से सम्भव था।

रौद्र रसः–

जिस काव्य मे वीर रस की प्रधानता होती है, उसमे सहायक रूप से रौद्र, वीभत्स और भयानक रस भी अनिवार्यतः आ जाते हैं और इन्हीं के सहयोग से वीर रस की व्यञ्जना उत्कृष्ट हो जाती है। रौद्र और वीर रस मे अधिक अन्तर नहीं होता है। यदि वीर का स्थायी भाव 'उत्साह' है तो रौद्र का 'क्रोध'। दोनों का अन्तर अनुभावों पर दृष्टिपात करने से ही प्रतीत हो सकता है। यदि आश्रय की चेष्टाएँ विवेक युक्त रहती हैं तो वीर रस की व्यञ्जना होती है और यदि विवेक शून्य हो जाती हैं तो उसे हम वीर रस की कोटि मे न लेकर रौद्र रस की श्रेणी मे लेते हैं। रासो (द्वितीय भाग) मे भी, जैसा कि कहा जा चुका है, रौद्र रस वीर रस के सहायक रूप में ही आया है। महाकवि चंद वीर रस की अभि-व्यञ्जना मे जितने सफल हुए हैं, उतने ही रौद्र रस की अभिव्यञ्जना में भी। भोलाराय समय से भोराभीम के दूत, वीर मकवाना द्वारा शहाबुद्दीन के सम्मुख अपने स्वामी की प्रशसा मे यह कहने पर कि "ए धरनि भीम भजन घढन, आप कियौ करतार रचि", शहाबुद्दीन के क्रोधातिरेक मे वृद्धि हो गई, उसका कथन इस प्रकार किया गया है—

कलहु न मंडे काल, देस पुव्वेस पुलंगी ।
अग्निवान दखि प्रभा, वाई–कूंना रस मंगी ।।
मुसलमान दीवान, साहि अग्गे इह वुल्लौ ।
(जौ)लरै चंपि चहुआन, (तौ)कार खग्गां रसु तुल्लौ ।।
सुनि सवन किये रत्ते नयन, बयन साहि तत्तो तमसि ।
जाने कि अग्गि स्यंची सुघृत, ताम तेज वढ्यौ वहसि ।।

यहाँ वीर मकवाने का आत्माभिमान और उसके द्वारा कहे गये गर्व युक्त वचनों ने शाह के क्रोध के लिये उद्दीपन काम का किया । तब उसके नैत्रों का लाल हो जाना और क्रोधावेश मे कुछ का कुछ कह देना और आगे चलकर दूत धर्म के विरुद्ध और मन्त्रियों के समझाने पर भी मकवाने को धराशायी कर देना, रौद्र रस की ही व्यञ्जना करता है । सलख युद्ध समय मे युद्ध करते हुए पृथ्वीराज और सलख का वर्णन भी ऐसा ही हुआ है—

हालाहल हुअ पिथ्थ जहँ, झालाहल झकाल ।
उतरण कुप्पौ सलख लखि, कालाहल ककाल ।।

रासो (द्वितीय भाग) मे वीभत्स रस की स्वतन्त्र रूप से उद्भावना कहीं नहीं हुई है । सर्वत्र इसकी समृष्टि युद्ध-वर्णन मे ही वीर, रौद्र और भयानक रस के अतर्गत हुई है । भयानक और वीभत्स तो अत्यधिक मिला दिये गये है । जहाँ युद्ध होता है, वहाँ की भूमि रुण्ड-मुण्डों से आच्छादित हो जाती है, लोथों से लोथें टकराकर पहाड सी दिखाई देने लगती हैं, श्रोणित–धारा वीरों की मुक्ति हेतु वैतरणी सी बन जाती है और हाथियों की रदपक्तियाँ और मृत वीरों की आँतडियों मे उलझ–उलझ कर योद्धा इधर से उधर गिर जाते हैं । योगिनियाँ, पिशाचिनियाँ और गिद्ध पक्तियाँ झूम–झूम कर रक्त पान किया करती है । महाकवि चन्द ने युद्ध के ऐसे वीभत्स दृश्य का अनेकों जगह अकन किया है । यथा—

खग उभारि दल रारि, तारि कट्टन दुज्जनवै ।
औडन हत्थर नकि, धग्धि चालुक्क न रख्खै ।।
कटि कब्ब धर तुट्टि, लुत्थि पर लुत्थि अतुट्टिय ।
श्रोन धार खलहलिय, मोहमाया भ्रम लुट्टिय ।

तुटि दंत अंत पायक दुहि, वहर रूप धाव अछग ॥
पर्ग पंगति सिंभ पग गग मुगति, मुगति लभ्य कित्ती सुजग ॥

भयानक रसः—

यद्यपि कहीं २ भयानक रस स्वतन्त्र रूप से भी निरूपित किया गया है, किन्तु सर्वत्र इस रस की सहकारिता वीभत्स से ही रहती है। इसका वर्णन भी अधिकतर युद्ध वर्णन में ही मिलता है। यथा—

हय-हय-हय उच्चार, देव देवासुर भज्जिय।
रह-रह-रह उच्चार, धाइ धाइ घट बज्जिय ॥
त्रह-त्रह-त्रह त्रासंत, बहुल खग खग्ग गट्टन।
टूक टूक उत्तरिय, बाजि नर सुभ्भर पट्टन ॥
हरिवास हार-हर-हरु भुलिय, धुत्र्र मंडल सदह डुलै।
मंगल घनेव भारथ्थ किय, जिन सुब्रह्म साधन खुलै ॥

यहाँ देव तुल्य वीरों के मार-मार उच्चारण से देवता और दानव सभी आतंकित होगये। वीरों के शस्त्राघात से शत्रु त्राहि-त्राहि करने लगे। उस युद्ध को देखकर हरि अपने निवास स्थान को और हर मुण्डमाल तथा पार्वती को भी भूल गये। उन सामतों के ऊर्ध्वघोष से ध्रुव मंडल भी कम्पित होगया। यहाँ देवतुल्य वीर आलम्बन विभाव, उनके द्वारा किया हुआ विकट युद्ध, मार २ और पकडो २ का उच्चारण एवं तलवारों का चमकना उद्दीपन विभाव, शत्रुओं का त्राहि २ करना, हरि का अपने निवास स्थान को और हर का मुण्डमाल और पार्वती को भूल जाना अनुभाव एव त्रास, दैन्य आदि संचारी भाव हैं। इस प्रकार के उदाहरणों मे ये पंक्तियाँ भी दी जा सकती हैं—

गरल धरण गरमाल धरि, टपकति बुंदनि रत्त।
भिख्ख भयानक भति तिहि, कंपति दिखि गिरिजत्त ॥

यहाँ भयानक और वीभत्स दोनों का गगाजमुनी सयोग हो गया है।

रासो मे यद्यपि नवों रसों का सागोपाग वर्णन मिलता है, किन्तु इस भाग मे हास्य, शान्त और करुण के उदाहरण नहीं से ही हैं। शान्त और करुण का तो प्रसंग ही इसमे नहीं मिलता। कहा-२ युद्ध वर्णन के अंतर्गत ही हास्य सचारी

के रूप में आ गया है, अन्यथा इसकी स्वतन्त्र रूप से उद्भावना इस भाग में कहीं नहीं मिलती है। रेवातट में शिव अपनी मुण्ड माला में एक वीर के मस्तक को उसी प्रकार देखते है, जिस प्रकार कोई दरिद्री आम्र-वन को बार-बार देखता है।

अद्भुत रसः—

अद्भुत रस में केवल मात्र आलबन के वर्णन में ही रस की निष्पत्ति हो जाया करती है। किन्तु यह आलबन सार्वकालिक और सार्वयुगीन नहीं होता। काल और परिस्थिति के विपरीत चित्रण में ही इसकी विशेषता निहित रहती है। इस प्रकार के वर्णन भी रासो में पर्याप्त मात्रा में मिलते है। सामान्यत यह मान्यता है कि युद्ध भूमि में वीर का मस्तक कट पडने पर वह मोक्ष और स्वर्ग में अप्सराओं की प्राप्ति करता है किन्तु कहीं-२ वीर के धराशायी होने पर उसका अप्सरा के साथ विवाह होते भी किसी ने नहीं देखा, उसके मॉस, प्राण पक्षी तथा शस्त्र और वस्त्र आदि का भी कहीं पता नहीं लगा, उसके शरीर का अग्नि-संस्कार भी नहीं हो सका और उसकी आत्मा ब्रह्मलोक शिवलोक और रवि मडल को भी भेदकर पूर्ण ज्योति में मिल गई—

रन मुक्कि न ग्रह गइय, वरत अच्छरि नन दिट्ठह ॥
कहूँति मस कहूँ अस, हस कहूँ सस्त्र वस्त्र कहँ।
ब्रह्म थान शिव थान, थान दिक्खिय न जन्म जहँ ॥
दीयौ न अग्गि रवि भेद नति, तत्व जोति जोतिहि मिल्यौ।

महाकवि चद को देवी की सिद्धि और स्वप्न एव प्रत्यक्ष में साक्षात्कार, जैन धर्मावलम्बी भोरा भीम के मत्री की विलक्षण करामाते, वीरगति प्राप्त होने पर मृत वीरों का अप्सराओं द्वारा वरण, आत्माओं का भिन्न-२ लोकों में वास और कबधों का युद्ध वर्णन इस प्रकार के अद्भुत रस की व्यञ्जना में सहायक होते है।

शृंगाररसः—

वीर रस का अतिरंजित वर्णन करने वाले सिद्धहस्त कवि चन्द ने शृंगार रस का भी पूर्ण परिपाक किया है। रासो में वीर रस की प्रधानता है और शृंगार उसमें गौण रूप में आया है। तत्कालीन [illegible] रसात्मक काव्यों में यही प्रवृत्ति परिलक्षित [illegible] पुरुषार्थी ने लिखा है— इन काव्यों में शृंगार का

भी थोडा मिश्रण रहता था, पर गौण रस से, प्रधान रस वीर ही रहता था। शृंगार केवल सहायक के रूप मे रहता था। जहाँ राजनैतिक कारणों से भी युद्ध होता था, वहाँ भी उन कारणों का उल्लेख न कर कोई रूपवती स्त्री ही कारण कल्पित करके रचना की जाती थी।" इस भाग मे शृंगार के संयोग पक्ष का ही वर्णन मिलता है, वियोग शृंगार का अवसर कवि को नहीं मिला है। भोलाराय समय में पृथ्वीराज के महामंत्री कैमास को वश मे करने के लिए भोरा भीम के मंत्री अमरसिंह सेवरा द्वारा भेजी हुई कामकन्दला बाला के सौन्दर्य का चित्रण उद्दीपन के रूप में किया गया है। इस चित्रण में 'थोरथनी' (लघुस्तनी) का नूतन प्रयोग उसके श्यामा-सोड़षीपन का सूचक है। "उन्नित नितंब, जानि रवि व्यंत्र वीय गति" कहकर गोलाकृति नितम्बों पर सूर्य और सूर्य बिम्ब की सुन्दर उत्प्रेक्षा की गई है। "चख चंचल उद्दीयन रीह" कहने में नेत्रों को उद्दीपन की सीमा बतलाना भी एक नई उक्ति है। उसके नख शिख का वर्णन करते हुए कवि ने सभी प्रचलित परम्परा प्राप्त उपमानों को लिया है। शशिवृता समय के प्रारम्भ मे प्रकृति का वर्णन, ग्रीष्म के गमन और पावस के प्रवेश पर मध्य प्रदेश से आये हुए चन्द्रोदय नामक नर्तक से शशिवृता के सौन्दर्य का वर्णन सुनकर पृथ्वीराज को श्रोतानुराग हो गया। इसमें भी शशिवृता का नख-शिख वर्णन परम्परानुरूप ही बन पड़ा है। अन्य दूतों द्वारा शशिवृता के आलंकारिक सौन्दर्य वर्णन ने राजा के श्रोतानुराग को अधिक पुष्ट कर दिया यौवन प्रवेश की उपमा वसन्तागम और शैशव की शिशिर (पतझड़) से देकर एक बडे रूपक द्वारा वय सन्धि का सुन्दर वर्णन किया गया है। यहाँ कवि ने रूप वर्णन द्वारा ही तुल्यानुराग की प्रतिष्ठा की है। श्लोक मे शशिवृता का नख-शिख वर्णन इस प्रकार किया गया है—

पीनो-रु-पीन उरजा शशि सम वदना, पद्म पत्रायताक्षी।
व्यबोष्ठी तुंग नासा, गजपति गमना, दक्षना वृत नाभी॥
सुस्निग्धा चारु केशी मृदु पृथु जघना, वाम मध्या सुनेमी।
हेमांगी कृति हेला वर रुचि दसना, काम बाना कटाक्षी॥

यहाँ कुच विशेष पैने, मुख चन्द्रमा के समान, चक्षु कमल पत्र के समान, ओष्ठ बिम्बा फल के अनुरूप, नासिका उन्नत, चाल हथिनी की तरह, नाभि दक्षिणावृत,

प्रेम श्रेष्ठ, केश मंजुल, कोमल जंघाएँ, वय संध्या, काया सर्वांग स्वर्णिम, हाव भाव युक्त, रदपंक्ति रुचिकर और कटाक्ष कामदेव के बाणों के तुल्य कहे हैं—जो परम्परा युक्त पद्मिनी नायिका के लक्षण कहे जा सकते हैं। इसके बाद कवि ने संस्कृत काव्य-शास्त्रकारों के अनुरूप ही नायिका भेद वर्णन किया है। किन्तु यहाँ भी कवि की दृष्टि केवल मात्र सामान्य वर्गीकरण पर ही गई है, उसने परवर्ती कवियों की तरह बाल की खाल निकालने का प्रयत्न नहीं किया है। आगे चलकर शशिवृता के रूप का आलंकारिक वर्णन मिलता है—

तजि भूखन बर बाल, इक्क आचिज्ज उपन्नौ।
लता हेम पर चन्द, उभै खंजन ढिग चिन्नौ॥
श्रीफल उरज विसाल, बावबर भ्रंग-सु-पत्ती।
सुकिसु तरंग अरन्नि, करी भग्गावल वती॥
सोभन उरगपति सुभ्र शरन, हंस-मुत्ति-चर वर करी।
सुध काज चढ़ै पप्पील सुत, काम-रत्तिनी दुख डरी॥

यहाँ रूपकातिशयोक्ति अलंकार द्वारा कनकलता पर चन्द्रमा, खंजन, श्रीफल, वापी, भ्रंगपंक्ति, शुकी, सरिता, अर्गला, सर्पिणी, हंस, हाथी और पिपीलिका पंक्ति आदि प्रसिद्ध उपमानों से क्रमशः शशिवृता की गौरवर्ण युक्त देह, मुख, नेत्र, उरोज, नाभी भौंहे, नासिका, त्रिबली, दोनों भौंहों के बीच खिंची हुई रेखा, वेणी, पवित्र प्रेम (या भूषण ध्वनि), चाल और नाभी से उरोजों की ओर जाने वाली रोमावली की व्यञ्जना की गई है। उनकी गौर देह पर बिखरी अलकों को उत्प्रेक्षा द्वारा 'कनक थंभ तें उत्तरी उरग सुता दरम्मार' कहा गया है। आगे जब पृथ्वीराज शशिवृता का हाथ पकड़ लेता है, तब कवि उत्प्रेक्षा करता हुआ कहता है 'मानो कि लता कंचन लहरि, मत्तवीर गजराज गहि।' 'इन्द्रावती विवाह समय' में विवाह के समय सुन्दरी इन्द्रावती के रुनझुन-रुनझुन करते हुए सखियों की टोली के बीच आते हुए दृश्य के लिए कवि ने उत्प्रेक्षा करते हुए कहा है—

करि श्रृंगार अलि अलिन संग, रिमझिम झुंडन मझ्झ।
बसन रंग नवरंग रंगे, जानु कि फुल्लिय सझ्झ॥

अतः कहा जा सकता है कि चन्द ने श्रृंगार रस के अन्तर्गत सभी शास्त्रीय अंगों

का वर्णन किया है। उसका सौन्दर्य चित्रण प्राय' उद्दीपन विभाव के रूप में ही मिलता है। चन्द मानव सौन्दर्य के चतुर चितेरे थे, इसीलिए उन्होंने संयोग की सजावट के इतने प्रचुर उपकरण प्रस्तुत किये हैं, जिसमें नख-शिख, वय सन्धि और रूप वर्णनों की प्रमुखता मिलती है। चन्द के इसी प्रकार के शास्त्रीय और परम्परा-युक्त प्रसगों को देख कर डॉ॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने 'हिन्दी साहित्य' में कहा है— "इसीलिए इस श्रेणी की रचनाओं मे आदिम कविता की स्पष्टता, अव्यवहित प्रभाव-विस्तरण और अनगढ़ भाव नहीं है बल्कि शास्त्रीय कविता की जटिलता और सुगढ़ भाव व्यञ्जना का प्रयास मिलता है।"

आचार्यों ने नवरसों के अंतर्गत मित्र और विरोधी रसों का भी उल्लेख किया है। उनकी दृष्टि मे वीर और श्रृंगार रस का सामरस्य रस कोटि मे नहीं, अपितु रसाभास की कोटि में आता है, क्योंकि श्रृंगार के स्थायी भाव 'रति' और वीर के स्थायी भाव 'उत्साह' की परिस्थितियों में विषमता होती है। इतना होने पर भी सस्कृत साहित्य के ही अनुरूप रासो मे भी श्रृंगार और वीर रस की उक्तियों में सामरस्य उपस्थित किया गया है, जिसे उपयुक्त बनाने की भी चेष्टा की गई है। इस प्रकार के उदाहरणों मे- धनकथा में चंद पुण्डीर के भाई लक्ष्मण के युद्ध कौशल का वर्णन करते हुए कवि लिखता है—

सत्र न सस्त्रन उव्वरिय मन-वर छुट्टिय नांहि।
ज्यों मध्या-प्रिय तुच्छ निसि, सेंरो सहर समांहि॥

'उस वीर के शस्त्राघात द्वारा कोई भी शत्रु नहीं बच पाया, फिर भी उसके श्रेष्ट मन की इच्छा उसी प्रकार तृप्त नहीं हुई, जिस प्रकार मध्या स्त्री के पति की इच्छा, शहर में सबके सोजाने पर भी छोटी रात्रि होने के कारण प्रेयसी के साथ सुरति-सुख की प्राप्ति मे अधिक आतुर बनी रहती है।' यहाँ वीर रस की उपमेय पंक्ति के लिए श्रृंगार की उपमान पंक्ति की योजना की गई है। इसी प्रकार शशिवृता समय मे भी शस्त्राघात करते हुए वीर एक दूसरे को पकडते और छूट जाते हुए इस प्रकार दिखाई दे रहे थे, मानों दूती से नायक का संयोग होते देख कर नायिका सुरति की रात्रि मे मनो मालिन्य कर बैठी हो—

शस्त्रघात आघात, वथ्थ अनवथ्थ सु लग्गा ।
सुरतु राति रति सेज, मिले-दूती मन भग्गा ॥

रेवातट समय मे युद्धान्तर्गत पुंडीर वीर का लडने पहुँच जाना और शत्रु समूह को तुरत भगा देने की तुलना शयन गृह मे रात्रि को पति से सशंकित रहने वाली नवोढा के सूर्योदय के पूर्व ही ब्राह्म मुहूर्त्त मे वहाँ से भाग जाने से की गई है—

पुंडीर भीर भजन भिरन, लरन तिरन्छौ लग्गयउ ।
नव वधू जेम संका सु वर, उदै जानि जिम भग्गयउ ॥

अनगपाल समय मे भी इस प्रकार की उक्ति कही गई है। पट्टन पति और सोमेश्वर के योद्धागण परस्पर आघात सहते हुए भी पीछे हटना उसी प्रकार पसन्द नहीं करते थे, जिस प्रकार प्रौढ़ा नायिका छैल छबीले पुरुष का सम्पर्क पाकर उससे रमण करती हुई प्रातःकाल होने देना नहीं चाहती —

सार मार मच्ची कहर, दूअ दलनि सिरि मधि ।
प्रौढ़ा नायक छलय रमि, प्रात न बछै सधि ॥

इन उक्तियों को देखने से प्रतीत होता है कि कवि को शृंगार और वीर रस की उक्तियों मे सामंजस्य उपस्थित करना इष्ट था, इसीलिए उसने कही मध्या, कहीं खंडिता, कही नवोढा और कहीं प्रौढा नायिकाओं की उपमान पंक्तियों से युद्ध दृश्यों की तुलना की है। किन्तु इस प्रकार के दृश्यों का अंकन न तो वीर रस की पुष्टि ही करता है और न शृंगार की ही, अपितु इनमे रसाभास ही होता है। इस प्रकार की पद्धति का अनुसरण चंद के परवर्ती कवि जायसी मे भी प्रचुरता के साथ मिलता है।

रासो (द्वितीय भाग) मे रसों के पृथक २ विवेचन को देखने के पश्चात चन्द मे एक और विशेषता पायी जाती है— वह है नव रसो का एक ही छन्द मे पर्यवसान किया जाना। इन स्थलों पर ऐसे वातावरण की नियोजना की जाती है, जिसके द्वारा उस विशेष परिस्थिति मे उपस्थित भिन्न २ व्यक्तियो मे भिन्न २ रस के अवयव भासित होने लगते है। ऐसे स्थल चन्द के उत्कृष्ट कला-कौशल के द्योतक है। यथा—

शशिवृता समय मे पृथ्वीराज ने देवालय की सीढ़ियाँ चढकर ज्योंही शशिवृता का हाथ पकड़ा, त्यों ही वह कुमारी उसी प्रकार काँप उठी जैसे कोमल काम-लतिका प्रेम-

पवन के लगने से झकझोर दी गई हो। उसने हाथ पकड़ कर कुमारी को हृदय से लगा घोडे की पीठ पर चढा लिया। उसी समय उसके प्रेमयुक्त मन ने अपने प्रिय के कानों में अपनी बात कहदी। उस समय पृथ्वीराज मे रौद्र, कुमारी मे करुण, सामतों मे वीर, सम्बन्धियों में हास्य, युद्ध में वीभत्स और कमधज्ज वीर चन्द मे भयानक रस भासित होने लगा—

गहि शशिवृत्त नरिंद, सिट्ठी लघत ढहि-थोरी।
काम-लता कल्हरी, प्रेम मारुत झक-झोरी॥
वर लीनी करि साहि, चपि उर पुट्ठी लगाई।
मन सुरंग सोइ वत्त, कत लगि कान सुनाई॥
नृप भयो रुद्र करुना सुत्रिय, वीर भोग बर सुभर गति।
सगपन सु हास वीभच्छरिन, भय भयान कमधज्ज दुति॥

यहाँ रौद्र, करुण, वीर, हास्य, वीभत्स और भयानक-इन छह रसों का पर्यवसान एक ही छन्द में किया है। इसी प्रकार प्रस्तुत प्रसंग से कुछ आगे चलकर जब वीरचंद कमधज्ज और श्रेष्ठ वीर पृथ्वीराज ने रात्रि मे भी युद्ध प्रारम्भ करना चाहा तो शशिवृता के नेत्रों में शृंगार, सामंतों में वीर, पृथ्वीराज मे रौद्र, चन्द मे अद्भुत, कायरों मे करुण, शत्रु समूह मे वीभत्स, मृत वीरों मे शान्त, अप्सराओं मे हास्य और (हिन्दुओं के) भविष्य को सोचते हुए देवताओं मे भयानक रस छागया—

भान कुँअरि शशिवृत, नैंन शृंगार सुराजै।
वीर रुप सामंत, रुद्र प्रथिराज विराजै॥
चन्द अदभ्भुत जानि, भए कातर करुना मय।
विभछ्छ अरिन संमूह, सात उपन्नो मरन भय॥
उपज्यौ हास अपछ्छरि अमर, भौ भयान भावी विगति।
कमधज्ज राव प्रथिराज वर, लरन लोह चिंतेति रति॥

उपर्युक्त छन्द मे नवों रसों का पर्यवसान कर दिया गया है। कांगुरा युद्ध मे भी इसी प्रकार का प्रसग आया है—

खग वाहिय भिरि भान, अरिन अद्धर धर किन्नौ।
जै जै मुख उच्चार, सीस उमयापति लिन्नौ॥

रीझि रुलिग उतमग, अमिय विष जंग सु ढरयौ ।
टडव मडि असघ, नदि भौ अग जु परयौ ॥
वीभच्छ भयानक भय उमा, रुद्र रुद्र मुख हास हुअ ।
सिंगार वीर अच्छर वरन, नव रस सुनिहि नरिंद हुअ ॥

यहाँ राजा भानु के उत्साह पूर्वक भिड़ते हुए खड्गाघात करने पर वीर, किन्तु विपक्षी वीरो (पृथ्वीराज और उसके सामंतों) द्वारा उसके शरीर को आश्रयहीन कर देने पर करुण, तब उसके कटे हुए सिर को उमापति द्वारा जय जयकार कर उठाने, उसके शकर की मुडमाला में झूलने, जिसके फलस्वरूप हिलने पर शिव के भाल से अमृत और कठ से विष के ढुलक पडने पर अमृत के छींटे भानु के क्षत विक्षत शरीर पर पडने के कारण उसके नृत्य करने लग जाने एव विष के नन्दीगण पर पड़ने पर उसका पान करने के लिए शिव के कठ से सर्प के नीचे की ओर झपट पडने पर अद्भुत, उस समय पार्वती के रुधिर पान करने पर वीभत्स और भयानक, रुद्र के मुख पर रौद्र और हास्य, उस वीर का अप्सरा के साथ वरण होने पर शृंगार और राजा भानु के प्राणान्त हो जाने पर शान्त रस भासित हुआ। महाकवि चन्द ने जिस अद्भुत कौशल से इन भिन्न २ रसों का पर्यवसान एक ही छन्द मे करने का प्रयास किया है, वह स्तुत्य है। आगे चलकर महाकवि तुलसी ने भी स्वयवर प्रसग मे इसी प्रकार एक ही छन्द मे नवो रसो का सामजस्य उपस्थित करने की चेष्टा की है।

भाषा:—

श्रेष्ठ काव्य ग्रन्थ के लिए अनुभूति की तीव्रता जितनी वाछनीय होती है, उतनी ही उसकी अभिव्यञ्जना की उपयोगिता भी स्वय सिद्ध है। भावों की अभिव्यक्ति भाषा द्वारा ही होती है अत भाषा की श्रेष्ठता मनोभावो को सुन्दर रूप मे व्यक्त करना ही है। रासोकार षट्भाषा शास्त्री था, अत उसके काव्य मे तत्कालीन प्रचलित सभी भाषाओं का प्रयोग मिलता है। भावानुकूल भाषा का प्रयोग तो इसकी विशेषता है ही, पर वीर रस की प्रमुखता होने के कारण इसमे ओज गुण की ही प्रधानता मिलती है। युद्ध-वर्णन मे तो शब्द एक दूसरे पर टूट पडने से दिखाई देते हैं, जिनसे युद्ध का एक स्पष्ट चित्र पाठकों के सम्मुख उपस्थित होजाता

है। इन वर्णनों में टकार बहुलता, महाप्राणत्व और द्वित्त एवं सामासिक शब्दों का प्रयोग ही भाषा मे ओजगुण का सम्पादन करता है। किन्तु जहाँ शृंगार रस का वर्णन किया गया है, वहाँ भाषा मे माधुर्य गुण भी पर्याप्त मात्रा में मिलता है। कहने का तात्पर्य यही है कि प्रसंग एवं भावानुकूल भाषा लिखने में महाकवि चन्द सिद्ध हस्त थे। उनकी भाषा सर्वदा भावों की अनुगामिनी ही रही है।

चन्द ने अनेकों नवीन शब्दों का भी प्रयोग किया है, जो प्रसंगानुकूल अत्यन्त सार्थक हुए हैं। जैसे 'थोरथनी' का प्रयोग लघुस्तनी अर्थात् कम उम्रवाली के लिए एक नूतन शब्द की रचना है, इसी प्रकार 'वार-सूर', 'ढाल ढंढोरि' और 'लोह-सार' आदि शब्द भी मिलते हैं। चन्द की भाषा मे मुहावरों का प्रयोग एवं वक्र-कथन भी प्रचुर मात्रा मे मिलता है, जो अर्थ मे नवीन चमत्कार उत्पन्न कर देता है। 'घर घर फिरना', 'हथ्थ दिखाइय' और 'वज्जे वज्जाकर' (बाजे बजवा कर या डके की चोट), 'घाइ दिन्यो लग्गन' आदि मुहावरों का प्रयोग सर्वत्र मिलता है। शशिवृता समय में पृथ्वीराज ने 'युद्ध से जिश ली' कहने के लिए 'ना-सज्जं पंजरो दीवो' (तन-पिंजर को स्वर्गागमन का पथिक नहीं बनाया) का प्रयोग किया है। इसी प्रकार देवगिरि समय में 'भान न उप्पर मुक्कहीं' से अर्थ है 'इस समय हमारा समय अंधकार मय है' और 'कोन हीन को नीर विन को तप-भांन नरिंद' से जयचन्द की लज्जा हीनता पर वक्र-कथन किया गया है।

अलंकार:—

काव्य मे अलकारों का प्रयोग शब्द और अर्थ दोनों की सौन्दर्य वृद्धि के लिये किया जाता है। अर्थात् अलंकार सौन्दर्य वृद्धि के विविध साधनों मे से एक है। जहाँ इस साधन को साध्य बना देने की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है, वहाँ उस काव्य का काव्यत्व गौण ही नहीं अपितु नष्ट भी होजाता है। इसीलिये महान् कवि अलंकारों का प्रयोग भावोत्कर्ष के लिए ही करते हैं। महाकवि चन्द ने (इस भाग मे) यद्यपि प्राय सभी शब्दालकारों और अर्थालंकारों का प्रयोग किया है, किन्तु सर्वत्र इससे भाव-सौन्दर्य मे अभिवृद्धि ही हुई है। साथ ही स्थिति और प्रसंगानुकूल होने के कारण वर्ण्य विषय में भी प्रभावोत्पादकता आगयी है। इसमें शब्दालंकार और अर्थालकार दोनों के ही प्रयोग मिलते हैं, यद्यपि अर्थालंकारों के ही उदाहरण

अधिक है। रासो मे रूपक और उत्प्रेक्षा की तो बाढ सी आगई है, किन्तु कहीं भी अस्वाभाविकता के भवर नही पडे हैं। युद्ध-वर्णन और शृंगार रस के अंतर्गत सौन्दर्य और नख-शिख वर्णन मे तो अलंकारो (उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक और सदेह) के प्रयोग से अर्थ-गौरव की ही वृद्धि हुई है। महाकवि चन्द साहित्य-शास्त्र के अनुपम ज्ञाता होने के कारण सभी अलंकारों को यथास्थान नियोजित करने मे सफल हुए हैं। इस भाग मे आये हुए अलकारो को संक्षेप मे इस प्रकार बताया जासकता है—

अनुप्रास— 'गाहन गहन दुज्जन दलन, सुवर सूर सज्जिय सयन' – सलख० २२

× × ×

यमक— 'प्रात उदित रवि रत्त रँग, समर समर दिसि जग्गि', और–
'सुरतान भींच पंचौ परत, सूर सूर दिन अथयौ' – धन० ३२, ४३

× × ×

श्लेष— "जित तित छुट्टै-पंखी, थावर जलह जगम जोती।
ससिपालं हरिपालं, भूपालं काल प्रतिपाल ॥" — शशि० २८

× × ×

उपमा— "जै अब्बूवै भार, लाज अब्बू गॅज रख्यौ।
मान प्रमान सम दान, अंग कवितन कवि सख्यौ ॥" — भोला० ७

'वह वीर कवियों को काव्याग के समान प्रिय था'–मे चन्द ने नये उपमान का प्रयोग किया है, जो बहुत सुन्दर बन पडा है।

× × ×

रूपक —

यद्यपि चद ने सभी प्रकार के रूपकों का प्रयोग किया है, किन्तु साग-रूपकों का यथातथ्य चित्रण चन्द की एक विशेषता है। जैसे–

कोट खलन सोभे विसाल, साम-सामत सूर थँभ।
जस देवल उप्पनौ, बीय—गय गिरी सेत रँभ ॥

प्रथिराज देव-दानव-दलन, लच्छि रूप जदव कुँअरि।
नव रस विलास पूजा करहि, वर-अच्छरि भइ पद्दुप-सरि ॥— शशि० २२१

× × ×

करिय पारि सोभंत, रुधिर जल रज्जि सज्जि सर।
केस सेस सैवाल, मकर कर जंघ मीन नर॥
खुप्परि कच्छ सु अच्छ, वसहि तहँ सिद्ध गिद्ध वर।
रंभ अंब तँह भरैं, फुल्लि पोयन्नि मुक्ख नर॥—सलख० ४३

× × ×

उत्प्रेक्षा— सुनि कग्गर नृपराज पृथु, भौ आनन्द सुभाइ।
मानौं वल्ली सूकते, वीरा रस जल पाइ॥— भोला० १८

× × ×

"हनिय मत्त गजराज, सिंघ कर मत्थ सिंघ वहि।
मनों वास रँगरेज, मट्ट फुट्टयो सुरंग ढहि॥— धन० ६६

× × ×

चौहान हथ्थ वाला गहिय, सो ओपम कविचंद कहि।
मानों कि लता कंचन लहरि, मत्त वीर गजराज गहि॥—शशि० १५५

जहाँ कहीं कवि को रूप वर्णन, नखशिख वर्णन और नायिका भेद वर्णन (शृंगार रस) का अवसर मिला है, वहाँ २ कवि ने उत्प्रेक्षा का आशातीत, किन्तु सफल प्रयोग किया है।

× × ×

अतिशयोक्ति— तजि भूखन वर वाल, इक्क आचिज्ज उपन्नौ।
लता हेम पर चंद, उभै खंजन ढिग चिन्हो॥
श्रीफल उरज विसाल, वाव वर भ्रङ्ग-सु-पत्ती।
सुकि सु तरग अरन्नि, करी भग्गावल वती॥
सोभत उरगपति भुत्र शरन, हंस-मुत्ति-चर वर करी।
सुध काज चढे पप्पील सुत, काम-पत्तिनी दुख डरी॥

(रूपकातिशयोक्ति)—शशि०१३८

× × ×

गुख छुट्टा नृप वेन, कै दिट्ठाय धावता नैन।
वज्जी—वाहु सु वार, धार ढारि मत्तयौ धरयं॥
(चपलातिशयोक्ति)—शशि० २०७

× × ×

व्यतिरेक— देव तज दैवत्त गुन, अवृत मत्ति गुन कति।
शशिवृत्ता चहुआन सौं, सुवृत मत गुनयति॥— शशि० १७४

× × ×

संदेह— पुछ चपि जनु चील, स्यघु सोघत जग्गाइय।
हक्काल्यौ कि वराह, दग जनु अग्गि लगाइय॥
वरड छता के छेरि, गाइ व्यानी वग्गानिय।
कै जग्गाए वीर, भीर भारथ मग्गानिय॥— सलख० १६

× × ×

विरोधाभास— आभिज्ज वाल चरिय, किं होजम्म जम्म विन हरिय।
कै विधि पुव्वह लिखिय, जोमन मारूत्त मुख्ख सुख्खाई॥—भोला ८६

× × ×

परिसंख्या— वलभे वलभो वात, नह अच्छी वीय भेदयौ भेदे।
भेदे अच्छरि कुलय, पावार प्रीति वालाय॥—भोला० २७

× × ×

इनके अतिरिक्त भी अनेक अलंकार रासो (द्वितीय भाग) में पाये जाते है, किन्तु उनका उल्लेख यहाँ सम्भव नहीं है। यहाँ तो केवल सारांश मे इतना ही कहा जा सकता है कि रासो मे अधिकतर ऐसा कोई अलंकार नही पाया जाता, जो भावों पर हावी होगया हो या अनावश्यक रूप से ठूँसा गया हो या जो रस में बाधक सिद्ध हुआ हो। इसमें तो सर्वत्र अलंकारों का स्थिति और विषयानुकूल सहज प्रवाह मिलता है।

छन्दः—

छन्दों की दृष्टि से यद्यपि अन्य प्रकाशित रासो मे विविध प्रकार के छन्द मिलते हैं, किन्तु स्वयं कर्त्ता के कथानुसार—

"छन्द प्रबध कवित्त जति, साटक गाह दुहथ्थ"–

उसने केवल चार ही छन्दों का प्रयोग किया है। वे हैं —कवित्त (छप्पय), साटक (शार्दूल विक्रीड़ित), गाथा और दोहा। इसके अतिरिक्त संस्कृत के श्लोक भी मिलते हैं। रासो वीर रस प्रधान काव्य है और 'कवित्त' (छप्पय) में इसका परिपाक करने में कवि को अभूत पूर्व सफलता प्राप्त हुई है। कवि का यह अत्यन्त प्रिय छन्द रहा है। साटक में अधिकतर ललित वर्णों वाली पदावली आई है, जिसमें संस्कृत वर्णों की बहुलता है।

अन्य विषयः–

महाकवि चन्द विविध विषयों के ज्ञाता थे। जहाँ वे एक श्रेष्ठ कवि और कुशल सेना नायक थे, वहाँ उन्हे ज्योतिष और नीतिशास्त्र का भी विपद ज्ञान था। उनका परम-नीतिज्ञ रूप रासो मे उनके द्वारा कथित नीति की उक्तियों को देखने से ज्ञात हो सकता है। इन नीति-कथनों में भी यह विशेषता है कि ये केवल 'वाक्य-ज्ञान' मात्र नहीं है, जिनमें केवल मात्र उपदेश की प्रवृत्ति ही होती है। ये नीति कथन परिस्थिति और प्रसंगों के इतने अनुकूल हैं कि 'कान्ता सम्मित उपदेश' के रूप मे रस की व्यञ्जना में सहायक होते रहे हैं। इस भाग में कवि ने दान, भूपाल, कायर, ईश्वर, शक्ति-सिद्धान्त, ससार की असारता, सेवक, मित्र, स्त्री, कर्म, काव्य, पृथ्वी और कीर्ति सम्बन्धी नीति वाक्य कहे हैं। जैसे—

(१) 'है खुर खग्गसु भूमि, दान विद्या अविकारिय।
रूप दान रस ज्ञान, तत्त नह मत्त विचारिय।।" —

पृथ्वी का स्वामित्व और दान सम्बन्धी

× × ×

"दान खग्ग विद्या विभौ, ए वत्ता नॅह सीर।"– "

× × ×

भूमी द्रव्य सु लच्छी, वंका वीराइ वंकिय भूमी।
नहॅ वंकी धर कव्व, वंका वीराइ वंकिय होई।।– "

× × ×

(२) करतार हथ्थ केति कला, कियौ सु लभ्भौ अप्पना ।
पापंग देह मिट्टी मिलै, दीठे देखि सु सप्पना ॥ — दैव (भाग्य)

× × ×

सु गर्वेति कोइ, वट्टेति कोइ, कोइक पढ कोइ लभ्भवै ।
दैवान दुसकह दैवगति, जो निम्रान सु त्रिम्मवै ॥ — ”

× × ×

(३) "का काया मायाति का, का ग्रहनी ग्रह कौन ।
अप्पौ अप्पौ सिहचते, जो देखियै सुलौन ॥" —
संसार की असारता एवं क्षणभंगुरता सम्बन्धी

× × ×

जग जीवनु अछै इसौ, ज्यौ सुपनन्तर राति ।
अंजुलि जल जीवनु इसौ, आव घटति इम जाति ॥ — ”

× × ×

"दुनियाँ रंग कसूम यह, कित्तिक दिना रहाहि" — ”

× × ×

(४) "सोइ सेवक सुनि साहि, स्वामि संकरै छुडावै ।
सोइ सुमित्त अप्पनौ चित्त मित्तं न दुरावै ॥
सोइ सुबंध अप्पनौ, दसा अवदसा न कथ्थै ।
सोइ सु तीय अप्पनी, अस्सु सुक्कं असु सथ्थै ॥
मति सोइ जोइ पय उग्गजै, तत्त सोइ तत्तहि मिलै । — विविध

× × ×

(५) "कहाँ पंच पचौ बसत, कहाँ प्रकृति प्रति अंग ।
कहाँ हम हमह वसै, कौन करै रंग जंग ॥" – कर्म संबंधी

× × ×

(६) रह्यौ न को रवि मंडलह, रहि कवि सुगुन सु भल्ल ।
जीरन जुग पाषान ज्यौं, पर रहंदी गल्लह ॥ —
काव्य सम्बन्धी

× × ×

(७) रहि हैं नरंगि गल्हां पहुमी, सार एक कित्ती सुमुख। — कीर्ति सम्बन्धी

× × ×

चन्द की महत्ता इस बात से भी प्रदर्शित होती है कि उसने शशिवृता समय मे पृथ्वीराज के अन्तर्द्वन्द्व को प्रकट करने हेतु उसके अमूर्त भावों-'लज्जा और वय'-का मूर्तीकरण करके उनमे वार्त्तालाप करवाया है। आधुनिक युग में छायावादी काव्य-शैली के प्रणेता महाकवि प्रसाद ने भी कामायनी में काम और लज्जा को इसी प्रकार का मूर्त स्वरूप दिया है।

अंत में डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में कहा जा सकता है कि रासो (द्वितीय भाग) की "भाषा में वेडौल और वेमेल ठूँस ठाँस नहीं है, उसमें कवित्व का सहज प्रवाह है। यहाँ चन्द वरदाई ऐसे सहज प्रफुल्ल कवि के रूप में दृष्टिगत होते हैं, जो विषम परिस्थितियों से भी जीवन रस खींचते रहते हैं।" वीर, विद्वान् और प्रतिभा सम्पन्न, महाकवि ने अपने वर्णन, रस-निरूपण और कथा-विस्तार से रासो को जो महत्ता प्रदान की है, वह अक्षुण्ण है।

नरेन्द्र व्यास, एम० ए०
साहित्य–संस्थान
राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर

—:०:—

सम्पादकीय

दोहा

तट बैठे बैठे मुये, पैठे भये निहाल।
वक झक मारत ही रहे, मोती लहे मराल ॥
(स्वरचित)

उपर्युक्त पद्य के अनुसार वक-बुद्धि वालों के लिए तो कुछ नहीं कहना है, किन्तु मराल बुद्धि वालों ने इस "महान् रासो सिन्धु" का हम से पूर्व काफी अवगाहन किया है और उनसे हमे कुछ मुक्ता कण भी प्राप्त हुए हैं। इसी से उत्साहित होकर हमने भी रासो का सम्पादन-कार्य अपने हाथों में लिया। हम अपने को हंस तो नहीं मानते, किन्तु गोताखोर (समुद्र में गोता लगा कर रत्न राशि खोजने वाले) अवश्य मानते हैं और उसी के अनुसार हमारा प्रयास भी चल रहा है (जिसमें कभी सफलता और कभी असफलता मिलती है, फिर भी खाली हाथ नहीं लौटते)। अपने इस प्रयत्न से हमने जो मुक्ता-राशि संचित कर साहित्य प्रेमी युवक-हंसों के सम्मुख प्रस्तुत की है, आशा है, उससे उनका लाभ ही होगा।

यह धारणा सर्व सम्मत है कि रासो में प्रक्षिप्त अंशों का बाहुल्य है। आज से चार सौ वर्ष पूर्व, जब इस ग्रन्थ का मेवाड़ेश्वर महाराणा अमरसिंह (प्रथम) ने संग्रह करवाया, तब ही यह निश्चय था कि इस रासो के मणि-राशि तुल्य छन्द बिखर गये थे। उक्त महाराणा ने ही उन्हें एकत्रित करवा कर वृहद् रूप दिलवाया।[1]

---

1 गुन मनियन रस पोइ, चन्द कवियन कर दिद्धिय।
छन्द गुनिन ते तुट्टि, मन्द कवि भिन २ किद्धिय ॥
देस देस बिख्खरिय, मेल गुन पार न पावय।
उद्दिम करि मेलवत, आस विन आलय आवय ॥
चित्रकोट रान अमरेस न्रप, हित श्रीमुख आयस दयौ ॥
गुन वीन धीन करुना उदधि, लखि रासो उद्दिम कियौ।

नोट—रासो के वृहद् संस्करण का निर्माण कराने वाले महाराणा अमर (प्रथम) ही थे, दूसरे अमर नहीं हो सकते। कारण यह है कि प्रथम अमर स्वयं विद्वान् और विद्वानों के ग्राहक थे। वृहद् रासो की प्रतियें भी दूसरे अमर से पूर्व की मिलती हैं एवं राज प्रशस्ति में भी रासो का उल्लेख मिलता है।

अत स्पष्ट है कि प्रक्षिप्त अंशो के मिल जाने से ही रासो के सम्बन्ध मे अनेकों भ्रान्त धारणाएँ बनी हुई है। रासो के मूल रूप को ज्ञात करने हेतु छन्दों का चुनाव करते समय हमे कवि चन्द रचित छन्दों की जाति प्रकट करने और परिणाम सख्या बतलाने वाले पद्य[१] भी मिल गये है, जो रासो के वृहद्, मध्यम, लघु और लघुत्तम आदि सभी सस्करणो मे है। रासो को वर्तमान रूप देने मे हमे इन्ही से अधिक सहायता मिली है।

हमारे इस प्रयास के मूल कारण स्वर्गीय महाराणा भूपालसिंहजी थे, जिन्होंने वि० स० १७८४ मे हमसे रासो का श्रवण किया। तभी से हमने रासो का अध्ययन प्रारम्भ किया। इसके पश्चात् श्री नरोत्तमदास स्वामी और डा० दशरथ शर्मा ने हमारे इस उत्साह मे वृद्धि की। उन्होंने रासो के शका समाधान सम्बन्धी लेख मे से कुछ अंश आग्रह पूर्वक "राजस्थान भारती" मे प्रकाशित किया। इसकेबाद हमारे (विद्यापीठ के) प्रो० वाइस चासलर ने,जो 'जनार्दन' ही नहीं 'नागर' भी है और जिन्होंने शायद रामायण को पढा होगा। उन्हें रामनाम की महिमा की स्मृति होगी ही, किन्तु हम कह सकते है कि उन्हें यह चौपाई "खग जाने खग ही की भाषा" तो अवश्य याद है, इसीलिए इस प्राचीन ग्रन्थ 'रासो' के लिए मुझ जैसे प्राचीन पोथे पढने वाले व्यक्ति को 'रासो–सम्पादक' बनाकर विद्यापीठ मे घसीट लिया और हिन्दी के हस तुल्य महान् कवि चन्द की अमृतमय वाणी के आशय को मुझ जैसे कपोत द्वारा साहित्य–ससार के समक्ष प्रकट कराया।

रासो के काव्य पक्ष का रसास्वादन तो इसके अनुवाद और साहित्यिक विवेचन से होगा, हमे तो यहाँ वर्णित घटनाएँ और व्यक्ति विशेष से सम्बन्धित बातें बताना ही अपेक्षित है।

---

१ छन्द प्रबन्ध कवित्त जति, साटक गाह दुहत्थ।
लहु गुरु मडित खडि यहि, पिंगल अमर भरत्थ॥

—०—

पच सहस नख सिख सरस, सकल आदि मुनि दिक्ख।
घटि बढि मति कोउ पढौ, मुहि दूषन न बसिक्ख॥

इस द्वितीय भाग में सर्व प्रथम 'भोलाराय समय' है। इस समय मे होने वाली घटना अ० सं० ११४४ (वि० सं० १२३५) की है।[1] इससे स्पष्ट हो जाता है कि यह युद्ध घटना सलख जैत्र की पुत्री इच्छनी के कारण नहीं हुई, किन्तु जैन धर्मावलम्बी चालुक्यों द्वारा शिवपुरी (संभव है शिवाना) के देव मन्दिरों पर उत्पात मचाने के कारण हुई थी।[2] सलख जैत्र का स्थान नागोर के आसपास था।[3] धारावर्ष चालुक्यों से मिल कर ही आबू का उपभोग कर रहा था।[4] चालुक्यों ने सलख जैत्र को भी अपनी ओर मिलाना चाहा, लेकिन वे उनके प्रलोभन मे नहीं आये।[5] इसीलिये चालुक्यों ने उनके दुर्ग पर भेद नीति से अधिकार कर लिया[6] और उसकी रक्षा का भार आबू पति (धारावर्ष) पर छोड़कर चालुक्य लौट गये।[7] सलख जैत्र के पक्ष मे उसका जामात्र पृथ्वीराज हो गया।[8] चालुक्यों ने पृथ्वीराज के मुख्यमंत्री को एक रूपवती खत्रानी के प्रेमपाश में डालकर नागोर पर अधिकार कर लिया। तब कवि चंद ने कैमास को वाक्य-ज्ञान द्वारा उस सुन्दरी के प्रेम-पाश से छुड़ाया।[9] इसके बाद उन ब्रह्म क्षत्रिय (ब्रह्मा के चुल्लू से उत्पन्न) चालुक्यों[10] को वहाँ से मार भगाया[11] और सौजत्री (गुजरात-काठियावाड़) नामक स्थान पर उन्हें पराजित कर दिया।[12] इस युद्ध मे पृथ्वीराज का छोटा भाई हरिसिंह (हरि-राय) भी शरीक था।[13] भोला भीम ने इस प्रकार द्वेष जागृत करके अजमेर और अनहलपुर पट्टन के प्राचीन सम्बन्ध (पृथ्वीराज का पिता सोमेश्वर पट्टन पति सिद्ध-राज का दोहित्र था) मे अन्तर डाला।[14]

---

(१) चौआलीसा शुक्रवार। (२) मोरा राइ भीमंग, सोर सिवपुर प्रज्जारिय। (३) मुरदेस सलख सुत जैतसी, नवसु कोट नागोर नर। (४) मुर खडं ज वलय, सा वलय भीमयं राजं। (५) रस रसाल गुज्जरह-नरिंद रायगन थप्पो, समर उभै समरग करि, समरसु पुब्जै हेज, डोलो लम न होइ। (६) भेद सवे वलु खद्द। (७) पट्टनतै पट्टन गयो, अब्बूवै सिर भार। (८) मान ढिल्ली इच्छावर। (९) जीता चन्द चरित्त, उट्ठावे नहं सीस, लज्ज दाहिम चहुवान। (१०) व्रमान जग्य जे उप्पने, करौं सोह त्रिब्बीर मय। (११) मेटि थान चालुक्य, थान चहुआन फिराइय, (१२) परो रारि हिन्दुवान सों, सोजत्ती रति वाह। (१३) बली बाहु हरस्यघ, रेह रक्खन चहुआनिय; अनुज मिरि पर्‌यो दुमानिलय, धरियहि बाहु बाहुज्ज दल। (१४) पलटि प्रीत कत छग कमन।

'सलख युद्ध' और चालुक्यो के साथ सोजत्री मे होने वाली घटना एक ही समय की है ।[१] उधर सामंतगणों ने सोजत्री मे चालुक्यों से लोहा लेकर उन्हें पराजित किया, इधर पृथ्वीराज सारुंडे (मारवाड) नामक स्थान पर गौरी शाह से जा भिड़ा। युद्ध के अत मे सलखजैत्र ने शाह को वदी वनाया ।

'धन कथा' के युद्ध मे चित्तौड़ेश्वर रावल समर विक्रम (विक्रम केशरी) भी सम्मिलित थे। इस घटना के समय पृथ्वीराज के रैणसी के अतिरिक्त दूसरा राज-कुमार (गोविन्दराज) हुआ जिसका युद्ध से लौटने पर उत्सव मनाया गया।[2] सभव है यह पुत्र रानी इच्छनी से ही हुआ हो, क्योंकि पृथ्वीराज के आने पर उसकी वहिन पृथाकुमारी के अतिरिक्त जो रानियाँ उससे मिलने आईं, उनमे उसका नाम नहीं है।[3] संभवत वह उस समय प्रसूति-गृह में होगी।

'शशिवृता समय' में पृथ्वीराज का विवाह शशिवृता के साथ होने का उल्लेख हुआ है। यह राजकुमारी दक्षिण देशीय देवगिरि की न होकर मध्यप्रान्त (मालवा) स्थित देवास[४] के यादव राजा के भाई पु ज की पुत्री थी।[५] पृथ्वीराज को सर्व प्रथम उसका वृतान्त एक मालव निवासी नर्तक से ही ज्ञात हुआ ।[६] देवास के राजा को "यादव भान" लिखा है, जिसका अर्थ 'यादवों का सूर्य' भी हो सकता है। उसे 'तान' (तवन पाल) नाम से भी सम्वोधित किया है [७] (इसी की पुत्री हसावती थी जो आगे चलकर पृथ्वीराज से ब्याही गई)। शशिवृता को वरण करने मे पृथ्वीराज का कन्नौज पति जयचन्द के भाईयों मे वीर चन्द से युद्ध करना पडा। दोनों सूर्यवशी वीरों[८] मे युद्ध होने के पश्चात पृथ्वीराज शशिवृता को दिल्ली लेजाने मे सफल हुआ।

'देवगिरि समय' के अतर्गत पृथ्वीराज के शशिवृता सहित दिल्ली पहुँच जाने पर उसके सामतों द्वारा किये गये युद्ध का वर्णन मिलता है। इस युद्ध मे मेवाडेश्वर समर-विक्रम का युवराज रणसिंह भी चाहुआन के पक्ष मे सम्मिलित हुआ।[९] इधर जयचन्द भी वीरचंद की सहायतार्थ आ पहुँचा किन्तु मेवाडेश्वर और पृथ्वीराज की सम्मिलित वाहिनी ने उसे परास्त कर दिया।

---

१ चालुक्कां सोभति सभ्यौ, सारोंडे मग्रन्द। २ आगे नन्द उच्छाह घर। ३ दाहिम्मी, पृथु, भट्टी, पुण्डीरी आइ नृप ढिग। ४ हो देवस द्विजराज। ५ देवरु पु ज कुमारि। ६ पच्छिम विगति देस रह मभ्भ, को राजेन रवन वर मभ्भ, तुअ दिन अनर कमिय, रानन कीलत अप्प घर मभ्भ। ७ तान सु गुन लहन्न, लग्गियो तान राज उर। ८ सूर वंस रजपूत। ९ रन कधे पट्ट पग नर, रन नरिंद-वाहन कुमार, रन कंध्या अप डिंभरु, रन कंध्यो रन्त्रह।

रेवातट समय में जिस युद्ध का वर्णन मिलता है, वह पंजाब प्रान्त के लिए गौरीशाह और पृथ्वीराज मे हुआ था।[१]

'अनगपाल समय' के प्रारम्भ में मालवाप्रान्ती 'महिपाल, के साथ सोमेश्वर का युद्ध हुआ। तत् पश्चात् पृथ्वीराज का अनंगपाल और गौरीशाह की सेनाओं से युद्ध हुआ। तात्री अनंगराज का प्रजा की पुकार पर गोरीशाह की सहायता लेकर पृथ्वीराज पर चढ़ाई करना सम्भव है।

"घघर की लड़ाई" में पृथ्वीराज ने पेशोर और टिल्ला पहाड़ की ओर प्रस्थान किया।[२] वहाँ जाकर उसने, शाह द्वारा अधिकृत भू भागों एव शाही भूभाग पर हलचल मचादी।[३] युद्ध में शाह को पकड़लिया गया, किन्तु संधि करने पर उससे वहुत सा भूभाग लौटा कर पुन छोड दिया। तव शाह ने पुनः उस भूभाग के लिए युद्ध नहीं करने और अटक के इस पार नहीं आने की शपथ ली और गजनी गया।[४] मार्ग में रयसल्ल नामक हिन्दू वीर द्वारा उस पर आक्रमण करने पर पृथ्वीराज के सामन्त लोहाने आजान वाहु ने उसे बचाकर सकुशल गजनी पहुँचा दिया।

"करनाटी समय" मे पृथ्वीराज ने कर्नाटक प्रदेश पर चढ़ाई की, किन्तु विपक्षी वीरों ने उसका सामना नहीं किया। वहाँ से उसे भेंट स्वरूप एक परम रूपवती दासी (वैश्या) प्राप्त हुई जिसका नाम कर्नाटी था।

'देवास कथा (पीपायुद्ध)' से ज्ञात होता है कि पृथ्वीराज ने सामंतों से सम्मति लेकर देवास की ओर व्याह-विनोद (हंसावती को वरण करने) की इच्छा से प्रयाण किया। यह सूचना पाकर रुष्ट (शशिव्रता-विवाह के कारण) जयचद की सहायता लेकर गौरी शाह मार्ग में ही आ भिडा।[५] इस युद्ध में पृथ्वी–

---

(१) गोरीवै दल सम्मुहों। गो पञाव प्रमान, पचासञ गोरी नृपति। मुर पच कोस लाहोर तें। (२) 'जाइ लग्गा घर टिल्लै", 'रहे पेसोर धरत्तिय", "टिल्ला घर लिज्जै" डेरा करिपेसोर नृप"। (३) जम मय तत्र जित्तिय धरा"।" (४) पेशगी कर सीम, वीच पौरान कुरानं", "उत्तरों अटक्तो मैं अन्तर", (५) "प्रथिराज गवनु देवास दिसि, व्याह विनोद उमग हिय। अनच्यंत गज्जि गज्जन नलिय, आनि अचानक कंक किय।"

राजा की शक्ति के बलपर पीपा प्रतिहार ने शाह को बंदी बना लिया। इससे और भी स्पष्ट होजाता है कि शशिवृता एवं हंसावती दक्षिण देशीय देवगिरी की न होकर ... पास की ही राजकुमारियाँ थीं।

'करहेरा युद्ध' से स्पष्ट है कि उज्जैन राजवशी सारंगीपुर (सभवत मालवान्तरगत प्रसिद्ध नगर सारगपुर) के प्रमार भीम की पुत्री इन्द्रावती को व्याह ने के हेतु पृथ्वीराज मध्यप्रान्त की ओर चल पडा।[1] मार्ग मे उसे ज्ञात हुआ कि चित्तौड पर चालुक्यो ने आक्रमण कर दिया है, अत उसने मेवाडेश्वर की सहायता करना अत्यावश्क समझा और इसीलिए अपने कुछ प्रसिद्ध सामतों को अपना खड्ग देकर सारगीपुर की ओर (राजकुमारी का खड्ग से विवाह करवाने हेतु) भेजा और स्वयं चित्तौड की ओर चलपडा। चालुक्यों से यह युद्ध मेवाड स्थित करहेरा (करेड़ा) नामक स्थान पर हुआ। चित्तौडेश्वर ने पृथ्वीराज से मिलकर चालुक्येश्वर भोरा भीम को साथियों सहित पाराजित कर भगा दिया। रानिङ्गराय झाला और प्रधान सामत वीरधवल की शक्ति के कारण ही चालुक्येश्वर बाल-बाल बचकर घर को लौट सका। इन दोनों वीरो मे वीर धवल ने ही अधिक बल प्रदर्शित किया।[2]

'इन्द्रावती विवाह' से ज्ञात होता है कि पहले तो इन्द्रावती के पिता भीम ने खड्ग के साथ अपनी पुत्री विवाह करने से इन्कार कर दिया, किन्तु बाद मे पृथ्वीराज के सामतों द्वारा पट्टनपुर की गायों को घेर कर युद्ध मे पराजित कर देने पर उसने इन्द्रावती का विवाह खड्ग से कर दिया। (करहेरा युद्ध से स्पष्ट हो गया है कि यह राजकुमारी सारगीपुर के राजा भीम की पुत्री थी)।

"जैत्रराय समय" से स्पष्ट हो जाता है कि पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन के विरोध मुख्य कारण पजाब भूमि एव पृथ्वीराज द्वारा नासिरुद्दीन मीर हुस्सेन और उसके पुत्र गाजी हुस्सेन को शरण देना ही था।[3] इस युद्ध मे जैत्रराय ने शाह को पकड कर बन्दी बना लिया।

---

(१) "सारगापुर माज।" (२) जम चालो मन ... निब्री पट्टभि न होइ।"

(३) "मगे हुसन माहाबदी, प ... ...टन मुग्ग।" 'म ...गों हुस्सन ... , ... मुरतान।

"कांगुरा युद्ध" में पृथ्वीराज ने भोटीराज पर चढ़ाई की, क्योंकि वह और उसका साथी पल्हन गौरीशाह से मिले हुए थे। 'भोटी भान' का अर्थ-भोटियों का सूर्य (मुखिया) या उसका नाम-विशेष दोनों हो सकते हैं। जब पृथ्वीराज ने युद्ध मे भोटीराज को मार दिया तब उसका साथी पल्हन लड़ने को उद्यत हुआ, किन्तु पृथ्वीराज के सामत नारेन और हम्मीर (रघुवशी प्रतिहार)[१] ने उसे पराजित कर कांगुरा-दुर्ग पर अधिकार कर लिया। पश्चात् पल्हन को पाल्हन-वास (पाल्हम घाटी) पर नियुक्त किया।[२] पृथ्वीराज ने कांगुरा दुर्ग हम्मीर को दे दिया, जिसके फल-स्वरूप उसने अपनी पुत्री का विवाह पृथ्वीराज से कर दिया। विवाह के पश्चात् पृथ्वीराज दिल्ली लौट आया।

अत स्पष्ट है कि सलखजैत्र नागोर (मारवाड़) के आसपास रहने वाले थे। पृथ्वीराज ने उनकी पुत्री इच्छनी से, जैन धर्मावलम्वी चालुक्यों के शिवपुरी (संभवत. शिवा ने) के देवालयों पर उत्पात मचाने के पूर्व ही, विवाह कर लिया था। इस समय आबू का धारावर्ष चालुक्यों के आधीन हो चुका था। ब्रह्म क्षत्रिय (ब्रह्मा के चुल्लू से उत्पन्न) चालुक्यों के उत्पातों के कारण ही पृथ्वीराज के सामंतों एव पृथ्वीराज के छोटे भाई हरिसिंह (हरिराय) ने चालुक्यों को सोजत्री (गुजरात) नामक स्थान पर परास्त किया इस प्रकार उस भोरा भीम ने अजमेर से अपने प्राचीन सम्बन्ध को तोड़ दिया। शाह से भी उसी समय इतिहास प्रसिद्ध सारूंडे (मारवाड़) नामक स्थान पर युद्ध हुआ। पृथ्वीराज के रेणसी के अतिरिक्त एक और पुत्र गोविन्दराज हुआ। शशिवृता और हँसावती देवास (मालवा) की ही राजकुमारियाँ थीं। यादव राजा भान को 'तान' (तवनपाल) लिखना भी इतिहास सम्मत है। शशिवृता-हरण वाले युद्ध मे पृथ्वीराज और उसके सामतों ने जिस

---

(१) "वर रघुवश प्रधान, राज मड्यौ विच्चारिय।

(२) "पाल्हन-वास नरिंद, राज रख्यौ तिन थान"।

नोट — कांगुरा युद्ध मे जिस जालधर-देवी का उल्लेख हुआ है और जिसका मदिर कांगुरा में था, आज भी उसी स्थान पर देवी का प्राचीन मन्दिर है जिसे 'महामाया का मन्दिर' कहा जाता है। इसी समय में भोटी राज के साथी पल्हन का भी उल्लेख हुआ है। वहाँ पर पाल्हम नामक एक घाटी कही जाती है। सभव है वह उसीके नाम की स्मृति में हो।

स्थान पर विश्राम किया, वह स्थान सुठियार था जो मालवा स्थित सु ठालिया स्थान ही है। पृथ्वीराज के गौरी शाह से युद्ध अधिकतर पंजाब भूभाग के लिए ही होते थे। अनगपाल का प्रजा की पुकार पर पृथ्वीराज से युद्ध करना भी संगत है। यह भी निश्चय है कि गोरी शाह द्वारा भारत के बहुत से भूभागों पर अधिकार कर लेने पर ही पृथ्वीराज ने चढाई की। कर्नाटक प्रदेश पर पृथ्वीराज द्वारा चढ़ाई भी सभव है। देवास की ओर जाना भी यादव भान की पुत्री हसावती से विवाह करना ही था। 'करहेरा युद्ध' मे चालुक्येश्वर भोरा भीम का पराजित होकर कुशल पूर्वक घर लौटकर उसके मुख्य सामत वीरधवल के बल पर ही संभव हुआ। इन्द्रावती के पिता सारगीपुर (सारगपुर-मालवा) के राजा थे। जैत्रराय समय मे भी पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन का विरोध पजाब भूमि के लिए ही हुआ। प्रतिहार क्षत्रीय हाढुली हम्मीर को रघुवशियों का मुखिया लिखना भी प्रतिहार क्षत्रियों का रघुवशी होना सिद्ध करता है, जो ऐतिहासिक है। कागुरा युद्ध मे आया हुआ पाल्हन-वास (पालम घाटी) नामक स्थान भी ऐतिहासिक ही है।

इस प्रकार हमारे द्वारा सम्पादित रासो की घटनाओं के विषय और विरोधी पक्ष के लेखों में जमीन आसमान का अन्तर मिलता है। इससे यही समझना पडता है कि उन्होंने रासो पर बिना सोचे समझे, बिना पढे और बिना गम्भीर अध्ययन किये ही कीचड उछालने का प्रयत्न किया है। अस्तु हमारा कर्तव्य तो इसका सुस्पष्ट अर्थ करके इसके प्रत्येक गूढ विषय को विद्वानों के समक्ष रख देना ही है, जिसे हम भगवती वाणी की कृपा से पूरा कर चुके है। अब इसके निर्णय का भार तो सहृदय विद्वानों पर है।

रासो-प्रथम भाग गत वर्ष प्रकाशित हो गया था। उस पर कुछ ही विद्वानों ने प्रकाश डाला है और हमे अपनी सम्मतियों से विज्ञ भी किया, जिसके लिए हम उनके अनुग्रहीत है। भाषा की प्राचीनता के बारे मे तो मुझे इतना ही कहना है कि मुझ पुराण-पुरुष से नई हिन्दी (चुलबुली भाषा) का आग्रह करना रक से रत्न की आशा करना है। फिर भी जीर्ण पात्र मे यदि अमृत रस भरा हो तो उसे कोई नहीं छोडता। चटकीलेपन के शोकीनों को कभी कभी 'चमकीले लिफाफे मे गन्दे मजमून' भी मिल जाते है, जिन्हें प्राप्त करने पर प्रसन्नता और खोलकर पढने पर हताश

होना पड़ता है। यह बात रासो मे नहीं होगी, फिर भी उन सज्जनों के आदेश को मानकर हमारे संस्थान के अध्यक्ष श्री गिरिधारीलालजी शर्मा ने उसका कुछ सुधार करने का प्रयत्न किया है, जिसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। एवं हमारे साथी नरेन्द्रजी व्यास एम ए ने भी इसकी भाषा का सुधार किया और हमारे अन्य साथी श्री उमाशंकरजी शुक्ल से हमें संस्कृत पद्यों के पाठ मिलान कर सुधारने एवं ज्योतिप सम्बन्धी विवेचनों में भी सहायता मिली है। अत दोनों धन्यवाद के पात्र हैं।

भूमिका से हमारा तात्पर्य उस भाग के साहित्यिक-सौष्ठव से ही है, न कि सम्पूर्ण "रासो" के साहित्यिक विवेचन से। सम्पूर्ण रासो का साहित्यिक दिग्दर्शन सभव हो सका तो भिन्न रूप से ही किया जावेगा। सम्पादकीय मे भी हमारा प्रयास अधिकतर ऐतिहासिक घटनाओं और व्यक्तियों के बारे मे उठाई गई भ्रान्त धारणाओं का संकेत रूप मे निराकरण करने की ओर ही रहा है। रासो मे प्रयोजित विभिन्न शब्दों का व्युत्पत्ति मूलक रूप भी, संभव हो सका तो वृहद् शब्द कोष मे दिखाया जावेगा। इन सभी कमियों का भी केवल मात्र कारण समय की न्यूनता ही है।

इस अवसर पर हम अपने अन्य साथियों को जो इस समय विद्यापीठ में हैं' और नहीं भी हैं, नहीं भुला सकते। जिनमे रासो विभाग के संचालक श्री भगवतीलालजी भट्ट (वर्तमान पीठ मंत्री), श्री पुरपोत्तमजी मेनारिया (भूतपूर्व-मंत्री साहित्य संस्थान), श्री भैरूलालजी व्यास, श्री पृथ्वीसिंहजी चौहान 'प्रेमी', श्रीनाथूलालजी व्यास और श्री रूपसिंहजी बारहट के नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने बड़ी सजगता एवं तत्परता से इस कार्य में हमारा स.थ दिया।

सम्पादक—
पृथ्वीराज रासो
साहित्य-संस्थान
राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर

विषय सूची

विषय | पृष्ठ संख्या

भोलाराय समय—

युद्ध मे सलख जैत्र के भाइयों मे से क्षेमकरण, खगार, उद्धरण, बलराय और वरसिंह का मारा जाना। ४३० से ४३४

सलख जैत्र के दुर्ग को आबू के राजा (धारावर्ष) की सुरक्षा में छोडकर चालुक्येश्वर का लौटना, अपने सारंगदेव मकवाना नामक व्यक्ति को पृथ्वीराज पर चढ़ाई करने के लिए सहायता प्राप्ति हेतु दूत बनाकर शाह के पास भेजना, लेकिन गौरी शाह द्वारा दूसरे की सहायता से युद्ध नहीं करने के कारण, निषेध कर जाना और बात बढ जाने पर सारग देव को मार देना। ४३५ से ४४७

दूत के मारे जाने की सूचना पाकर भोराभीम का स्वतन्त्र रूप से पृथ्वीराज पर चढाई करना और सोजत्री नामक स्थान पर आकर ठहरना, दूसरी ओर से शाह का चढाई करना और सारु डे नामक स्थान पर आकर ठहरना, पृथ्वीराज का सोजत्री की ओर कैमास को को नियुक्त करना और कैमास का नागोर पर आकर ठहरना, स्वय पृथ्वीराज का शाह से मुकाबला करने हेतु सारु डे की ओर बढ़ना, चालुक्यों का प्रपच से एक रूपवती क्षत्राणी द्वारा कैमास को वश मे करके नागोर पर अधिकार करना, किन्तु कवि चद के ज्ञानोपदेश से कैमास का पुन सावधान होकर चालुक्यों को नागोर से मार भगाना। ४४८ से ४७२

कैमास और उसके साथियों द्वारा चालुक्यों का पीछा करना और सोजत्री नामक स्थान पर रात को छापा मार कर उनको पराजित कर देना। ४७३ से ४९५

सलख युद्धः—

पृथ्वीराज को दूतों द्वारा शाह की चढाई के विषय मे सूचना मिलना और सामतो से मत्रणा करके पृथ्वीराज का अपनी सेना को बढा कर युद्ध करना। ४९६ से ५१४

सोजत्री को विजय करके सामन्तों का इस युद्ध मे सम्मिलित होना कन्ह चहुआन के आ उपस्थित होने से भयानक युद्ध छिड़ना। ५१५ से ५२६

खत्रानी द्वारा पृथ्वीराज के गुणों को सुनकर शशिवृत्ता में भी श्रोतानुराग उत्पन्न होने और शिव से वरदान प्राप्त करने का स्पष्टीकरण करना, दूत का कहना कि शशिवृता के पिता पुंज ने राजकुमारी का विवाह जयचंद के भाईयों मे वीरचंद से करना निश्चय किया है फिर शशिवृता और पृथ्वीराज के मिलन के सकेत स्थल (हरसिद्धि नामक देवालय) की सूचना देना। ६०४ से ६३६

पृथ्वीराज का देवास पर चढाई करना, वीर चन्द का भी देवास मे आपहुँचना, शशिवृता का देवालय-गमन और पृथ्वीराज का उसे अपहरण करना, यादवी और कमधज्जी सेन द्वारा पृथ्वीराज को घेरना और युद्ध करना, सामंतों का शशिवृता के पिता पुंज को बाँधना सामतों के आग्रह पर विजय के बाद पृथ्वीराज और घायल सामतों को सूठलिया (मालवा) के राजा के यहाँ विश्राम लेना, पृथ्वीराज का शशिवृता को लेकर दिल्ली के लिए प्रस्थान करना किन्तु शेष सामतों का वीरचन्द को वहीं रोक लेना और डटा रहना। ६४० से ७३६

देवगिरि समयः—

वीरचन्द कादेवास दुर्ग को घेरकर कन्नौजेश्वर जयचन्द को और यादवराज का पृथ्वीराज को सूचना देना, वीरचन्द की पराजय की सूचना पाकर जयचन्द का देवास पर चढाई करना, पृथ्वीराज का भी देवास की ओर आने का विचार करना, इतने मे शहाबुद्दीन का अनगपाल को उकसाना, यह देखकर पृथ्वीराज का चित्तौडेश्वर रावल समर-विक्रम को सूचना देना, रावलजी का कहना कि आप इस समय दिल्ली से अन्यत्र नहीं जावे केवल कुछ सामतों को भेजदें ताकि युवराज रणसिंह-कन्नौजेश्वर से सामना करेगा, रावलजी की सेना का देवास की ओर प्रस्थान करना, जयचन्द का देवगिरि (देवास) को घेर लेना। ७४० से ७४८

चाहुआनी एव यादव सेना का जयचन्द की सेना पर रात को छापा मारना, मेवाडी सेना का आगमन और रणसिंह का जयचन्द पर आक्रमण करके विजय प्राप्त करना। ७४६ से ७५५

रेवातटः–

अनंग पालः–

घघर की लड़ाईः–

करनाटी पात्रः-

पृथ्वीराज का कर्नाटक देश पर चढ़ाई करना और भेट-स्वरूप करनाटी नामक दासी (वैश्या) का प्राप्त होना। ८६५ से ८७०

देवास कथा (पीपा युद्ध):-

पृथ्वीराज का (हँसावती से) व्याह की इच्छा से देवास की ओर प्रस्थान करना, जयचन्द की सहायता लेकर शहाबुद्दीन का रास्ते मे आ भिडना, युद्ध करते हुए वीर पीपा द्वारा शाह को बदी बना लेना और दडित करने पर छोड़ देना। ८७१ से ८६६

करहेरा युद्धः-

पृथ्वीराज का सारगीपुर (सारंगीपुर-मालवा) के भीम प्रमार की पुत्री इन्द्रावती को वरण करने की इच्छा से मध्य प्रान्त की ओर प्रस्थान करना, रास्ते मे चित्तौड़ पर भोरा भीम और उसके साथियों द्वारा चढ़ाई करने का समाचार सुनकर सामन्तों को विवाह के लिए अपना खड्ग देकर स्वयं चित्तौडेश्वर की सहायता के लिए चल पडना, मेवाडेश्वर और दिल्लीश्वर के मिल जाने पर चालुक्येश्वर को मार भगाना, चालुक्येश्वर का सकुशल घर लौट जाने मे धीर धवल द्वारा अत्यधिक बल प्रदर्शित करना। ८६७ से ६१४

इन्द्रावती विवाहः-

इन्द्रावती के पिता द्वारा इन्द्रावती का पृथ्वीराज के खड्ग से विवाह करने के लिए निषेध कर देना, सामतों द्वारा पट्टनपुर की गायों को घेरना, भीम और सामतों में युद्ध होना भीम की पराजय और पृथ्वीराज के खड्ग से इन्द्रावती का विवाह कर देना, इन्द्रावती को लेकर सामतों का दिल्ली पहुँचना। ६१५ से ६३६

जैत्रराय समयः-

पट्टूवन मे पृथ्वीराज का आखेट के लिए जाना और नीतिराय मंत्री का बादशाह को सूचित करना, शाह का पृथ्वीराज के पास दूत

—:०፠०.—

"सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते"

पृथ्वीराज रासो

द्वितीय खण्ड

भोलाराय

(समय २०)

कवित्त (छप्पय)

चौआलीसा[1] शुक्रवार, चैत पुक्खह पगवारिय[2] ।
भोराराइ भीमंग, सोर शिवपुरी प्रजारिय ॥
आरज सॉइ सलख्ख, राज सभरि सभारिय ।
चाहुवान सामंत, मंत कयमास पुकारिय ॥
धर[3] जांन पवारह पट्टनह, बोले बंक दुराइ दिल ।
कैवार कथ्थ नथ्थह तनी, खंगेराज क्रिवान[4] खल ॥ १ ॥

मा० पा०, १ घ०, का० । २, ३, ४, दे० ।

शब्दार्थ.—पुक्खह=पक्ष । पगवारिय=फगवारिय, फगुआ के दिनों में (होलिकोत्सव के दिनों में) । सोर=शोरगुल, पुकार । आरज सॉइ=आर्यों के स्वामी । जांन=जाती, गई हुई । पट्टनह=पट्टन वाले के अधीन । दुराइ=छिपा कर । कथ्थ=कथायें । नथ्थह=नाथ, स्वामी । तनी=की । क्रिवान=कृपाण ।

अर्थः—अ० सं० ११४४ (वि० सं० १२३५) के चैत्र मास में होलिकोत्सव के दिनों में (शील सप्तमी के दिनों में) शुक्रवार को चालुक्य भोराभीम ने (या उसके साथियों ने) शिवपुरी को (सम्भवत शिवाने को) जला दिया । इस लिये सलख ने आर्यों के स्वामी सभरी पृथ्वीराज को इसकी सूचना दी । इस पर सामन्तों और कैमास मन्त्री ने पृथ्वीराज से कहा कि पँवारों ने, अपनी धरा को पट्टन वालों के अधीन में गई, समझ कर, (अपना आबू राज धारा वर्ष आदि के स्वार्थी होने से पट्टन राज्य के अधीन समझ कर) अपने बांकेपन को मन में छिपाते हुए आपको निमत्रित किया है, क्योंकि हे स्वामी ! आपकी ख्याति अनेक प्रकार से प्रचलित है कि तलवार से आपने दुष्टों को कई बार मारा है ।

तपइ[1] तेज चहुवान, भान ढिल्ली इन्छानर ।
वीर रूप उप्पनौ[2], पन्नु[3] रक्खे जुग्गिनिभर ॥
अब्बूवे[4] अनभग, जग संगो खल दारुन ।
जोग भोग। खग मग्ग, नीरु[5] खीत्रियां वधारन ॥
कित्ती अनत सलखेज भुव, ध्रुव प्रमान धर रक्खई ॥
चव वरन सरन भुज दड भर, दल दुज्जन भिरि भक्खई ॥ २ ॥

प्रा० पा० १, २, ३, ४ दे० । ५ घ० ।

शब्दार्थः—भान-दिल्ली= दिल्ली का सूर्य । इच्छावर=रानीइच्छनी का स्वामी । पन्नु=प्रण, प्रतिज्ञा । जुग्गिनिभर=दिल्ली के योद्धा । अब्बूवें=आबू राज वशी । खगौ=काट देने वाला, नष्ट करने वाला । नीरु=नीर, नूर, कान्ति । खीचियां=क्षत्रियों का । वधारन=बढाने वाला । कित्ती=कीर्ति । धुम्र=ध्रुव । चव=चारों । दल-दुज्जन=शत्रु दल । भक्खई=भक्षण कर जायगा, सहार कर देगा ।

अर्थः—हे इन्छनी के स्वामी, दिल्ली के सूर्य स्वरूप चाहुवान नरेश्वर ! आप जिस प्रकार सप्रताप राज्य करते हैं और साक्षात् वीर रस स्वरूप उत्पन्न होकर अपनी प्रतिज्ञा का पालन करते हुए दिल्ली के योद्धाओं को अधीन में रखते हैं, उसी प्रकार आबू राजवशी (सलख जैत्र) भी अभगवीर है जो युद्ध मे भयानक शत्रु को नष्ट करने वाला, (उचित ढग से) योग, भोग और खड्ग मार्ग पर चलने और क्षत्रियों की कान्ति बढाने वाला है, उसकी पृथ्वी पर अपार कीर्ति है । (उसका साथ देने से) वह आपके भू-भाग को ध्रुव तुल्य अटल रखने मे समर्थ है । उसकी शरण मे चारों वर्ण हैं अत वह अपने भुज बल से भिडकर शत्रु दल का संहार कर देगा ।

अनहल पुर आभ्रन, राज भोरा भीमदे ।
देसां गुज्जर खड, डड दरिया से वन्दे ॥
सेन सबल चतुरग, वीर वीरा रस तुग ।
अति उतग अनभग, विय न पुज्जै बल जग ॥
कलि काल कित्ति मित्ती इतिय, पलटि प्रीति क्रत जुग करन ।
भोरा नरिंद भीमग बल, उभै दीन तक्कै सरन ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—आभ्रंन=आभरण, भूषण । डंड=दंड, कर । दरिया=दरियाव, समुद्र-तट प्रदेश । बिय न=दूसरा कोई नहीं । पुज्जै=पहुँच सकता, समानता कर सकता । मित्ती=मति । इतिय=इति, इति श्री । कृत=की हुई । जुग-करन=अपने दोनों हाथों से उभै=दोनों । तक्कै=देखते, चाहते ।

अर्थः—अनहिलपुर पट्टन का भूषण स्वरूप राजा भोराभीम है, जिसने गुर्जर प्रदेश पर शासन होने से, समुद्र तट तक को दंडित कर झुका दिया है, जिसकी चतुरंगिनी सेना सबल है, जिसका वीर समूह वीर रस से परिपूर्ण है वह विशेष उन्नत और अभग है। उसकी शक्ति के समक्ष युद्ध में उसका अन्य कोई सामना नहीं कर सकता किन्तु कलियुग के प्रभाव से उसकी कीर्ति और बुद्धि की इतिश्री हो गई इसलिए उसने अपनी स्थापित की हुई पुरातन प्रीति को अपने ही हाथों से उलट दिया। (अर्थात् अजमेर और पट्टन का जो पुरातन सम्बन्ध था उसे उसने अपने ही हाथों से तोड़ दिया) भोराभीम के उस (अपार) बल वैभव को देख कर दोनों दीन उसकी शरण चाहते हैं।

गाथा

तक्कै चालुक्क रायं, त्रैलोक चरनयं सरनं ।
मुर-खडं ज वलय, सा वलयं भीमयंराजं ॥ ४ ॥

शब्दार्थः—मुर-खंडं=मरु प्रदेश को, मरु प्रदेश के प्रमुख स्थान, आबू को । जं=जो । वलयं=बल ।

अर्थः—त्रैलोक्य भी उस चालुक्य नरेश की शरण चाहता है और मरू प्रदेश (आबू) को जो बल (इस समय) प्राप्त है वह बल एक मात्र राजा भोराभीम का ही है ।

कवित्त

तिन प्रधान आवंत, अरघ सांई सलख्ख दिय ।
दिवस पच भोजन, दुजन आदर अदख्य किय ॥
खट्ट अग्ग संग्रहसु, पानि[1] कग्गर कर अप्पौ[2] ।
रस रसाल गुज्जरह, नरिंद रायगन थप्पौ[3] ॥
आरब्ब तेज ताजी तिम्मल, जर जरीन आभ्रन्न[4] वर ।
देखत भेख लख्यौ वनै, दुअ सु दीन रिम्झय सुनर ॥ ५ ॥

प्रा० पा० १ से ४ पा० ।

शब्दार्थः—तिन=उसका। आवत=आने पर। सरस=समान। दुजन=बड़ा। छट्ट‌अग्ग=आगे छठे दिन। संभदसु=सायंकाल को। कग्गर=कागज, पत्र। अप्पौ=अर्पित किया, दिया। रस-रसाल=प्रेमोपहार। राय-गन=राजाओं में। थप्पौ=स्थापित किया, माना। आरब्ब=अरबी। ताजी=ताजी घोड़े। ति=तैसी ही। सल=सलह, शस्त्रादि। भेस=वेश, पोशाक। लग्गौ-बनैं=देखे ही बन आता।

अर्थः—उस (भोरा भीम) के प्रधान के आने पर सलख जैत्र ने उसका सम्मान कर, तदनन्तर पाँच दिनों तक बड़े शिष्टाचार के साथ आतिथ्य सत्कार किया। तब छठे दिन सायंकाल के समय उस प्रधान ने भोरा भीम के पत्र को सलख के हाथ मे देकर कहा कि गुर्जरेश्वर ने तुम्हें राजा माना है और इसीलिए प्रेमोपहार स्वरूप तीव्रगामी अरबी और ताजी जाति के अश्व, शस्त्रादि और वस्त्राभूषण भेजे हैं जिन्हें देखकर दोनों प्रकार के धर्मावलम्बी (हिन्दू और मुसलमान) मुग्ध हो जाते हैं।

दोहा

अब्बूवै है गै समर, समर समप्पन[१] तेज।
समर उभै सम रंग करि, सम रसु पुज्जै हैज ॥ ६ ॥

प्रा० पा० १, घ० पा० दे० का०।

शब्दार्थः—अब्बूवै=आबूपति, (धारा वर्ष आदि)। है=हय, घोड़े। गै=गय, हाथी। समर=युद्ध। सरम=स्मरण कर, उसके प्रताप को सोचकर। समप्पन=समर्पित कर दिया। रसु=रस, प्रेम। पुज्जै=करेगा। हेज=प्रेम, कृपा।

अर्थः—जिस भोरा भीमका (ईश्वर तुल्य) स्मरण कर (प्रताप देखकर, सोचकर) वर्तमान आबू पति (धारा वर्ष) हाथी घोड़े सहित अपना प्रताप युद्ध मे समर्पित कर चुका है। इस बात को सोचते हुए तुमको भी चाहिये कि तुम दोनों सलख जैत्र भी उसी के समान प्रेम रक्खोगे तो वह भोरा भीम तुम्हारे पर भी वैसाही प्रेम रखता हुआ तुम्हें चाहेगा (कृपा रक्खेगा)।

कवित्त

जै अब्बू वै भार, लाज अब्बू गँज रख्यौ,
मान प्रमान सम दान, अग कवितन कवि सख्यौ ॥
डोलौ लमन होइ, घाइ वज्जै रस भीर।
सलख सुतन पामार, समद लज्जा मुख नीर ॥

मिलि मंत तत इक्क सु करन, करक क्रसस स गुन सुवर ॥
सवरन मत मतह खन, भान दांन दिख्यै सुवर ॥ ७ ॥

शब्दार्थ:—जै=जो । वै=आबूपति । [धारावर्ष] गँज रख्यौं=दवारक्खा, दवाने वाला । प्रमान=योग्य । सख्यौं=सखा, प्यारा । डोलो=डोला, विचलित हुआ । लमन होइ=नंमन होइ, नम्र न होकर । घाइ=घात, आघात । भीरं=भीरुओं पर । पामार=प्रमार । मत=मत्रणा । तंत=तत्व । करक=कड़ाके के साथ, चटाके साथ । क्रसस=ऐंची । स-गुन=अपने धनुप की डोरी, अपने धनुप की प्रत्यचा । सवरन मत=युद्ध मत्रणा । मंतह-खन=मतवाला राजवंशी । भान=सूर्य । दांन=द्रौण ।

अर्थः—भार स्वरूपी आबूपति (धारावर्ष) को दबाने वाला सलख पुत्र जैत्र आबू की लज्जा स्वरूप था । उसकी जितनी प्रतिष्ठा थी, वह उतना ही दानी भी था और वह कवियों को कविता के अगो के समान प्रिय था । वह (भोरा भीम के द्वारा कथित) इस संदेश को सुन कर न तो नम्र हुआ और न विचलित ही हुआ । वह प्रमार-वीर भीरु शत्रुओं पर (वीर) रस का आघात करने वाला मदयुक्त था । उसके मुख पर लज्जा और कांति सुशोभित थी । ऐसे उस वीर ने, अपने साथियों से तत्व युक्त ऐक्य मंत्रणा करके आवेश में तीव्रता से धनुप की प्रत्यंचा चढा कर, युद्ध करने की मंत्रणा निश्चित की । उस समय वह मतवाला राजवंशी सूर्य या द्रोण सा दिखाई पड़ा ।

तेग झारि पमार, जैत जगहत्थ वत्त किय ।
मंगै हैल सु गल्ह, तात अविवेक छित्ति दिय ॥
भोरा भीम नरिंद, वध पाखण्ड प्रगट्टै ।
आकर्पन मोहन सु[1] मत्र, जत्र जुग्गहि[2] जै पट्टै ॥
धन[3] द्रव्य देसु[4] वसि[5] वल करन, जानै ना उत्तर अर्यो ।
धाराधिनाथ धारी धरनि, वहल वेल नाथह धर्यौ ॥ ८ ॥

प्रा० पा० १ घ० । २ पा० घ० । ३, ४ घ० । ५ पा० ।

शब्दार्थः—जगहत्थ=जागृत होने वाला । हल=हलों । गल्ह=गल्हों । वंध=वंधु गण । अर्यौ=अड़ा हुआ हू । धारी=पकड़ी । वेल नाथह=शिव ने ।

अर्थः—उस युद्ध मे जाग्रत होने वाले उस जैत्र प्रमार ने तलवार जमीन पर मार कर कहा कि वह (भोराभीम) गल्हों (असत्य प्रचार) तथा हल्हों (व्यर्थ के

कोलाहल) द्वारा पृथ्वी की माग करता है और हमारे भाई ने (धारा वर्षादि) उसे अपने अविवेक के कारण सरलता पूर्वक पृथ्वी (आबू राज्य दे दी (अधीन कर दिया)। भोराभीम इस तरह हम भ्राता गणों मे पाखण्ड फैलाता है। उसके प्रान्त मे आकर्षण, मोहन मन्त्र और तन्त्र की ही प्रमुखता है (जैनी और यतियो के तान्त्रिक जाल की ही प्रमुखता है) वह विशेष द्रव्य सम्पन्नता के बल पर ही दूसरों को वश मे करना जानता है, किन्तु उसे यह ज्ञात नहीं कि मैं उत्तर में (आबू के उत्तरी भू भाग पर) अडा हुआ हू। इस प्रकार उस धार राज वशज ने पृथ्वी को दृढ़ ग्रहण किया अपनी राज्य रक्षा मे लगा) और उसी समय शिवने भी नदी को युद्ध क्षेत्र मे जाने के लिए ग्रहण किया।

गाथा

नत्थांनी घन-घत्ती, खग्गह तमस उज्जलौ खरय।
सोय जैत कुमार भारथ नत्थेव नथ्थयो धरय ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—नत्थांनी=नाथ। घन-घत्ती=बहुत सो के ढाल दी। तमस=तामस। खरय=चला कर। भारथ=महा भारत में। नत्थेव=न हुवा। नथ्थयौ=नहीं।

अर्थः—अनेकों को नाथ लेने वाला और तामस युक्त होकर उज्जवल खड्ग चलाने वाला वह जैत्र कुमार ऐसा था जिसके समान न तो महाभारत युद्ध मे ही कोई योद्धा हुआ और न कोई पृथ्वी पर ही होगा।

कवित्त

तेगभारि[1] पावार[2], जैत जगहथ्थ उचारिय।
अरे भीम पाखड, सत्र डडह हनि जारिय॥
है खुर खग्ग सु भूमि, दान विद्या अधिकारिय।
रूप दान रस ग्यान, तत्त नह मत्त विचारिय॥
भोरे सुमत्ति भूलै अवर[3], बुद्धि समर सावन[4] सफल।
पर धान वध कीजै मतौ, रथ जुत्तह खद्रूम फल॥ १० ॥

मा० पा० १, २ घ०। ३ घ० पा०। ४ सर्व प्रति।

शब्दार्थः—है खुर=घोड़े के सूम। रस=प्रेम। वध=वचन।

अर्थः—युद्धार्थ सचेत रहने वाले जैत्र प्रमार ने तलवार को जमीन पर फटकार कर कहा-अरे पाखण्डी भीम! तू डंडे द्वारा (भय दिखावर) शस्त्रों को (शस्त्र धारियों को) नष्ट करना चाहता है। तुझे यह ज्ञात रहे कि पृथ्वी घोड़े के सूम और तलवार के वल पर है, दान देना विद्या के अधिकार में है। रूप के साथ प्रेम और ज्ञान के साथ दान का सम्वन्ध है इस तत्व को उसने अपनी वुद्धि से नहीं विचारा। वह भोली मति वाला (मूर्ख) अन्य के भरोसे भूल वैठा है। उसे यह ज्ञात नहीं कि वुद्धि को ही सव तरह से युद्ध का साधन माना गया है। अतः उसने अपने मन्त्री और वधुओं को मन्त्रणा दी कि अव अपने सुन्दर रथों को जोतकर खट्टू की ओर वढ़ाना चाहिये (अत पुर को खट्टू स्थान पर सुरक्षित रखना उचित है)।

वधि थान[1] पारवान[2], थान थानह द्रव सच्चिय।
ता पच्छै है गै भँडार, अप्पन धर खंचिय[3]।
ता पच्छै सामत, नाथ मिलि एक सुवत्तिय।
भोरा राइ दिसान, सँध सगपन की कथ्थिय॥
आरव्व-तेज गढ़ उद्धरन, खेम करन खंगार सिर।
मुरदेस सलख सुत जैतसी, नवसु कोटि नागौर नर॥ ११॥

ग्रा० पा० १, २, ३ पा०।

शब्दार्थः—द्रव=द्रव्य। सचिय=सचित। खंचिय=खींचा, चलाया, वढ़ाया। सामंत नाथ=पृथ्वीराज। सँध=संदेश सूचना। आरव्व-तेज=तेज अरवी घोड़े। मुरदेस=मरुदेशीय।

अर्थः—समस्त द्रव्य का सचय कर उसे यत्र तत्र भूगर्भ में छिपाकर प्रस्तर खण्डों से ढ़क दिया। तत् पश्चात् हाथी, घोडे और शेप भंडार को दुर्ग से वाहर निकाल कर अपने भूभाग की ओर अग्रसर किया और तव पृथ्वीराज से मन्त्रणा-एक्य स्थापित-कर आये हुए प्रधान द्वारा भोरा भीम को अपने और पृथ्वीराज के सम्वन्ध की सूचना दी। इस प्रकार मरुप्रदेश स्थित नव दुर्गो मे से नागौर के शासक सलख पुत्र जैत्र ने गढ़ के उद्धार का भार तीव्र गामी अरवी अश्वों, क्षेमकर्ण और खगार के सिर पर दिया।

साटक

जा रख्या हय गर्व प्रीछित रिख, दावा नल जालयं।
सोय मातुल नंद वद्धि[1] सलिता, कालिनदिनो[2] प्रीतयं॥

जिं रख्यौ वर पानि प्रब्बत महा, गोवर्द्धन धारनं ।
सोय सा हरि रिख्खि धूवति वर, जे दृढ्ढ गोकलेश्वरं ॥ १२ ॥

ग्रा० पा० १ २ स० ।

शब्दार्थ:—जा=जिसने । रख्या=रक्षा की । हय-गर्व=हत गर्भ, नष्ट हुए गर्भ की । प्रीक्षत=परिक्षित । रिखे=रख लिया, बचा लिया, रक्षा की । जालयं=जारय, पान किया । मातुल=मामा कंस । नद=न्यद, निन्दित । सलिता=सरिता । कालिन्दी=यमुना । नो=से । जिं=जिसने । सोय-सा=ऐसे वही । रिख्खि=रख-लिया । धूवति=उस ध्रुवको ।

अर्थ:—जिसने (अश्वत्थामा द्वारा) उत्तरा के गर्भ नाश को बचाकर गर्भ मे परिक्षित की रक्षा की और दावानल का पान कर लिया, उसी ने अपने मातुल (कंस) को निंदित कर उसका वध किया और उसी ने कालिन्दी नदी से प्रेम (वरण) किया । जिसने अपने श्रेष्ठ हाथ पर महान् गोवर्धन पर्वत को धारण किया (बृज की रक्षा की), उसी हरि ने श्रेष्ठ भक्त ध्रुव की रक्षा की, ऐसे (भक्तों के लिये) दृढ रहने वाले गोकलेश्वर की जय हो ।

दोहा

जिन रक्खी हरि भत्तिवर, दै हथ्थह[1] हम तेग ।
दुहुन भति मडन मरन, सुरनर रक्खौ वेग ॥ १३ ॥

ग्रा० पा० १ घ० पा० का० ।

शब्दार्थ:-तेग=तलवार । भति=भांति । मडन=शोभा प्रद । सुर नर=नरों में देवता स्वरूप, ब्राह्मण । वेग=शीघ्र ।

अर्थ:—जिस ईश्वर ने भक्ति स्थापना के लिए देवस्वरूपी ब्राह्मणों को ज्ञान एव हमारे हाथों मे तलवार दी उस भक्ति और शस्त्र गौरव को बनाये रखने के लिए हमारा मरण शोभाप्रद है । अत हमें देवस्वरूपी उन ब्राह्मणों की जैन धर्मावलम्बी चालुक्यों से शीघ्र रक्षा करनी चाहिए ।

जिहि द्यनौ जीयन-मरन, दई हथ्थ हम तेक ।
औरं ण च्यतनु न्यतिय, सो रण रक्खे एक ॥ १४ ॥

शब्दार्थः—धनो=देकर। जीयन-मरन=जन्म-मृत्यु, आवागमन। तेक=तलवार। औरुण=अन्य किसी का नहीं। च्यंतनु=चिन्तन।

अर्थः—जिस प्रभू ने प्राणियों के लिए संसार में आवागमन बनाया और हम क्षत्रियों के हाथ में तलवार दी, उसे छोड़ कर अन्य किसी का हमें चिंतन नहीं करना चाहिए, क्योंकि केवल वही एक प्रभू रण मे हमारी रक्षा कर सकता है।

कवित्त

(तब) भीम वत्त सलखान, जैत वधौ उच्चारिय।
भूमि तात अप्पनी, रूधिर छटै[1] गल सारिय॥
आदि अवनि व्यौहार, धनी धर धारण[2] खडै।
धनु[3] लुट्टत[4] गोआल, परह पुक्कार न छडै॥
दिक्खियै[5] दीन घर घर फिरै, गरूअत्त न हरूअत्तनै।
निद्रा पियास छुध मोह तजि, दुक्ख सुक्ख इक्क न गनै॥१५॥

प्रा० पा० १ का०। २ दे। ३ दे०। ४ पा०। ५ दे०।

शब्दार्थः—वधौ=भाइयों को। सारिय=सबको, या लोहे द्वारा। व्यौहार=व्यवहार, कर्तव्य। धारण खडै=खड्ग धाराओं द्वारा कट पड़े। धनु=धन, गोधन, पशुधन। गोआल=ग्वाल। परह=औरों को। गरुअत्त न=गौरव नहीं। हरूअत्तने=हलकापन। छुध=क्षुधा, भूख।

अर्थः—फिर सलखानो जैत्र ने अपने भाइयों को भीम का सदेश सुनाया और कहा-हे भाइयो! यह पृथ्वी अपनी है। इसे हम अपने गले के रूधिर से सींचकर तृप्त करेंगे। पृथ्वी पर आदि से हमारा कर्तव्य प्रख्यात है कि पृथ्वी का स्वामी, पृथ्वी के लिये युद्ध करता हुआ, खड्ग धाराओं के प्रहारों द्वारा कट पडता है। कहते हैं कि पशु धन के लूटे जाने पर ग्वाल, औरों को नहीं पुकार कर, स्वय ही उनकी रक्षा कर लेता है। तुम देखते नहीं कि हमारी दीन प्रजा शत्रुओं (चालुक्यों) के उत्पात से घर-घर की हो रही है। इसमे हमारा गौरव नहीं, हलकापन ही है। अत हमको पृथ्वी और प्रजा के लिये निद्रा, प्यास, भूख और मोह को छोड़कर दु ख सुख की परवाह नहीं करनी चाहिये।

दोहा

हरूअ घरघर बुल्लियै, कुजस कहै सब कोइ ।
बहु उचार मुख उच्चरै, जुद्ध बिना इलि खोइ ॥१६॥

शब्दार्थः—हरूअ=हलके । बुल्लियै=बोले जाते, कहे जाते । बहु उच्चार=विविध बातें । इलि=इला, पृथ्वी ।

अर्थः—(जिन्हें प्रजा और पृथ्वी-रक्षा का ध्यान नहीं होता) ऐसे व्यक्ति प्रत्येक गृह मे हलके कहे जाते हैं और उनका सब कोई अपयश करता है। जो बिना युद्ध किये पृथ्वी खो बैठते हैं, उनके लिये प्रत्येक मुख से अनेक बातें कहीं जाती है।

सकल परिग्गह एक किय, खट दिस पूजा सद्धि ।
कागर दै चहुवान कौ, पठइय दूत समद्धि ॥१७॥

शब्दार्थः—परिग्गह=परिवार । एक-किय=एकत्रित कर । खट=खट्टू । पूजा=पूगे,पहुंचे । सद्धि=सिधा कर, प्रस्थान करके । कागर=कागद, पत्र । समद्धि=सम्बन्धी ।

अर्थः— इसके पश्चात् समस्त परिवार को एकत्रित कर वहाँ से प्रस्थान करके खट्टू की ओर पहुँचे और उन पृथ्वीराज के सम्बन्धी प्रमारों (सलख जैत्र) ने पत्र देकर पृथ्वीराज के पास दूत भेजा।

सुनि कग्गर नृपराज पृथु, भो आनद सुभाइ ।
मानों वल्ली सूकते, वीरा रस जल पाइ ॥ १८ ॥

शब्दार्थः—कग्गर=कागज, पत्र । नृप राज=राजाओं के राजा । पृथु=पृथ्वीराज । भो=हुआ । सुभाइ=स्वाभाविक । वल्ली=बेली, लता ।

अर्थः—सलख-जैत्र द्वारा प्रेषित पत्र को सुनने पर राजाओं के राजा पृथ्वीराज को इस प्रकार स्वाभाविक हर्ष हो आया, मानों सूखती हुई (उत्साह रूपी) लता को वीर रस रूपी जल प्राप्त हुआ हो।

कवित्त

पंच हथ्थि[1] सत बाजि, द्रव्य यन्नौ[2] सतपंचं ।
धर मत्ती मेवात, यन्न[3] ध्यन्सार[4] सुखंचं[5] ॥
तेग इक्क[6] खुरसानि, इक्क माला गुनदानं ।
आदर संजुत वोलि, मुक्कि मंत्री अगिवानं ॥
वड भाग[7] राज सोमेस सुअ, (कहि) सलखराज आगम[8] अवन[9] ।
सुनि वत्त[10] राय भीमग[11] हिय, मनहु[12] घाइ[13] यन्नो[14] लवन ॥ १६ ॥

प्रा० पा० १ से १४ दे० ।

शब्दार्थः—हथ्थि=हाथी । सत=सात । द्रव्य=द्रम्म, मुद्रायें । यन्नो=दिया । सत-पंच=पांचसौं । मत्ती=मतवाली, अच्छी उपजवाली । यन्न=दिया । ध्यसार=हिंसार । सुखंचं=प्रसन्नता पूर्वक । गुन-दान=जिसकी गिनती नहीं, अमूल्य । मुक्कि=छोड़ा, रवाना किया, भेजा । अगिवानं=अगवानी को । सलखराज=सलख-जैत्र । अवन=अवनि, भूभाग ।

अर्थः—पृथ्वीराज ने सलख जैत्र को प्रसन्नता पूर्वक पांच हाथी, सात घोडे और पॉचसौ मुद्राओं के साथ मेवात का मतवाला भूभाग (जहाँ उत्तम कृषि होती थी) एवं हिंसार के परगनों का पट्टा दिया । उसी के साथ एक खुरासानी तलवार और एक अमूल्य माला भी भेजी और उनकी अगवानी के लिये अपने मंत्री को भेजकर उन्हें आदर सहित अपने पास बुलाया । सलखजैत्र के आने पर पृथ्वीराज ने कहा-आज मुझ राजा सोमेश्वर के पुत्र का सौभाग्य है कि आप मेरे भूभाग में आये । यह बात जब राजा भोरा भीम ने सुनी तो उसके हृदय की ऐसी दशा हो गई मानो घाव पर नमक छिड़का हो ।

दोहा

गढु साह्यौ, सुनि भीमने, कन्यावर पृथ्वीराज ।
वोलि मंत्रि सज्जन कह्यौ, दुद[1] वजाने[2] वाज[3] ॥ २० ॥

प्रा० पा० १ से ३ दे० ।

शब्दार्थः—गढु=गढ़, दुर्ग । साह्यौ=पकड़ा, घेरा । कन्यावर=कुमारी के पति । सज्जन=सजने को । दुंद=द्वंद्व, जोरों से, ऊँचे स्वर से । वजाने=बजे । वाज=बाजे, वाद्य ।

अर्थ —(लौट कर आये हुए मत्री द्वारा) जब भोरा भीम ने सुना कि सलख जैत्र ने उसके सदेश को ठुकराते हुए यह भी धमकी दी है कि जानते नहीं, 'मेरी कुमारी (इच्छनी) का पति दिल्ली पति पृथ्वीराज है', तो उसने सलख जैत्र के दुर्ग को घेरना निश्चय कर अपने मुख्य मत्री को बुला कर युद्व की तैयारी करने की आज्ञा दी। जिससे ऊँचे स्वर से रणवाद्य बजने लगे।

किंत्तिक वत्त सोमेस सुव, तुँव रक्खे पामार।
बिट्ठि अवाई जट्ट जढ, गल्ह पुरे गामार ॥२०॥

ग्रा० पा० दे०।

शब्दार्थः—तुँव=तुम। बिट्ठि=बैठकर। अवाइ=आकर, पचों के बैठने का स्थान,चौराहा। जट्ट=जाट, जाति विशेष। जढ=जड़, मूर्ख। गल्ह पूरै=गप्पें हाँकता। गामार=गँवार।

अर्थः— भीम मन ही बोला कि हे पृथ्वीराज ! तू प्रमारों को क्यो कर शरण देता है। मूर्ख जाट जैसे पचायती स्थान पर बैठकर बाते करते हैं वैसे ही तू गँवारो की सी गप्पे हाँकता है।

धुर धारी खुर खु दिधर, कध कढें गल गाजि।
विनु बल भिरैं बयल्ल लों, भिरतैं चालैं भाजि ॥२१॥

ग्रा० पा० दे०

शब्दार्थः—खुर खु दि धर=पैर से पृथ्वी को खोदता हुआ। कढं=उठा कर। गल गाजि=टाटता है। वल=बल। बयल्ललो=बैल के समान। भाजि=भाग जाता है।

अर्थ—जिस प्रकार शक्ति हीन बैल व्यर्थ ही अपने खुरों से पृथ्वी को कुरेदता हुआ (खोदता हुआ) धुरा को धारण कर, कधा उठाकर टॉडता है (व्यर्थ ही शौर्य प्रदर्शित करता है) उसी प्रकार यद्यपि तू आडम्बर प्रदर्शित करता है किन्तु सामना होते ही भाग जाता है।

कवित्त

जपि राज[१] भोरा भुग्ग[२], अग, कपे रस वीरह।
विसम[३] भार[४] उरवार ,वारि[५] बोरहुं[६] अरि[७] नीरह॥
दिसि दिसान नग्गर प्रमान, फट्टै[२] पट्टनवै ॥
वारिधि बदर स्यव [१०] वान, बान सोरठ टट्टनवै ॥

कच्छेनि जथ्थ जद्दो[11] जहर, सेन इक्क भए आनि भर ।
चालुक्क राइ चालत दल, अम्मर घुम्मर घमड वर ॥ २२ ॥

प्रा० पा० १ से ११ दे०।

शब्दार्थः—जंपि=कहने लगा। भुवग=भीम। अरि-नीरह=शत्रु के पानी को, शत्रु के नूर को। फट्टे=फटे, लिखे गये। वारिधि-बन्दर=समुद्र-तट। स्यध-वान=सिंध के रहने वाले। सोरठ-ठट्टनवै= सौराष्ट्र समूह। कच्छेनि=कच्छवासी। जथ्थ=जहाँ, या युत्थ। जद्दो=यादव (भाटी) क्षत्रिय। अम्मर= बादल। घुम्मर=घुमड़ना। घमड=घुमड़ना।

अर्थः—भोरा भीम के अंग प्रत्यंग वीर रस के उत्साह से फड़क उठे और वह कहने लगा कि मैं अपने हृदय में विषम ज्वाला को धारण कर शत्रु समूह की कान्ति को जलमग्न कर दूँगा। उसी समय पट्टन प्रान्त की प्रत्येक दिशाओं- समुद्र तटीय देशों- सिंध, सौराष्ट्र, ठट्ठा, कच्छ प्रान्त, एवं जहाँ हलाहल विष स्वरूपी यादव (भाटी) निवास करते हैं, वहाँ पत्र भेजे गये, जिससे सब वीर ससैन्य आकर एकत्रित हो गये। तब उस चालुक्य नरेश की सेना इस प्रकार उमड़ती-घुमड़ती हुई चली, मानों बादल घुमड़ रहे हों।

मिलिय सेन भीमग, जानु टिड्डिय वरिखागम ।
अग्गनीर पच्छ कीच, भीच गर्जंत जुद्ध क्रम ॥
तरणि तेज सम तुंग, गुंग नीसान गहिर रव ।
सिलह क्रंति चमकति, ढक्क उठति जानु दव[1] ॥
हलमलत हयदल हींस हय, गज गुमान गुंजत गरुव ।
हाकप सक्क सकत सहर, खोदि करत उप्पर तरुव ॥ २३ ॥

प्रा० पा० १ दे०।

शब्दार्थः—वरिखागम=वर्षागम, वर्षा का आगमन। अग्ग=आगे। पच्छ=पीछे। भीच=भीमकाय। गुंग=गड़ गड़ा रहे थे। क्रंति=कांति। ढक्क=ढक्क। दव=दावाग्नि। हलमलत=हलचल होने पर। हयदल=अश्वारोही सेना। हींस=हिनहिनाहट। गुंजत=गर्जना करते हुए। हाकंप=हुंकार। सहर= सिहर, शिखर। उप्पर तरुव=उथल पुथल।

अर्थः—भीम की सेना इस प्रकार एकत्रित हुई, मानों टिड्डी दल हो, या वर्षा का आगम दिखाई पड़ता हो। सेना के चलने पर उसके अग्रभाग को जहाँ जल दिखाई देता

था, वहाँ उसके पश्च भाग को कीचड मिलता था। युद्ध भूमि मे चलते हुए भीमकाय वीर गर्जना कर रहे थे। उनका तेज सूर्य के समान दिखाई पडता था। उस समय नक्कारे गहरी आवाज से गड गड़ा रहे थे। वीरों के कवचों की कांति इस प्रकार चमक रही थी, मानों दावाग्नि दहक उठी हो। अश्वारोही सेना मे हलचल होने पर घोडों की हिनहिनाहट हो रही थी और मदाभिमानी गजसमूह गभीर गर्जना (भीषण चिंघाड) कर रहे थे। हुंकार की शङ्का से गिरि–शिखर शंकित हो रहे थे। वे इस प्रकार उथल पुथल होरहे थे, मानों उन्हें खोदकर ऊपर नीचे किया गया हो।

गाथा

मत्ता मेघ दिसान, रिस्सान चालुक्क वीर[1]।
नैन तेज ति तुट्ठ, ज्यौं तत्ताइं अग्गिय बुद्द ॥ २४ ॥

प्रा० पा० १ दे।

शब्दार्थः—दिसान=दशा, हालत, तरह। रिस्सान=रीस, क्रोध। तेज=प्रकाश, ज्वाला। तुट्ठं=तुट्ट, टूट पड़ी, फैलगई। तत्ताइ-अग्गिय=तप्त अग्नि, प्रज्वलित अग्नि। बुद्द=बुद्बुदे, चिनगारियां।

अर्थः—उस समय चालुक्य वीर क्रोध से उमडते हुए मतवाले मेघों की तरह दिखाई पडे। उनके नेत्रो से तेज (ज्वाला) इस प्रकार फैल रहा था, जैसे प्रज्वलित अग्नि से चिनगारियाँ छूट रही हों।

दोहा

ठानिज्जै मानिज्ज भत, हानिज्जै गुर ग्यान।
वेद धर्म जिन भजए, जैन ध्रंम परिमान ॥ २५ ॥

शब्दार्थः—ठानिज्जै=ठानना चाहिये, समझना चाहिये, मानना चाहिये। मानिज्ज=मान्य। भत=भांति, तरह। हानिज्जै=हनिये, नष्ट करिये। जिन भजए=नहीं भजें, उपासना नहीं करें। परिमान=मानले, मानकर चले।

अर्थः—उन चालुक्यों ने प्रमार क्षेत्र मे यह आदेश प्रसारित किया कि सभी व्यक्ति अपने सद्गुरु ज्ञान को नष्ट कर के वेद धर्म की उपासना न कर, जैन धर्म को मुख्य रूप से मानकर चले (कोई भी जैन धर्म के विरुद्ध नहीं चले)।

चढ्यो भीम भोरा[1] सुभर, अप्पूरणि[2] निसि अद्ध।
रौरि परी गढ उप्परे, भेद सवै वलु[3] खद्ध॥ २६॥

प्रा० पा० १ से ३ दे०।

शब्दार्थः—अप्पूरणि=व्यतीत न हो पाई। अद्ध=आधी। रौरि=हलचल। परी=मचगई। वलु=वल। खद्ध=नष्ट कर दिया।

अर्थः—अर्धरात्रि भी व्यतीत भी न हो पाई थी कि उसी समय हम्मीर नामक किसी व्यक्ति से भेद लेकर भोरा भीम सलख जैत्र के गढ पर चढ़गया, जिससे गढ़ में हलचल मचगई। इस भेद ने ही प्रमारों के वल को नष्ट कर दिया।

गाथा

वलभे वलभो वार्त, नह अच्छी विय भेदयौ भेदे[1]।
भेदै अच्छरि कुलयं, पावार प्रीति[2] वालायं॥ २७॥

प्रा० पा० १ घ० पा० २ पा०।

शब्दार्थः—वलभे=वल्लभ, मित्रों से। वलभो-वात=मित्रता की वातें, व्यवहार। विर्यं=दूसरी, विपरीत। अच्छरि=अप्सरायें। पावार=प्रमार।

अर्थः—(यह देख कर दुर्ग रक्षक प्रमार वोला) प्रमार वीर मित्रों से मित्रता का व्यवहार करते हैं, उसके विपरीत भेद नीति को अपनाना अच्छा नहीं समझते। वे यदि किसी के हृदय को भेदते हैं तो केवल अप्सराओं के हृदय को ही भेदते हैं और उन्हीं वालाओं (अप्सराओं) से प्रेम भी करते हैं।

दोहा

हकार्‌यो खंगारणे, रे हमीर गॅवार।
चालुक्का चढि को सकै, मैं सुधि लही अवार॥ २७॥

शब्दार्थः—हकार्‌यो=हुकार की (या ललकार कर आगे कर लिया)। खगारणे=खगार प्रमार ने। को=कौन। सुधिलही=सावधान हो गया। अवार=अव।

अर्थः—भेद दाता हम्मीर नामक व्यक्ति पर दुर्ग रक्षक खगार प्रमार ने हुँकार की (या उसको ललकार कर आगे करलिया)। और कहा! हे गंवार! देखताहूं, अव कोई चालुक्य गढ़ पर कैसे चढ सकता है? मैं अव सावधान हो गया हूं।

कवित्त

खीमकरण[1] खगार, उद्ध उद्धरण गह्यौ गिरि ।
वल[2] बरसिंघ[3] ततार, सार लग्गौ प्रहार सिरि ॥
मस अंत नु टुट्टई, वीर वंटई जरा ज्यौ ।
जरासंध जोरयौ, जोर रष्खी दुव पा ज्यौ ॥
दिखि रत्त[4] मत्त मत्ती उमा, जै जै जै जपै सुभर ।
पामार पच पचौ[5] मिलै, रह्यौ इक्कु औसाफु धर ॥ २६ ॥

ग्रा० पा० १ घ० । २ से० ५ दे० ।

शब्दार्थः—उद्ध=ऊर्ध्व । वल=वलराय । ततार=तेज, वेग से बढने वाला । सार=लोहा । सिरि=सिरपर । मस=मांस । अंत=आँतें । जोर=जोड । पा=पाई, दिखाई पड़ी । रत्त=रक्त । पच=पाचों तत्व । औ साफु=पराजय का अभिशाप (मिथ्या वाद) ।

अर्थः—तब क्षेम करण, वलराय, वीर खगार और उद्धरण ने दुर्ग स्थित ऊर्ध्व गिरि का भार ग्रहण किया और वलराय तथा जोशीले वरसिंह ने भी शत्रुओं पर शस्त्र--प्रहार करना शुरु किया। उस समय उन वीरों का मास तथा आँतें कट पडी और उनके शरीर के टुकडे २ हो गये। लेकिन जरा ने जिस प्रकार जरासंध के शरीर को जोड दिया था, उसी प्रकार इन वीरों के दोनों हिस्से फटे हुए होने पर भी जुडे हुए के समान दिखाई पडे। उन मतवालों के रक्त से देवी प्रमत्त दिखाई पडी, और वहादुरों का जय २ कार करने लगी। वे पाँचों प्रमार (क्षेमकरण, खगार, उद्धरण, वलराय और वरसिंह) पच तत्व में मिलगये, केवल पराजय का अभिशाप (मिथ्यावाद) ही पृथ्वी पर रह गया।

परै जुमिझ रणधीर, मरण भौ छडि जम्म घर ।
पुत्र मित्र सज्जन सु लच्छि, टरै नन काल चालच्छर ॥
धरी लन्छो वरुवरयौ, वार उद्धारि पवार ।
सह परिगह छह पुत्त, तुट्टि धारा-धर धार ॥
धुत्र वाद स्यम लीनो सु गट, सुक्ल पुख्ख[1] पुण्यो[2] स दिन ।
गट पटयौ भोर भीमग सुनि, नभ लग्यौ सलग्गानि[3] तन ॥ ३० ॥

ग्रा० पा० १ घ० २, ३ दे० ।

शब्दार्थः—जुम्भिभ=जूभकर । मौं=मय । जम्मधर=जन्मभूमि । छर=छल । धरु=धड़ । छह-पुत्त=छः पुत्र । धारा धर=खड्गधारणकर्ता । धारा=खड्ग । ध्रुश्र=निश्चय । म्यम=मीम । पक्ख=पक्ष । पुण्यौ स दिन=पूर्णिमा के दिन । मोर-मीमग=मोरा मीम ।

अर्थः—इस प्रकार वे रणधीर वीर मृत्यु का भय छोड़कर जन्म भूमि के लिये झूम कर (युद्ध कर) धराशायी हुए । सत्य है—काल की छद्म चाल के आगे मित्र, पुत्र, सज्जन और लक्ष्मी कोई भी नहीं बच सकते । लक्ष्मी वहीं की वहीं धरी रह गई और वह मृत काया भी वहीं पड़ी रही । उन प्रमारों ने अपने धार राज वंश का उद्धार किया (धार राज वंश को निष्कलंक रक्खा) और तलवार के धारण कर्ता छह पुत्रों और साथियों सहित खड्ग-धार द्वारा कट कर गिर पड़े । इस प्रकार निश्चय रूप से बढ़ कर भीम नें शुक्ल पक्ष को पूर्णिमा के दिन दुर्ग को ले लिया । इधर गढ़ पर भीम को चढ़ा हुआ (अधिकार किये हुए) सुन कर सलख जैत्र का शरीर नभ से जा लगा (क्रोध से उन्मत्त हो गया)

दोहा

एक मास दिन पंच रहि, गढ़ मुक्यौ तिन बार ।
पट्टनवै पट्टन गयौ, अव्वूवै सिर भार ॥ ३१ ॥

शब्दार्थः—तिनबार=उस समय । पट्टनवै=पट्टन पति । अव्वूवै=आबू वाले के । सिर-भार=गढ़ रक्षा का भार ।

अर्थः—सलख जैत्र के दुर्ग पर एक मास और पांच दिन रह कर पट्टन पति ने दुर्ग को छोड़ दिया और उसकी रक्षा का भार आबू वाले (धारा वर्ष) के सिर पर देकर पट्टन को प्रस्थान किया ।

कवित्त

वाहन वटि सौ तुरंग, चमर पसमी चौरगा ।
पंच-घाट-पंचास, असि तम्बोली खंगा ।
उभय मत्त गजराज, सेत बलभद्र समान ।
लिखि कग्गर चालुक्क, बोलि सारंग मकवानं ॥
सा लोभ अंग नन झूठ मन, चित उदार सच्ची कहन ।
इन दूत सुलच्छिन होंहि नृप, तत्र सु राज हत्थह गहन ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ:—वाहन वटि=अच्छे घोड़ों वाला देश, कच्छ, काठियावाड़ । चौरंगा=चार रंग वाले, या चौसरें ढलने योग्य । पच-घाट पचास=पाँच कम पचास-४५ । असिस=असि, तलवारें । तवोली=ताम्रवर्ण की आमन (जलह, एक प्रकार की कलई या चमक जो तलवार पर की जाती है) की हुई । खंगा=काट करने योग्य । सेत=श्वेत । वलभद्र=बलराम, कृष्ण के बड़े भाई । मकवान=मकवाना (झाला) क्षत्रिय । सा=वह । नन=नहीं । राज-हथ्थह-गहन=राज्य-व्यवस्थार्थ हस्तगत रखना चाहिये ।

अर्थ:—तव (भोरा भीम ने गौरी शाह के पास) सारंगदेव द्वारा कच्छ देशीय सौ घोड़े, चौसरें चलाने योग्य मुलायम चमर, ताम्रवर्णी (आमन की हुई) और अच्छा काट करने वाली ४५ तलवारें, बलराम के समान दो श्वेत गजराज भेजने का निश्चय किया । उस सारंगदेव मकवाने के अंग को लोभ और मन को झूँठ ने नहीं छुआ था । वह उदारचित्त और सत्य बोलने वाला था । कवि कहता है कि इन लक्षणों वाले दूतों को भली प्रकार राज्य-व्यवस्थार्थ हस्तगत रखना चाहिये ।

दोहा

सुनि कग्गर गोरी गरुअ, कर खची कम्मान ।
कै भजौ मेछानि दल, कै रजौ खुरसान ॥३३॥

शब्दार्थ:—गरुअ=गर्वीले । खंची=ऐंची । मेछानि दल=अपने साथियों के दल को, यवन सेना को । रजौं=प्रसन्न कर दूंगा ।

अर्थ:—सारंगदेव मकवाने द्वारा प्राप्त हुए पत्र को सुनकर अभिमानी गौरीशाह ने कमान को हाथ में लेकर खींचा और बोला कि या तो मैं अपनी यवन सेना को नष्ट करवा दूंगा अथवा खुरासान प्रदेश को प्रसन्न कर दूंगा ।

कवित्त

खा ततार खुरसान, खान न्याजी खा रुस्तम ।
खा पिरोज पाहार, वली निसुरत्ति जुद्ध जम ॥
तुगीखा निरहुति, अग्गिवानी मुख पानी ।
द्वै उज्जवक्क उजाक, रेह रक्खन मैदानी ॥
चालुक्क लिखै कग्गद जुवै, वखत वान दरसन दुनम ।
हम्मीर मिले हमीर वर, वर भीमानी भीम रम ॥३४॥

शब्दार्थः—निरहुति=नृशसकारी। वखतवान=अच्छेदिन वाला। दस्सन=दर्शन-स्वरूप। दुनम=दुनिया में। हंमीर=अमीर। भीमानी=भयावनी खड्ग।

अर्थः—भीम ने पत्र में लिखा था- हे सुलतान! आपके वलवान योद्धा-तत्तारखाँ, खुरासानखां, न्याजीखां, रुस्तमखा, पहाड़खां, निसुरत्तिखां और नृशंसकारी तु गीखां यम-स्वरूप हैं, जिनके मुख पर कान्ति प्रतिभासित होती है और जो युद्ध-स्थल में सदा अग्रगण्य रहने वाले हैं। अत' आज आपके अच्छे दिन हैं और इसी लिए दुनिया में आप दर्शनीय हैं। आप जैसे अमीर यदि मुझ अमीर से मिल जांय तो मेरी (भीम की) भयावनी खड्ग युद्ध स्थल में ठीक तरह से (शत्रुओं का) दमन कर सकेगी।

-दोहा

कही वत्त सुलितान नै[1], रे[2] सारंग वर वीर[3]।
दान खग्ग विद्याविभौ, ए वत्तां नॅह सीर[4] ॥३५॥

प्रा० पा० १, २, ३, ४ दे०।

शब्दार्थः—सुलितान=सुलतान। विभौ=वैभव। वत्तां=बातें। सीर=साझे में, शामिल।

अर्थः—(पत्र को सुनकर) सुलतान बोला-हे श्रेष्ठ वीर सारंदेव! सुन, दान, खड्ग, विद्या और वैभव-इतनी बातें वीरों को सम्मिलित रूप में शोभा नहीं देती।

गाथा

भूमी द्रवै सु लच्छी, वंका वीराइ वंकियं भूमी।
नहॅ वंकी धर कव्वं, वंका वीराइ वंकिय होई ॥३६॥

शब्दार्थः—वका वीराइ=बांके वीरों से ही। वंकियं=बांकी। कव्व=कभी भी।

अर्थः—बांके वीरों से ही भूमि बांकी कहलाती है, वह (बांकी) भूमि उन्हें लक्ष्मी स्रवती रहती है। केवल पृथ्वी कभी बांकी (भयावनी या अजयी) नहीं हो सकती, बांके वीरों के कारण ही वह बाकी कहलाती है।

कवित्त

वीर भोग वसुमती, वीर वका अनुसरई।
वीर दान भोगवै, बीर खग्गह गुर करई ॥

अन्न पान रस द्रवै, लगे काइर नह अच्छी।
हैं खुर खग्गह धार, बीर भोगह बर अच्छी॥
जंपैन बीर सारंग तें, भोरा नाम अभग भर।
भुग्गवै कौन को भुग्गि हैं, करौ चरक्का खग्ग बर॥३७॥

शब्दार्थः—भोग=भोक्ता। अनुसरई=अनुसरण। दान=दान के जल से। भोगवै=भोग होता, संयोग होता। गुर=भारीपन या गर्भवती तथा विस्तार। द्रवै=स्रवती, देती। काइर=कायर। है खुर=घोड़े के सूम। बर=बल से। तें=तू ही। भुग्ग वै=भोग रहा है। भुग्गि है=भोगेगा। चरक्का=चटाका, वार।

अर्थः—पृथ्वी वीर-भोग्या होती है, वह बांके वीरों का ही अनुसरण करती है। वीरों के दान स्वरूप जल के द्वारा उसका भोग होता है और वीरों की तलवार से ही उसमें भारीपन (अर्थात् गर्भावस्था या क्षेत्र विस्तार) होता है। इस सयोग से वह अन्न पान रस को जन्म देती है (स्रवती है)। कायर को वह अच्छी नहीं लगती, उसको तो वीर पुरुष ही घोड़े के सूम एवं तलवार की धारा के बल पर अच्छी तरह भोग सकता है। हे सारंगदेव! तू ही कह, जिसका नाम भोरा है, वह अभग योद्धा कैसे हो सकता है? इस भूमि को अभी कौन भोग रहा है और आगे को कौन भोगेगा-यह नहीं कहा जा सकता। मैं तो केवल खड्ग का श्रेष्ठ वार करना ही ठीक समझता हूँ।

श्लोक

न कस्यापि कुले जाता, न कस्य नर नारियम्।
हय खुर खड्ग धारा च, वीर भोग्या वसुन्धरा॥ ३८॥

शब्दार्थः—कस्यापि=किसी भी। जाता=उत्पन्न हुई। खुर=खुर।

अर्थः—यह पृथ्वी न तो किसी कुल में उत्पन्न हुई है और न किसी पुरुष की स्त्री ही है। घोड़े के खुर और तलवार की धारा के बल पर ही वीर पुरुष इसका उपभोग कर सकते हैं।

दोहा

सुणी[1] वत्त[2] सारंग घर, केहा देहा नेह ।
दई दुहथ्थैं पिंजरह[3] ह्यंदु मिच्छन[4] छेह ॥ ३६ ॥

आ० पा० १, २, ३, ४, दे० ।

शब्दार्थः—केहा=क्या है । देहा=शारीरिक । नेह=सम्बन्ध । दुहथ्थैं=दो हाथ । पिंजरह=पिंजरा, शरीर । ह्यंदु=हिन्दू । मिच्छन=मुसलमान । छेह=किनारा, पक्षपात ।

अर्थः—यह बात सुन कर सारंगदेव बोला-शरीर से प्रेम करना वृथा है, क्योंकि वह नाशवान है । ईश्वर ने सबको दो हाथ दिये हैं; उसने हिन्दू और मुसलमान का पक्षपात नहीं रखा (अर्थात् युद्ध में सामना होने पर दोनों दल वाले अपना हस्त-कौशल प्रदर्शित कर सकते हैं) ।

कवित्त

सुनि[1] गज्जनवै गज्जि[2], कहै भोरा भीमदे ।
धर पाखड निदान, वीर विद्या[3] दिय-वंदे ।
दीहा दू ती[4] मभ्भ, मोहि चहुवान चरक्का ।
ता पच्छै[5] गल्हवान, गल्ल्ह करि हैं धर धक्का ॥
पाखड डंड रच्चै नहीं, जिम्मी जर ककर उरा[6] ।
संभरिय काल कंटक हनौं, ता पाछैं गुज्जर धरा ॥ ४० ॥

आ० पा० १ से ६ दे० ।

शब्दार्थः— गज्जनवै=गजनी पति । गज्जि=गर्जनाकर । निदान=कारण । दिय-वंदे=वंदना करदी, विदा देदी । दीहा=दिन । दू ति मभ्भ=दो तीन दिनों में । ता पच्छै=उसके बाद । गल्हवान=यश निर्माता । धक्का=धक २ कर, बढ़ २ कर । गल्ल्ह=यश । जर=जड़ । उरा=हृदय । पाछैं=पश्चात् ।

अर्थः— यह सुनकर गजनीपति गर्जना करके बोला-भीम यद्यपि भोला कहा जाता है, किन्तु उसको धरा (देश) पाखण्डों के कारण स्थिर है, उसने वीर विद्या को नमस्कार कर लिया है (वीर विद्या वहाँ नहीं है) । जीवन के दो तीन दिनों में (कम आयु में) मुझे चौहान पृथ्वीराज से टक्कर लेनी है । हम दोनों के बाद (भविष्य में) यश निर्माता हमारा बढ़ २ कर मनमाना यश वर्णन करेंगे । यह शरीर तो जड़ हृदय

के कारण ककरीली जमीन के समान है, जहाँ पाखण्ड-दण्ड (वृत्त) की रचना नहीं हो सकती। मैं पहले काल-कटक स्वरूप सभरी नरेश का नाश करके, पश्चात गुजरात का नाश करूँगा।

सुनै सद्द सुलितान, बोल बासीठ उसट्टै[१]।
रस रसाल फेरी फरक्कि, कर चपि लुहट्टै[२]॥
भीमा सौं भारथ्थ, चाव[३] लग्गै सुलिताना[४]।
मुसलमान दीवान, बक बुल्ल्यौ मकवाना[५]॥
चालुक्क राइ चालत दल, कालु[६] कलहु[७] छडन करै।
मेवार अजैपुर गज्जनै, तीनि राइ तिज्जर डरै ॥४१॥

ग्रा० पा० १ से ७ दे०।

शब्दार्थ:—सद्द=शब्द, वचन। उसट्टै=उमस कर। रस रसाल=नजराने की चीजों को। फेरी=लौटाली। फरक्कि=फड़कते हुए। लुहट्टै=तलवार। भारथ्थ=युद्ध। चाव=उत्साह। दीवान=पागल। बक= बांका। कालु=काल। तिज्जर=उसकी ताप से।

अर्थ:—सुलतान के वचन सुन कर वह वीर मकवाना बसीठ बढ़ २ कर बोलने लगा और उसने अपने शरीर को फडकाते हुए भेंट की हुई वस्तुओं को वापस लौटाली। उस बाँके वीर ने तलवार को हाथ में पकड कर कहा—हे सुलतान ! भीम से युद्ध करने के लिये उत्साहित होना मुसलमानों का (तुम्हारा) पागलपन है। जब चालुक्य नरेश का दल चलाता है,तो काल भी उसके सामने युद्ध करना छोड़ देता है। उसकी ताप से मेवाड़, अजमेर तथा गजनी-तीनों स्थानों के राजा डरते हैं।

नहि जालधर-चार, वग चगी न तिलगी।
कुक्कन कच्छ पुरोठ, ठट्ट स्यधू[१] सरवगी॥
गवरि गोर गुज्जरिय, सवर सोरठ[२] अरु पड।
मुरि मरहठ नंदवार, राइ मालव गुन छड॥
चामिली वार अरु स्यध उर, सकहि न मडरु खग्ग रुकि।
चालुक्क राइ चालत दल, कालु कलहु मटै न झुकि॥ ४२॥

गा० पा० १, दे० । २ घ०।

शब्दार्थ:—जालंधर-वार=जालधर-प्रदेश । वंग=वंग, वंगाल । तिलगी=तिलंगाना । कुंकन=कोंकण । पुरोठ=जगन्नाथ पुरी के आस पास का स्थान । ठट्ठ=ठट्ठा । स्यंधु=सिंधु, सिन्ध । सरवगी=समस्त । गवरि=गौर-प्रदेश । गोर=गोडों का स्थान, गौंडवाना । गुज्जरिय=गुजरात प्रांत । सवर=सवल । सेरठ=सौराष्ट्र । पंडव=पांडव-प्रदेश । मुरि=मुड़ जाते हैं । नंदवार=नदराय । गुनछंड=अपने क्षत्रियत्व के लक्षणों को छोड़ कर । चामिली वार=चंवल नदी । स्यघ=सिंघ । सकहिन-मडर=नहींमँड सकते, कदमों पर साबित नहीं रह सकते, नहीं डट सकते ।

अर्थ:—उसके (भीम के) समस्त जालधर, वगाल, तिलगाना, कोंकण, कच्छ, पुरोठ (जगन्नाथ पुरी के आस पास के स्थान-बिहार, उडीसा, आदि), ठट्ठा, समस्त सिन्ध, गौड प्रदेश, गौंडवाना (गौडो का स्थान), गुजरात, सबल सौराष्ट्र, पाण्डव प्रदेश, महाराष्ट्र, नदराय और मालव के राजा भी अपने क्षत्रियत्व के लक्षणों को छोड़ कर लौट जाते हैं । चवल नदी से लगा कर सिंधु नदी के क्षेत्र तक के वीर उसके सामने नहीं टिक सकते और उसकी तलवार को नहीं रोक सकते । उस चालुक्य नरेश का दल जब चलता है, तब उससे टेढा होकर कालभी कलह नहीं कर सकता ।

जिन जूना जगाल, बाढ़ बाढ़ेल उछट्टी ।
जिन आसावलि अद्ध, देस[1] बाघेल पलट्टी ॥
जिन भरि भोरा भीम, सीम[2] चंपी आसेरी ।
(जिन) जगवेग जद्दोंनि, कढ्ढि अब्बूअ तसेरी ॥
मकवान बोलि अगवान सौं, मकरि तास सम जुद्ध सचि ।
ए धरनि भीम भंजन घढ़न[3], अप्प कियौ करतार रचि ॥ ४३ ॥

प्रा०पा० १ दे । २ पा० । ३ घ० ।

शब्दार्थ:—जूना=प्राचीन । जगाल=जगल-प्रदेश । बाढ=खड्ग । बाढेल=खड्गधारी । उछट्टी=आघात किया । जंग वेग=सवेग युद्धकर्ता । अब्बूअ=आबूराज वशी । तसेरी=त्रस्त किये । अगवान=मुसलमानों के अगुए को, समक्ष खड़े हुए को । मकरि=मतकर । ताम सम=उसमे । सचि=सत्य है । घढन=गढों को ।

अर्थ:—वीर मकवाना यवनों के अग्रणी (शहाबुद्दीन) से कहने लगा कि जिस खड्ग धारी ने प्राचीन जङ्गल प्रदेश पर अपनी खड्ग का आघात किया, जिसने

आसावली के अङ्ग स्वरूप बघेल देश को पलट दिया, जिसने आसेरी की सीमा को दबाया, जिसने सवेग युद्ध-कर्ता यादवों को हटा दिया और जिसने आबू राजवंशियों को त्रस्त कर दिया, ऐसे उस (भोला भीम) से युद्ध करने की मत सोच। मैं स य कहता हू-सृजता ने स्वय अपने हाथों से इस पृथ्वी पर दुर्गों के नाश हेतु ही भीम की रचना की है।

कलहु न मंडे[१] काल, देस पुव्वेस पुलगी।
अग्निवान दखि[२] प्रभा, वाई-कुना रस मगी॥
मुसलमान दीवान, साहि अग्गे इह[३] बुल्लौ।
(जौ)लरैं चपि चहुवान(तौ)कार खग्गा रसु[४] तुल्लौ"॥
सुनि स्रवन किये[६] रत्ते नयन, वयन साहि तत्तो तमसि।
जाने कि अग्गि स्यची[७] सुघृत, ताम तेज बढ्यौ वहसि॥ ४४ ॥

प्रा० पा० १ से ७ दे०।

शब्दार्थ:—अग्गिवान=अग्नितुल्य। दखि=देखकर। वाइ-कूना=वायुकोण। रसमगी= वीर रस की इच्छा करने वाले, युद्ध की इच्छा करने वाले। स्यची=सींच दी। ताम=तैसे। वहसि=बहस के कारण।

अर्थ:—मकवाना के वचनों को सुनकर शाह के नैत्र लाल हो गये और वह तमतमाकर आतुरता से बोलने लगा-हे वीर मकवाना! सुन, मेरे समस्त काल भी कलह का मडन नहीं कर सकता। मेरी अग्नि तुल्य प्रभा को देख कर, मुझ से वीर रस की (युद्ध की) इच्छा रखने वाले (मेरी अग्नि-प्रभा को अधिक प्रज्वलित करने के लिए) वायु कोण तुल्य बनजाते हैं। मेरे (शाह के) सामने तू मुसलमानों को पागल कहता है, किन्तु तेरा राजा (भीम) यदि चाहुवान (पृथ्वीराज) को दबाकर मुझ से लडना चाहें तो मैं वीर रस से युक्तहोकर काल के समान खड्ग को उठाऊँगा। उस समय उस दूत के (कुतर्क) वहस करने से, शाह का तेज इस प्रकार बढ गया, जैसे प्रज्वलित अग्नि मे घृत सींच दिया गया हो।

मदयानी किं करैं, किं न[१] जपै मतिहीना,
किं वायस ना भखै, किं न कवि करैं सु हीना॥
अबुध बाल किं कहै, खलह सों कि नहैं होई।

त्रासवंत कि करै, खुधावंतह कि जोई ॥
कि करै काम अती कठिन, कि न करै लोभी नवन ।
कि करै न तसकर त्रप्प वर, अबुध इष्ट सत्तह सुमन ॥ ४५ ॥

प्रा० पा० १ पा०, फा० ।

शब्दार्थः—मद्यपानी=मद्यपी । किं=क्या । हीना=बुराई । खुधावंतह=क्षुधित । जोई=जोना, देखना । काम अंती=अतर में जिसके काम बसता है, कामी । त्रप्प=तृप्ति, संतोष ।

अर्थ:—मद्यपि क्या नहीं करता, मति हीन क्या नहीं कहता, वायस क्या नहीं खाता कवि किसकी तुच्छता पर (बुराइयों पर) प्रकाश नहीं डालता, अबोध बच्चा क्या नहीं कहता, दुष्ट क्या नहीं करता, त्रसित क्या करने को बाध्य नहीं होता, क्षुधित क्या नहीं देखता, कामी कोनसा कठिन कार्य नहीं करता और लोभी किससे नहीं नमता (अर्थात् क्रोधित शाह के कथन भी उसी प्रकार ज्ञान शून्य थे) ।

रमण[1] रोस सुलितान, हसम हाजुर फुरमानं ।
वर वजीर वरजत, ऐब लग्गै सुविहानं ॥
अवध वसीठ रु भट्ट, नीति ह्यंदू तुरकानं ।
स्वामि सकज्ज बोलंत, वग्घ अरु सप्पा खानं ॥
जल्लान आन साहाव दो, हल हलाल किज्जै गमन ।
अल्लह[2] न आलि लब्भै रवा, खलक खांन खग्गह डसन ॥ ४६ ॥

ग्रा० पा० १, २, दे० ।

शब्दार्थ:—रमण=रम गया । हसम=सेना । हाजुर=हाजिर, उपस्थित । ऐब=बुराई, कलंक । सुविहान=सुबहान, मुस्लिम । अवध=अवध्य । ह्यंदू=हिन्दू । वग्घ=व्याघ्र, सिंह । सप्पा=सर्प । खान=खाना, डसना । जल्लान आन=जलन मत ला । अल्लह=अल्लाह । आलि=अली । लब्भै=प्राप्त । रवा=रव, ईश्वर ।

अर्थ:—जिसकी आज्ञा के साथ ही सेना उपस्थित हो जाती थी, ऐसे शाह के हृदय में क्रोध रमने लगा । यह देख कर श्रेष्ठ वजीर मंत्री ने उसे निषेध किया कि इस प्रकार क्रोध करने से मुस्लिम धर्म को कलंक लगेगा, क्योंकि हिन्दू और मुसलमान

आसावली के अङ्ग स्वरूप बघेल देश को पलट दिया, जिसने आसेरी की सीमा को दबाया, जिसने सवेग युद्ध-कर्ता यादवों को हटा दिया और जिसने आबू राजवंशियों को त्रस्त कर दिया, ऐसे उस (भोला भीम) से युद्ध करने की मत सोच। मैं सत्य कहता हूं—सृजता ने स्वय अपने हाथों से इस पृथ्वी पर दुर्गों के नाश हेतु ही भीम की रचना की है।

कलहु न मंडे[1] काल, देस पुव्वेस पुलगी।
अग्निवान दखि[2] प्रभा, वाई-कूना रस मगी॥
मुसल्लमान दीवान, साहि अग्गे इह[3] बुल्लौ।
(जौ)लरै चपि चहुवान(तौ)कार खग्गा रसु[4] तुल्लौं"॥
सुनि स्रवन किये[5] रत्ते नयन, बयन साहि तत्तो तमसि।
जाने कि अग्गि स्यची[7] सुघृत, ताम तेज वढ्यौ वहसि॥ ४४॥

प्रा० पा० १ से ७ दे०।

शब्दार्थः—अग्गिवान=अग्नितुल्य। दखि=देखकर। वाइ-कूनां=वायुकोण। रसमगी= वीर रसकी इच्छा करने वाले, युद्ध की इच्छा करने वाले। स्यची=सींच दी। ताम=तैसे। वहसि=बहस के कारण।

अर्थः—मकवाना के वचनों को सुनकर शाह के नेत्र लाल हो गये और वह तमतमाकर आतुरता से बोलने लगा-हे वीर मकवाना! सुन, मेरे समस्त काल भी कलह का मडन नहीं कर सकता। मेरी अग्नि तुल्य प्रभा को देख कर, मुझ से वीर रस की (युद्ध की) इच्छा रखने वाले (मेरी अग्नि-प्रभा को अधिक प्रज्वलित करने के लिए) वायु कोण तुल्य बनजाते हैं। मेरे (शाह के) सामने तू मुसलमानों को पागल कहता है, किन्तु तेरा राजा (भीम) यदि चाहुवान (पृथ्वीराज) को दबाकर मुझ से लड़ना चाहे तो मैं वीर रस से युक्तहोकर काल के समान खड्ग को उठाऊँगा। उस समय उस दूत के (कुतर्क) बहस करने से, शाह का तेज इस प्रकार बढ़ गया, जैसे प्रज्वलित अग्नि मे घृत सींच दिया गया हो।

मदयानी किं करै, किं न[1] जपै मतिहीना,
किं बायस ना भखै, किं न कवि करै सु हीना॥
अबुध वाल किं कहै, खलह सों कि नहँ होई।

आसवंत कि करै, खुधावंतह कि जोई ॥
कि करै काम अती कठिन, कि न करै लोभी नवन ।
कि करै न तसकर त्रप्प वर, अबुध इष्ट सत्तह सुमन ॥ ४५ ॥

प्रा० पा० १ पा०, का० ।

शब्दार्थ:—मद्यपानी=मद्यपी । कि=क्या । हीना=बुराई । खुधावंतह=क्षुधित । जोई=जोना, देखना । काम अंती=अंतर में जिसके काम बसता है, कामी । त्रप्प=तृप्ति, संतोष ।

अर्थ:—मद्यपि क्या नहीं करता, मति हीन क्या नहीं कहता, वायस क्या नहीं खाता कवि किसकी तुच्छता पर (बुराइयों पर) प्रकाश नहीं डालता, अबोध बच्चा क्या नहीं कहता, दुष्ट क्या नहीं करता, त्रसित क्या करने को बाध्य नहीं होता, क्षुधित क्या नहीं देखता, कामी कौनसा कठिन कार्य नहीं करता और लोभी किससे नहीं नमता (अर्थात् क्रोधित शाह के कथन भी उसी प्रकार ज्ञान शून्य थे) ।

रमण[1] रोस सुलितान, हसम हाजुर फुरमान ।
वर वजीर वरजत, ऐब लग्गै सुबिहान ॥
अवध वसीठ रु भट्ट, नीति ह्यंदू तुरकानं ।
स्वामि सकज बोलन, वग्घ अरु सप्पा खान ॥
जल्लान आन साहाब दो, हल हलाल किज्जै गमन ।
अल्लह[2] न आलि लब्भै रवा, खलक खान खग्गह हसन ॥ ४६ ॥

प्रा० पा० १, २, दे० ।

शब्दार्थ.—रमण=रम गया । हसम=सेना । हाजुर=हाजिर, उपस्थित । ऐब=बुराई, कलंक । सुबिहान=सुबहान, मुस्लिम । अवध=अवध्य । ह्यदू=हिन्दू । वग्घ=व्याघ्र, सिंह । सप्पा=सर्प । खान=खाना, डसना । जल्लान आन=जलन मत ला । अल्लह=अल्लाह । आलि=अली । लब्भै=प्राप्त । रवा=रब, ईश्वर ।

अर्थ:—जिसकी आज्ञा के साथ ही सेना उपस्थित हो जाती थी, ऐसे शाह के हृदय में क्रोध रमने लगा । यह देख कर श्रेष्ठ वजीर मंत्री ने उसे निषेध किया कि इस प्रकार क्रोध करने से मुस्लिम धर्म को कलंक लगेगा, क्योंकि हिन्दू और मुसलमान

दोनों की नीति मे दूत और बंदीजन सदा अवध्य कहे गये है। ये अपने स्वामी के कार्य के लिये कुछ भी कह सकते है। इन दोनो का स्वभाव सिंह और सर्प के समान होता है, जो दूसरों को काटना या डसना ही जानते हैं (कटु सत्य कह कर दु ख ही पहुँचा जानते हैं)। इसलिये हे शहाबुद्दीन! आप इस मकवाने (दूत) के कथन को सुन कर मन में रोष उत्पन्न मत करिये। आप तो हलाल के (धर्म के) रास्ते पर ही चलिये। ऐसा करने से अल्लाह, अली और रब की प्राप्ति नहीं हो सकती और ससार मे मुस्लिम खड्ग का परिहास ही होता है।

दोहा

कही वत्त मकवान नै, नहि मनी सुलितान।
आपुन आपुन सथ्थलै, बल मण्डौ चहूवान ॥४७॥

शब्दार्थः—मनी=मानी। वल=बल।

अर्थः—मकवाने वीर ने शाह से बहु तेरा कहा, किन्तु सुलतान ने उसकी बात को नहीं माना। तब उस भोलाभीम के प्रतिनिधि ने कहा कि अब तो अपने २ साथियों को साथ लेकर चौहान से अलग २ ही शक्ति का परीक्षा करनी होगी।

कवित्त

करि सिद्धानो आन, वग जे सुनहित ह्यदू[1]।
ते हिन्दू मुख निंद, निगम अग्गे[2] जिन[3] उयन्दू[4] ॥
टक्क वार सुनि वग, सहस पातक रजपूतनि।
नक्क[5] मोधि नक्कहि[6] परत्त[7], कवन कहै तिन[8] भूतनि[9] ॥
रजपूत मुक्ति खिति[10] खग्ग[11] खिरि[12], विधि विनान यौ व्रम्मयो
कलि जाहि मिटै महि मंडलहि, पै न मिटै तनु[13] ब्रम्मयौ ॥४८॥

प्रा० पा० १ से १२ दे०।

शब्दार्थः—सिद्दानी=सिद्धराज की। आन=दुहाई। वग=बांग, खुदा से पुकार। सुनहित=सुनते है। ह्यदू=हिंदू। जिन=जो। उयदू=जिन, प्रेत। नक्क=नर्क। मोधि=खोनकर, जान बूझकर। भूतनि=प्राणियों को। खिति=क्षिति। खग्ग-खिरि=खड्ग द्वारा कट पडे। विनान=विज्ञान, विधान। ब्रम्मयो=ब्रह्म, ब्रह्म पीड़ा।

अर्थः—मकवाना पुन सिद्धराज की दुहाई देता हुआ कहने लगा-जो हिन्दू अपने कानों से बाँग सुन लेता है वह निन्दनीय और शास्त्रानुसार प्रेत तुल्य कहा जाता है। यदि कोई क्षत्रीय एक वार भी मुसलमानों की बाँग सुनले तो वह सहस्त्रों पापों का भागी बनता है और घोर नरक मे पडता है। उसके उद्धार करने की सामर्थ्य किसी प्राणी में नहीं होती। अत क्षत्रियों की मुक्ति एक मात्र पृथ्वी पर खड्ग द्वारा कट पड़ने मे ही है। उनके लिये यही विधि-विधान है। भू-मण्डल से कलि काल का मिटना सम्भव है, किन्तु मेरे शरीर मे शाह द्वारा स्वामी के अपमान की जो पीड़ा हुई है, उसका मिटना असम्भव है।

गाथा

सज्जय[1] सेन सुराज[2], उप्पम चद जंपीय[3] वरय।
जानिजै परिमान, है हल्लें[4] वद्दल छाह[5] ॥४६॥

प्रा० पा० १ से ५ दे०।

शब्दार्थः—है हल्लें=घोडे चले।

अर्थः—(वह कहता ही गया)-राजा भोरा भीम की सेना जब सजती है, तो कवि उसकी तुलना करते हुए कहते हैं कि उसके घोडे चलते हुए इस प्रकार दिखाई देते हैं मानों पृथ्वी पर वादलों की छाया चल पडी हो।

दामिनि तेग तरिछ्छ, घनय सेन टोपय वगय।
त्रित्तत वाजि त्रिभगी, घुघ्घर घमक दद्दुर रवय ॥५०॥

शब्दार्थः—तरिछ्छ=टेढी, तिरछी। घनय=घटा। वगय=वकपक्ति। त्रित्तत=नाचते हुए। वाजि=घोड़े। घुघ्घर=घुघरु। घमक=आवाज। दद्दुर=मेंढक।

अर्थः—उसकी तिरछी तलवारें ही बिजली, सेना ही घटाएँ, सिरस्त्राण ही वक पक्ति और त्रिभगी गति से नृत्य करते हुए घोड़ों के पैरों के नूपुरों की झकार ही दादुर-रव बन जाता है।

कवित्त

वद्दल दलवल उभरि, सेन घुंमर घट घुमरि,
सवन चयन[1] सचयन[2], मयन मत्त जनुखुंमरि ॥

अरि अरिष्ट मम दिष्ट, घिष्ट धारन धर धुंमर ।
अग्गि झाल विनु धुम, इमैं दिखिवय गज झुमर ॥
चालुक्कराइ सज्जै सयन, हय हिंसारन उच्छरैं ।
सिद्धान बस सिद्धान गति, सिद्ध इष्ट गुन विस्तरैं ॥ ५१ ॥

प्रा० पा० १ से ३ दे० ।

शब्दार्थः—सेन-धुमर=सेना द्वारा उड़ती हुई धूल, (धूम्र वर्ण रज राशि)। घट=घटा। सवन=श्रवण। सचयन=सचार नहीं करपाते, नहीं सुनाई देते। खुमरि=खुमारी, तन्द्रा। अरि=अड़ती, पड़ती। घिष्ट=धृष्ट। धुम्मर=धूम, उत्पात। झुम्मर=झमके, समूह। हिंसारन=हिन-हिनाते हुए। सिद्धान बस=सिद्धराज का वंशज। सिद्धान गति=सिद्धराज की तरह ही।

अर्थः—उस (भीम) की सैन्य शक्ति का उभार बादलों की तरह दिखाई पड़ता है और उसके चलने से उड़ती हुई धूम्र वर्ण रज राशि घुमड़ती हुई घटा सी दीखाई पड़ती है। जिस प्रकार कामान्ध पुरुष तन्द्रा के वशीभूत होकर कुछ भी नहीं सुनता, उसी प्रकार (सेनाके चलने पर) कानों को वचन नहीं सुनाई पड़ते हैं। शत्रुओं पर उसकी अरिष्टकारी दृष्टि पड़ते ही वे दुष्ट शत्रु पृथ्वी पर धूम मचाना छोड़ देते हैं। उसका गज-समूह ऐसा दिखाई पड़ता है मानो अग्नि ज्वाला रहित धूम्र हो। उस चालुक्य नरेश की सेना के सज्जित होने पर घोड़े हिन-हिनाते एव कूदते-फांदते हुए चलते हैं। इस प्रकार सिद्धराजका वंशज सिद्धराज की तरह ही अपने इष्ट-सिद्धि के गुण का विस्तार करता है।

सुनि साहाब वजोर, बोलि बलकी अप्पाना ।
कक्कस करते बर कमान, तानो लगि काना ॥
छल छुट्टत छातीह, हनत मारग सु पाना ।
मार मार उच्चार, तेग कड्ढी मस्ताना ॥
हैजम हुजाब सिर उच्छुटि, बिज्जलि कै अवर अरी ।
कनान भजि खुर्पारि खला, मही अग्गि उच्छुटि परी ॥ ५२ ॥

प्रा० पा० १, २ पा० ।

शब्दार्थः—साहाब=शहाबुद्दीन। बोलि=बल दिया। अप्पाना=अपना। कक्कस=कर्कश, कठोर। छल=छल से, अथवा के मध्य भाग से। सुपान=अपने हाथों से। कनान=कानों को, कानों की टाहियों ना। खुर्पारि=खोपड़ा। खला-खल, दुष्ट।

अर्थः—मकवाने के वचन सुन कर शाह ने वजीर को बतलाते हुए (वजीर ने नीति वाक्य कहे थे, इसलिए यह कहते हुए कि दूत आदि इतनी बकवास नहीं करते) क्रोधित होकर अपनी सम्पूर्ण शक्ति से कान तक कमान को खींच कर प्रत्यंचा पर लगे हुए बाण को सारंगदेव पर मारा। बाण के छाती पर लगते ही उस वीर मकवाने ने मार-२ शब्द का उच्चारण करते हुए तलवार निकाली और पास ही खड़े हुए शाह के अंगरक्षक अश्वारोही (हेजम) हुजाब के सिर पर इस प्रकार प्रहार किया मानो आकाश-स्थित बिजली टूट पड़ी हो। उस प्रहार से दुष्ट हेजम (अश्वारोही) के कानों की टोहियों के साथ-२ उसका मस्तक भी कट कर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

हेजम धुकि धर पर्‌यौ, पर्‌यौ मांझी मकवानां।
रस रसाल लुट्टीय, ग्रैंव लग्गिय सुरतानां॥
गयौ साहि औसाफ, साख भग्गिय दुनियाना।
बुरो बुरो सब कोइ, कहत सजम सुनियाना॥
करतार हथ्थ केती कला, कियौ सु लम्भै अप्पना।
पापंग देह मट्टी मिलै, दीदे देखि सु सप्पना॥ ५३॥

शब्दार्थः—धुकि=लड़खड़ाकर। रस-रसाल=प्रेमोपहार। औसाफ=इन्साफ, न्याय। साख=साखी, विश्वास। सं=उसे। जम=जिमि, जैसे ही। सुनियाना=सुनने वालों ने। पापग=पापपूर्ण। दीदे=मुख, दर्शन।

अर्थः—इस प्रकार हेजम और वीर मकवाना दोनों ही धराशायी हुए। तब भीम द्वारा प्रेमोपहार में भेजी हुई समस्त सामग्री लूट लीगई। मकवाने को मार देने से शाह की अत्यन्त निन्दा हुई। इस प्रकार शाह की न्याय परायणता नष्ट हुई और दुनिया से उसकी प्रतिष्ठा उठ गई। जिसने यह बात सुनी, उसने शाह को बुरा ही कहा। ईश्वर के हाथों मे कितनी ही कला है—जो जैसा करता है वह वैसा ही पाता है। यह पाप पूर्ण देह एक दिन मिट्टी मे मिल जाती है, फिर उसका दर्शन स्वप्न तुल्य हो जाता है।

सुन्यौ भीम वध्यौ[1] वसीठ, खिझ्झि[2] खुल्लिय[3] खज्जीना।
करि सिद्धानी आन, मेटि मिच्छाइन दीना॥

वंग सद्द कंना न, जीह जंना जन वढ्ढौ।
असी सहस सेना सजत, गोरी जर कढ्ढौ॥
ढल्लांनि माल[4] ढींचाल जनु, असम समुद्र सेना फिरी[5]।
मह[6] मोह छंडि रत्ते विखम, दइ दिवान गुन दुस्तरी॥५४॥

प्रा० पा० १, २, ३ ५, ६ दे०। ४ पा० घ० दे०।

शब्दार्थ:—वध्यो=मार दिया। वसीठ=दूत। खज्जीना=खजाना। मिच्छाइन=म्लेच्छ धर्म को। कना न=कानों पर नहीं। जीह=जिह्वा। जंनाजन=जैनर। जर=जड़, मूल। ढल्लांनि माल=ढलैतों की पंक्ति। ढींचाल=भयंकर। असम=विषम। मह मोह=महान् मोह। दिवान=पागलपन, उन्मत्तता। दुस्तरी=दुस्तर।

अर्थ:—दूत के मारे जाने की बात सुन भीम ने क्रोधित होकर युद्ध व्ययार्थ खजाने खोल दिये और सिद्धराज की दुहाई देते हुए प्रतिज्ञा की कि मैं म्लेच्छ धर्म को मिटा दूँगा, बाग शब्द को कानों पर नहीं आने दूँगा, प्रत्येक व्यक्ति की जिह्वा पर जिन २ (जैन) शब्द की वृद्धि कर दूंगा और अस्सी हजार सेना के सजने पर गौरी शाह को जड़ से उखाड़ दूंगा। उसके इस प्रकार प्रतिज्ञा करने पर समुद्र के समान विषमता लिये हुए भयंकर ढलैतों (ढ़ाल धारियों) की पंक्ति उमड़चली। उस समय वीरों ने अपने महान् मोह को छोड़ दिया और उन्होंने विषमता मे लीन होकर उन्मत्तता के दुस्तर गुणों को प्राप्त किया।

दोहा

ढल्लान हल्लौ हल, चौरान चव दंत।
भोरान शुब्र उप्परै, मैं छुट्टा मैमंत॥५५॥

शब्दार्थ:—ढल्लान=ढलैतों की। हल्लो हल=हलचल। चोरान=चमर। चव=चारों ओर। दंत=दंतियों पर, हाथियों पर। भोरान=भोला भीम के (वीर)। मैं=हाथी। मैमत=मतवाले।

अर्थ:—(सेना के चल पड़ने पर) ढलैतो की हलचल मच गई। चारों ओर हाथियों पर चमर चलते हुए दिखाई पड़े। उस समय भोरा भीम के वीर इस प्रकार दिखाई पड़े मानों पृथ्वी पर मतवाले हाथियों को शृंखलाओं से छोड़ दिया गया हो।

घोरान घन दंत, भोरान मथान।
सारन्नी पक्खर चरी, हेमानी गजान॥५६॥

शब्दार्थ:—घोरानं=घोड़ों से । छतं=छिति, पृथ्वी । मोरानं=मोर, मोहर, हरावली सेना । सारन्नी पाखर=लोह पाखरें । जरी=जटित । हेमानी=स्वर्ण से । गत्तान=तरह ।

अर्थ:—अश्वों और छत्रों से पृथ्वी आच्छन्न हो गई। सेनाग्रभाग (हरावल) शत्रु मंथन के लिए तत्पर हो गया । लोह पाखरें स्वर्ण से जटित भासित होने लगीं ।

कवित्त

नीलानी नीजूह, धाम लग्गी चालुक्कां ।
हंकारी हाकंत, सत्थ सत्तरिवै झुंकां ॥
गोम गाज उच्छरिय, धोमधर कंप हलक्किय ।
नागभाग सत दीह, नीय तन कंप सलक्किय ॥
प्राजाल माल हींचाल हलि, कलि कलाप कलि उल्लटिय ।
पहुराइ पित्थ छित्तंग छिति, नित नियग सुर उच्छटिय ॥ ५७ ॥

शब्दार्थ:—नीलानी=कालिमा, अपयश । नीजूह=क्रूर समूह । हंकारी=बुलाई । झुंकां=झोंक दी । गोम=आकाश । गाज=गर्जना । उच्छरिय=उठी, चल पड़ी । सत दीह=सात दिनों तक । सलक्किय= कलवलाने लग गया । प्राजाल माल=प्रज्वलित ज्वाल-माला । हींचाल=अश्व समूह । नियग=निखंग, माता (जिसमें तीर रखे जाते हैं) । सुर=सर, शर । उच्छटिय=मारा ।

अर्थ:—उन चालुक्यों पर शाह को बुलाने की नील कालिमां (अपयश) तो लगी ही, किन्तु उन्होंने अपनी ७० हजार सेना को भी युद्ध में झोंक दिया । सेना की गर्जना आकाश में फैल गयी । धूमित (कुचली हुई) पृथ्वी कॉपकर चलायमान हो गई । शेष नाग का कपाल शरीर के निकट सिमट कर सात दिन तक किलविलाने (छटपटाने) लग गया । घोडे प्रज्ज्वलित ज्वाल माला के समान तीव्र वेग से बढ चले, जिससे इस कलियुग में इतना शोर हुआ मानों स्वयं कलियुग उलट चला हो । किन्तु पृथ्वी का छत्र स्वरूप राजा पृथ्वीराज, ऐसे शत्रुओं पर हमेशां अपने निखंग से बाण निकाल कर मारता ही रहा ।

दोहा

वोलां वद्धनियांह धन, पामारां चहुवान ।
वीरंदाइ वसीठियॉ, सो हिन्दू सुरतान ॥ ५८ ॥

शब्दार्थः—बद्धनियाह=बढ़ने वाले। धन=धन्य है। वीरदाइ=वीर। वसीठियाँ=दूतों द्वारा निमंत्रित कर लिया।

अर्थः—बोल (युद्ध के लिए ललकार) पर बढने वाले प्रमार और चौहान वीरों को एव इस हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज को धन्य है, जो मुस्लिम वीरों को दूतों द्वारा युद्धार्थ निमन्त्रित करते रहते हैं।

जित्ती धर चहुआन की, जित्ती ताइ तुखार।
परठी पट्टनवै परत, मग्गा दान सवार ॥ ५६ ॥

शब्दार्थः—जित्ती=जितनी। जित्ती=विजय की। ताइ=ताते, तेज। तुखार=घोडे। परठी=जान। परत=पड़ती। मग्गां=रास्ते। दान-सवार=दान से सँवारे हुए, दान द्वारा साफ किये हुए।

अर्थः—चौहान सम्राट ने जितनी भूमि विजय की है, वह सब अपने तेज घोडों के बल पर ही की है, किन्तु पट्टन पति की अधिकृत भूमि का रास्ता केवल दान द्वारा ही साफ किया हुआ है, (अर्थात् चालुक्यों ने जितनी भूमि अधिकार मे की है, वह धन राशि खर्च करके ही की है-युद्ध करके नहीं)।

कवित्त

गज्जनेस गोरी नरयंद[1] सेन दुस्तर[2] अस[3] सज्जिय।
खा ततार खुरसान, मीर माहीव[4] विरज्जिय ॥
हय गय नर असुराण[5], सुनी चावद्दिसि वत्त।
पट्टनवै पट्टन पलानि[6] वीर गोरी जुध मत ॥
मयमत राज प्रथिराज पर, अच्चूवै ऊपर करै।
सुरतान सेन[7] सज्यौ सुनै, धर गिर जल रज उच्छरे ॥६०॥

प्रा० पा० १ से ६ दे०। ७ दे०, घ०, का०।

शब्दार्थः—अस=इस प्रकार। असुरान=असुर, यवन। पट्टन-पलानि=पट्टनी सेना सजाई। पर=पक्ष।

अर्थः—उधर गजनी पति गौरीशाह ने ऐसी दुस्तर सेना सजाई, जिसमें तत्तार-खा, खुरासान खा, मीर माहिव आदि वीर सुशोभित होते थे, हाथी, घोडे और यवन

वीरों के सज्जित होने की बात चारों ओर फैल गई। पट्टन वालों ने भी पट्टनी सेना सजाई तथा गौरीशाह भी युद्धोन्मत्त हुआ। आबू राज वंशी सलखजैत्र भी मतवाले पृथ्वीराज की सहायतार्थ तैयार हुआ। शाही दल की तैयारी को सुनकर पृथ्वी, पहाड़, जल और रजराशि सभी एकमेक हो गये।

दोहा

ढिल्लीवै सेना सजय, रंजंन रन रावत्त।
मधुर महुव्वति खान वर, दिय कग्गद गुन मत्त ॥६१॥

शब्दार्थः—ढिल्लीवै=दिल्लीश्वर। रंजन=प्रसन्न करने वाली। रावत्त=राजवंशी। मधुर=मृदुभाषी। गुन मत्त=गुण प्रद मंत्रणा देने वाला, हित प्रद मत्रणा देने वाला।

अर्थः—इधर हितप्रद मंत्रणा देने वाले मृदुभाषी मुहव्वतखा ने पृथ्वीराज को गुप्त पत्र द्वारा सूचित किया, जिससे दिल्लीश्वर (पृथ्वीराज) ने भी युद्ध स्थल में राज-वंशियों के मन को मोहित कर देने वाली अपनी सेना को सजाया।

कवित्त

चाहुआन सामत, मंत कैमास उपाइय।
वंदि लग्ग हुंकार, बध वंधान उचाइय॥
दस गुन्नां बल देखि, साजि साधन सु सुगंधह।
दुहु मुक्खाहीं लग्गि, बीच चम्पौ सुमृदंगह॥
गोरीय एक गुज्जर धनी, मुख विचित्र धनि संभरी।
हज्जार दून द्वादस भरह, दोमि लग्गि दुह दिसि बुरी ॥६२॥

शब्दार्थ—वदि=वंदना करके। बंध बधान=एक दूसरे भाई को, एक दूसरे को। उचाइय=उठाया, खड़ा किया। सुगंधह=सौरभ, प्रशसा। मुख=सामने। हज्जार दून=एक हजार से दूने, दो हजार। द्वादस भरह= बारह हजार से भिडे। दोमि=दावाग्नि।

अर्थ—मुख्य मन्त्री कयमास द्वारा निश्चित की हुई मत्रणा को पृथ्वीराज के सामतों ने मानकर, इष्ट वंदना करके, हुंकार करते हुए एक दूसरे को युद्धार्थ खड़ा किया। उनकी शक्ति उस समय दस गुनी दीख पड़ी। उनके युद्ध साधन की तैयारी की सौरभ (प्रशसा) चारों ओर फैल गई। दोनों ओर शत्रु सेनाओं के छा जाने

से उनकी स्थिति दोनों ओर से दबाकर बजायी जाने वाली मृदंग के समान हो गई। एक ओर गोरीशाह और दूसरी ओर गुर्जरेश्वर जैसे प्रबल शत्रु चढ आये थे, किन्तु सम्भरी नरेश (पृथ्वीराज) को धन्य है, जिसने विचित्र ढग से दोनों का सामना किया। उसके दो सहस्र योद्धा ,बारह सहस्र विपक्षी-योद्धाओं से इस प्रकार भिड़ गये, मानों दोनों विपक्षी-दलों के बीच में भयंकर दावाग्नि प्रज्ज्वलित हो गई हो।

सारुँडे साहाबदीन, सुलितान विलग्गौ।
सोझत्ती भर भीम, राउ लक्खन असि दग्गौ ॥
नागौरैं सामत, ईस-चहुवान पिथाई।
असपति गुज्जर पती, जानि मिरदग बजाई ॥
दुहुँ बीच हजारी अट्ठ चव, ग्रेहां मत परठ्यौ।
चामडराय कैमास सम, खींची खग्ग बरठ्यौ ॥६४॥

शब्दार्थ:—साहाबदीन=शहाबुद्दीन। विलग्गौ=लगा, अड़ा। सोझत्ती=सोजत्री। लक्खन=लाखों। असिदग्गौ=तलवार से दागने लगा। ईस=स्वामी। पिथाई=पृथ्वीराज। दुहुँ=दो हजार। हजारी अट्ठ चव=बारह सहस्र। बरठ्यौ=बल प्रदर्शित किया।

अर्थ:—सारुँडे नामक स्थान पर आकर शहाबुद्दीन सुलतान अड गया और सोजत्री की ओर भाला भीम लाखों सामतों सहित तलवार की ज्वाला से शत्रुओं को दग्ध करने लगा। स्वामी पृथ्वीराज चौहान के सामन्त नागोर की ओर बढे। एक ही पृथ्वीराज के दोनों ओर चालुक्य और गोरीशाह इस प्रकार से प्रतीत हुए , मानों एक ही मृदग दोनों ओर से ताल लगाकर बजाई जा रही हो। दोनों शत्रुओं के बारह सहस्र योद्धाओं के बीच मे पृथ्वीराज के दो सहस्र वीरों ने गूढ मत्रणा करके कैमास और चामडराय को नेता बनाया। तब उक्त दोनों वीरों ने सेना का नेतृत्व ग्रहण करते हुए तलवार खींचकर बल प्रदर्शित किया।

मतौ मडि नागौर राइ कयमास विचार।
दल समूह सुलितान[१], मिल्यौ नाहर परिहार ॥
सोझत्ती चालुक्की राइ, भोरा वढि लग्गौ।
तुट्ट् अगाज सचि जट्ट जियन कज्जै नन[२] भग्गौ ॥

चामंड जैत उच्चारयौ, बावारो लंबी सु भुव ।
सुलतान सेन किंत्तिक कहौं, हम ठिल्लें खुरसान ध्रुव ॥६५॥
ग्रा० पा० १, २ दे० ।

शब्दार्थ:—सोभती=सोजत्री । तुछ अवाज=तनिक सी बात पर । जूह=यूथ । जियन=जीवन के लिये । बावारो=बड़े बाप का पुत्र । लंबी सु भुव=लम्बी भुजा वाला । ध्रुव=ध्रुव, अटल ।

अर्थ:—मत्रणा का मंडन करते हुए कैमास ने नागौर का भार लेना निश्चय किया और नाहरराय परिहार भी सुलतान की सेना को समूह रूप में (विशेष संख्या में) सुनकर पृथ्वीराज से मिल गया । सोजत्री की ओर से चालुक्य नरेश भोराभीम बढ़ा । उसने तनिक सी बात पर ही अपनी सेना के यूथ को सजाया । अत: सामन्तों ने निश्चय किया कि जीवन के मोह में पड़ कर पीछे पैर नहीं देना चाहिये । इस पर पृथ्वीराज के बड़े बाप का लम्बी भुजाओं वाला पुत्र (गोविन्दराय), चामंडराय और और जैत्रसी को सम्बोधित करते हुए बोला कि शाही सेना हमारे सामने क्या वस्तु है ? (अर्थात् नगण्य है) अत: हम निश्चय रूप से अटल खुरासानी दल को पीछे ढकेल देंगे ।

कहौ तो बंधौ साहि, धाइ चालुक्क विडारौं ।
स्वामि काज सामंत, मरण तन तिनुक विचारौं ॥
आपु अगवै सुजीव, पुत्त वधव खिमि भान ।
चक्रवती त्रिन वत्त, वीत रागी करि जान ।
अतरौ एह[1] कैमास सुणि[2], मरण[3] तुच्छ मारण[4] बहुत ।
उन आस मोह नन आस हम, त्रिगुन[5] एगुन[6] तजि[7] रहत[8] ॥६५॥
ग्रा० पा० १ से ८ दे० ।

शब्दार्थ:—कहो तो=यदि तुम कहो तो । बधौं=बांधों, बंधन में लूं । साहि=शाह को । चाह=इच्छा करके । विडारौं=नष्ट कर दो । तिनुक=तिनके के समान । आपु अंगवै=स्वयं स्वामी अपनाता है । वत्त=समान । वीतरागी=राग रहित । अतरौ=अन्तर । उन आस मोह=शत्रु पक्ष वाले मोह की आशा में रहते हैं । नन=नहीं ।

अर्थ:—वह वीर पुन: कैमास को सम्बोधित कर कहने लगा कि हे मन्त्रीवर ! यदि तुम कहो तो मैं शाह को बांध लूं, या आगे बढ़कर चालुक्य (या चालुक्य सेना)

का नाश कर दूँ। हम सामन्तगण अपने स्वामी के लिए शारीरिक मृत्यु को तृण तुल्य समझते हैं। यदि स्वामी हमें प्राणों से अपनालें तो हम उसके लिए अपने पुत्र और वधु बांधवों को क्रोधित होकर (युद्ध में) कटवाने को तैयार हो जाते हैं चक्रवर्तीपन को तृणवत मानने के कारण ही हम राग रहित कहे जाते हैं। हममे और शत्रु पक्ष वालों में केवल इतना ही अन्तर है कि हम थोडों को मरना है किन्तु वहुतों को मारना है और उन्हें (शत्रु पक्ष को) मोह की आशा है किन्तु हमे मोह की आशा नहीं क्योंकि जिस प्रकार निर्गुणी ममत्व का त्याग करके रहता है उसी प्रकार हम भी ममत्व रहित होकर रहते हैं।

पहिलै भजौ भीम, वोलि वग्गरी विसाले।
महनसीह परिहार, देहदुज्जर मुच्छाले॥
रा जद्दुन जज्जीह, जीह जद्दो–जामानी।
ओछाही सारग, देव पच्छे परवानी॥
चालुक्क चपि धूनी धरा, सा सुरतानह संभरी।
वेदल वधाइ वद्धाइया, वोल उचाए[1] डंमरी[2] ॥ ६६ ॥

ग्रा०पा०१, २, दे०घ०पा०।

शब्दार्थ:– देह दुज्जर=नष्ट नहीं होने वाली काया वाला। मुच्छाले=मूछवाला। जज्जीह=जम्र, काल। जीह=जो। ओछाही=उत्साही। पच्छे=पक्ष में। परवानी=निश्चय। वद्धाइ=बढा। वधाइया=बुलाया। उचाये=उठाये, कहे। डमरी=आडम्बर युक्त।

अर्थ:—विशालकाय देवराज वग्गरी, कठिनाई से नष्ट होने वाली काया वाला मूँछाला महनसी परिहार, यमतुल्य यादव नरेश जामराय और उत्साही वीर सारगदेव ने प्रामाणिक शब्दों मे कहा कि पहले हम भीम का नाश करेंगे, क्योंकि उस चालुक्य ने पृथ्वी को दबाकर कंपित कर दिया है, एव अपनी सेना को वढाते हुए शाह को भी सूचित किया है और इसीलिए वह भी बढा है। साथ ही उसने हमे आडम्बर युक्त (अभिमान पूर्वक) वचन भी कहे हैं।

रा प्रथिराज प्रसग, राउ वोले वड गुज्जर।
तिन तोली तरवारि, [1]साहि उप्पर दल दुज्जर॥
कयमासह गढ सौंपि, कयौं कोटा रा रक्खन।
तु मत्री सस्त्रधार, भार भारी भर भक्खन॥

आलोप अवारी संभरिय, मत्त[2] विहत्तति[3] वत्त हुअ।
आरीर हजारी पच सैं, चाहुवान खल घत्तुअ ॥ ६७ ॥
ग्रा० पा० १ से ३ दे०।

शब्दार्थ:—तोली=उठाई। दुज्जर=दुरुह। सौंपि=सौंपा। कोटारां=अन्य गढ़ों की। रक्खन=रक्षा का भार। मारी=बड़ेर। मर=भट, योद्धा। मक्खन=नष्ट करने वाला। आलोप=लुप्त करने वाली। अवारी=कुसमय में। संभरिय=संध्या। विहत्तति=दोनों। वत्त=बात। आरीर=अड़पड़ने वाले। सैं=सब। चाहुवान-खल=चाहुवान के शत्रु। घत्त=नाश करना।

अर्थ:—प्रसगराय खींची और रामराय बड़ गुज्जर ने राजा (पृथ्वीराज) से कहते हुए शाह के दुरुह दल पर तलवार उठाई। तब पृथ्वीराज ने कैमास को नागौर सौंपा और कहा-हे मत्री! तू हमारे दुर्गों का रक्षक है और तूही शस्त्रधार द्वारा युद्धभार ग्रहणकर वडे २ शत्रुओं को नष्ट करने वाला है। इस कुसमय में लुप्त करने वाली (शत्रुओं की सेना रूपी) संध्या छागई है और यह दो मस्त हाथियों से भिड़ने जैसी बात है। वे सभी पांच हजार चालुक्य भिड़ पडने वाले हैं। अत तू उन दुष्ट शत्रुओं से भिड़कर उनका नाश करदे।

लोहानौ भयौ अग्गु, तोन सै पच हकेरिय।
पच हजारह सेन[1], एकदस अट्ठह भेरिय ॥
उच्छंगी सनाह, टारि ते सुभट सनेरिय
मिले जाय जहा अग्ग, फौज चहुआन सुफेरिय ॥
उत्तंग ढाल वैरख वनिय, पज्जूनह सो टारियह।
अस पत्ति सेन नख खग्ग कहि, सावन सार सुवत्त[2] इह[3] ॥ ६६ ॥
ग्रा० पा० १, का। २, ३, घ० पा०।

शब्दार्थ:—तोन=त्रोण, माथे। तोन से पच=पांचसो तरकस धारी। हकेरिय=चढाये गये। सेन=सेना। एक दस अट्ठह=उन्नीस। उच्छगी=अच्छी, सुन्दर। सनेरिय=पास में आये हुए। फेरिय=फेरदी, विचरण कराया। वैरख=पताका। असपति=असुरपति, शाह। सेन=बाज। सावन-सार=लोह कुत। सुवत्त=श्रवत, बरसाना।

अर्थ:—उस समय वीर लोहाना आजानबाहु आगे बढ़ा। उसके साथ ही तरकस धारी ५०० वीर भी बढ़े। उसके साथ मे ५००० संख्या वाली सेना थी, जिसमें उन्नीस भेरियॉ थीं। श्रेष्ठ कवचों से जिनका शरीर मंडित था, ऐसे पास में रहने वाले वीरों

को चुना गया । वे, सब जहाँ चहुआनी सेना थी, उसमें सम्मिलित होगये। उसी समय वीर पज्जून उठी हुई ढालें और फहराती हुई पताकाओं वाले वीरों को अपने साथ मे लेकर आगे बढा और उसने तीक्ष्ण नखों वाले बाज पक्षी तुल्य शाह पर लोहकुत बरसाना (चलाना) प्रारम्भ किया ।

मतौ मडि सामत, सेन वटे चहुआन।
रा चावंड[1] जैतसो[2], मुक्कि कयमासह थान ।।
अड्डे ए सबोधि, चपि चालुक्क मुख लग्गा ।
जितै मिले सभरी, जोग सद्धै अप भग्गा ।।
वटई फौज प्रथिराज त्रिप, अर्क वीर[3] राका हरी ।
अपु[4] लज्ज लई धर सभरी, संभरवै कवह धरी ।। ६६ ।।

ग्रा० पा० १, २ घ० पा० । ३, ४ दे० ।

शब्दार्थः—मतौ मडि=मत्रणा करके । वटे=विभाजन किया । अड्डै=अर्गला स्वरूप । ए=इस प्रकार । जितै=जितने भी । मिले=सामना किया । जोग=जैसा लिखा वैसा योग । सद्धै=साधा, भोगा । अपभग्गा=अपने भाग्य में । राका=निशि, अधकार । हरी=नाश किया । समरवै=सांभर पति, चाहुवान नरेश (पृथ्वीराज) ।

अर्थः—इधर सामतो से मत्रणा करके पृथ्वीराज ने अपनी सेना का विभाजन किया और जिस स्थान (नागोर) पर कैमास नियुक्त किया गया था, वहीं चामडराय और जैतसी को भी नियुक्त किया । उन्हें यह सम्बोधित करते हुए कहा कि तुम दोनों हमारी अर्गला स्वरूप हो, अत गुर्जरी सेना से सामना करके उसे दबा देना । जिसने भी आकर चौहान पृथ्वीराज से सामना किया उसने अपने भाग्य में जैसा लिखा था वैसा ही भोगा । इस प्रकार सेना का विभाजन कर, उस सूर्य स्वरूपी वीर पृथ्वीराज ने शत्रु रूपी छाये हुए अधेरे का नाश किया और उस सभरी नरेश पृथ्वीराज ने चाहुआन वश की लज्जा और भू भाग का भार अपने कधों पर धारण किया ।

दोहा

खीची खग्ग परट्टि वर, वर भोमंग चालुक्क ।
तिहुँ दिस तिहुँ वर वाटया, ज्यौं पिन्ड्डमि आरक्क ।।७०।।

शब्दार्थः—खीची=ऐंचली, म्यान से निकाली। परद्धि=प्रवेश करके। तिहुं दिसि=चामुण्डराय, जैतसी और कैमास की ओर। तिहूँवर=उस समय। धाइया=बढ़े, धावा किया। पिच्छमि=पश्चिमी, सायंकाल समय का। आरक्क=अर्क, सूर्य।

अर्थः—चामुंडराय, जैत्रसिंह और कयमास ने विपक्षी दल में प्रवेश करके तलवारों को म्यान से निकाली। यह देखकर श्रेष्ठ वीर भीम और उसके साथी चालुक्यों ने उन तीनों (चामुण्डराय, जैतसी और कयमास) की ओर, पश्चिम दिशा में डूबते हुए निस्तेज सूर्य की तरह होते हुए भी, धावा किया।

रोकि मुक्ख सुरतान को, चाहुवान दै वांन।
वर वसीठ भोरा सुभर, चलि नागोरणि थान ॥७१॥

ग्रा० पा० १ दे०।

शब्दार्थः—मुक्ख=मुहाना। दै-वांन=वचन देकर, आज्ञा देकर।

अर्थः—चौहान ने आज्ञा देकर सुलतान के मुहाने को रोक लिया है यह जानकर भोराभीम ने अपने दूत और कुछ वीरों को कैमास के पास जाने के लिए नागौर को रवाना किया।

कवित्त

मिलिधर भीमॅग राव, चाव पत्तौ पति गुज्जर।
विखम वैर उद्धार, मार वीरत्त सु दुज्जर।
चाहुआन सुरतान, काम कंदल क्रत लग्गं।
देवॅग बद्दल सीम, मार जरजी जसु जग्गं॥
कलमलिय उअर परताप तन, छुध पियास निद्रा गमिय।
अनुराग तरुनि खल खेध जिय दुअ दुराह चालुक दमिय॥

शब्दार्थः—चवि=चाह, उत्साह। दुज्जर=असह्य। देवॅग=देव तुल्य अंग वाला (पृथ्वीराज)। बद्दल सीम=बादल तुल्य अपार सीमा वाली शाही सेना। मार=कामदेव। जरजी=जारी, व्यभिचार। जसु=यश। उअर=उर। दुअ=दोनों के लिये। दुराह=बुरा रास्ता। दमिय=दमन किया।

अर्थः—चाहुआनी भूभाग में आकर गुर्जरेश्वर भीम उत्साह युक्त होगया, किन्तु उसका पृथ्वीराज के विषम वैर से मुक्त होना कठिन था, क्योंकि उस (पृथ्वीराज)

का लोहा और वीरत्व दोनो ही असह्य थे। इसीलिये भीम ने उस वैर से मुक्त होने के लिए एक ओर तो शाह को चाहुवान नरेश पृथ्वीराज से भिडा दिया और दूसरी ओर कयमास को काम कदला (एक सुन्दरी) के सुरति प्रसग मे लगा दिया। देव-तुल्य पृथ्वीराज तो सीमा प्रदेश पर शाह के विरुद्ध चढा हुआ ही था, इधर भीम ने कैमास को काम और व्यभिचार मे फँसाकर यश प्राप्त किया; क्योंकि पृथ्वीराज के प्रताप ने उस (भीम) के हृदय और शरीर को कलमला दिया था (जलन पैदा करदी थी) जिससे उसकी क्षुधा, प्यास और निद्रा नष्ट हो गई थी। इसीलिये उसने एक (कैमास) को तरुणी के अनुराग में फँसाकर और दूसरे (पृथ्वीराज) को दुष्ट (गौरी) द्वारा पीडा पहुँचाकर, शिकार बनाया। इस तरह चालुक्य भीम ने दोनों वीरों (पृथ्वीराज और कयमास) का दो बुरे रास्तों द्वारा दमन करना चाहा।

सोभत्ती है गै उभार, दल अरि सपत्तो।
सुभर सार भीमग, गज्जि गज्जनअसिरत्तौ[1]॥
आयस रहसि विचार, मुख्ख मत्री आभासिय।
तिहि निसाह परधान, अथ लच्छी उपासिय॥
पामार राग रन उद्धरन, गुर गुरीठ[2] पैरग गुर।
रानिग झाल ग्वग झालि[3] बल[4], वीर देव वग्घेल धुर॥ ७३॥

ग्रा० पा० १ से ४ घ० पा०।

शब्दार्थ:—सोभत्ती=सोजत्री। उभार=उभरता, उठाता, बढाता। आयस=आज्ञा, आदेश। रहसि=रहस्य। आभासिय=आभास कराया, कहा। गुर=गुरु। गरीठ=गरिष्ठ, कठिन। पैरग=पैरने वाला, पार करने वाला। गुर=भारी, अधिक।

अर्थ:—सौजत्री की ओर से हाथी घोडों को बढाता हुआ शत्रु दल आगे बढा। इस प्रकार (पृथ्वीराज पर) एक ओर से भोराभीम के सशस्त्र योद्धाओं और दूसरी ओर से खड्ग-रस मे लीन गजनेश्वर ने गर्जना की। राजाज्ञा के रहस्य पर विचार करने को भोराभीम ने अपने मुख्य मत्री को सूचित किया, तब उस रात्रि को, अथवा जैसे लक्ष्मी की उपासना करता है (उद्योग रहित होकर लक्ष्मी चाहता है) उसी प्रकार मनमानी विजय की कल्पना करने वाले उसके मत्रीगण एकत्रित हुए। युद्ध द्वारा मुक्ति देने वाला गुरु तुल्य प्रमार रामराय, बलपूर्वक खड्ग ग्रहण करने वाला रानिग मकवाना, धुरा स्वरूपी वीर देव वाघेला

सोढा सारँग देव, गग डाभी सु गुज्ज-गुर ।
वर चाचिग्ग सुदेव[1], धीर[2] वाघेल ध्र मधुर ॥
अमर सीह सेवरा, बीर विद्या बल जास ।
मित्र अट्ठ मिलि काज, चित चिंतिय विसवास[3] ॥
उच्चरै गरुव भीमग तब, करौ मत्र उच्चार चित ।
पमार सरन चहुआन गय, लहो सगप्पन हीर हित ॥ ७४ ॥

प्रा० पा० १, २ घ० पा० का० । ३ पा० ।

शब्दार्थ:—गुज्ज-गुर=भारी गर्जना करने वाला, ऊर्ध्व घोषणा करने वाला । सगप्पन=सम्बन्ध, सम्बन्धी । हीर=सीर, पक्ष ।

अर्थ:—सोढ़ा सारग देव, ऊर्ध्व घोषणा करने वाला गगडाभी, श्रेष्ठ वीर चाचिग देव, धर्म की धुरा स्वरूप वाघेलाधीर और वावन ही वीरों को वश करने की विद्या जानने वाला अमरसिंह सेवरा इन आठों मंत्रियों ने मिलकर विश्वास पूर्वक चित्त से चिंतन किया । तब भोरा भीम उनसे गर्व पूर्वक कहने कहने लगा कि तुम सब चित्त में सोचकर अपनी २ मंत्रणा कह सुनाओ; क्योंकि प्रमार (सलख-जैत्र आदि) चाहुवान (पृथ्वीराज) की शरण में गये हैं और उसने (पृथ्वीराज ने) भी अपने सम्बन्धी का पक्ष लिया है ।

दोहा

इह कहि वहि[1] वज्जन विलसि, वज्जि निसान निहाइ[2] ।
करि पाखंड जु[3] अमर बर, बंधन दाहिम राइ[4] ॥ ७५ ॥

प्रा० पा० १, २, ४, घ० दे० पा० । ३ दे० ।

शब्दार्थ:—वहि=वहन किये, बढ़ाये । वज्जन=वाजि, घोड़े । निहाइ=भयकर स्वर से, ज़ोरों से । पाखड=प्रपच । बधन=बधन में लेने को, वश में करने को ।

अर्थ:—यह कह कर उसने उत्साह पूर्वक घोड़ों को बढाया । उसी समय ज़ोरों से नक्कारे बजने लगे, और तभी अमरसिंह सेवरा ने दाहिमा कयमास को वश मे करने का प्रपच शुरु किया ।

कवित्त

वर पट्टन वै रान, तेन झाला अधिकारिय।
मतो मडि चालुक्क, अमर सेवर सुधि भारिय॥
भैरों भट्ट प्रमान[1], बुद्धि कायथ[2] अधिकारिय।
सो मत्तें सो मत्त, बुद्धि सेनह विच्चारिय॥
दल मलहि सैन चहुआन कौ, अरु भजै सुरतान दल।
मन्त्री सुराज कैमास वर, साम दाम कीजै सु छल॥ ७६॥

१ प्रा० पा० १, २ घ०।

शब्दार्थः—तेन=उसका। मतो-मडि=मंत्रणा की। सुधि=सावधानी। प्रमाण=प्रमाणिक, प्रसिद्ध। बुद्धि=बुद्धराय। सों-मत्तें=उस मत्र से। सो मत्त=सब सहमत हुए। सेनह=सेन, सज्जन, हित चाहने वाले।

अर्थः—पट्टन पति भीम अधिकारी रानिंग झाला, अन्य चालुक्य वीर, विशेष सावधान अमरसिंह सेवरा, प्रसिद्ध भैरव भट्ट और अधिकारी बुद्धराय कायस्थ सभी ने मिलकर मंत्रणा की और निश्चय किया कि चाहुवानी सेना को कुचल कर शाही दल को नष्ट कर दिया जाय, किन्तु पहले पृथ्वीराज के श्रेष्ठ मन्त्री कयमास को सामदाम और छल द्वारा किसी तरह वश में करना आवश्यक है। इस विचारपूर्ण मन्त्रणा से भीम का हित चाहने वाले सभी साथी सहमत हो गये।

गाथा

चढ़िय चालुक सेन, चहुआन साधन भीर।
दिसि कैमास प्रमान, अमरसिंह मुक्किय मन्त्र॥ ७७॥

शब्दार्थः—चढ़िय=चढाई की, सजाई की। भीर=समूह। मुक्किय=चलाया, प्रचार किया, साधन किया। मन्त्र=मन्त्री को।

अर्थः—इस मंत्रणा के निश्चित हो जाने पर चालुक्य ने इधर तो चौहान पृथ्वीराज के सैन्य समूह पर युद्ध साधन करने के लिए सेना सजाई और उधर अपने मन्त्री अमरसिंह सेवरा को कमास की ओर भेजा।

कवित्त

जिह अमरसिंह सेवरा आनि [illegible] [illegible]।

जिह अमरसीह[3] सेवरा, द्रव्य आन्यौ अनि अब्बत ॥
जिह[4] अमरसीह[5] सेवरा, चद मावसि उग्गाइय ।
जिह[6] अमरसीह[7] सेवरा, पदमनी मात रिझाइय ॥
खट उभै कोस उद्धोत हुअ, विप्रसीस मुंडिय सकल ।
चित मत ध्रम आध्रंमवर, सुब्रर मंत्र किज्जै सकल ॥ ७८ ॥
ग्रा० पा० ४ से ७ दे० ।

शब्दार्थः—अनि=अन्यका, अन्यत्र से । अब्बत=सब । मावसि=अमावस्या को । उद्धोत=ऊर्ध्व, उन्नत ।

अर्थः—जिस अमरसिंह सेवरा ने देवताओं को पर्वतों पर स्थापित किया, सब ओर से दंडरूप द्रव्य ले २ कर समग्रह किया, अमावस्या को चन्द्रोदय कर दिया (असंभव को संभव कर दिया), पद्मावती (देवी) को प्रसन्न किया, बारह २ कोस के घेरे में जो उन्नत माना गया और जैन धर्म का प्रचार करके जिसने सब ब्राह्मणों का मुण्डन कराया, उसने अपने चित्त में धर्म अधर्म के मंतव्य को नहीं सोच कर केवल अपनी मत्रणा के प्रचार करने को ही श्रेयस्कर माना ।

गाथा

न-को-न-को नरपती, पत्ती चालुक्क राइयो सरिसा[1] ।
किं चहुवान, सु-मती, कैमासं जानयं बीर ॥ ७६ ॥
ग्रा. पा. १, घ. ।

शब्दार्थः—न-को-न-को=अन्य कोई नहीं । सरिसा=समान । किं=क्या । सु-मती=श्रेष्ठ मन्त्री ।

अर्थः—अमरसिंह सेवरा ने कयमास मन्त्री को लिखा— हे श्रेष्ठ मन्त्री कैमास ! चालुक्येश्वर भीम के समान अन्य कोई राजा नहीं हो सकता, तब तुमने चाहुवान (पृथ्वीराज) को वीर कैसे समझ रक्खा है ?

साटक

स्वस्ति श्री जय भूप भूपति भयं, भीमं भयं वर्तते ।
पायाये तलवन[1] देव खिनयो, मंत्रा मही नक्खते ॥
हेमं कूट[2]-कुठार[3] खग्ग[4] खलयं, देवा चरित्तं भयं ।
दारिद्र यदईव आननरयो, द्रिष्टा[5] सया पावयं[7] ॥८०॥
ग्रा. पा. १ से ७ पा ।

शब्दार्थः—जय भूप=विजयी राजा दाहिमा नरेश कयमास। भूपति भय=राजा हो गये। भीम भय=भीम का भय। वर्तते=काम में लेने, मानते। पाताये तलवंत=उसके चरण तल के समीप। देव खिनयो=क्षण भर में देव तुल्य। मत्रा=मन्त्रणा। मही=पृथ्वी पर। नक्खते=नहीं नत होती। हेमकूट=हिमाचल के शिखर तक। कुठार=कठोर, दुष्ट। खग्ग=खड्ग। खलयं=स्खलयम्, प्रवाहित होता है, नष्ट करती, चलती। भय=हो गये। यद ईव=अगर। आनन रयो=अन्य कोई राजा नहीं। दिष्ठा=देखो। म या=उसके। पावय=चरण।

अर्थः—स्वस्ति श्री दाहिम राज (कयमास) तुम्हारी जय हो। सुनो जो भोरा भीम के भय को मानते हैं, वे नरेश तुल्य होजाते हैं। इसके पद तल के समीप रहने वाला क्षण मात्र मे ही देव तुल्य माना जाने लगता है। इसकी मन्त्रता पृथ्वी पर अक्षय है (पृथ्वी से लेकर) हिमाचल के शिखर तक कोई भी दुष्ट नर नहीं रह सकता है. क्यों कि इसकी खड्ग वहाँ तक चलती रहती है। इसी कारण इस राजा का चरित्र देव तुल्य होगया है। यदि किसी को दारिद्रय ने घेर रक्खा हो तो उसे चाहिये कि वह इस राजा भोरा भीम के चरणों की ओर देखे (अर्थात् इनके चरणों का सहारा ले), क्योंकि उसे दूर करने वाला इसके अतिरिक्त अन्य कोई राजा नहीं है।

ज त वारिधि वध नेव चलय, भीम भयान वल।
कल्पं केलि मरोरि मारव दिसा, बध्य पुर बन्दर॥
दीव देवय देव हव्वस पुर, हब्सी हुजाव पुर।
सोय भीम वलिष्ठ मध्य वलय, तेन कलिंदु स्तर॥८१॥

गा पा । पा।

शब्दार्थ—ज=जैसे। त=तमोगुण तमोगुणी। वधनत्र=बांधने को, निर्माण करने को, खोदने को। कल्प=कल्प के प्रारम्भ से। केलि=क्रीड़ा वत। बध्य=नष्ट किया। बन्दर=बन्दर, समुद्र तटीय स्थान। दीव=दीतिमान। ह ब्बस=धन का धन धाम। कलिंदु=कालिंदी। स्तर=स्थल।

अर्थ.—जैसे सगर के साठ सहस्र तमोगुण धारी पुत्र समुद्र को बांधने (खोदने) को चले थे वैसी ही भीम की भयानक शक्ति है जिसने कल्पादि से चली आती हुई मालव धरा को क्रीड़ा मात्र मे तोड़ मरोड़ दिया और समुद्र तटीय नगरों को ध्वस्त कर दिया। वह मानता है कि दीतिमान देवादि देव हैं वहीं हब्सी और हुजाव पुरी

(मुस्लिम नगरों) को भी क्षोभ देने वाला है। वह (भोलाभीम) अत्यन्त बलिष्ठ है और कालिन्दी के दुस्तर भू भाग (दिल्ली) को लेने में समर्थ है।

गाथा

इंदो वारिधि-बंधं, वारिधि मद्धे सु इंदनं दिष्टा ।
वारिधि अचन इंदो, सा भीम रूपयं भूपं ॥८२॥

शब्दार्थः—इन्दो=चन्द्रमा। वारिधि=समुद्र। बंध=बध, अन्तर्गत। न=नहीं। दिष्टा=दीखता। अचन=आचमन करने वाला, अंजुली द्वारा पी जाने वाला।

अर्थः—समुद्र के अन्तर्गत चन्द्रमा दिखाई देता है, चन्द्रमा के अंतर्गत समुद्र नहीं दिखाई देता; किन्तु इस पृथ्वी पर भीम स्वरूपी ऐसा चन्द्रमा है जो समुद्र को (शत्रु सेना को) अंजुली करके पीजाने वाला है (अपने में समा देने वाला है)।

भूपति भीम नरिंदं, भू भारं काज अवतारं ।
तु कैमास न जानं, तो नंतो छड्डि चहुवान ॥ ८३ ॥

शब्दार्थः—नंतो=नाता, सम्बन्ध।

अर्थः—पृथ्वी के स्वामी राजा भीम ने पृथ्वी का भार उतारने के लिए ही अवतार धारण किया है। हे कैमास! तू ने अभी तक उसे नहीं पहचाना है। अतः अब भी पहचान ले और चाहुवान (पृथ्वीराज) से सम्बन्ध छोड़ दे।

कवित्त

गुज्जरवै धर देहिं, देहि धोरहरा ग्रामं ।
मति सपूर कैमास, देइबहु द्रव्य सु तामं ॥
मध्य पहर जंमद्धि, द्रव्य आवै वड[1] बंदर ।
सो अप्पै[2] चालुक्क, करै कयमास इन्द्र धर ॥
को सुनै[3] कहै को जंपि को, को उत्तरू तिहि[4] देइ फिरि ।
कैमास मंत्रि किन्नौवसै, मनुहु चित्र पुत्तलि लिहरि" ॥ ८४ ॥

प्रा० प० १ से ५ दे०।

शब्दार्थः—मति सपूर=सम्पूर्ण मतिवाला, मतिमान। सु तामं=तुझको। मध्यपहर=एक प्रहर में।

बदर= बंदरगाह, समुद्रतटीय स्थान। अप्पै=अर्प्पै, अर्पित करेगा। इन्द्र घर=इन्द्र तुल्य भवन। वसै=वश में। लिहरि=लीक, (रेखा)।

अर्थः—हे मतिमान कैमास! वह गुर्जरेश्वर तुझे धोरहरा ग्राम के साथ अनेक भूभाग और बडे बडे बन्दरगाहों से एक प्रहर मे प्राप्त होने वाला बहुत सा द्रव्य देकर तेरे घर को इन्द्र तुल्य वैभव सम्पन्न कर देगा। दूत द्वारा इस प्रकार की सूचना मिलने पर (कवि कहता है कि) कौन सुने और कौन उत्तर दे, कैमास कुछ न बोल सका। उस समय वह (लोभ से) वशीभूत होकर चित्र लिखित पुत्तलिका के सदृश (स्तब्ध) हो गया।

दोहा

अमरसिंह पासे प्रसन, मति[1] मन्त्री[2] जल जुथ्थ[3] ।
तत्त तरुणि[4] आनी चहुनि, सुनौ सुमगल कथ्थ ॥ ८५ ॥

प्रा० पा० १ से ४ दे०।

शब्दार्थः—पासें=पास, द्वारा। जल जुथ्थ=जाल। चहुनि=चारों ने।

अर्थः—अमरसिंह के द्वारा प्रसन्नता पूर्वक जाल मे फँसे हुए उस मतिमान् मन्त्री (कैमास) के समक्ष, अमरसिंह और उसके चारों साथियो ने एक तरुणि बाला प्रस्तुत की। उसका सुमगल वृत्तान्त सुनो।

कवित्त

कुटिल केस वय स्याम, गौर गुन वाम काम रति ।
थोर[1]थनी[2]उन्नित नितब, जानि रवि व्यग्र बीय[3] गति ॥
चख चचल उदियन रीह, करी मनु ब्रह्म अप्पु[4] कर ।
ता समान कोइ आन, नाहि असमान थान धर ॥
बैनीय दडु डुल्लइ[5] तनह, तिहि उप्पम[6] कवि चद कहि ।
जुव्वन तुरग सुमुनह - करण, मनहु मार औगी सु गहि ॥ ८६ ॥

प्रा० पा० १ से ६ दे०।

शब्दार्थः—गौर=गोरी। थोर थनि=छोटे स्तनों वाली (कम उम्र वाला)। बीय=दो। गति=तरह। उदियन रीह=उद्दीपन की सीमा। असमान थान धर=आसमान, (नभ मडल) और भू मण्डल पर। सुमुनह-करण=पुष्प पाणी। मार=कामदेव। औगी=चाबुक।

अर्थः—वह बाला कुटिल केश वाली (घु घराले बाल वाली) और शोडष वर्षीया थी। उसके स्त्रियोचित् गुण गौरी के समान थे। वह बामा साक्षात् कामदेव की स्त्री, रति के समान और लघुस्तनी (कम उम्र वाली) थी, उसके उभरे हुए नितम्ब ऐसी शोभा पाते थे मानों सूर्य और उसका प्रतिबिंब (गोलाकृति) दोनों पास २ सुशोभित हो रहे हो। उसके चपल नैत्र उद्दीपन की सीमा तुल्य थे। ब्रह्मा ने मानों उसे अपने ही हाथों से रचा हो। उसके समान नभ मंडल और भू मंडल पर अन्य कोई सुन्दरी नहीं देखी गई। कवि चंद कहता है कि उसका वेणी-दण्ड शरीर पर इस प्रकार झूमता था मानों यौवन रूपी घोड़े को अधिक तेज करने के लिये पुष्पपाणि कामदेव ने चाबुक ग्रहण किया हो।

चंद वदन चख कमल, भूव[1] जनु भ्रमर गंधरत।
कीर नास बिंबोष्ट, दसन दामिनी दमकत[2]॥
भुज भ्रनाल कुच कोक, स्यंघ[3] ल्यंकी[4] गतिवारुण[5]।
कनक कंति दुति देह, जंघ कदली दल आरुण[6]॥
अलसंव नयन मयनह[7] मुदित, उदित अनंगह अगतिहि।
आनी सुमंत्र आरभ वर, दिखत[8] भुल्लत[9] देव जिहि॥ ८७॥

मा पा. १ से, ६ दे।

शब्दार्थः—भूव=भौंहे। स्यंघ=सिंह सिंघ। वारुण=वारुण, हाथी। कति=कांति। दल=पान, पाणि, हाथ। आरुण=अरुण वर्ण। अलसंग=अलसित, आलस युक्त। उदित=अंकुरित। भुल्लत=भूल जाते, सुध-बुध खो बैठते।

अर्थः—जिसका चन्द्रमाँ सा मुख, कमल से नैत्र, गंधरत भ्रमरों सी भौंहें, शुक सी नासिका, बिम्बाफल से अरुण ओष्ठ, चमकती हुई बिजली सी दन्त पंक्ति, भ्रनाल दंड सी भुजायें, चक्रवाक से कुच, सिंह सी पतली कमर, हाथी सी चाल, स्वर्ण कांति सी देह द्युति, कदली स्तम्भ सी जघाएँ, अरुण वर्ण हाथ (हथेलियें) काम की उमंग में भरे हुए अलसाये नैत्र थे, उसके अंग प्रत्यंग से काम अंकुरित हो रहा था। जिसके दर्शन मात्र से देवता भी अपनी सुध-बुध खो बैठते थे, ऐसी उस बाला को अमरसिंह आदि ने मन्त्रणा करके कैमास के पास भेजी।

अंग चरित्र कि चित, चित्त मन मत्थ विकारिय।
मानहु मयन[1] तुरग[2], अंग आनंग प्रचारिय॥

मदर= बंदरगाह, समुद्रतटीय स्थान। मप्पि=अर्पण, अर्पित करेगा। इंद घर=इन्द्र तुल्य भवन। वसै=वश में। लिहरि=लीक, (रेखा)।

अर्थः—हे मतिमान कैमास! वह गुर्जरेश्वर तुझे भोरदरा ग्राम के साथ अनेक भूभाग और बडे बडे बन्दरगाहों से एक प्रहर मे प्राप्त होने वाला बहुत सा द्रव्य देकर तेरे घर को इन्द्र तुल्य वैभव सम्पन्न कर देगा। दूत द्वारा इस प्रकार की सूचना मिलने पर (कवि कहता है कि) कौन सुने और कौन उत्तर दे, कैमास कुछ न बोल सका। उस समय वह (लोभ से) वशीभूत होकर चित्र लिखित पुत्तलिका के सदृश (स्तब्ध) हो गया।

दोहा

अमरसिंह पासे प्रसन, मति[1] मन्त्री[2] जल जुथ्थ[3]।
तत्त तरुणि[4] आनी चहुनि, सुनो सुमगल कथ्थ ॥ ८५ ॥

प्रा० पा० १ से ४ दे०।

शब्दार्थः—पासें=पास, द्वारा। जल जुथ्थ=जाल। चहुनि=चारों ने।

अर्थः—अमरसिंह के द्वारा प्रसन्नता पूर्वक जाल मे फँसे हुए उस मतिमान् मन्त्री (कैमास) के समक्ष, अमरसिंह और उसके चारों साथियो ने एक तरुणि बाला प्रस्तुत की। उसका सुमगल वृत्तान्त सुनो।

कवित्त

कुटिल केस त्रय स्याम, गौर गुन धाम काम रति।
थोर[1]थनी[2]उन्नित नितब, जानि रवि व्यव वीय[3] गति ॥
चख चचल उदियन रीह, करी मनु ब्रह्म अप्पु[4] कर।
ता समान कोइ आन, नाहि असमान थान धर ॥
चैनीय दड्ड डुल्लइ[5] तनह, तिहि उप्पम[6] कवि चद कहि।
जुव्वन तुरग सुमुनह - करण, मनहु मार औगी सु गहि ॥ ८६ ॥

प्रा० पा० १ से ६ दे०।

शब्दार्थः—गौर=गोरी। थोर थनि=छोटे स्तनों वाली (कम उम्र वाली)। वीय=दो। गति=तरह। उदियन रीह=उद्दीपन की सीमा। असमान थान धर=आसमान, (नभ मडल) और भू मण्डल पर। सुमुनह-करण=पुष्प पाणी। मार=कामदेव। औगी=चाबुक।

अर्थः—वह बाला कुटिल केश वाली (घुघराले बाल वाली) और शोडष वर्षीया थी। उसके स्त्रियोचित् गुण गौरी के समान थे । वह वामा साक्षात् कामदेव की स्त्री, रति के समान और लघुस्तनी (कम उम्र वाली) थी, उसके उभरे हुए नितम्ब ऐसी शोभा पाते थे मानों सूर्य और उसका प्रतिबिंब (गोलाकृति) दोनों पास २ सुशोभित हो रहे हो। उसके चपल नैत्र उद्दीपन की सीमा तुल्य थे। ब्रह्मा ने मानों उसे अपने ही हाथों से रचा हो। उसके समान नभ मडल और भू मडल पर अन्य कोई सुन्दरी नहीं देखी गई। कवि चद कहता है कि नसका वेणी-दण्ड शरीर पर इस प्रकार झूमता था मानों यौवन रूपी घोड़े को अधिक तेज करने के लिये पुष्पपाणि कामदेव ने चाबुक ग्रहण किया हो।

चद वदन चख कमल, भूव[1] जनु भ्रमर गंधरत।
कीर नास बिंबोष्ट, दसन दामिनी दमकत[2] ॥
भुज म्रनाल कुच कोक, स्यंघ[3] ल्यकी[4] गतिवारुण[5] ।
कनक कति दुति देह, जघ कदली दल आरुण[6] ॥
अलसंघ नयन मयनह[7] मुदित, उदित अनँगह अगतिहि।
आनी सुमंत्र आरभ वर, दिख्खत[8] भुल्लत[9] देव जिहि ॥ ८७ ॥

ग्रा पा. १ से, ६ दे ।

शब्दार्थः—भूव=भौंहे। स्यंघ=सिंह सिंघ। वारुण=वारुण, हाथी। कंति=कांति। दल=पान, पाणि, हाथ। आरुण=अरुण वर्ण। अलसंग=अलसित, आलस युक्त। उदित=अकुरित। भुल्लत=भूल जाते, सुध-बुध खो बैठते ।

अर्थः—जिसका चन्द्रमाँ सा मुख, कमल से नैत्र, गंधरत भ्रमरों सी भौंहें, शुक सी नासिका, बिम्बाफल से अरुण ओष्ठ, चमकती हुई बिजली सी दन्त पंक्ति, म्रनाल दंड सी भुजायें, चक्रवाक से कुच, सिंह सी पतली कमर, हाथी सी चाल, स्वर्ण कांति सी देह द्युति, कदली स्तम्भ सी जघाएँ, अरुण वर्ण हाथ (हथेलियें) काम की उमंग में भरे हुए अलसाये नैत्र थे, उसके अंग प्रत्यंग से काम अकुरित हो रहा था। जिसके दर्शन मात्र से देवता भी अपनी सुध-बुध खो बैठते थे, ऐसी उस बाला को अमरसिंह आदि ने मन्त्रणा करके कैमास के पास भेजी।

अंग चरित्र कि चित, चित्त मन मत्थ विकारिय।
मानहु मयन[1] तुरग[2], अग आनँग प्रचारिय ॥

किधो जोग मन भजन, रवन साईं सुख सागर ।
मानहु मयन मवास, सेन सज्जी रति नागर ॥
सलिता सु रूप लोयन लहरि, रहे मीन मन भौंर परि ।
घन हाइ भाइ गुन माह सम, कवि का ब्र ननु सकइ करि ॥ ८८ ॥

ब्र पा. १ से, ७ दे ।

शब्दार्थः—मयन=मतवाले, तेज । प्रचारिय=प्रचारा, चाबुक मारा । भजन=भजन । रयन=रमणी । साईं=स्वामी । मवास=मेवासी । रति=प्रेम । नागर=नागरपन, चतुरता । सलिता=सरिता । मनु=मन । भौंर =भँवर, जलचक्र, चक्कर । हाइ भाइ=हाव-भाव । गुणा=गुणे गये, माने गये । ब्र ननु=वर्णन ।

अर्थः—उसका अंग शारीरिक चचलता से और चित्त काम विकार से युक्त दिखाई पडता था, मानों मस्त (तेज) घोडे के शरीर पर कामदेव ने चाबुक मार दिया हो । वह रमणी योगियों के मन का भजन करने वाली थी अथवा अपने स्वामी के लिये सुख का समुद्र रूप थी । मदन मेवासी (चोर) द्वारा प्रेम और चतुरता की सेना रूप में मानों वह सजाई गई हो । उसका रूप सरिता के समान था जिसमे नैत्रों की चितवन लहरों के समान दिखाई देती थी । उसकी भँवर (चक्कर) में मन रूपी मीन पड़ जाते थे । उसके हाव-भाव ही माह स्वरूप थे । इसका वर्णन कवि कहाँ तक कर सकता है ।

गाथा

आचिज्ज बाल चरिय, कि होजम्म जम्म विन हरिय ।
जै विधि पुव्वह लिखिय, जोमन मारुत्त सुक्ख सुक्खाई ॥ ८९ ॥

शब्दार्थः—आचिज्ज=आश्चर्य । बाल-चरिय=बाला का चरित्र । होजम=होमा गया । जम्म=जन्म । विन=उसका । हरिय=हरा भरा । पुव्वह=पहले से ही । जोमन=यौवन । सुक्खाई=सुखा देगा, सुख जावेगा ।

अर्थः—उस बाला का चरित्र आश्चर्य प्रद था । जिस कैमास का जन्म सदा हरा-भरा था (रसिक चित्त वाला था), उस बाला के द्वारा होम दिया गया, या यही कहना पड़ता है कि ब्रह्मा ने उस (कैमास) के भाग्य मे पहले से ही यह बात लिख दी थी, कि उस बाला के यौवन रूपी पवन के संचार से उसका वह सरस जीवन सूख जावेगा ।

दोहा

दूरति[1] बाले बाल गुन, रही चित्र परिमांन।
कै आई अहि लोकतें, कै अमरेख बखांन ॥ ६० ॥

आ. पा. १, घ. पा. का ।

शब्दार्थः—दूरति=दुराती हुई, छिपाती हुई। बाल गुन=बाल स्वभाव, स्त्री स्वभाव। अमरेख=इन्द्र बखांन=प्रशसित।

अर्थः—कयमास के समक्ष आकर वह बाला स्त्री स्वभाव के कारण ठिठक कर चित्र पुत्तलिकासी स्तंभित हो गई। उस समय वह ऐसी दिखाई दी मानों वह नाग लोक से आई हो (नाग कन्या हो) या इन्द्र द्वारा प्रशंसित देवाङ्गना हो।

सुरपुर नरपुर नागपुर, इह आचिज्ज सु कीन।
धनि मन्त्री सेवर अमर, दाहिम्मा[1] बल[2] छीन[3] ॥ ६१ ॥

आ. पा १ से ३ पा.।

शब्दार्थः—आचिज्ज=आश्चर्य। धनि=धन्य।

अर्थः—स्वर्ग पृथ्वी और नाग लोक के निवासियों ने भी यह देख कर आश्चर्य प्रकट किया और कहा कि भीम के मन्त्री अमरसिंह सेवरा को धन्य है जिसने दाहिमें कयमास को सहज में शक्ति रहित कर दिया।

यों वसि भौ कैमास वर, ज्यों रोगी भेखेज।
ज्यों नट वसि कपि नंचई, ज्यों त्रिय वसि पति सेज ॥ ६२ ॥

शब्दार्थः—वसि=वश में। भेखेज=भैषज, औषधी। नट=बाजीगर। नंचई=नाचता। सेज=शैया पर, शयन समय।

अर्थः—कैमास उस बाला के वश में इस प्रकार होगया, जैसे रोगी औषधी के, बन्दर बाजीगर के और पति शयन समय स्त्री के वश में होजाता है।

कवित्त

आनि फिरी भीमंग, नयर नागौर घरघर।

वसि किन्नो दाहिमा, धरनि भो कंप भरक्कर ॥
सुपन वीर वरदाइ, भरकि उठि सुठि सचरि तहँ ।
जहँ मन्त्री भर सुभर, करिग वसि वसन देव जहँ ॥
धूमग भूप उच्चरि परिग, किल किलत डौरु करह ।
दनु देव नाग सब वसि करन, कितिक वात बुद्धिग नरह ॥ ६३ ॥

शब्दार्थ.—फानि फिरी=दुहाई दी गई । भरकि=चौंक कर । सुठि=श्रुति, सुनने पर, ज्ञात होने पर । सचरि=गया । भर सुभर=योद्धाओं में श्रेष्ठ योद्धा । वसन=वश में । धूमग=धूम । उच्चरि परिग=उठने लगा । किल किलत=किलकारी करती हुई । डौरु=डमरु ।

अर्थ.—फिर नागोरान्तर्गत् प्रत्येक गृह मे भीम की दुहाई फेरदी गई । कैमास को वश मे कर लेने के कारण पृथ्वी भी कॉप उठी । इस बात की सूचना देवी ने चन्द वरदाई को स्वप्न मे दी, जिससे वह भी चौंक उठा । फिर वह सुन्दरी देवी, देवताओं को भी वशीभूत करने वाले किन्तु, इस समय स्वय कामकन्दला बाला के वश मे हुए, श्रेष्ठ वीर मन्त्री कैमास के पास पहुँची । उसके वहाँ पहुँचने पर धूप का धूम उठने लगा और देवी कर मे डमरु लिए हुए किलकारी करती हुई दीखाई पडी । वह महामाया देवता, दानव और नागादि को वश मे करने वाली थी, फिर मनुष्य की बुद्धि तो उसके समक्ष कितनी है ।

दोहा

इह चरित्त दिखी मात तहँ, कटक संपत्ती आय[1] ।
चद जग्यौ जप जुगति सम, निसि सुपनंतर पाय[2] ॥ ६४ ॥
प्रा० पा० १, २, घ० का० ।

शब्दार्थ:—दिखी=दिखा कर, बतलाकर । कटक=सेना । संपती=पहुँची । जुगतिसम=युक्ति पूर्वक ।

अर्थ:—इस घटना से चन्द को अवगत कर, देवी नागोरान्तर्गत चहुवानी सेना मे पहुँची । इधर इस स्वप्न को देख कर चन्द ने युक्ति पूर्वक देवी का स्मरण किया ।

सुकवि चद चल्ल्यो सु निज, पुर नागौर निधान ।
जहँ[1] कैमास पलट्टि तन, करत केलि आदान ॥ ६५ ॥
प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थ.—निज=स्वयम् । केलि=क्रीड़ा ।

अर्थः— फिर कविचंद स्वय नागौर को रवाना हुआ, जहाँ कैमास की काया पलट होने से वह रतिक्रीड़ा का आह्वान कर रहा था ।

दिक्खि नयन झल हलि भयौ, हल हल हल्ल्यौ अग ।
क्रोध लग्गि किलि कुप्पयौ, दिक्खित डिंभन रग ॥ ६६ ॥

शब्दार्थः—झल हलि भयौ=ज्वाज्वल्यमान, ज्वाला युक्त । हल हल हल्यौ=कंपित हुआ । क्रोध लग्गि=क्रोध के वश में देखकर । किली=कीलने, रोकने को । कुप्पयौ=क्रोधित हुआ । डिंमन=दम्भियों का । रंग=चरित्र, पाखंड ।

अर्थः—अमरसिंह सेवरादि दम्भियों के पाखण्ड को देखकर कविचन्द के नैत्रों से ज्वाला प्रकट होने लगी और उसका अग प्रत्यंग क्रोध के कारण काँपने लगा। विपक्षियों को क्रोधित देख वह क्रोध के वशीभूत होकर उनके उस पाखण्ड का कीलन करने (रोकने) को उद्यत हुआ ।

साटक

चामडा वर खग्ग मंडित करा, हुंकार सद्दाधरं ।
प्रभ्भास[1] सह स्यंघ[2] सत्य तपस, रुंडाल माला उरं ॥
लग्ना हस्त मुखी प्रचड नयना, पायातु दुर्गेश्वरी ।
काली कल्प कराल काल वदनां, अगे कलिंगे जया ॥ ६७ ॥

ग्रा० पा० १, २ दे० ।

शब्दार्थः—सद्दा=शब्द । प्रम्भासं=प्रभायुक्त । सह=सहित । स्यंघ=सिंह । सत्यतपसं=सत्य तपस्वी । रुण्डाल=रुंडमुंड । लग्ना=लगन स्वरूप, अभिलाषा स्वरूपी । हस्त मुखी=प्रसन्न वदना । प्रचंड नयना=ज्वाज्वल्य मान नैत्रों वाली । पायातु=रक्षा कर । कल्प=कल्प काय ।

अर्थः—वह देवी की स्तुति करने लगा—हे चामुण्डे ! हाथ में श्रेष्ठ खड्ग रखने वाली, हुंकार शब्द करने वाली, मुण्ड माला धारण करने वाली, प्रभा युक्त, सिंह एवं सत्य तपस्वी (शिव) सहित, अभिलाषा स्वरूपी, प्रसन्न वदना, ज्वाज्वल्यमान नैत्रोंवाली, हे दुर्गेश्वरी ! तू हमारी रक्षा कर। हे काली ! कल्पकाय, भयंकर काल के समान मुख वाली, कलिङ्ग देश की अग्र स्वरूपा तेरी जय हो ।

माया तूं त्रिदार[1] माल कलया, जाता[2] जगद् ब्रह्मनी ।
माया तूं माहेश्वरी जह कह, अग्गोचरं गोचर ॥
सिक्ख रिक्ख सपट्ट नचत वसा, हिंगोल हुं हू कर ।
सा हुकार हहक्क[3] सद्द[4] सुनय, जात दल दुर्जन ॥ ६८ ॥

ग्रा० पा० १ से ४ दे०।

शब्दार्थः—विदार माल=वृन्दार वृक्ष के फूलों की माला । कलया=सुन्दर । जाता जगद्=जगत जननी । ब्रह्मनी=ब्रह्माणी । जह कह=जहाँ तहाँ । अग्गोचर=अज्ञात । गोचरं=ज्ञात । सिक्ख रिक्ख=ऋषि शिरोमणि, शिव । सपट्ट=पटाधारी (सिंह सहित) । सा=वह, उस । हहक्क सद्द=हूँ हू स्वर, हुँकार । जात=पलायन हो जाता है ।

अर्थः—हे महामाया ! तू सुन्दर वृन्दार पुष्पों की माला से सुशोभित है, तू ही जगत-जननी है, तू ही ब्रह्माणी है । हे माहेश्वरी ! जहाँ तहाँ अज्ञात और ज्ञात रूप में तू ही है । ऋषियों में शिरोमणि शिव के वश मे होकर सिंह सहित नृत्य करती हुई, हे हिंगुलाज देवी ! जब तू हूँ हूँ शब्द करती है तब उस हूंकार को सुनकर शत्रु सेना पलायन कर जाती है ।

खग्ग झामिति[1] झाम झाम झमिय, तस्यास्य मंत्रे मुख ।
सा मंत्रे उच्चार धार धरिय, भग[2] अभगा अरी ॥
जग्यान[3] जय जोग जोग पतय, पाखड खडायन ।
कालील किललंति कति त्रिपुरा तस्यासि ध्यान धर ॥ ६९ ॥

ग्रा० पा० १, २ पा० । ३, घ० पा० ।

शब्दार्थः—झामिति=झमाके के साथ, शीघ्रता पूर्वक । झाम२=झमाझम । झमिय=झड़ती । धार=धारा, खग । जग्यान=जागृत हो जाते । जय=जिससे । जोग=योगी । जोगपतय=योगेश्वर, शिव । कालील=काली । किललति=क्रीड़ा करती । कति–त्रिपुरा=त्रिपुर सुन्दरी ।

अर्थः—तू तलवार को झमझमाती, झाडती हुई अपने मुख से जिस मन्त्र का उच्चारण करती रहती है, उसका उच्चारण कर जो व्यक्ति खड्ग धारण करता है वह अभग शत्रुओं का नाश कर देता है । उस मत्र से पाखडों का खण्डन करने वाले योगेश्वर महायोगी शिवभी जाग्रत हो जोते है । ऐसा मत्रोच्चारण करने वाली एव वीर क्रीडा करने वाली हे काली त्रिपुरा सुन्दरी ! मैं तेरा ध्यान करता हूँ ।

आई तूं उमया अखड तनुया दाता दुरी नासिनी ।
संतुष्टा सुर नाग किंनर गना दैत्यानि सं आसिनी ॥
यस्या चारु चवंति चारु कमल, संतुष्टय साधुन ।
जैनं वर्धस वद्धयाइ चरनं, जै जै सु जिह्वासन ॥ १०० ॥
म्रा० पा० १ दे० ।

शब्दार्थः—आई=माता । अखंड तनुया=अखड काय । दाता=दात्री । गना=गण । त्रासिनी=सताप देने वाली । चारु=श्रेष्ठ । चवंति=कहकर । चारु कमल=श्रेष्ठ कमल मुख । वर्धस=वृद्धि पाया हुआ । वद्धयाई=नाश होगा ।

अर्थः—हे माता ! हे उमा ! हे अविनाशी शरीर वाली ! हे बुरी वासनाओं का नाश करने वाली ! हे सुर, नाग और किन्नरगणों को प्रसन्न करने वाली ! हे दैत्यों को सताप देने वाली ! हे कमलवत् श्रेष्ठ मुख से श्रेष्ठ वचन कहकर साधु पुरुषों को सतुष्ट करने वाली ! हे जिह्वासन पर वैठने वाली ! तेरी जय हो । तेरे पदार्पण से वृद्धि पाये हुए जैन धर्मावलम्बियों का नाश होगा ।

दोहा

वद्धा-जैन सु जैन लगि, जीता चद चरित्त ।
भामीं भट्ट सुमंत किय मरन जियन करि हित्त ॥

शब्दार्थ—वद्धा-जैन=जैन धर्मावलम्बियों ने वृद्धि प्राप्त की । जैन-लगि=जहाँ तक । मामीं=विश्वामी । भट्ट=भट्ट, कविचद ।

अर्थः—जैन धर्मावलम्बियों ने कैमास को वश मे करके, अपनी जो कुछ गौरव वृद्धि की थी, उस पर कविचद ने देवी की कृपा से विजय प्राप्त की (कयमास को पुनः रास्ते पर लाया) । तब उस विश्वासी भट्ट कवि (चंद) ने एक यही श्रेष्ठ मत्रणा कह-सुनाई कि हे मंत्रीवर कैमास ! तुझे मृत्यु और जीवन के हित की (यश प्राप्ति की) बात ही करनी चाहिये [इसी में तेरे जैसे वीर की शोभा है] ।

कवित्त

उठावै नहँ सीस, लज्ज दाहिम चहुवान ।
उठे सीस नहँ लीस, लज्ज कुलपन कुलपानं ॥
उठै सीस नहँ लीस, करै भारथ बहुकाजं ।
उठै सीस नहँ लीस, देव गति देवनि साज ॥

उट्ठै न सीस सगुह सरस, लज्ज विरद्दा भार सिर ।
कैमास काज लग्गी गवनु, विसर वीर दिक्ख्यो विधर ॥ १०२ ॥

शब्दार्थ:—कुलपान=कुल का अपमान, वशबल । देवनि साज=देव स्वरूप । लग्गी-गवन=गमन करने लगे, चल पड़े हों । विसर=सिर रहित । धर=धड़, शरीर ।

अर्थ:—कविचद की सुमत्रणा सुनकर दाहिमे कैमास ने पृथ्वीराज के सकोच से, वश लज्जा और वश बल की हीनता के भय से, अपने द्वारा किये हुए बहुत से युद्धों पर पानी फिर जाने से, देवताओं सी अपनी गति (चाल चलन) और अपने स्वरूप में धब्बा लगने से, और वश विरुद के भार की लज्जा से उसके (कविचद के) समक्ष सिर नहीं उठाया । उस समय ऐसा दिखाई पडा, मानो उस वीर की विशाल काया सिर रहित हो । किन्तु साथ ही यह भी ज्ञात हो रहा था कि उस (कयमास) द्वारा किये हुए दुष्कृत्य भी उससे चल पडे हो ।

दोहा

बर बरदाइ नरिंद कवि, दै आसिख छिति-राज ।
तू लज्जिन कैमास बर, मंत विरोधन काज ॥१०३॥

शब्दार्थ:—नरिंद कवि=राजा पृथ्वीराज का कवि, (या कविराज) । आसिख=आशीष, आशीर्वाद । छिति-राज=पृथ्वीराज, पृथ्वीभट्ट [या हे पृथ्वी पति] । लज्जिन=लज्जित न हो । मत=मत्रणा । विरोधन=विरोधियों की ।

अर्थ:—राजा पृथ्वीराज का श्रेष्ठ वरदाई कवि 'पृथ्वी भट्ट' आशीर्वाद देता हुआ कहने लगा- हे वीर ! (या हे पृथ्वी पति कैमास !) तू सब तरह से श्रेष्ठ है, अत तुझे लज्जित नहीं होना चाहिये । यह जो कुछ हुआ है, वह विरोधियों की मत्रणा के ही फलस्वरुप हुआ है । तू तो निष्कलक है ।

कवित्त

चन्दह[1] चढि प्रताप, मन्त्रि[2] कयमास छुडाइय ।
मेटि आन चालुक्क, आन चहुआन फिराइय ॥
लज्ज[3] रज्ज[4] कयमास, सीस ढक्कै न उघारै ।
रावला सों सग्राम, लरन रति वाह विचारै ॥
उज्जली रैंन उज्जल दिसा, जसु उज्जल को वाइया ।
दाहिम्म राइ दाहर तनै, मिलह सुरग बनाइया ॥१०४॥

प्रा० पा० १, ३, ४ दे० । २ का० घ० ।

शब्दार्थः—आन=दुहाई लज्ज रज्ज=राजा के सकोच से । सवला सौं=सवल शत्रु से । रतिवाह=रात्रि को छापा मारकर । उज्जल दिसा=पवित्र भू भाग की ओर । सिलह=कवच, साजवाज ।

अर्थः—चन्द ने चडी के प्रताप से मन्त्री कयमास को उस वाला के प्रेम जाल से छुडाया और नागौर से चालुक्क की दुहाई मिटाकर चौहान की दुहाई फिरा दी । राजा के सकोच से कैमास ने मुँह छिपालिया और तब (उस सकोच को मिटाने के लिए) उसने सवल शत्रु पर रात्रि में छापा मार कर युद्ध करने की वात सोची । उसने (दाहरराय के पुत्र दाहिमें ने) अपने यश को उज्ज्वल करने के लिये शुल्क पक्ष की रात्रि में पवित्र भू भाग की ओर चलने का विचार करके उसी समय युद्धार्थ सुरंगी सलह (कवच) धारण किया ।

सथ्थ राउ[1] चामंड, सथ्थ सज्जिय परिहारं ।
महनसिंह वल्लहार[2], नाम रनौ[3] खग झार ॥
रा— भोंहा — चंदेल, राउ — भट्टी महनंगी ।
भर भट्टी वहु सथ्थ, सार अग्गी तन दंगी ॥
जाजुल्य तैज नरस्यंध[4] नर, चहुवानह कूरंभ गुर ।
सामत सूर[5] सत्तह सुमति, सुवर वीर भारथ्थभर ॥१०५॥

प्रा. पा. १ से ५ दे ।

शब्दार्थः—सत्थ=साथ में । वल्हार=वलहरा । रंन्नौ=रनराय । दंगी=दागने वाले, जलाने वाले । नरस्यंध=नृसिंह । कूरभ-गुर=कछवाहों में बड़ा, कछवाहों का मुखिया । सत्तह=सात । भर=भिड़ने योग्य ।

अर्थः—उस (कयमास) के साथ में (उसका भाई) चामडराय, प्रतिहार वीर महनसी, युद्ध में खडग चलाने वाला वलहरा रनराय, चदेला भोंहाराय, शस्त्र की आग से शत्रु काया को जलाने वाले वहुत से भट्टी वीरों सहित भट्टीराज महनसी, जाज्वल्य मान तेज वाला चाहुवान वीर नृसिंह और कछवाहों का मुखिया (पज्जून) ये सातों श्रेष्ठ मति वाले और युद्ध में भिड़ पड़ने वाले वहादुर सामन्त थे ।

परम पवित्र पवार, जांन उद्यांन पँचाइय ।
सारँग सिसु चालुक्क, राउ[1] रघुवंश सुभाइन ॥

रत्तिवाहु रण[२] च्यति[३], सेनु मज्यौ विनु राज ।
तरणि[४] तेज तम हरण[५], मेघ मत्ते जनु गाज ॥
कलहंत केलि मंडिय विखम, गरुअ ग्रब्ब गहिलौत गुर ।
लगरिय लोह लग्गौ रसैं, स्वामि धुंभ[६] जिहि भार धुर ॥१०६॥
ग्रा० पा० १ से ६ दे० ।

शब्दार्थ:—पचाइन=सिंह । सुमाइन=अच्छे भाव वाला । रत्तिवाहु=रात्रि को छापा मारना । च्यति=चिंतनकर, सोचकर । गुर=भारी, विशेष । ग्रब्ब=गर्व । रसैं=रस में । धुंभ=धर्म । धुर=ध्रुव, निश्चय ।

अर्थ:—वन मे विचरण करते हुए सिंह तुल्य परम पवित्र वीर पँवार, छोटी उम्र वाले चालुक्य वीर सारंगराय और अच्छे भावों वाले रघुवशीराय ने मिलकर शत्रु सेना पर रात्रि को ही छापा मारकर युद्ध करना निश्चय किया और पृथ्वीराज की अनुपस्थिति मे ही सेना को सजा ली। उनका तेज, शत्रु रूपी तम का नाश करने के लिये सूर्य के सदृश था और मस्ती में वे मेघ के समान गर्जना करते थे। उन्होने जिस समय विषम कलह केलि का मण्डन किया, उसी समय विशेप गर्व को धारण करने वाले वीरवर गुहिलोत और लघरीराय भी, जिनके कन्धों पर निश्चय रूप से स्वामि धर्म का भार था, वे वीर लोह रस में (युद्ध रस मे) लीन हो गये ।

अचल अरुण[१] अनताइ, कन्ह विनु[२] वीर त्रसग।
रा-निड्डर रट्ठौर[३], सार झिल्लन रण[४] रग ॥
वाव्वारौ वरस्यघ[५], रेह रक्खन अजमेर।
दहियाँ जगल राउ[६], जग मग्गह धर मेर ॥
ठठरी टाक चाटा चपल, अकल मत्ति जिहि[७] उद्धरिय।
ठिल्लै सु वज्र वज्रंग तन, खल खडै वज्रनि वज्जिय ॥१०७॥
ग्रा पा १ दे पा । २ से ७ दे ।

शब्दार्थ:—अचल=निश्चल, अटल । विनु वीर=जिसके समान कोई वीर नहीं, उसके समान दूसरा वीर नहीं । त्रसग=त्रसगी, ग्रसडी, हाथी । झिल्लन=झेलने वाला । वाव्वारौ=वाव्रा का पुत्र । रेह=रेखा, मर्यादा । अकल मत्ति=अज्ञात बुद्धि, जिसकी बुद्धि का पार नहीं । उद्धरिय=मोक्ष पाया ।

अर्थ:—क्रोधावेश से अरुण काय हुआ अटल वीर आततार्इ, जिसके समान अन्य कोई वीर नहीं, ऐसा मस्त हाथी के समान कन्ह चाहुवान, रणाङ्गण मे शस्त्राघात

को झेलने वाला राष्ट्रवर निडडुरराय अजमेर की मर्यादा को रखने वाला पृथ्वीराज के बाबा का पुत्र वरसिंहराय, युद्ध मार्ग में सुमेरु पर्वत के समान डटने वाला और जंगल प्रान्त के (किसी) भू भाग पर शासन करने वाला जगलराज) दहिया वीर, ठठरीरा राय टांक और महान् बुद्धिमान तथा मोक्ष प्राप्ति करने वाला चपल वीर चॉटा आदि उन सब वीरों ने वज्र के समान शरीर धारियों को वज्रवत होकर ठेल दिया और उन्हीं बलवानों ने वज्रघात स्वरूपी शस्त्राघात द्वारा शत्रुओं को खण्ड २ कर दिया।

वर लद्दव जै स्यंघ[1], राउ[2] जंघारौ सुभ्भर ।
किल्हन कनक नर्‌यद[3], इंद्र दल दिखिय दुभ्भर ॥
वली बाहु हर स्यघ, रेह रक्खन चहू आनिय ।
सुवर वैर वाहरु वलिय, संभरि घर जानिय ॥
अजमेरि मुक्कि चहुवान कौ, एधाए उप्पर[4] करण ।
दिन इक्क वार वलिवड खल, उभै लभ्भि लडडू जिरण ॥१०८॥
प्रा० पा० १ से ४ दे०।

शब्दार्थ —सुभ्भर=अच्छा योद्धा। नर्‌यद=राजा। दुभ्भर=दुरुह, मुश्किल से। रेह=रेखा, मर्यादा। वैर=बदला। वाहरु=सहायक। उप्पकरण=सहायता करने को।

अर्थः—श्रेष्ठ वीर जयसिंह यादव, श्रेष्ठ योद्धा जंघाराभीम, इन्द्र की सेना में भी कठिनता से प्राप्त होने जैसी राजा पद धारी कल्हनराय और कनकराय, कुलकी मर्यादा रखने वाला और चाहुवान के भूभाग का बदला लेने में सहायक होने वाला पृथ्वीराज का भुजास्वरूपी (उसका छोटा भाई) हरिसिंह (हरिराय) इत्यादि वीर पृथ्वीराज से विदा होकर, अजमेर को छोड़ नागोर में कयमास की सहायता के लिए रवाना हुए और उन वरिवंड (बलवान) वीरों ने एक ही दिन में दोनों शत्रु (शाह और चालुक्य) रूपी जीर्ण (कठार, जो मुश्किल से खाये जॉय ऐसे) लड्डुओं को दोनों हाथों में प्राप्त कर लिये।

दोहा

रूके[1] सेन चालुक्क रण[2], रहे लोह करि कोट,
पय दल गज बल हय चपल, भये आनि सब जोट ॥१०९॥
प्रा० पा० १, २ दे०।

शब्दार्थः—आनि=आकर । जोट=जुटगये ।

अर्थः—उन वीरों ने लोह-कोट बनकर चालुक्की सेना को रोक लिया और वे पैदल तथा हाथियों और घोड़ों के बल पर आकर जुट पड़े ।

कवित्त

कलह अग्ग सामत, काम कैमास कुसल्लिय ।
गज्जु[१] अज्जुअरु[२] जज्जु[३], अनुज मिरि[४] पर्यौ दुसल्लिय ॥
धाराणी[५] झरफुट्टि, छुट्टि छक्का[६] सामता ।
पारध्धी[७] पारारि, धींग लग्यौ[८] धावता ॥
असमांन हल्लि भुंमी धरिय, धाइ धमंक धमक धर ।
वदि यहि वाहु वाहुज्ज[९] दल, प्रथीराज राजंग भर ॥ ११० ॥
आ० पा० १ से ६ दे० ।

शब्दार्थः—अग्ग=अग्रणी । गज्जु=गर्जना । अज्जुअरु=आर्य, आर्यवीर । जज्जु=जज्र, (यम) काल । दुसल्लिय=बुरी तरह से चुभने वाला, शल्य, (नटसाल स्वरूप) । धाराणी=तलवार मे । झर=झड़, आग । छुट्टि छक्का=घायल होकर प्राणान्त होगा । पारारि=परिन्दों पर । धींग=धींगाना, उत्पात । धावता=बढ़कर । असमान=आसमान । धाइ=धावने से, आक्रमण से । धमक धमक=धमधमाना, आवाज करना । वाहुज्ज=वाहु स्वरूपी, भ्राता । राजग=राजा का अग स्वरूपी । भर=भट, योद्धा ।

अर्थः—सामन्तों और कार्य कुशल कैमास से आगे होकर चलने वाला और काल सदृश गर्जना करने वाला पृथ्वीराज का भाई आर्य वीर हरिराग शत्रुओं के लिये शल्य स्वरूप होकर भिड़ गया। उस समय उसकी तलवार से आग झड़ने लगी जिससे शत्रु घायल होकर मरने लगे। शिकारी जिस प्रकार पक्षी समूह मे उत्पात मचा देता है उसी प्रकार उसने शत्रु दल मे उत्पात मचा दिया, जिससे आसमान भी हिल गया और उसके आक्रमण से पृथ्वी धम धमा गई। यह देख कर समस्त सेना पृथ्वीराज के अग और वाहु स्वरूपी उस योद्धा की भुजाओं की वन्दना करने लगी।

भर-भिरि चौकि चपि चलि, मिलि ठिलि जहँ दल राइ ।
सघर जुद्ध दरवार भौ, चढ़ि चालुक्क रिसाइ ॥१११॥

शब्दार्थः—भर-भिरि=योद्धा से भिड़ते हुए। चौकी=पहरा देने वाली सेना। दलराई=सेनापति। सबर=सब। दरबार=खास डेरों में।

अर्थः—पृथ्वीराज के सामन्त भिड़ते हुए और चालुक्की सेना की चौकी (राजा के आसपास पहरा देने वाली सेना) को दबाते हुए आगे बढ़ चले और जहाँ उनका सेनापति था, वहाँ एक दूसरे को ठेलते हुए एकत्रित हो गये। उन सबल वीरों के उस मुख्य वितान पर युद्ध छेड़ने से चालुक्की वीर क्रोध करके लड़ने को तत्पर हो गये।

कवित्त

मिले मल्ल आलंग, जंग भोरा भुअग जगि।
कै कुलाह कतार, धार[1] डडूर पूर लगि ॥
है हुल्लह छुट्यौ कि, सिंघ मैंगल मे मत्ता।
कै अप्पाना[2] आप, राव रावत्त विरत्ता ॥
आवर्त सयन उत्तर दिसा, इन लग्गी लहरि ॥
धावंत धींग सामन्त सौ, सूर समर लग्गे समरि ॥११२॥

१ आ० पा० १ का०। २ दे०।

शब्दार्थः—आलंग=अलघो, जिनको पार कर आगे कोई नहीं बढ सकता। जगि=जागृत किया, उत्तेजित किया। कुलाह=एक पक्षी विशेष। कतार=कतार। धार=खड्ग। डडूर=खण्डों की। है हुल्लह=हा हुल्लड़ करता, गर्जना करता। अप्पाना=सामर्थ्य, शक्ति। आवर्त=लगातार। लग्गी लहरि=हवा लगी आघात का असर पहुँचा।

अर्थः—जब भोरा भुवंग के मल्ल समान अलघनीय वीर आमिले और उन्होंने युद्ध को उत्तेजित कर दिया तब ऐसा प्रतीत हुआ मानों कुलाहों की कतार बढी हो, या खड्ग धारा खण्डों की पूर्ति कर रही हो, या भीषण गर्जना करता हुआ सिंह मस्त हाथियों पर छूट पड़ा हो। इस प्रकार कई राजा और राजवंशी अपनी सामर्थ्य के बल पर युद्ध में विरक्त (मोह रहित) दिखाई पडे। लगातार उत्तर दिशा की सेना पर घात होने लगी जिससे ईशान कोणवाली सेना पर भी उस आघात का असर पहुँचा। (पृथ्वीराज के) सौ सामन्तों को उत्पात करते हुए बढते देखकर, चालुक्की सेना के योद्धा सँभल कर समर में प्रवृत्त हुए।

चडिय देवि पसाई, हस्ति तौरे मैमत्ता ।
चढ्यौ राउ भीमग, चौर मोरह सिलहत्ता ॥
का अप्पानी रारि, काइ वाइ[1] हि डहूरी ।
कै छुट्यौ सम्राम, स्यघु[2] सकर निज्जूरी ॥
कै वीर धाम धुज्जिय धरा, के उलाल[3] कल पत हुअ ।
जा जपु जपि जंपन कहै, जंपि राज भीमग भुअ ॥११३॥

ग्रा पा १ घ । २, ३ पा ।

शब्दार्थः—चंडिय=चंडी पुत्र, देवी पुत्र, कविचन्द । पसाई=कृपा से । मै मत्ता=मदमस्त । चोर=चवर । मौहर=मोर छल । सिलहत्ता=कवच से सुशोभित । अप्पानी=आपान की । वाइ हि-डहूरी= डहूरी हवा (वात चक्र) । स्यघु=सिंह । सकर निज्जूरी=शृंखला से बँधा हुआ । उलाल=उल्कापात ।

अर्थः—भवानी की कृपा से देवी पुत्र (कविचन्द) ने भी युद्ध करते हुए अनेक मदमस्त हाथियों को नष्ट कर दिया । उसी समय चँवर, मोरछल और कवच से सुशोभित होकर भीमगराय चढ़ा । वह आपान (ताकत) की लडाई थी, अथवा डॅहूरी-हवा (वात चक्र) थी । उस समय सम्राम में ऐसा दृश्य दिखाई पड़ा मानों शृंखला से शेर छूटा हो अथवा बावन ही वीरों का उत्पात या कल्पान्त हुआ हो ऐसा दिखाई पडा । इस प्रकार जो भी कुछ कहता वह यही कथन करता कि पृथ्वी पर यदि कोई राजा कहा जा सकता है तो वह भोरा भीमग ही है ।

ना अप्पानो रारि, नाहिं वाई सु डहूरो ।
ना छुट्टौ सम्राम, स्यधु[1] सकर निज्जूरो ॥
हेहक्का धर कप, चप नत्तर थी लग्गिय ।
चौकी गरत गुराइ, कोट ओटह उत भग्गिय ॥
सा दुर्ग देव सत्तरि पती, पति पहारु पिल्यौ[2] करिय ।
आहन हन हते वहत[3], निसि निसान सद्दह भरिय ॥११४॥

ग्रा पा १,से ३ दे ।

शब्दार्थः—अप्पानी=जोशीली । है हक्का=हुंकार गुराइ=मारी । सत्तरि=७० सीतर । पति पहारु= पहाड़राय । पिल्यौ=चढाया । सद्दह=ध्वनि । भरिय=परिपूर्ण होगई ।

अर्थः—किन्तु चालुक्यों का न तो वह जोश युक्त युद्ध ही बना रहा न वात चक्र स्वरूप आक्रमण ही रह पाया और न वे (चालुक्की वीर) शृंखला से छूटे हुए सिंह ही

कहे जा सके। हुंकार करती हुई चाहुवान की सेना ने उन्हें घर दबाया, जिससे पृथ्वी कम्पायमान हो गई और पहरा देने वाली दिवाल तुल्य प्रतिहारी-सेना की आड़ टूट गई। उस सित्तर दुर्गों के स्वामी (गुर्जरेश्वर) पर पृथ्वीराज के सामंत पहाड़राय तोमर ने हाथी को बढ़ाया। उस समय उस रात्रि में मार २ ध्वनि के साथ साथ नक्कारों की ध्वनि से दिशायें परिपूर्ण हो गईं।

दोहा

सद्दा सद्द उसद्द हुव, वज्जा वज्जिय लग्ग।
जूना जंजर वैर वल, भई सुरासर जग्ग ॥११५॥

मा. पा १ दे.।

शब्दार्थः—सद्दासद्द=आवाज के साथ आवाज। उसद्द=प्रतिध्वनि। वज्जा=बाजे। वज्जिय=बजने। जजर=जज्जर, यमराज। जूना=जोये गये, देखे गये, दिखाई पड़े। जग्ग=जागृत।

अर्थः—वीर घोष पर वीर घोष प्रतिध्वनित होने लगा और बाजे बजने लगे। प्रति शोध के जोश में आये हुए वे वीर ऐसे दिखाई पडे, मानों यमराज हों या देव और दानव जागृत हुए हों।

संभार सौ लग्गे समर, अंमर कौतिग एव।
घरी सत्त सत्तमि दिवस, उग्यौ उडग्गन देव ॥११६॥

शब्दार्थ.—संभरी=चाहुवान हरिराय। अंमर=अमर, देवता। एव=इस प्रकार। उडग्गनदेव=तारापति, चन्द्रमाँ।

अर्थः—देवतागण चाहुवान (हरिराय) के युद्ध कौतुक को देखते ही रहगये। उसके युद्ध करते २ उस सप्तमी तिथि के दिन सातघड़ी रात्रि जाने पर चन्द्रमाँ भी उदय हो गया।

है पग गै पग रथ अ-रत्थ, वढि बढी नर लग्गा।
के घायां घननंत भयें, भभरि भर लग्गा ॥
चालुक्का चंपौ सयन, सैं-दल सामंता।
गौ गिरद कैमास, भूप भोरां धावंता ॥
रथ सिलह सत्थ सज्जन कह्यौ, गहकि गज्जि भोरा सुभर।
को करै काल सौं चाल कित, महन रंभ मानों अमर ॥११७॥

तुटिदंत[1] अत पायक ढुहि, वहर रूप धावैं अछग ।
पग पगति सिंभ पग पग मुगति, मुगति लभ्य कित्ती सुजग ।। १२० ।।

ग्रा० पा० १ दे०

शब्दार्थः—तारि=ताड़ना देकर । ओडन= चांपपर । धखि=धके, वढे । नरध्वै=नर वीर । वहररूप= कटे हुए, क्षत-विक्षत । अछग=अक्षत । सिंम=शभू के ।

अर्थः—सामंत समूह ने युद्ध मे शत्रुपक्ष वालों को ताड़ना देकर उन्हे भगा देने के लिए तलवारें उठाईं, तब चालुक्या-वीर धनुप की चाप पर हाथ डालकर आगे बढा। उस समय रुड कट २ कर पृथ्वी पर लौटने लगे और लोथों पर लोथे अड गईं। श्रोणितधारा कल कल करके बहने लगी और सांसारिक मोहमाया का भ्रम नष्ट हो गया। रद पक्ति और ऑतडियॉ टूट टूट कर छिन्न भिन्न होकर विखर गयीं। कितने ही पैदल सैनिक घायल होकर लुढ़कने लगे और कितने ही क्षत विक्षत होते हुए भी रणाङ्गण में अक्षत रूप होकर फिरने लगे। वहॉ पग २ पर शिव के दर्शन होने लगे और पग २ पर मुक्ति प्राप्त होने लगी। साथ ही सचेत योद्धा कीर्ति के यश लाभ को प्राप्त करने लगे।

दोहा

कित्ती सजन जग्यौ[1] नृपति, सुर विध्वसन काल ।
वीस सहस पारस परिय, मनो वीर वर माल ।। १२१ ।।

ग्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—कित्ती=कीर्ति । सजन=सृजन । पारस परिय= घेग डाला ।

अर्थः—जब चालुक्य नरेश अपनी कीर्त्ति का सृजन करने को जग उठा तो ऐसा प्रतीत हुआ, मानों देवताओं के महत्व का ध्वस करने को स्वय यमराज जागृत हुआ हो। उसी समय बीस सहस्र चालुक्की योद्धाओं ने सामतों को इस प्रकार घेर लिया, मानों उस चाहुवानी दल के गले मे वीरों की वरमाल डाल दी गई हो।

भर पर भर वज्जैं सुभर, हय गय दल वल टुट्टि ।
चद उग्गि मध्थह चढ्यौ, वर अष्टमी अहुट्टि ।। १२२ ।।

शब्दार्थः—भर पर भर=एक वीर दूसरे पर झपटते हुए। वज्जैं=वार किया। अहुट्टि=जुट पड़ने पर।

अर्थः—उन श्रेष्ठ वीरों ने एक दूसरे पर झपटते हुए अनेकों वार किये, जिससे हाथी, घोडे और सेना का बल नष्ट हो गया। इस प्रकार अष्टमी की रात्रि को युद्ध करते २ श्रेष्ठ चन्द्रमाँ उदित होकर सिर पर आगया। (अर्थात् अर्ध रात्रि हो गई)।

सै वधन वंधन्न ब्रह्म, पंच पंच ले तत्त।
दल छिक्क छिप्पै मुकति, अप्पु भूत अपुतत्त ॥ १२३ ॥

शब्दार्थः—सें-वधन=बधन सहित । वधन्न ब्रहम=ब्रह्म के धन में पड़ गये। पंच ले तत्त= पच तत्वों में मिल गये। छिक्कत=पार करते हुए। छिप्पै=लिप्त हो गये। अप्पु=अपनी। भूत= भौतिक आत्मा। अपु=अर्पण करदी।

अर्थः—जो वीर सासारिक वधनों से युक्त थे, वे मरने पर ब्रह्म के वधन में पड़ गये। उनके पाचों तत्व पांचों तत्वों में मिल गये। वे सेना को पार करते हुए मोक्ष में लिप्त हो गये। उस समय उन्होंने अपनी भौतिक आत्मा को तत्वमय परमात्मा को समर्पित करदी।

सिसिर आइ काइर तनह, ग्रीपम सूर प्रमान,
वे तट्टे ये तत्त गुन, विधि विधान देवान ॥ १२४ ॥

शब्दार्थः—सिसिर=शिशिर ऋतु। आइ=आगया, प्रवेश कर गया, दिखाई पड़ा। सूर=बहादुर। तट्टै=त्रसटै, तृमित त्रासित, कपित। तत्त=तप्त, तेज। देवान=देवता।

अर्थ— उस समय कायरों के शरीर मे शिशिर और वीरों के शरीर में ग्रीष्म ऋतु दिखाई पडी। उनमें से पहले (कायर) त्रसित (कम्पित) और दूसरे (बहादुर) तप्त (तेजयुक्त) दीख पडे। कायरों और वीरों के लिये विधाता और देवताओं द्वारा निर्मित ऐसा स्वाभाविक नियम सदा से ही कहा गया है।

बालप्पन जुव्वन पन, लई बडप्पन कीत्ति।
धनि हालाहल विति तहाँ, भई कन्ह जिमि कित्ति ॥ १२५ ।

शब्दार्थः—जुव्वनपन=युवा होने पर। धनि=धन्य है। हलाहलत्रिचि=हलाहल तुल्य युद्ध होन पर।

अर्थः—धन्य है, उस नर नाह कन्ह को, जिसने जिस प्रकार बालपन से युवा होने तक बडप्पन द्वारा कीर्ति प्राप्त की, उसी प्रकार हलाहल तुल्य युद्ध के वातावरण में भी कीर्ति को प्राप्त किया।

कवित्त

धनि[१] सूर सामत, नौन है मिले अरिणि[२] अट।
इक भाग[३] हुइ रखा, भाग चव सट्ठि खार घट॥
ते दुसेन मुख धरिण[४], लज्ज सौ निट्ठि उतारैं।
मार मार उच्चार[५] खार सम्हौ गहि झारै[६]॥
उर धरयौ सिंधु सिंधव स्नर[७], उदर मद्धि फुट्यौ सुभट[८]।
चामड राइ दाहर तनै, नो न[९] नेह वध्यौ सुघट॥१२६॥

ग्रा पा १, २, दे । ३, ५, दे पा । ४, ६, से ६ दे

शब्दार्थः—अरिणि अर=शत्रुओं रूपी आटे में। दुसेन=दुसह्य। धरिण=धारण करने, उतारने। निट्ठि=मुश्किल से। सम्हौं=सामने, समक्ष। सिंधु=समुद्र या सिंधु नदी से बना हुआ। सिधव=सेंधव नमक।

अर्थः—पृथ्वीराज के उन बहादुर सामन्तों को धन्य है, जो शत्रु रूपी आटे मे नमक रूप होकर मिल गये। जहाँ आटे रूपी शत्रु समूह का वजन ६४ गुना था, वहाँ नमक स्वरुपी चाहुवानी वीरों का परिमाण केवल एक गुना ही था। यद्यपि उन खार-स्वरुपी योद्धाओं को मुख मे लेना दु सह्य था फिर भी उन चालुक्यों ने लज्जित होते हुए बड़ी कठिनाई से उन्हें (खार-स्वरुपी वीरों का) अपने मे उतरने दिया। (अर्थात् वे रोके न रुके सेना के मुहाने मे प्रवेश कर गये)। वे वीर मार मार शब्दोच्चारण करते हुए शत्रुओं के समक्ष लोहा झाडने लगे। फिर वे सिन्धु से उत्पन्न क्षार (नमक) स्वरूप योद्धागण शत्रु समूह के उर मे (मध्य भाग मे) प्रवेश कर गये। अन्य सामन्त तो वहाँ जाकर भी कुछ नहीं कर पाये, किन्तु उस उदर स्वरूप मध्य भाग मे जाकर एक ही सामन्त ने उसका (उदर स्वरुपी मध्य भाग का) विस्फोट कर दिया। वह वीर दाहिर का पुत्र चामण्डराय था, जिसका शरीर स्वामी के नमक और स्नेह के सयोग से बना हुआ था।

एक वीस इक्कईस, एक इक तीस सहस वर।
इक्क सहस इक्क डेढ, इक्क वल उभय मस्त्रझर॥
एक एक इक लख्ख, विलख[१] वल वीरणि देव।
(ते) जग्गि[२] वीर वीराधि, वीर वीरा रस सेव॥

मारु महन नांहर वली, हली क्रित्ती दक्खिण—वयह।
निड्डुर नरिन्द पजून वल, हाइ हाइ करि दिसि दसह ॥१२७॥
म्रा पा. १, २, दे।

शब्दार्थ·—विलख=दो लक्ष। वीरणि=वीर।

अर्थः—उन वीरों में शस्त्र झड़ी लगाने वाला एक एक वीर कोई बीस, कोई इक्कीस, कोई इकतीस, कोई एक हजार, कोई डेढ़ हजार, कोई दो हजार, कोई एक लक्ष और कोई दो लक्ष वीरों के समान था। उन सबका बल देवताओं के सदृश था। वे श्रेष्ठ वीर, वीर रस की उपासना के लिये बावन ही वीरों के समान जग पड़े। उनमें मारु महनसी, जिसकी वश सूचक उपाधि नाहर थी और जिसकी कीर्ति दक्षिण के राजाओं में फैल चुकी थी, उसकी तथा राजा निड्डुरराय व पज्जूनराय की शक्ति से दसों दिशाओं मे हाहाकार मच गया।

दोहा

हय हय गय नह सूर वर, दिक्खि भयानक देव।
जबूरा हम्मीर सों, भर भारत्थ वितेव ॥१२८॥

शब्दार्थः—हय=मारे गये। नह सूर वर=श्रेष्ठ योद्धा न रहे (बचे)। जंबूरा=जंबू पति। भर=भट, योद्धा। भारत्थ=युद्ध। वितेव=बीत गये, समाप्त होगये।

अर्थः—उस युद्ध में हाथी घोड़े और बहादुर कोई भी नहीं बच पाये। उस समय जंबू-पति हाहुली हमीर भयानक देव-स्वरूपी दिखाई पड़ा और उसी की शक्ति से उस युद्ध में विपक्षी (चालुक्य के) योद्धा समाप्त हो गये।

कवित्त

हय गय नर आहुटे, लुथि आहुट्टि लुत्थि पर।
इक्क हत्थ दुअ वि हथ, उच्च चढि खित्त मद्धि धर ॥
वलि वावन रामह सुग्रीव[१], पच पंडौ वल भारी।
जरासिध नरकेस, नरनि नर सिंघ उचारी ॥
इन समह समर इत देव मय, क्रत द्वापर कलियुग्ग मझि।
इन करिय सोह करि है न को, करो सु कोइन वत्त वुझि ॥१२९॥
म्रा० पा० १ घ०।

शब्दार्थः भा.े मिल पडे । भारि .. गई, पड़ गई । हत हत, मारा जाता हुआ भी । निहथ मार गिराता । अ.न नहि देखा पड़ता, .ना जाता, स्वर्ग गमन करता । विस थे । मद्धि मे । पर पर, सुमर । नरेस, नरेश, नप । .त किया । भोमि पृथ्वी, धरनी, सुनना ।

अर्थः—उस समय हाथी घोड़े और मनुष्य परस्पर भिड़ पड़े । लोथों पर लोथे पड़ गईं । उस रण क्षेत्र मे एक वीर मरता हुआ भी दो को मार गिराता था । यद्यपि उसका रुण्ड पृथ्वी पर ही पड़ा हुआ दिखाई देता था फिर भी वह सदेह स्वर्ग मे जाता दिखाई देता था । उन वीरो मे कोई बलि, कोई (पृथ्वी का तीन पैर करता हुआ) वामन, कोई सुग्रीव, कोई राम, कोई पाचों पांडव, कोई जरासंध, कोई नृप और कोई मनुष्यो में नृसिंह तुल्य कहा जाता था । उन सबका वह युद्ध देव-युद्ध तुल्य था । उन्होंने कलियुग मे भी द्वापर के समान महाभारत कर बताया । उन्होने जैसा युद्ध किया वैसा कोई नहीं करेगा । अत उनके सदृश साहस करने की बात के विषय मे किसी का कहना सुनना वृथा है ।

तरनि तेज तप हरन, भरन पोखन दोखन दल ।
उदर प्रति ज फारिय, उदर कढ़ि सु मयमल ॥
मत भट्टी जंकरिय, करिय कर दंत मस्त गहि ।
परी एक इक पाय, खग्ग लिक राग रोत रहि ॥
जपूर लग्ग मग्गान तब, पर तुट्टौ तामस वचन ।
चालुक्क आंन जंपै सुपह, रत्त सुरत्त भग्गो वचन ॥१२॥

मा० १ पा० ।

शब्दार्थः—तप प्रताप । पोखन पोषण । दोखन दूषित करने वाले । उदर पेट भित्र ह । ज जैसा । मल मैल, निरलता । जपूर जपुरा, जरोत हो.नि हमीर । लग्ग लगने पर, मिलने पर, नहीं हुआ, नहीं भगा । थान ठहराई ।

अर्थः—उन वीरो का तेज सूर्य के समान था जो दूसरो के प्रताप का हरण करने और अपने साथियों का भरण पोषण करने वाला तथा विपक्षियो को दूषित करने वाला था । ऐसे तेज धारियों ने शत्रुओं को मित्र.क बना दिया और उनके उदर से निरलता को निकाल दिया । उसी समय चालुक्य पक्षीय वीर भट्टी ने अपने हाथों से हस्ति दन्त ग्रहण कर बल प्रदर्शित किया और वह एक ही पैर पर एक पा.े तक तलवार

को टेक कर रण क्षेत्र में खड़ा जंबूपति हाहुलीराय हम्मीर के भिड़ने पर भी वह नहीं हटा। वह तमोगुण युक्त वचन कहने और चालुक्य की दुहाई देने लगा। उस समय उसका मुख अरुण वर्ण गया और नैत्रों से आग बरसने लगी।

दोहा

नयन वयन तन अग्गि जगि, कित्ति अग्गि जगज्जग्गि।
वर विताल जगम विहँसि, दये सीस नर खग्गि ॥१३१॥

शब्दार्थ:—अग्गि=अग्नि। अग्गि=आगे, सामने। जगजग्गि=जगमगा उठी। विताल=वेताल।

अर्थ:—उसके नैत्रों से, वाणी से और शरीर से अग्नि प्रज्वलित हो गई, जिससे उसकी कीर्ति जगमगा उठी। उस वीर ने जब अपना मस्तक युद्ध में कटवादिया तब यह दृश्य देखकर रणस्थल में डोलते हुए वीर वेताल उसकी वीरता पर हर्षित हो गये।

रण-खग्गा भग्गा-न को, पत्ता चालुक राइ।
हमीरां हम्मीर वर, भो वर बीर विभाइ ॥१३२॥

शब्दार्थ:—रण-खग्गा=युद्ध में कट पड़ा। भग्गा-न को=नहीं भगा। पत्ता=चल पड़ा, हटगया। हमीरा हम्मीर=अमीर योद्धाओं से अमीर योद्धा। विभाइ=क्रूर भाव युक्त, भयानक।

अर्थ:—उस युद्ध में चाहुवान के वीर सामंत तलवार से कट पड़े; किन्तु भागे नहीं। उन वैभव सम्पन्न वीरों के एक दूसरे से भिड़ने पर, वीर रस ने भयानक स्वरूप धारण कर लिया। यह देखकर चालुक्य नरेश रणस्थल से चलपड़ा।

कवित्त

सुअन सूर सामत, मत लग्गे विरुझानं।
रा चामण्ड जैतसी, राम वड गुज्जर दान ॥
उहिग वाह पगार, कन्ह कूरभ पजू न।
खीची राव प्रसंग, चंद पुण्डीर सु दून ॥
महनंग मेर मारू मरद, देव राज वग्गरि सलख।
देवकन[1] कुअर अल्हन अनुज, इनवीरा रस लखि अलख ॥१३३॥

[1] मा० पा० १ पा०।

शब्दार्थ:—सुग्गन=पुत्र, वंशज । मत=मतवाले । निरुझानं=उलझे । दान=दानी, दान वीर । सुदून=दुगुना । मेर=मेरु, सुमेरु । अलख=अलक्ष ।

अर्थ:—वीर सामंतों के वंशज (पुत्रादि) मतवाले होकर विपक्षियों से उलझ पडे । जिनमे प्रमुख, चामंडराय, जैत्र प्रमार, दानवीर रामराय वड गुज्जर, उहिगपगार, कन्ह, कछवाहा पज्जून, प्रसंगराय खींची, दुगुना श्रेष्ठ वीर चन्द पुण्डीर, सुमेरु तुल्य, मरुदेशीय मरदाना महन्सी, देवराज वग्गरी, सलख, कुमार देव कन्न, और उसका भाई अल्हन आदि थे, जिनका वीरत्व अलक्ष (नभूतो न भविष्यति) देखा गया ।

निड्डर बर नर सिंघ, वीर भोंहा भर रूप ।
वीर सिंह बर सिंघ, गरुअ गोइंद अनूप ॥
रा वड गुज्जर राम, बलिय बभन रस वीर ।
दाहिम्मौ नर सिंघ, गरुअ सारँग रन धीर ।
चालुक्क वीर रन सिंघ दे, दै दुवाह दुज्जन दहन ।
सुरतान गहन मोखन चहै, चालुक्का लग्गो महन ॥ १३४ ॥

शब्दार्थ:—भररूप=योद्धाओं की शोभा स्वरूप । गरुअ=बड़ा, भारी । बभन=ब्रह्म राय । दै दुवाह=दोनों हाथ फैलाये । महन=महान, विशेष तौर से ।

अर्थ:—श्रेष्ठ वीर निडडुराय, नरसिंह, योद्धओं का शोभा स्वरूपी वीर भोंहा, वीरसिंह, वरसिंह, अनुपम वीर बडा गोविन्दराय, बड गुज्जर रामराय, वीर रस स्वरूप, बलवान ब्रह्मराय, दाहिमा नरसिंह युद्ध मे धैर्य रखने वाला भारी वीर सारंगराय, और रनसिंह देव-चालुक्क आदि वीरों ने शत्रुओं का दमन करने के लिये दोनों हाथ फैलाये, बादशाह को पकड़ने और छोड़ने की इच्छा रखने वाले वे वीर चालुक्यों को ग्रहण स्वरूप होकर विशेष रूप से लग गये (भिड गये)।

घट्टिय घट्टनि घट्ट, कौन दिक्खे इन भंतिय ।
(ज्यों) प्रात उडग्गन चंद, दीह दीपक ज्यों कंतिय ।
तमसि तमसि सामंत, जाइ वर बीर सुरु ध्यौ ।
उभयपुत्त इक बधु, भीम भारथ बल बध्यौ ॥
औ हनय हथ्थ लग्गी तनह, उपम चंद सारह करिय ।
भूमली रत्ति मे चक्र खग, मनोचंद है विस्तरिय ॥ १३५ ॥

शब्दार्थः—घट्टिय=घड़ी । घट्टनि=घटी । घट्ट=शरीर । भंतिय=भांति । कंतिय=कांति । भीम=पृथ्वीराज का सामंत जघारा भीम । चद-सरह=सार वशी, बंदीजन कविचंद ।

अर्थः—उस समय वीरों के शरीर पर ऐसी घड़ी (विषम काल) के बीतने पर युद्ध स्थल में वे ऐसे दिखाई पड़े, जैसे प्रात काल होने पर प्रभाहीन तारे और चन्द्रमॉ तथा दिन मे जलता हुआ कांतिहीन दीपक दिखाई देता है। यह देख कर क्रोधित हो तेहुए श्रेष्ठ वीर सामन्त जघारा भीम ने शत्रुओं को रोंध दिया। और उसने अपने दो पुत्रों और एक भाई के सहित युद्ध मे वज्र वृाद्ध को, उसके हाथ चलाने और शत्रुओं के शरीर पर वार करने की तुलना करते हुए सारवशीय कविचंद कहता है कि उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानों उसकी बांकी अलवार ने धूमिल निशा में चन्द्ररूप धारण करके विस्तार पाया है।

नर नाहर ज्यों लर्यौ, अयुत नाहर धर खंड्डिय ।
नाहर राइ नरिंद, खेत माया तन छड्डिय[1] ॥
ढढौरी जै[2] ढाल, हाल चालुक्कह कड्ढौ ।
आंन राज प्रथिराज, लाज सांई सिर चड्ढौ ॥
हसि कहिरु वाग कड्ढिय वली, मिलि मर्यौरि सम्हौ लर्यौ ।
जाने कि अग्गि लग्गी वनह, वस दाव दव्व प्रज्जर्यौ ॥१३६॥

प्रा० पा० १ पा० । २ घ० पा० का० ।

शब्दार्थः—नर नाहर=नृसिंह । अयुत=दस हजार । ढढौरी=टटोल ली ।, जै-ढाल=अजेय ढाल, स्वरूपी वीर । हाल=चरित्र । मर्यौरि=मरोड़ता हुआ । सम्हौं=समक्ष । वस=वांस । दव=दावाग्नि ।

अर्थः—वीर नाहरराय (प्रतिहार) नृसिंह के समान ही लड़ पड़ा और उसने दस हजार सिंह सदृश वीरों को पृथ्वी पर खंड २ करके डाल दिये और तब उसने भी रण क्षेत्र में माया रूपी (पचतत्वमय) शरीर से छुटकारा पा लिया। (युद्ध करने के समय) उसने अजेय ढाल स्वरूपी वीरों को टटोल कर चालुक्यों के चरित्र को प्रकट कर दिया। स्वामी-लज्जा को सिर पर चढ़ाकर उसने पृथ्वीराज की दुहाई फिरा दी। हँस कर वीर घोष करते हुए उस बलवान ने घोड़े की रास बढाई और शत्रु दल में प्रवेश कर वह शत्रुओं को मरोड़ता हुआ, समक्ष होकर लड़ने लगा। उस समय ऐसा प्रतीत हुआ मानों वन में आग लग गई हो या दावाग्नि से दग्ध होकर बांस प्रज्ज्वलित हो गये हों।

बड गुज्जर रा जैत, छत्र देखै पट्टनवै ।
वै नीसानी मार, घाट गिर वर घट्टन वै ॥
अधरा खडन खग्ग, झग्ग झूरे सु पमारह ।
मनो साली जंग, पान कुट्टै गमारह ॥
रा रामदेव देवत्त तुव, जाजै जोरि जुहथ्थ किय ।
नर नाग देव देवी विहसि, पजुलि पजु प्रहास दिय ॥१३७॥

शब्दार्थः—छत्र=छत्रधारी। पट्टन वै=पट्टन वाले। निस्सानी मार=लक्ष वेधी वार। घाट=तरह। घट्टन वै=घटने जैसे, ध्वस करने जैसे। अधरा-खडन=ओष्ठ दबाता हुआ। झग्ग=झड़िग, झाड़ता हुआ। झूरे=झाड़ दिये। साली=साल, चावल। पान=पाणि, हाथ। गमारह=गँवार, जगली ग्रामीण। तुव=स्तुव, स्तुति किया हुआ। जाजै=जूझवार। जोरि=खड्ग को मुट्ठी में मिला कर, ग्रहण कर। हथ्थकिय=वार किया। प्रहास=अट्टहास।

अर्थः—रामदेव बड गुज्जर और जैत्र प्रमार ने पट्टन पति के छत्रधारी वीरों की ओर देखा। उस समय उनके लक्ष्य वेधी वार पहाड़ों को ध्वस करने जैसे (वज्रघात से) प्रतीत हो रहे थे। यह देखकर ओष्ठ दबाता हुआ और खड्ग के प्रहार की झडी लगाता हुआ प्रमार वीर भी शत्रु दल को इस प्रकार नष्ट करने लगा मानों युद्धस्थल रूपी क्षेत्र (खेत) में ग्रामीण लोग (वीर) हाथों से साल (चावल) कूट रहे हों। उसी तरह देवताओं द्वारा स्तुति किये हुए जुझवार बड गुज्जर रामदेव ने भी अपनी खड्ग को मुट्ठी मे ग्रहण करते हुए वार किया। जिसे देखकर नर, नाग, देवी, देवताओ ने हर्षित हो कर पुष्पाजलि अर्पित की। (अर्थात् फूल बरसाये)।

जिन थक्का जरि देव, सेव थक्की मातगी,
धर थक्की धर भार, थक्यो[1] शिव माल सुरगी ।
धर थक्का करिवार, वान थक्का कमाना ।
मुख थक्का मुखमार, ठान थक्का तुर काना ॥
थक्कान जैंत जज्जर बली[2], कलिन राम गुज्जर अरी ।
चालुक्क राय गुज्जर पती, धाइ धाइ धुमर परी ॥ १३८ ॥

प्रा० पा० १, २, पा० ।

शब्दार्थ.—जिन=जैनधर्मावलम्बी, चालुक्य। सेव=सेवा करती हुई, उत्तर देती हुई। मातगी=रण-चंडी। ठान=ठानते हुए, स्थापित करते हुए। तुरकाना=तुरुक। जज्जर=काल, यम। कलिन=कल

िये, दल २ में फंसा दिये। घाइ-घाइ=भाग २ कर। धुमर परी=दिशाओं को धूमिल करदी।

अर्थः—जैन धर्मावलम्बी (चालुक्य) देव मंदिरों को जलाते हुए, रण चण्डी उन (चालुक्यों) के क्रूर कर्मों का उत्तर देती हुई, पृथ्वी उन भार स्वरूपी (चालुक्यों) वीरों का भार वहन करती हुई, शिव मुरगी मुण्डमाला पिरोते हुए सामन्तों के हाथ वार करते हुए कमानों से बाण चलाते हुए, वीरों के मुख मार २ घोषणा करते हुए और विपक्षी चालुक्य मुसलमानों को दिल्ली के भूभाग पर स्थापित करने के लिए निमत्रण देते हुए थक गये, किन्तु यम स्वरूपी जैत्र प्रमार और रामराय बड़गुज्जर शत्रुओं को दल २ में फँसाते हुए नहीं थके। उन वीरों की मार से चालुक्येश्वर और चालुक्की वीर के भागने पर दिशाएँ रजाच्छादित होकर धूमिल वर्ण की होगई।

दोहा

परि रारि हिन्दुवान सों, सोजत्ती रति वाह।
दिल लग्गा वरदाइ वल, जे हदे हथ वाह ॥१३९॥

शब्दार्थः—सोजत्ती=सोजत्री, गुजरात, काठियावाड़ में एक स्थान। रतिवाह=रात्रि का युद्ध, (रात में छापा डालना)। जे हदे=हनदे, जिन्होंने चलाये। हथ वाह=हाथ (तलवारों का वार किया)।

अर्थः—इस प्रकार सोजत्री नामक स्थान पर हिन्दुओं में रात्रि का युद्ध हुआ और तलवार चलाने वाले वीरों की कीर्ति का वर्णन करने में (मुझ) वरदाई कवि का भी दिल लग गया।

कवित्त

हय-हय-हय उच्चार, देव देवासुर भज्जिय।
रह-रह-रह[1] उच्चार, घाइ घाइं घट वज्जिय ॥
त्रह त्रह त्रह त्रासंत, वहुल खग खग्गं गट्टन।
टूक टूक उत्तरिय, वाजि नर सुभ्भर पट्टन ॥
हरि-वास हार-हर-हरु मुलिय, धुत्र मडल सहह डुलै।
मंगल धनेव भारथ्थ किय, जिन सुब्रह्म साघन खुलै ॥१४०॥

मा. पा. १ का.।

शब्दार्थः—हग-हग-हग=मार, मार ध्वनि। रह-रह-रह=ठहरो, ठहरो। बहुल=बहुत से। गहन=गहुन, गांठी, जोड़ी, मिलाई। ठूक ठूक=ठहक ठहक, ठनठनाती हुई। उतरिग=उतार दिये, पार कर दिये। धाम=स्थान। हरु=हरा, पार्वती। मंगल=मंगल प्रद। भनेव=भग है।

अर्थः—देव तुल्य वीरों के मार २ उच्चारण से देवता और दानव भयभीत होकर भागने लगे। उन वीरों ने ठहरो ठहरो कहते हुए एक दूसरे के शरीर पर शस्त्राघात किया। उन वीरों द्वारा त्रसित शत्रु त्राहि त्राहि करने लगे। उस समय बहुत से वीरों ने तलवार से तलवार को मिलाई। जिससे ठनठनाती हुई उसने पट्टन पति के (गुर्जरेश्वर के) घोड़े, सैनिक और कितने ही श्रेष्ठ योद्धाओं को (भवसिंधु से) पार कर दिया। उस युद्ध को देखने मे लगकर हरि अपने निवास स्थान को और हर मुण्ड माल तथा हरा (पार्वती) को भूलगये। उन सामन्तों के ऊर्ध्व घोष से ध्रुव मण्डल भी कंपित हो गया। धन्य है उन वीरों को जिन्होंने विपत्तियों के लिये यह मङ्गल प्रद युद्ध किया, जिससे उन जैन धर्मावलम्बियो (चालुक्यों) के लिये ब्रह्म प्राप्ति के साधन का द्वार खुल गया।

दोहा

सर्ब ध्यान बंधन सु ब्रह्म, पच पच लै तत्त।
पच पंच पंचह मिलै, अप्प भूत अह बत्त ॥१४१॥

शब्दार्थः—बंधन=बंधगये, बंधन में आ गये। पच-पच=दसों इन्द्रियें। अप्प अर्पित कर गये। भूत=प्राणियों को। अह-बत्त=यह बात, अपनी यह यश ख्याति।

अर्थः—मृत्यु को प्राप्त करने वाले वे वीर ब्रह्म के ध्यान के बंधन मे बँधगये। वे दसों इन्द्रियों के तत्व (शक्ति) को साथ ले गये, और तब दसों इन्द्रियाँ पचतत्व मे मिल गई। (अर्थात उन्हें वे शून्य रूप मे शरीर के साथ छोड़ गये) इस प्रकार वे बचे हुए प्राणियों को अपनी यश ख्याति (कहानी) अर्पित कर चलते बने।

दोहा

दस सहस्र दुअगुज परिग¹, रहि दरबार जुझाई।
हसम सहित हैवर समित, कतिहुन बान सिराइ ॥१४२॥

पा० पा० १ दे०।

शब्दार्थः—दुश्र-भुज=दोनों तरफ के भुजा स्वरूपी वीर। जुझाई=जूझने पर, हमला करने पर। परिग=चल बसे। वान=तीर। सिराई=चल सकते थे।

अर्थः—मुख्य खेमे पर आक्रमण होने से दोनों ओर के दस हजार यौद्धा अपने घोड़ों और सेना सहित युद्ध में काम आये। उस समय रणस्थल में इधर उधर पड़ी हुई लाशों के ढ़ेर के कारण बाण नहीं चल सकते थे।

लुत्थि रही दरबार गुथि, घरी पच असि रीस।
तिन महि सक कयमास सथ, रहिग अठारह वीस ॥१४३॥

शब्दार्थः—असि रीस=क्रोध पूर्वक खड्गाघात हुआ। सक=साका करने योग्य।

अर्थः—इस प्रकार क्रोध के कारण खड्ग युद्ध द्वारा खास खेमे में पाँच घड़ी तक लोथों से लोथें गुथ गईं (गुत्थम गुत्था हो गई)। उनमें से कयमास के शाका करने (प्रसिद्ध युद्ध छेड़ने) योग्य केवल अठारह या बीस साथी ही शेष रहे।

अप्पा ही आपां जुरिग, भग्गा धरवर धाइ।
मुवान को म्रत जाकरह, कट्ठी कट्ठन खाइ ॥ १४४ ॥

शब्दार्थः—अप्पां ही अप्पां =आपस में ही। मुवान को=कौन नहीं मारा गया। म्रत=मौत के आगे। जा करह=उसके हाथ से। कट्ठी=काठी की। कट्ठन खाइ=डंडे की मार खाकर।

अर्थ—भोले के अंग रक्षक काठी वीर के डंडे की मार के आगे बहुत से तो आपस में ही भिड गये और उनके श्रेष्ठ धड़ बढ़ते हुए नष्ट हो गये। ऐसा कौन शेष रहा, जो उसके हाथ से नहीं मारा गया [अर्थात् कोई मारा गया और कोई घायल होकर ही बचा]।

कवित्त

आयौ कट्ठी स्वामि काज साहन सामंता।
बारह सें वानेत, सुम्रत ह्व ढन धावंता॥
है वे लग्गे हत्थ तत्थ, भोरेरा कज्जै॥
जो वित्त कु वित्तयौ, देव दरवार सुगज्जै॥
संग्राम लगिग संकट सु पहु, पहु प्रहास पिंगीय पहरु[1]।
दुट्टै[2] जि सस्त्र छत्री सिरणि[3], गिनत होइ[4] ब्रह्मा गहरु॥ १४५ ॥

प्रा० पा० १, ४ दे०।

शब्दार्थ –सहन=ग्रहण करने योग्य बानैत=धनुर्धारी। सु–गत=मृत गत वीरों को। है नै=हैवर, घोड़े। मारै–रा–कज्जै=भोरा भीम के युद्ध में। वित्तक=नात। लग्गि=लग गये, होने लगे। सु पहु= राजवंशी योद्धा। पहु=राजा, चालुक्येश्वर। प्रहास=परिहास। पिंगिगपहरू=पिंगल वर्ण समय होने पर, उषा समय। जि=जितने। छत्री छत्रियों के। सिरषि=सिर। गहरु=देरी, समय।

अर्थः—इस प्रकार युद्ध करता हुआ सामन्तों को गृहण करने योग्य कट्ठी वीर अपने स्वामी के कार्य के लिए मारा गया। उस समय बारह सहस्र धनुर्धारी वीर मृत वीरों के शवों को खोजने में लग गये। उन्हें भोरा भीम के साथ होने वाले उस युद्ध मे विपत्तियों के बहुत से हाथी और घोडे हाथ लगे। जो होनहार था वही होकर रहा। वे देव स्वरूपी वीर विजय होकर विपत्तियों के मुख्य खेमे मे प्रवेश करके गर्जना करने लगे। कट्ठी वीर के मरने पर उषाकाल होते २ वे राज वंशी सामत विपक्षी चालुक्येश्वर पर युद्ध- आपत्ति ढोने लगे, जिससे उस (भोरा भीम) का परिहास ही हो पाया। वहाँ पर शस्त्राघात द्वारा जितने क्षत्रियों के मस्तक कट पड़े, उनकी गिनती करने में ब्रह्मा को भी देर लगी।

का कट्ठी जुझ्झयौ, रह्यौ राणिग[1] देउ[2] दर।
जेन सहू धरि छत्र, मंत्र निव्वह्यौ मंडि सिर॥
गरुअ राइ पैरभ, रह्यौ ग्यारह सै सेभर।
पहारिय[3] राइ पवार, नेहु निव्वह्यौ सु निव्वर।
जानैन चद आनँद अनँत, सहस तीन- तेरह परिय।
गुज्जरिय ग्रेह संदेह मिटि, सहस मत दह निव्वरिय॥ १४६॥

प्रा० पा० १ से ३ दे०।

शब्दार्थ –का=क्या, [कहाँ तक प्रशसा की जावे]। दर=द्वार पर, [द्वार रक्षक होकर]। सहू= सब। धरिछत्र=छत्रधारी। मंडिसिर=सिरपर झेलकर। गरुअ राइ=बड़ा गोविन्दराय। पैरभ=पैरने वाला, पार लगाने वाला। ग्यारहसै=ग्यारहसौ। सेंभर=सभरो, चाहुवानी वीर। पहारिय राइ=पहाड़राय तोमर। पवार=प्रमार, [सिंह प्रमार]। निव्वह्यौ=निभाया। निव्वर=निम्मर, निर्मल, पवित्र। मत=मतवाले। निव्वरिय=निपट पाये।

अर्थ—कट्ठीवीर के जूझने की प्रशसा कहाँ तक की जाय (कथनीय है) उस युद्ध मे रानिग देव (मकवाना) मुख्य खेमे का द्वार रक्षक होकर डटा रहा ओर भी जितने

छत्रधारी जैन धर्मावलम्बी (चालुक्य) थे, उन्होंने आपत्ति को सिर पर झेलते हुए, आपस मे जो युद्ध मन्त्रणा हुई थी उसको निभाया। उस समय बडे गोविन्दराय (चाहुवान) ने ग्यारहसौं चाहुवान वीरों को उस युद्ध-आपत्ति से पार किया (वचाये) उस समय पहाडराय तोमर और प्रमार वीर (सिंह प्रमार) ने भी पवित्र प्रेम को निभाते हुए साथ दया कवि चद कहता है कि मैं उस हर्ष प्रद चरित्र को नहीं जान सका, जिनके आघातों से एक हजार विपक्षी तीन तेरह होकर (तितर बितर होकर) नाश को प्राप्त हो गये और जिससे गुर्जर देशीय वीरों के मन मे ,जो शङ्का (चाहुवानो सेना को तुच्छ समझने की) थी वह मिट गई। उन सहस्र विपक्षियों से केवल दस मतवाले चाहुवानी सामन्त ही निपट गये [दस सामन्तों ने एक सहस्र विपक्षियों पर विजय प्राप्त की]।

जित्यौ रति रतिवाह, सिंघ लीनौ गज घेरिय।
वलि दाहिम कैमास, दियौ चालुक मुख-फेरिय॥
वरति-संग वे थांन, राइ भोरा हय मड्डिय।
दिसि दिसान कग्गद प्रमान आव आवन-लगि छड्डिय॥
ढुंढयौ खेत सामत भर, आपन पर उत्तारयौ।
तिन राति[1] रारि चहुवान दल, मत सुमंत विचारयौ॥१४७॥

ग्रा० पा० १ पा० का०।

शब्दार्थः—रति=रात्रि। सिंघ=सिंह प्रमार। मुख-फेरिय=मुँह फिरा दिया, युद्ध से हटा दिया। व ति-संग=साथियों में बीती। वे-थान=उस स्थान पर। हय-मंडिय=घोड़ों को पलाने, विदा हुआ। आव=आना। आवन-लगि=अवसर आने तक। उत्तार्यौ=उतारे, पार किये।

अर्थः—इस प्रकार (सामत वीरों ने) रात्रि में छापा मारकर विजय प्राप्त की। सिंह प्रमार ने चालुक्येश्वर के हाथी को घेर लिया और दाहिमें कयमास ने उसको युद्ध स्थल से हटा दिया। अपने साथियों के साथ ऐसी घटना घटित होने पर भोराराय ने अपने घोड़े पलाने (विदा हुआ) और दसों दिशाओं मे अपने पक्ष वालों को आज्ञा पत्र भेज कर यह संदेश दिया कि अवसर आने पर जब बुलाया जाय, तब वे आकर उपस्थित होवें। इधर सामन्तों ने रण क्षेत्र की खोज की और अपने तथा पराये मृतवीरों का अतिम संस्कार द्वारा उद्धार किया (मोक्ष प्राप्ति करवाई)। उस रात्रि के युद्ध में चाहुवानी सेना के मतवाले वीरों ने अपनी सु मंत्रणा का इस प्रकार भलिभाति निर्वाह किया (जैसी प्रतिज्ञा थी उसका अत तक पालन कर विजय प्राप्त की)।

सलख युद्ध

(समय २१)

दोहा

प्रह[1] पग्गह[2] उग्गह[3] ति रण[4], भिरण[5] भूप चहुवान ।
स्यघालोकन[6] कथ्य[7] कहि, सुकवि चन्द बरुखान ॥ १ ॥

प्रा० पा० १, घ०, । २, का० । ३ से ७ दे० ।

शब्दार्थः—पग्गह=पहुंचे । उग्गह=उगाहना, अवगाहन करके, मन्थन करके । ति=वे । भिरण=भिड़ा । स्यघालोकन=सिंहावलोकन ।

अर्थः—पृथ्वीराज के सामन्त भोला भीम की सेना का युद्ध में संहार (मथन) कर अपने घर पहुँचे । उसी समय गोरीशाह के साथ पृथ्वीराज ने युद्ध छेड़ दिया, जिसका वर्णन मैं (कविचन्द) करता हूँ और चालुक्यों के साथ हुए युद्ध का भी प्रारम्भ में सिंहावलोकन कराता हूँ ।

धन त्रिधन दोइ धपहि, धपहि रन वीररु काइर ।
छुट्टें बल-वे पान, वीर हक्के बल साइर ॥
अथम जुद्ध नह आदि, जुद्ध हिंदवान हिन्दु बर ।
चाहुआन सुरतान, कहों कलहत केलि भर ॥
आ देवसेन चहुआन किति, चालुक्का लग्गो[1] भिरन ।
सम सुगति बंध बंधे बलिय, सुबर वीर लग्गे ति रण ॥ २ ॥

प्रा० पा० १ घ० ।

शब्दार्थः—धन=धनिक । त्रिधन-निर्धन । धपहि-तृप्त होते, संतोष करते । छुट्टें=छूटे, बचे । बल-वे=बलवानों के । पान=पाणि, हाथ । हक्के=बढ़े, आक्रमण किया । आ=इस । देवसेन=देवताओं । किति=कीर्ति । लग्गो-लग गये, भिड़े ।

अर्थः—जिस प्रकार धनवान और निर्धन दोनों ही तृप्त (धनवान सुख से और निर्धन दुःख से) दीखते हैं, उसी प्रकार वीर और कायर युद्ध में (मारते हुए और मार सहते हुए) संतुष्ट दिखाई देते हैं । कायर (चालुक्य) बलवानों के हाथों से छूट कर (बच कर) और प्रचण्ड वीर (चाहुआन-सामन्त) आक्रमण कर प्रसन्नता का

अनुभव करने लगे, क्योंकि हिन्दुस्तान के श्रेष्ठ हिन्दू आदि काल से ही निकृष्ट तरीकों से युद्ध नहीं करते हैं। इसलिये अब मैं चाहुआन (पृथ्वीराज) और सुलतान (शाहबुद्दीन) की युद्ध-क्रीडा का वर्णन करता हूँ। चालुक्यों के साथ हुए युद्ध में भी पृथ्वीराज चहुआन की कीर्ति देवताओं के समान ही रही थी; इसी प्रकार शाह के साथ हो रहे युद्ध में भी शक्तिशाली वीर मोक्ष प्राप्ति की इच्छा कर युद्ध-रत हुए।

गाथा

ढिल्लिय ढाहन सस्त्र, बज्जिय आवाज राज राजेन्द ।
ग्रामपुर अजमेर, जग्गे सय वीर विक्कंदं ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—ढाहन=ढहाने, ध्वस करने। ढिल्लिय=दिल्ली। राजराजेन्दं=राज राजेश्वर पृथ्वीराज। जग्गे=जागृत हो गये, तत्पर हो गये। विक्कंदं=निकंद करने वाले, नष्ट करने वाले।

अर्थः—जिस समय राजराजेश्वर पृथ्वीराज और अजमेर नगर के सौ सामन्तों ने विपक्षियों द्वारा दिल्ली को ध्वस्त करने वाली शस्त्रों की खनखनाहट सुनी, उसी समय वे उनका नाश करने के लिये तत्पर हो गये ।

दोहा

सयन-सिंह लग्गा सु अरी, सुनि करी वर प्रथिराज ।
सारूँडे सम्हो चढ्यौ, तहँ गोरी प्रतिबाज ॥ ४ ॥

शब्दार्थः—सयन-सिंह=सुषुप्तसिंह। लग्गा=लग गये, आधमके। संम्हो=सामने। चढ्यौ=चढा, चलपड़ा। बाज=बाजी लेने को, बाजी मारने को।

अर्थः—सोये हुए सिंह के समान पृथ्वीराज ने जब सुना कि हाथी के समान शक्तिशाली शत्रु गोरी आगया है, तब वह उससे (गौरी से) युद्ध करने के लिये सारुंडे की ओर रवाना हो गया।

गाथा

भारद्वाज सु पखी, उभयो[1] मुक्ख उदरयो इक्कं ।
त्यौं इह[2] कथ्थ प्रमानं, जानिज्यो कोविदं लोई ॥ ५ ॥

मा० पा० १, २, दे०।

शब्दार्थः—भारद्वाज=एक पक्षी जिसके दो मुह होते हैं। इह कथ्थ=यह बात। लोई=लोगों।

अर्थः—हे कोविदों! इन दोनों युद्ध घटनाओं को इस प्रकार समझना चाहिये, जिस प्रकार भारद्वाज पक्षी के एक पेट और दो मुँह होते हैं। दोनों मुखो से यह पक्षी जिस प्रकार अपने खाद्य को पेट मे लेता है, उसी प्रकार चाहुआन-सेना ने चालुक्यों और सुलतान दोनों से एक साथ युद्ध ठाना।

दोहा

उत भोरा भीमग सौं, सूरणि[1] सध्यौ[2] सार।
इत प्रथिराज नरयद[3] के, दूत आइ दरबार[4] ॥ ६ ॥

प्रा० पा० १ से ४, दे०।

शब्दार्थः—सूरणि=सामन्तों ने। सध्यौ=साधन किया। नरयद=राजा।

अर्थः—उधर भोरा भीम (के साथियों) के साथ सामन्तों ने लोहा लेना प्रारभ किया, इधर उसी समय राजा पृथ्वीराज की राज सभा में कुछ दूत आकर उपस्थित हुए।

अग भसम जगम जु गति, जटा जूट सिर मडि।
कसि लँगोट म्रिग चर्मपट, वड आडमर हडि ॥ ७ ॥

शब्दार्थः—मडि=सजा हुआ। वड=बड़े। आडमर=आडम्बर से। हडि=चलते थे।

अर्थः—उन दूतों के अगों पर भस्म मली हुई थी और उनके रहन सहन का ढग चलते-फिरते साधुओं के समान था। उनके सिर पर जटा जूट बधा था और लगोट कसी हुई थी तथा मृग-चर्म पहने हुए थे। उनकी चाल आडबर-युक्त थी।

नयनि जोति बत्तनि विदुख, अस न दभ कहु आन।
खबरि होत बुल्ले निकट, दुआ दिन्न[1] चहुवान ॥ ८ ॥

प्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थ—बत्तनि=बातें; विदुख=विद्वता युक्त। अस=ऐसा। न=नहीं। आन=अन्य में। दुवा=आशीर्वाद दिन=दी, दिया।

अर्थ:—उनके नेत्रों से ज्योति प्रगट होती थी, उनकी बातें विद्वत्तायुक्त थी और उनके समान दूसरे में दम्भ नहीं था। उनके आने की सूचना पाकर चाहुवान राजा (पृथ्वीराज) ने उन्हें बुलाया। उन्होंने उपस्थित होकर राजा को आशीर्वाद दिया।

साटक

श्री चहुवान-नरयद[1], इंद अवनीभूपाल-भूपालय।
जबू द्वीप महीप दीपणि[2] बलं, कीत्तिति विस्तारय।
खग्गं त्रास मेवास त्रास त्रसन, गर्भानि गर्भ गलं॥
तोय जैति जिहांन भांन तपनं[3] त्वनं[4] दिष्टा जे बल॥ ६॥

प्रा० पा० १, २ दे०। ३, ४ पा०।

शब्दार्थ:—इंद अवनि=अवनि पति। दीपणि=दीप्तिमान। बल=शक्ति से। गर्भानि=अभिमानियों के। गल=निगल गया। जिहांन=जहाँ=जहाँ-न, पृथ्वीपर। त्व-नं=तेरे समान नहीं। दिष्ट=दिखाई देता। जे बलं=जो भी अन्य बलवान।

अर्थ:—वे दूत कहने लगे, हे अवनिपति, जम्बूद्वीप के राजाओं में तेजस्वी और राजाओं के राजा-चहुआन राजा! आपने अपनी शक्ति से कीर्तिका व्यापक विस्तार किया है; आपकी तलवार से भयभीत हो मेवास प्रान्त त्रस्त रहता है और आपने अभिमानियों के अभिमान को भी नष्ट किया है; ऐसे हे सूर्य के समान तेजस्वीराजा-आपकी जय हो। आपके समान बलवान राजा संसार में दूसा नहीं देखा गया।

दोहा

सुनि दुवाह जंगम चरणि, आडम्बर तिन तिच्छ।
रिमिझय गल्हाँ गुर सुनत, कहौ खबरि की मिच्छ॥ १०॥

शब्दार्थ:—दुवाह=दुवा, आशीर्वाद। चरणि=दूतों से। तिच्छ=तत्क्षण, उसी समय। गल्हाँ=बखान। रिझिझय=प्रसन्न हुआ। खबरि=खबर। मिच्छ=मुस्लिम की। की=क्या।

अर्थ:—आडम्बर युक्त शारीरिक वेशभूषा वाले चलते फिरते योगियों रूपी दूतों के मुख से आशीर्वाद और अपनी कीर्ति का वर्णन सुनकर राजा प्रसन्न हुआ और उनसे पूछा कि मुस्लिम शत्रुओं की क्या खबर है? (उसे मेरे समक्ष कहो)।

कहै दूत दिल्लेस सुनि, परचि[1] वत्त[2] सुरतान[3] ।
हम आए तब उनि[4] कियौ, बाहिर नगर मिलान ॥ ११ ॥
ग्रा० पा० १ से ४ दे० ।

शब्दार्थः—सुनि=सुनिये । परचि=रचना पूर्वक । उनि=उसने । बाहिर=बाहर । मिलान=प्रस्तान किया, डेरा डाला ।

अर्थः—दूतों ने रचना पूर्वक (बात बनाकर) कहना शुरू किया, हे दिल्लीश्वर ! सुनिये , जब हम वहाँ से रवाना हुए, तब उसने (बादशाह ने) शहर के बाहर प्रस्थान किया (डेरा डाला) ।

कहै विवरि सांई सुनौ, गज्जनेस सह भेउ ।
तीनि लक्ख साहन सबल, अबल अमत अतेउ ॥ १२ ॥

शब्दार्थः—भेउ=भेद । साहन=अश्वारोही । अकल=ज्ञान नहीं हो सकता । अमत=कुमत्रणा । अतेउ=अपार ।

अर्थः—वे कहने लगे, हे स्वामी ! गजनी पति के भेद को सुनिये, (हम उसका वर्णन व्यौरेवार, क्रमश करते हैं) । उसके अधीन तीन लाख सबल अश्वारोही है, जिनकी अपार कुमत्रणाओं का ज्ञान नहीं हो सकता ।

वके मुख वके चखनि[1], वकी करणि[2] कमान ।
वक्र दीह सम करि गिनै[3], वके खग्ग अमान ॥ १३ ॥
ग्रा० पा० १, २, दे० । ३ दे० पा० ।

शब्दार्थ—वके=बांके । चखनि=नयन । करणि=हाथ में । वक्रदीह=आपत्ति के दिनों को । अमान=अमानी, नहीं मानने वाले, हठी ले ।

अर्थः—उनकी आकृति-मुँह और आँखें-वक्र है और सदा हाथ मे रहने वाली कमानें भी टेढी हैं । वे कठिन समय को भी सम-भाव से मानते है । उनके पास टेटी तलवारे हैं तथा वे जिद्दी (हठी) है ।

दोहा

कहै दूत पृथिराज सम, मिच्छ सयन[1] वर जोर ।
सहर निकसि डेरा भए, वव वज्जि घन घोर ॥ १४ ॥
ग्रा० पा० १, २ दे० ।

शब्दार्थ—सम=से। मिच्छ सयन=म्लेच्छ सेना। बरजोर=बलशाली। बंब=रणवाद्य।

अर्थः—दूतों ने आगे कहा—हे राजन्, मुसलमानी सेना शक्तिशाली है। जब उसने शहर से बाहर आकर खेमा डाला, तब उसके रणवाद्य तुमुल घोष से बज उठे।

कवित्त

सुनत सुअन[1] सोमेस, भिख्ख[2] भयभीत[3] भयउ[4] तन।
रोस रंग प्रज्जुलिग, मंगि संनाह-अमर जन॥
हयनि[5] हुकम किय दैन, मत्त गज[6] अंदुणि[7] खुल्लिय।
नालि गोल जुत जम, हसम हाजर सह बुल्लिय॥
लोहान बुल्लि[8] आदर अनंत, विवरि वत्त दूतनि[9] कही।
विफ्फुरे वीर हुंकनि[10] सुनत, जनुकि पुंछ म्यडी[11] अही॥ १५॥

म्रा०पा०१ से ४, ६ से १० दे०। ५ पा०।

शब्दार्थः—भिख्ख=भेख। भयभीत=भयंकर। सनाह-अमर=अक्षय कवच। जन=दास। हयनि=घोड़ों को। दैन=देने की वितीर्णा करने को। अंदुणि=शृंखलाओं से। जम=जंमूरे, छोटी तोपें। हसम=सेना। हाजर=उपस्थित। विफ्फरे=उन्मत्त हो गये। हकनि=हुंकार। म्यंडी=मसल दी गई।

अर्थः—दूतों की बातों को सुन कर सोमेश्वर के पुत्र पृथ्वीराज की शरीराकृति भयंकर हो गई और वह क्रोध से जल उठा। उसने दासों से अपना अक्षय कवच मँगवाया और सामन्तों को घोडे देने की आज्ञा दी। मस्त हाथियों को जंजीरों से खोला गया और यान्त्रिक आग्नेयास्त्रों को तय्यार किया गया। उपस्थित सैनिकों को तय्यार होकर आने की आज्ञा दी और सम्मान के साथ लोहाना आजानबाहु को बुलाया तथा दूतों द्वारा दिया गया विवरण सुनाया। दूत-वाक्यों और स्वामी की आज्ञा से बहादुर इस प्रकार उन्मत्त हुए मानो सांप की पूँछ मसल दी गई हो।

पुछ[1] चपि जनु चील, स्यंघु,[2] सोवत जग्गाइय।
हक्काल्यौ[3] कि वराह, द्रग जनु अग्गि लगाइय॥
वरह छता के छेरि, गाइ व्यानी वग्गानिय।
कै जग्गाए वीर, भोर भारथ मग्गानिय॥
विरचयौ एम लोहान सुनि, तत्र कत्र मिच्छनि[4] करौं।
सोमेस आन सुरतान धर, तर उप्पर गज्जन[5] धरौं॥ १६॥

म्रा० पा० १ से ४ दे०। ५ भीं० पा०।

शब्दार्थः—पुंछ=पूंछ। स्यघु=सिंह। हक्काल्यौ=ललकारा, घेरा गया। दंग=चिनगारी। धरङ्क्षता=मधु मक्खियों का छाता। छेरि=छेड़ा। वग्गांनिय=व्याघ्रनी, सिंहनी। मग्गांनिय=रास्ता। एम=इस तरह। धर=पकड़ कर। धरौं=धर दूंगा।

अर्थः—(वीर इस प्रकार उन्मत्त हो उठे) मानों चील द्वारा सर्प की पूछ दबाली गई हो, अथवा सोये हुए सिंह को जगाया हो, या वराह को घेरा गया हो, अथवा चिनगारी द्वारा आग लगादी गई हो, अथवा मधु मक्खियों के छाते को या व्याही हुई गाय तथा शेरनी को छेड दी गई हो, अथवा युद्ध मार्ग पर सहायतार्थ बावनहीं वीर जगाये गये हों। उसी तरह राजा की आज्ञा को सुन कर वीर लोहना क्रोध मे आकर कहने लगा कि मैं मुसलमानों को तितर बितर कर दूँगा। मुझे राजा सोमेश्वर की आन है कि मैं निश्चित ही गौरी शाह को पकड कर गजनी को उथल पुथल कर दूंगा।

सुनि अवाज सुविहांन, सलख अब्बू लज[1] रक्खन।
सहस सत्त सजि सेन, गिलन गौरी भर भक्खन॥
गजनि[2] पति ढुलि ढाल, तत्त तुक्खार[3] पक्खरिय।
जत्र गोर गहराग, मिलन मिच्छांन मच्छरिय॥
अनभूत भूत संनाह सजि, वजि निसान घन घुम्मरिय।
इम जैत सु बन दु बननि दहन, लरण[4] लोह मनु[5] गु मरिय॥ १७॥
प्रा० पा० १ से ५ दे०।

शब्दार्थः—सुविहान=सुभान, 'मुसलमानों का खुदा स्वरूपी शहाबुद्दीन। अब्बू=आबू राज वश की। गिलन=गिल जाने के लिये। तत्त=तेज। तुक्खार=घोड़े। पक्खरिय=पाखरों से सजाये गये। गहरांग=गहराये, गहरी आवाज होने लगी। मच्छरिय=मच्छर, मस्ती। सुबन=भली प्रकार से सुसज्जित होकर। मनु=मन में। गुमरिय=गरूर ले आया।

अर्थ—मुसलमानों की ललकार को सुन कर आवू वश की लाज रखने वाले वीरवर सलखानी ने गौरीशाह को भस्मसात करने और उसके साथियों को नष्ट करने के लिये सात हजार बहादुरों की सेना सजाई। हाथियों पर ढालें हिलने लगी, तेज गति से चलने वाले घोड़ों पर पाखरें डाली गई, आग्नेयास्त्र गंभीर नाद करते हुए छूटने लगे, बादलों की गड़गडाहट के समान युद्ध के नक्कारे बजने लगे। और

मुसलमानों के साथ युद्ध में जूझ पड़ने के लिये लोहाना वीर उन्मत्त हो उठा। उस असाधारण वीर ने अपना कवच धारण किया। इस प्रकार प्रमार-वीर जैत्र सुसज्जित होकर शत्रुओं रूपी वन को अपनी लोह ज्वाला द्वारा जलाने को तत्पर हुआ।

पुनि गुज्जर वलि दंड, लोह अनदंडनि डंडन।
रहसि राम रण[1] रंग[2], नथन अन नथ्थन संडन॥
अट्ठ ससस असवार, सार पाहार प्रवत्तिय।
दांन ध्यांन असनांन, सोक संसार निवत्तिय॥
अनन्यत[3] आइ सारंड सह, जनु अकाल पावस मँडे।
आवाज साहि श्रवननि[4] सुनत, सकल सुख्ख विभ्रम छँडे॥ १८॥

प्रा० पा० १ से ३ दे०। ४ सर्वप्रति

शब्दार्थः—गुज्जर=बड़गुज्जर। रहसि=रहस्य। संडन=वृषभ। पाहार=प्रहार। निवत्तिय=निवृत्त। अनन्यंत=अचानक, बिना बुलाये।

अर्थः—दण्डित नहीं किये जाने वाले वीरों को अपनी शक्ति से दण्डित करने वाला कौतुक से आयोजित की गई रण क्रीड़ा में नहीं नाथे जाने वाले शक्तिशाली बैलों के समान वीरों को काबू करने वाला, शस्त्राघात में प्रवृत्त रहने वाला, स्नान, ध्यांन, दान आदि सुकर्म करने वाला, तथा सांसारिक दुःखों से निवृत्त रहने वाला बलवान बड़ गुज्जर रामराय अपने आठ हजार अश्वारोही साथियों के साथ सारुंडे नामक स्थान पर इस प्रकार अचानक आ पहुँचा; जैसे प्रलय काल में मेघ आकर अचानक उमड़ पड़े हों। उसके आ पहुँचने की आवाज सुनते ही बादशाह के सांसारिक सुख-रूपी भ्रम विलीन होगये।

फुनि आइय[1] गुरराम, माम भुज डंड समर जिहि।
जनु[2] भारथ्थह[3] द्रोन, श्रोन वर खंत सस्त्र जिहि॥
अश्व अयुत तिहि तीनि[4], ग्यांन विग्यान विनांनिय।
मंत्र जत्र आराध, सथ्थ जिन वीर विग्यांनिय।
आसीस आंनि चहुआन दै, कहा विरम साजि-न-चलौ।
चपै न सीम साहाब सक, धकधकि धर करि हौं प्रलौ॥ १९॥

प्रा० पा० १ भीं० पा० घ०। २ का० घ०। ३ घ० दे०। ४ दे०।

शब्दार्थ.—माम=मान, समान । शोन=शोणित । विनानिय=विनय । सीम=सीमा, भूमाग । साहाब—सक=यवन शहाबुद्दीन । धक-धकि-धर=धधक पैदाकर, कोधाग्नि प्रगट कर । प्रलौ=प्रलय ।

अथः—इतने मे गुरुराम पुरोहित भी आपहुँचा, जिसके भुज दण्डों का युद्ध मे सम्मान होता था, जिसमे महाभारत के द्रोणाचार्य के समान शौर्य और शक्ति थी, जिसके शस्त्र-प्रहारों से युद्ध क्षेत्र मे खून की धारा बहती थी और जिसमे दस सहस्र अश्वारोही वीरों के समान ज्ञान, विज्ञान एवं विनय-तीन शक्तियाँ थी। मत्र, यन्त्र और आराधना ही जिसके वीर साथी थे, ऐसे गुरुराम पुरोहित ने आकर पृथ्वीराज को आशीर्वाद और दिया कि क्या देर है ? सजकर शीघ्र प्रस्थान करना चाहिये और शहाबुद्दीन जब तक अपने भूभाग पर कब्जा नहीं करे उससे पूर्व ही हमे सचेत हो जाना चाहिये और क्रुद्ध हो-प्रलय मचा देना चाहिये !

दोहा

दिखि[१] डरांन[२] डम्मर सयन, गहकि गज्जि नीसान ।
धर धुमर अबर मिलिय, मुदित रोस रीसान ॥ २० ॥

ग्रा० पा० १, २ दे० ।

शब्दार्थः—डरांन=डरने लग गये । डम्मर=आडम्बर । धु मर=धूम्रवर्ण की रज । मुदित=उत्साह युक्त । रोम=क्रोध करके । रीसान=तम तमा उठे ।

अर्थः—तत्काल सेना सजाई गई । सेना की सजावट को देखकर लोग भयभीत हो गये । गम्भीर घोष से नक्कारे बज उठे और पृथ्वी से धूम्रवर्ण की धूल (रज) उड कर आकाश में मिलने लगी । योद्धागण उत्साहित हो उठे और क्रोध से उनकी आकृति लाल होगई ।

कवित्त

सहस पच दस सेन, अलप चहुआन सँघातिय ।
बाल पोस प्रित्यग[१], सस्त्र सत्रग निघातिय ॥
चमर तबल टकार, हक हकार हकारिय ।
लोह छक्क धर धक्क, कक अनसक बकारिय ॥
सहस तीस सह सेन मिलि, गिलन मिच्छ गज्जे गहर ।
तिन सग वीर वेताल चढि, पढत मत बढ्ढे कहर ॥ २१ ॥

ग्रा० पा० १ दे० ।

शब्दार्थः—बाल पोस=बचपन से ही साथ साथ पले हुए। प्रितयंग=प्रेम। सत्रंग=शत्रुओं के अग को। घातिय=घात करने वाले। छक्क=छके हुए। धक्क=धाक, आतक। कंक=कंकाल, शरीर-अनसंक=निर्भय। वक्कारिय=ललकारने लगे।

अर्थः—चाहुवान के अल्प संघाती १५००० पन्द्रह हजार थे, जो बाल्यकाल से ही साथ-साथ पले थे (अर्थात् बालमित्र थे), और जो शस्त्रों द्वारा शत्रुओं के अगोंपर आघात करने वाले थे, ऐसे वीरों पर चॅवर ढुलने के साथ २ तबलास्त्र की टकारें होने लगी और वे हुँकार करते हुए आगे बढकर शत्रुओं को विचलित करने लगे। लोहे से छके हुए वे वीर आतक फैलाते हुए निर्भयकाय शत्रुओं को ललकार ने लगे। तीस सहस्र सगठित म्लेच्छ सेना को नष्ट करने के लिये वे गंभीर गर्जना करने लगे। उनके साथ मंत्र पढ़ते हुए वीर वेताल चल पडे, जिससे रण क्रीड़ा में और भी वृद्धि हो पाई।

सजि धायौ चहुवान, साहि सारौंड सु सभरि,
उत जित्यौ रतिवाह[1], चपि चाल्लुक निसंकरि[2] ॥
धनि सुभाग पृथिराज, राह भोरा विड्डार्‌यौ।
अरि अनत कलहंत, सेनु सामंतनि झार्‌यौ ॥
यौ (यो) लग्ग एखग्ग उढि हथ्थतें, (ज्यौं) त्रीय-नयन मत्ते मयन।
गाहंन गहन दुज्जन दलन, सुवर सूर सज्जिय सयन ॥ २२ ॥

१ आ० पा० १, २ पा० दे०।

शब्दार्थः—सारौंड=सारंडा नामक स्थान। सभरि=सुनकर। निसंकरि=निश्शंक, निर्भय। विड्डार्‌यौ=विड्डारदिया, भयभीत कर दिया, भगा दिया, परास्त किया। त्रीय—नयन=तृतीय नैत्र। मत्ते मयन=मतवाला कामदेव।

अर्थः—इधर बादशाह के 'सारुडे' पहुँचने की खबर सुन कर पृथ्वीराज चहुआन तय्यार होकर रवाना हुआ और उधर चाहुआन के सामन्तों ने रात्रि में धावा कर चालुक्यों को दबा लिया तथा पृथ्वीराज के सौभाग्य से भोला भीम को परास्त कर रास्ता साफ कर दिया एव उन्हीं सामन्तों ने शहाबुदीन की अपार सेना पर हमला कर दिया उनके हाथों की तलवारें इस प्रकार तेजी से उठ उठ कर प्रहार करने लगी मानो मदोन्मत्त कामदेव के लिये शिव का तीसरा नैत्र खुल गया हो। ऐसा लगता

था उन शक्तिशाली वीरों ने भयकर शत्रुओं को नष्ट कर देने के लिये ही सेना को सजाया हो।

लोहानो अगिवान, सैन सै-पच हलक्किय ।
पच सहस सो सोम-पुत्त, करि तोन खलक्किय ॥
गै[1]-डडा-नीसांन, एक दह[2] अट्टह भेरिय ।
श्रो छगी सनाह, फौज चहुवान हकेरिय[3] ॥
उत्तंग ढाल कीवै रखे[4], को हके अट्ठारहां ।
निसि जाम तीनि बित्ते पतिय, पंजूराय सुढारहां ॥

ग्रा० पा० १ पा० । २ से ४ दे० ।

शब्दार्थः—सै-पच=पांचसौ । हलक्किय=हलकारा, बढाया । करि=कर, हाथ । तोन=तोण, भाथा । खलक्किय=खलकाया, खाली किया । गै=हाथी । डड-निसान=ध्वजदड । एक-दह-अट्ठह=गुन्नीस । ओछगी-सनाह=कवच अग मे नहीं समाता । हकेरिय=हकारा, आगे को । उतग-ढाल=ढालें ऊँची उठाई । कीवै रखे=रक्षार्थ । को=कोई २ । हके=चलाने लगे । अट्ठारहा=अठारह टकी कमाने । पतिय=पहूँचा । पजूराय=कछवाहा पज्जूनराय । सुढारहा=भली प्रकार मे ढाहने वाला, पछाड़ने वाला (या सुडोल) ।

अर्थः—उधर वीर लोहाना ने आगे होकर पाच सौ सैनिकों को बढाया और इधर सोमेश्वर का पुत्र पृथ्वीराज पांच हजार सैनिका सहित आगे बढ कर बाण वृष्टि करने लगा और अपने तरकस को खाली करने लगा। गुन्नीस रण भेरियाँ बजने लगी और हाथियों पर ध्वज दण्ड फहराने लगे। उस समय रणोन्मत्त वीरों के अग मे कवच नहीं समा पाते थे। चाहुआन राजा ने शत्रु सेना को आगे कर लिया और भगा दिया। कोई भागता हुआ शत्रु अग रक्षणार्थ ढालों को ऊँचा उठाता और कोई अठारह टकी कमानों से बाण चलाता जाता था। इस प्रकार रात्रि की तीन प्रहर युद्ध करते हुए बीत गई। उसी समय शत्रुओं को और अधिक त्रस्त करने और कुचलने के लिये वीर वर पज्जूनराय भी आ पहुँचा।

दाहा

दल सज्जिग सुलितान[1] ने, ह्वै गै गगन गँभीर ।
जनुभद्दों भर उन्नमत, नाद भान बनि[2] वीर ॥ २४ ॥

प्रा० पा० १, दे० । २ पा० ।

शब्दार्थः—गँभीर=गहरे। मद्दों=माद्रपद। उन्नमत=उमड़े। बाइ=वायु पवन। मान=मानु, सूर्य।

अर्थः—सुलतान की सजाई हुई सेना, घोड़े और हाथियों के कारण घने बादलों के समान दिखाई देती थी और सुलतान के यौद्धा भाद्रपद मे उमड़ते हुए मेघों के समान मालूम होते थे, उनका संहार करने के लिये चाहुआन और उसके अविचल यौद्धा पवन और सूर्य के समान बने हुवे थे। (वायु के चलने और सूर्य के उदय होने से बादल नहीं ठहरते)।

कवित्त

खां खुरसांन ततार खांन, रुस्तम्म अधिकारी।
वलिय[1] खांन पेरोज[2], मियां[3] रोजन रजधारी॥
खां-रुमी[4] हवसी हुजाव, खानि[5] खाना रुस्तम खां।
जमन जुद्ध वर सुद्ध, सुद्ध अनिरुद्ध मुस्तखां॥
सुरतान चमाउ हथ्थ धरि, गहकि गज्जि खग हथ्थ लिय।
रक्खे सुजीय हम साह सुनि, जौ बंधै चहुवांन जिय॥२५॥

प्रा-पा. १ दे।२ पा दे.। ३, ४, ५, दे.।

शब्दार्थः—पेरोज=पिरोज। खानि=वंशज। जमन=यवन। जुद्ध=मुग्ध, अनुरागी। अनि=सेना। रुद्ध=रोंधने वाला। चमाउ=सेना। हथ धरि=हाथ में लेकर, नियन्त्रण करते हुए। गहकि=गहरी। जिय=जीता।

अर्थः—खुरासांन खां, तत्तार खां, अधिकारी रुस्तम खां, बलवान पीरोज खां, राजसी ठाट-बाट रखने वाला मिया रोजन (रमजान खां) रुमी खां, हवशी खां, हुजाद-खां, खांन वंशज रुस्तम खां और युद्धानुरागी, शुद्ध मन वाला एवं सेना को कुचलने वाला मुस्त खां (मुस्तफा खां) आदि ने सुलतान की सेना का नियन्त्रण कर गर्जना करते हुए हाथों में तलवारें लीं और कहा — हे शाह! यदि हम पृथ्वीराज को जीवित पकड़ लेंगे तब ही हम जीवित रहेंगे (अन्यथा नहीं)।

कवित्त

बोल[1] मंनि[2] सुलतांन[3], बाह लंबी पस्सारिय,
हे हिंना सुरसान, मरण ताई[4] अधिकारिय।
सरण जाइ खुरसांन, वधि मारुफ[5] मुह ग्गल[6]॥
खेलि खांन सजि प्रांन, सेंनु सज्यौ दिसि जंगल।

बढि सु बर भिस्त अरु वचन जिय, आनंद्यौ गौरी गरुव,
धाए सुधूय बद्दर मनौ, सस्त्र धार धावै धरुव ॥ २६ ॥

ग्रा० पा० १ से ६, दे० ।

शब्दार्थः—मनि=मानकर। हिंना=हीन, तुच्छ। खुरसान=मुल्क। ताई=तक। जाइ=जिसके। मुह=मुझ। गल=गले में। खेंलि=खेल ले, बाजी लगाले। खांन=गोरी। भिस्त=बहिश्त। धरुव=धुर वा बादल।

अर्थः—सुलतान की बात मान कर मारुफ खॉ ने लम्बी बॉहें कर कहा—खुरासांन मुल्क हमारे लिये तुच्छ हैं, और मृत्यु पर्यन्त हम उसके अधिकारी हैं। जिसकी (शहाबुद्दीन की) शरण में खुरासान मुल्क है, वह मुझ मारुफ के गले मे बॅधा हुआ है। मेरा सिर कटने पर ही उसका अनिष्ट हो सकता है)। हे खान! (गोरी) तुम सज्जित होकर प्राणों को बाजी लगादो, क्योंकि जगली राजा (पृथ्वीराज) के विरुद्ध तुमने सेना सजाई है। यदि हम कट जायेंगे (मर जायेंगे) तो बहिश्त नसीब होगी और जीत जायेंगे तो वचन का पालन होगा। मारुफ के इन वचनों को सुनकर गौरीशाह बहुत प्रसन्न हुआ। उसी समय सेना इस प्रकार आगे बढी मानों धूम्र वर्ण के बादल बढे हों, शस्त्रों की धारें भी बादलों से छूटती हुई वारि-धारा के समान दीखने लगी।

दोहा

पाइ दाइ धरवर धरै, सद मद रोसतु जग।
दुअन दिखाऐ दिक्खियैं[1], जनु विस भरे भुअग[2] ॥ २७ ॥

ग्रा पा १ दे। २ का।

शब्दार्थः—पाइ=पैर। दाइ=दाव। सद=शीघ्रता से। रोसतु=क्रोध करते हुए। दुअन=विपक्षी शत्रु। भुअग=भुजग, सर्प।

अर्थः—युद्ध के लिये क्रुद्ध सेना के मदमस्त हाथी इस प्रकार चलने लगे मानो दावने के लिये चले हों। महावतों के सकेतानुसार शत्रु-सेना की ओर देखते हुए वे ऐसे प्रतीत हुए, मानों विषधर भुजग देख रहे हों।

निसि पद्धरी नरिन्द तौं, सज्जिसेन चहुआन।
मिले पुव्व पच्छिम हुते, चाहुआन सुरतांन ॥ २८ ॥

शब्दार्थः—पद्धरि=अच्छी । पुव्व=पूर्व ।

अर्थः—कवि कहता है :— हे चहुआन नरेश्वर । तेरे लिये यह रात्रि अच्छी है, जिसमें तुमने यह सेना सजाई है। उसी समय पूर्व से चहुआन और पश्चिम से सुलतान ससैन्य युद्ध के लिये आकर मिले ।

हय गय दल वद्दल सु वन, नर भर मिलि चतुरंग ।
चाहुवान सुरतान[1] सों[2], वढिय रारि रन जंग ॥२६॥

आ पा १, २ पा. ।

शब्दार्थः—वद्दल सु वन=वद्दल के समान वनी ठनी थी । कित=करने को ।

अर्थः—हाथी घोड़ों से युक्त सेना-वादलों के समान मालूम होती थी और सैनिकों के साथ सामन्तों के मिलने पर चतुरंगिनि की भांति दिखाई पड़ती थी, दोनों सेनाओं के मिलने पर चहुआन और सुलतान क्रुद्ध हो युद्ध के लिये सन्नद्ध हो गये ।

घरी इक्क[1] पल-विपल-हुअ, लोह खोलि खुरसांन ।
उररि परे दुव दलनि वल, चाहुआन तुरकांन ॥३०॥

आ पा. १ पा ।

शब्दार्थः—पल-विपल-हुअ=एक दूसरे की पलकें विपल (स्थिर) हो गई, नजर से नजर मिली । उररि-पडे=उमड़ पडे, तीव्र गति से वढे ।

अर्थः—एक पल के लिये एक दूसरे की नजर मिली और मुसलमानी सेना ने शस्त्र खोले (उठाये)। चाहुवान तथा मुसलमान दोनों अपने २ दल के वल पर तीव्र गति से वढ़ चले ।

लैं सभरि पति सगुन वर, पुट्ठि पवन प्रथिराज ।
जुग्गिनि चक्र अचक्क[1] वर, सा[2] सम्ही[3] अरिकाज ॥३१॥

आ पा १ दे । २, ३ दे. का ।

शब्दार्थः—सगुन=शकुन । पुट्ठि पवन=पीछे की हवा नौकादि को वढाने में जिस प्रकार सहायक होती है, उसी प्रकार स्वपक्षी वीरों का वल पाकर । जुग्गिनि चक्र=योगिनी पुर (दिल्ली) का चक्रवर्ती । अचक्क=कु चक्र कु चक्र स्वरूपा खड्ग । सा=उसे । सम्ही=सम्हाई, पकड़ी ।

ऐसी किसकी सामर्थ्य थी, जो पृथ्वीराज का सामना कर सकता, क्योंकि उसके साथ ही वीर सलख, मीरों को नष्ट कर रहा था। उसकी शक्ति के आधार पर पृथ्वीराज हँसता हुआ तलवार लेकर आगे बढ़ा। उसकी तलवार से हाथी कट कट कर गिरने लगे और शेष नाग भी डगमगाने लगा। इस दृश्य को देख कर दानव, देवता और नाग गण पृथ्वीराज की जय-जयकार करने लगे। पृथ्वीराज ने उस समय निर्दयी बनकर अद्भुत युद्ध किया और ब्रह्मयज्ञ संभूत वीर होते हुए भी उसने मानव प्राणियों को निर्जीव करना शुरु किया। (ब्रह्मा-सृष्टि बनाता है, किन्तु उसी के द्वारा उत्पन्न किये हुए चहुआन ने सृष्टि-सहार-कर्ता का रूप धारण किया)।

वड गुज्जर वलिवड-राम[1], तत्तार मँडिय[2] रन।
सार धार उभभरिय, श्रोन भंभरिय गगन तन॥
लोह हड्ड उड्डंत, हंस छुड्डंत[3] श्रीर सर।
फिरत रुड विन मुंड, दति[4] विन सुंड सार भर॥
अद्भुत भयान समहर[5] मचिय, रचिय-रक्तु[6] कालिय[7] कहर।
इक लरत गिरत घुंमट घटनि[8], भटकि नट्ट मंडिय वहर॥ ३६॥

ग्रा पा १ से ३ दे, । ४ पा । ५ भीं पा दे । ६ का । ७, ८ दे ।

शब्दार्थ:—राम=रामराय । मँडिय=छेड़ा । उभभरिय=भड़ने लगी । श्रोन-भभरिय=शोणित झरने लगा । गगन-तन=गगनवत उन्नत शरीरों से । हस=मराल तुल्य, प्राणात्मा । श्रीर-सर=शरीर रूपी सरोवर । समहर=समर, युद्ध (या युद्ध कर्ताओं ने) । रचिय-रक्तु=रक्त रंजित । वहर=इंद्रजालिक दृश्य, कृत्रिम हाथ, पैर, सिर आदि कटे हुए बतलाना ।

अर्थ:—उसी समय शक्तिशाली रामराय वडगूजर और तत्तारखा मे युद्ध छिड गया। शस्त्रों की धारें भड़ने लगी ऊँचे शरीरों से खून बहने लगा। खड्ग-प्रहार से हड्डियाँ कट कट कर उड़ने लगी और शरीर रूपी सरोवर को प्राण रूपी हँस छोडने लगे। मस्तक रहित धड और खड्ग प्रहार से सूंड रहित हाथी दौडने लगे। उस स्थान पर उस समय अद्भुत और भयानक मार-काट मच गई। इससे विघ्न स्वरुपा काली भी रक्त रंजित हो गई। कोई वहाँ लड़ रहा था तो कोई गिर रहा था और अनेकों शरीर भूम रहे थे। इससे रणागण का दृश्य ऐसा हो गया मानों नट ने इन्द्रजाल का खेल रच दिया हो।

भांन दिक्खि धुम्मलौ[1], रेण[2] उड्डिय[3] धर धुंमर ।
चकित[4] देव गंधर्व, ईस चक्कित गुन[5] अंमर ।
भं नयंन सुधि[6] विद्ध, अग्गि उड्डिवि असि टोपं ।
मनु त्रिनेत तियनेत, उघरि दिक्खत त्रय कोपं ॥
घरि एक एक इक[7] मिक्क हुअ, महनरंभ मच्यौ कि बिय[8] ।
इक गिरहि परहि तुट्टहि[9] तननि[10], इमि छत्रिय छितिपर सुभिय ॥ ४० ॥

प्रा० पा० १ पा० दे० । २ से ४ दे० । ५ पा० । ६ दे० । ७ भीं० घ० । ८ से ११ दे० ।

शब्दार्थः—भान=भानु, सूर्य । रेण=रज, धूलि । ईस=शिव । गन=शिवगण । अमर=आकाश । भ—नयन=नेत्रों को हुआ । सुध=सुधि, ज्ञान, (भ्रम) । विद्ध=विधि, तरह । अग्गि=आग । उड्डिवि=उड़ी, झड़ी । असि= खड्ग । टोपं=टोप, शिरस्त्राण । त्रिनेत=तृतीय नैत्र । तिय नेन=तृतीय नेत्र, तीसरा नैत्र । त्रय=तीनों को, त्रिलोकों को । इक मिक्क=एक मेक, गुत्थम गुत्था । महन रंभ=महान रंभ, आरंभ महायुद्ध, महाभारत युद्ध । बिय=दूसरा, द्वितीय । तननि=शरीर को, शरीर से । सुभिय=सुशोभित हुए, शोभा प्राप्त की ।

अर्थः—उस समय पृथ्वी पर से धूम्रवर्ण की धूलि के उड़ने से सूर्य धुँधला होगया । आकाश-स्थित देवता, गंधर्व, शंकर तथा शंकर के गण चकित मालूम पड़े । शिरस्त्राणों पर खड्ग के आघात से आग झड़ने लगी, उसे देख कर ऐसा ज्ञात होता था मानो शिव ने अपना तीसरा नैत्र खोला हो और उससे तीनों लोकों पर—कोप-दृष्टि की हो । वे वीर एक दूसरे से एक घड़ी तक इस प्रकार उलझ गये, जैसे दूसरा महा भारत युद्धही छिड़ गया हो । उस समय कोई गिरता हुआ और कोई कट कर टुकडे२ होता हुआ दिखाई देता था । ऐसा भयानक युद्ध करते हुए क्षत्रिय—गण युद्ध—स्थल में-सुशोभित हो रहे थे ।

दोहा

कन्ह हते घर अप्पने, सुधीन पाई रारि[1] ।
तनक भनक सी सुनत ही, जानि करक्को[2] धारि ॥ ४१ ॥

प्रा. पा. १, २ दे ।

शब्दार्थः—हते=थे, था । जानि=मानों । करक्को=कड़का हो, गर्जना की हो । धारि=धारा, वारिधर, मेघ ।

अर्थः—नरनाह कन्ह, भोलाराय से युद्ध कर सीधा घर (जागीर) चला गया था, इसलिए उसे सारुंडे के युद्ध की सूचना नहीं मिली, किन्तु जब युद्ध छिडने की थोडी सी बात कान मे पड़ी तो वह युद्ध स्थल मे आकर ऐसा गर्जा जैसे मेघ घुमड़ कर अचानक गर्ज उठा हो।

कवित्त

धारि धाप धपि कन्ह, आनि अनच्यत[1] परिय रण।
हवस[2] हसम सघरण[3], जानु दव[4] दग सुक्क वन ॥
आपाढी - डंडूर, तोरि तर-मूल उखारिय।
कै व्याई व्याघिनि सुपत्त, उकति आखेट उछारिय ॥
रुट्टौ कि रिंछु[5] रच्छस[6] दलणि[7], समर सेनु[8] धक्कह धरिय।
नखतु[9] जानि सरवर सुभर, कढि सरोज मत्तौ करिय ॥४२॥
ग्रा पा १ से ६ दे।

शब्दार्थः—अनच्यत=अचानक। हवस हसम=मुस्लिम सेना। दव=दावाग्नि। सुक्क=सुखा दिया या सूखे वन में। डडूर=वात चक्र। सुपत्त=सोती हुई। उछारिय=उछली, झपटी। रिंछु=जामवत। नखतु=डूबाते हुए।

अर्थः—कन्ह लम्बी मजिल पार कर छलांगे मारता हुआ अचानक आकर युद्ध करने लगा, जिससे मुस्लिम-सेना का इस प्रकार सहार हुआ मानो युद्ध-स्थल रुपी अरण्य को दावाग्नि ने जला दिया हो। या आषाढ के वात चक्र ने वृक्षों को जड से उखाड दिया हो अथवा सोती हुई प्रसूता सिहनी शिकारी द्वारा घिर जाने पर झपट पडी हो। या यों कहिये, राक्षसों को नष्ट करने के लिये रिच्छराज जामवत क्रुद्ध हुआ हो। क्रोध मे आकर उसने शत्रु-सेना को भगा दिया (आगे कर दिया)। युद्ध रुपी वारिधि मे उसने सरोज रुपी सामन्तों को डूबते हुए जान कर निकालने का दृढ निश्चय कर लिया।

करिय पारि सोभत, रुधिर जल रज्जि सज्जि[1] सर।
केस भेस[2] सैंवाल, मकर कर जघ मीन नर ॥
खुप्परि कच्छ सु अच्छ, वसहि[3] तहँ सिद्ध गिद्धवर।
रभ अर तहँ भरे, फुल्लि पोयन्नि सुग्घनर ॥

जलु दैंहि ताहि त्रै रिण[४] छुटैं, मात पित्त[५] गुर मंनि ध्रुत्र ।
नन करिय देव दानव दुवनि[६], करत जोइ सामंत भुत्र ॥४३॥

प्रा पा १ से ६ दे. ।

शब्दार्थः—करिय=हाथी । पारि=पाज, पाल । केस-मेछ=केशों का रूप । सैवाल=काई । खुप्परि=खोपड़ी । कच्छ=कच्छप । र म=र म. [अप्सरा] । अत्र तहँ-भरे=वहाँ पानी भरती है, पनिहारिन है । पोयन्नि=पद्म, कमल । जलु=जल । पित्त=पिता, पित्र । गुर=गुरु । ध्रुत्र=ध्रू निश्चय । नन करिय=नहीं किया । दुवनि=दोनों ने । भुत्र=भू , पृथ्वी पर ।

अर्थः—जहां पाल-रूप मे हाथी, जल-रूप मे रुधिर, काई रूप में केश, हाथ और जंघाएँ, मकर और मीन, कच्चप रूप मे खोपड़ियाँ, सिद्ध रूप में गिद्ध, पनिहारी रूप में रंभा, और कमल-रूप मे मुख शोभित हैं- ऐसे युद्ध-सरोवर मे रक्त रूपी जल देने से मातृ-ऋण, पितृ-ऋण और गुरु-ऋण से निश्चय ही मुक्ति मिल जाती है। जैसा सु कृत्य पृथ्वीराज के सामंत करते हैं वैसा देव दानवों ने भी कभी नहीं किया ।

दोहा

पुनित गुनित गुर मंत्र गुर, धुर वद्दल ढल गाजि ।
सूर अमर सचरि समर, दिखनराम गज साजि ॥४४॥

शब्दार्थः—पुनित=पुनीत, पवित्र । गुनित=गुना हुआ, पढ़ा हुआ, प्राप्त किया हुआ । धुर=धुरवा, या निश्चय रूपसे । सूर=बहादुर । अमर=देवता । संचरि=संचार कर, चलकर । दिखन=देखने को । गज साजि=हाथी पर सजा हुआ, हाथी पर चढ़ा हुआ ।

अर्थः—गुरु द्वारा प्राप्त किये हुए पवित्र मंत्र को पढ कर हाथी पर चढ़े हुए गुरुराम (पुरोहित) ने गर्जना कर मेघ का स्वरूप धारण किया। उसके युद्ध को देखने के लिए बहादुर योद्धा तथा देवता-गण भी युद्ध स्थल मे आउपस्थित हुए ।

कवित्त

जंग[१] अग्गि[२] जनु जग्गि, पवन वसि, मंत्र वीर वर ।
धर अंमर धमधमिय, क्रमिय सह सेन हयनि-हर ।
तीर तुपक[३] तरवारि, कुंत[४] किरवान कटारिय ।
ढुरहिं[५] ढाल गज-माल, जानु जल जोर अटारिय ॥

हुअ धुंधि[5] धरणि[7] सुभिभ्भन नयन, श्रवन वयन न सभरहि ।
अच्छरि[8] अकास आनंद मय, विट्ठि[9] विवाननि वर[10] वरहिं ॥ ४५ ॥

ग्रा० पा० १ से ३ दे० । ४ भीं० दे० । ५ पा० । ६ से १० दे० ।

शब्दार्थः- हयनि हर=हयधर, अश्वारोही । ढुरहि=छूट पडे, लुढक पड़े । गज-माल=गजपंक्ति । जानु=जनु, मानो । विवाननि=विमान ।

अर्थः—उस समय ऐसा दिखाई पडा, मानों पवन के सहारे युद्ध-भूमि मे आग प्रज्वलित हो गई हो, अथवा मंत्रोच्चारण के कारण बावन ही वीर प्रगट होगये हो। गुरुराम के आक्रमण से पृथ्वी और आकाश संतप्त हो गया, समस्त अश्वारोही सेना विचलित होगई और विपक्षियों के हाथों से तीर, तुपक, तलवार, बर्छी, कटारी, ढाले आदि छूट पडीं। गज पंक्ति इस तरह लुढकती हुई दिखाई देने लगी मानों जल के प्रवाह से अटारियाँ गिर रही हो। पृथ्वीपर धूँधल के छा जाने से न नैत्रों को कुछ दिखाई देता था, न कानों से ही कोई आवाज सुनाई देती थी। आकाश-स्थित अप्सराऐं भी विमानों मे बैठकर आनन्दित हो वरों का वरण कर रही थीं।

दोहा

राम मंत्र इक जंत्र लिखि, कग्गद सर मुख रखिख ।
खंचि कठिन कंमान कर, मेछि[1] सयन पर णंखिव[2] ॥ ४६ ॥

ग्रा० पा० १, २ दे० ।

शब्दार्थः—सरमुख=तीर के मुह पर। मेछि-सेन=मुस्लिम सेना णंखिव=डाला, छोड़ा ।

अर्थः—गुरुराम ने एक जत्र पर मंत्र लिखकर, तीर के मुख पर रक्खा और कठिन कमांन को खींच कर मुसलमानी सेना की ओर चलाया।

पुनि[1] विभूति पढि हथ्थधरि, समुह समर उड़ाइ ।
अचल चित्त जिन जिन तनह, धीरज तिनही छुड़ाइ ॥ ४७ ॥

ग्रा० पा० १ दे० ।

शब्दार्थः—विभूति=मंत्रित छार । समुह समर=युद्ध के सामने । तनह=तने, के । छुड़ाइ=छुड़ादी ।

अर्थः—उसके बाद हाथ मे विभूति ले, मत्रोच्चारण कर युद्ध के मंत्रित विभूति सामने उड़ाई, जिससे अचल चित्तवाले वीरों का धैर्य भी जाता रहा।

सुनि सहाव – साहाव दीं, है छंडिव गज-तक्कि ।
मिले सामि-कर भर-सुभर, चल चहुवांन सुरुक्कि ॥ ४८ ॥

शब्दार्थः–सहाव- सहाव दीं=शाह शहाबुद्दीन । है=हय, घोड़ा । छंडिव=छोड़कर । गज तक्की=हाथी को देखा, हाथी पर सवार हुआ । मिले= एत्रित हुए । सामि–कर=साम नीति को काम में लेकर । भर–सुभर=श्रेष्ठ वीर ।

अर्थः—जब शहाबुद्दीन ने सुना कि गुरुराम ने मंत्रोपचार किया है तब, वह अपनी सेना को ढाढस बँधाने के लिये घोड़े को छोड़ कर हाथी पर सवार हुआ और साम-नीति को काम मे ले अपने विचलित हुए श्रेष्ठ वीरों को एकत्रित किया, जिससे चाहुवान की सेना रुक गई ।

कहै मीर मारूफखाँ, परीभीर सुलितान[1] ।
तिन तसवी नंखी करह, जिन कंठनि खुरसांन ॥ ४९ ॥

आ. पा १ दे. ।

शब्दार्थः–भीर=आपत्ति । तसबी=तसवी, माला । नखी=डाल दी ।

अर्थः—मीर मारुफ खां हतोत्साह हो बोला–हे बादशाह ! बड़ी आपत्ति का समय है क्योंकि जिनके कंठ मे खुरासांन मुल्क बँधा हुआ है, उन्होंने भी (विपक्षियों के संमुख) हाथ से तसबी डाल दी । (खुदा मे अविश्वास कर लिया) ।

कवित्त

तोन खग्ग वर खत, टोप उप्पर चहुवानी ।
जैत खभ पर रत्त, वीर पावस बुट्ठानी ॥
घरी एक दुव दलनि, खित्त वरखंति खग्ग झर ।
तव प्रथिराज नरयंद, सार वह्यौ अपार कर ॥
अहमद खांन इक अयत पति, मुख चह्यौ वह्यौ कहर ।
पक्खर समेति पट्टन सुवर, धर तुट्ट्यौ लग्यौ सुधर ॥ ५० ॥

आ० पा०-विशेपकर देवलिया प्रतिक पाठ हैं । प्रकाशित प्रति में भिन्न पाठ हैं ।

शब्दार्थ–तोन=उसने । वरखन=बर्षाने लगा, चलाने लगा । बुट्ठानी=बरसाई । अयन पति=अयुत पति, दस हजार सेना का स्वामी । पट्टन=पतन हुआ ।

अर्थ:— यह कह कर उस ने चाहुवांन (पृथ्वीराज) के शिर स्त्राण पर इस प्रकार खड्ग की वर्षा की, मानो जैन स्तंभ पर रक्त वर्ण की वर्षा हुई हो। दोनों दलों मे एक घडी तक खड्गाघात होता रहा। उस समय राजा पृथ्वीराज ने भी अपने हाथों से अपार शस्त्र-प्रहार किये। उधर से दस हजार सेना का स्वामी अहमदखा पृथ्वीराज से सामना कर उत्पात वृद्धि करने लगा किन्तु घोडे सहित उस श्रेष्ठ योद्धा का पतन हो गया और उसका धड़ नष्ट होकर पृथ्वी पर गिर पडा।

पखर लक्ख सलक्ख, भयउ खुरसान खान दल।
इक्क[1]-इक्क भुज अमित, सेन रूक्काए अकल खल॥
धार धार वज्जै प्रहार, गुरज वज्जै तन रज्जै।
मनहु घट धरियार, पहर[2] पूरण[3] प्रति वज्जै॥
यौं वजिय सार आतुर उतिग, ज्यो उडूरी बुंद धर।
पंमार सार धारह धनी, ईग अनंदिय माल गर॥५१॥

प्रा. प्रा १ से ३ दे।

शब्दार्थ:—पक्खर=पखरेत अश्वारोही। अकल=अगणित, असख्य। गुरज=गदा, शस्त्र विशेष। गर = गले में।

अर्थ:—उसी समय अकेला अश्वारोही वीर सलख, खुरासांनखा के दल के लिये एक लाख वीरों के समान हो गया और उसकी एक एक भुजा अनेक भुजाओं की भांति काम करने लगी। उसने असख्य शत्रु-सेना को रोक दिया। उस समय शस्त्र-प्रहार के कारण धार से धार टकरा कर वजने लगी और गदा-प्रहार शत्रु-शरीर पर इस प्रकार ध्वनित होने लगा मानो घडी वजाने वाला प्रहर के समाप्त होने पर घडी वजा रहा हो। शस्त्रों के आघात इतनी तेजी से होने लगे जैसे प्रवल हवा के कारण वर्षा की बूंदे तेजी से पृथ्वी पर गिर रही हो।

इस तरह उस धार-राजवशी प्रमार ने अपने शस्त्र-प्रहार से शिव के गले मे मुंड माला पहना कर उन्हे प्रसन्न कर दिया।

दोहा

गरल धरण[1] गर माल धरि, टपकति बुंदनि रत्त ।
भिक्ख[2] भयानक भंति तिहि, कंपति दिखि गिरिजत्त ॥ ५२ ॥

ग्रा. पा. १, २ दे. ।

शब्दार्थः—गरल धरण=गरल धरन, शिव । रत्त=रक्त । भिक्ख=भेष, स्वरूप । भति=भाँति । गिरिजत्त = गिरिजा ।

अर्थः—शिव के गले में धारण की हुई मुंड-माला से रक्त की बूंदे टपक रही थीं, जिससे उनकी वेश-भूषा भयानक हो गई जिसे देखकर गिरिजा कांपने लगी ।

कोइ कमलु कह-कह हसतु[1], कोइक हंकतु[2] हंक ।
मार - मार कोई कहतु[3], मुदित माल सिव अंक ॥ ५३ ॥

ग्रा. पा. १, २, ३ दे. ।

शब्दार्थः—कमलु=शिर । हसतु=हँसना । हंकतु=हंकार । हक=चल कर, उछल कर । मुदित=प्रसन्न ।

अर्थः—शिव के गले मे पड़ी हुई माला से कोई मुंड कहकहा (ठहाका) मारकर हँस रहा था । कोई हुंकार करता हुआ उछल रहा था और कोई मार मार उच्चारण करता हुआ प्रसन्न हो रहा था ।

कवित्त

खुरासान तत्तार, खांन रुस्तम अधिकारिय ।
एक स्वामि रन अग्ग, वांह-ध्ध[1] - वध्धारिय[2] ॥
पुट्ठि पवन विल्लोच, साहि रक्खे सुरतान ।
मावसि राह नरिंद, आइ चढ्यौ मुख भानं ॥
मध्यान टरिय निसि मुंदित भय, कमल विमल, छक्किय विछुटि ।
सारस सुरंग कोतरनि-तर, उडि पंखि अंखी निजरि ॥ ५४ ॥

ग्रा. पा १ पा. । २ का पा. घ. ।

शब्दार्थः—वाह=बाँहें, हाथ । वध्धारिय=बधाये, बढाये । मावसि=अमावस्या । राह=राहु । नरिन्द=राजा पृथ्वीराज । चढ्यौ-मुख=सामने डटा । मा=मानु (सूर्य तुल्य शहाबुद्दीन) । मुँदित भय=मूँद

गये। विमल=पवित्र। छक्किय=चक्किय, चक्रवाक दंपत्ति। सुरग=प्रसन्न। कोत रनितर=कोटरों में। अखी निजरि=आंखों देखे गये।

अर्थः—शाह के अधिकारी खुरासानखाँ, तत्तारखाँ और रुस्तमखाँ एक एक व्यक्ति ही थे फिर भी युद्ध के समय अपने स्वामी के सम्मुख दोनो हाथों को युद्ध के लिये बढाया। नौका के पीछे की हवा जिस प्रकार उसको आगे बढाने मे सहायक होती है, उसी प्रकार बादशाह ने सहायता के लिये बिलोची वीरों को पीछे रखा। उसी समय सूर्य के समान शाह को ग्रसने के लिये अमावस्या के राहु के समान पृथ्वीराज उसके सामने आ खड़ा हुआ। उस समय मध्याह्न समाप्त होगया था और रात्रि होने पर पवित्र कमल खिले हुए बन्द हो गये थे। चक्रवाक-दम्पत्ति का विछोह होगया और सारस प्रसन्न होगये। (रात्रि मे सारस-पत्ती तालावों के पास आनन्द पूर्वक बोलने लगे) पत्ती-गण घोंसलों की ओर उड कर जाते हुए दिखाई देने लगे।

साटक

मोदं-मोद हसत कंमुद-कला, चक्कीय चक्की चित।
चदं[1] चद-वढंत-तत्त कलयो, भान कला छीनय[2]॥
मत्त मंमथ[3]-भ्मान[4]-वानति-वर-अगुष्ट ते उच्छह।
सा सतपत्रय तत्र काइर मुख, वीरा-रसं सूरय॥५५॥

ग्रा० पा० १, ३, ४ दे०। २ भीं०।

शब्दार्थः—मोद-मोद=अत्यधिक प्रसन्नता। हसत=हँसने लगी, खिलपड़ी। कमुद=कुमोदिनी। चक्कीय=चकई। चक्की=चकित। चद=कविचद। तत्त=उस समय, तहाँ। कलयो=कला। भान=भानु-सूर्य। मत्त=मतवाले, उनमत्त (युवक)। भ्मान=ज्ञान, ज्ञात। उच्छं=उच्छेदित, वेधे गये। सा=वे। सत पत्रय=सतपत्र, शतपत्र, कमल।

अर्थः—अत्यधिक प्रसन्नता प्राप्त कर कुमोदिनी खिल पड़ी। उस की कला को देख कर चकवी का चित्त चकित हो गया (पति-विछोह के डर से चौक पडी)। कवि कहता है-कि उस समय चन्द्रमाँ की कला मे वृद्धि हो रही थी और सूर्य की प्रभा-चीण हो चुकी थी। उन्मत्त युवकों को ऐसा ज्ञान हो रहा था-मानो कामदेव अपने उत्तम बाण को अगुली के सहारे अगुष्ट से बल पूर्वक खींच कर छोडता

हुआ वेध रहा हो। जिस प्रकार उस समय कलख मुरझा रहे थे। उसी प्रकार कायरों के मुख भी मुरझा गये थे किन्तु जो वीर रस के उपासक थे वे रात्रि में भी युद्ध-स्थल के बीच सूर्य के समान प्रतीत हो रहे थे।

दोहा

जहँ मसंद गोरिय गिरत, लटत सुभट चहुवान।
कैं भारत्थ कै लंक विनु, यह न भति कहु आन ॥ ५६ ॥

शब्दार्थः—मसद=मसन दधारी वीर। लटन=निपटारा कर दिया।

अर्थः—जिस स्थान पर गौरी शाह के मसनद धारी वीर धराशायी हुए थे वहीं पर सामन्तों ने उनका निपटारा कर दिया था (समाप्त कर दिया था)। यह तरीका या तो महाभारत के युद्ध मे या लंका के रावण युद्ध में ही हुआ था। ऐसा अन्य कहीं पर नहीं देखा गया (अर्थात् ऐसा युद्ध अन्य कहीं नहीं हुआ)।

कवित्त

चलन मेर नन चलहि, चलन सब सत्थ हथ्थ चलि।
चलन भांन नन चलहिं, चित्त नन चलै मोह खुलि ॥
अश्व चलन नन चलहि, चलन रहियो असु-असुमय।
सो ओपम कविचर, कहिय आनद हत्त सय ॥
नि-धनिय नारि, अकुला सत्तिय, अग्यानी जी-मुहई।
इम अश्व खान तत्तार को, सार-धार वर तुट्टई ॥ ५७ ॥

शब्दार्थ—चलन=चलनेपर, डिगने पर। नन=नहीं। चलहिं=डिगा, हटता। चलन=आगे बढता। चलन=गति। भान=भानु,-सूर्य। मोह-खुलि=ममता से खिला, ममता से प्रसन्न। चलन-रहियो=चलने लगा, मृत्यु को प्राप्त करने लगा। असु=प्राण। असुमय=प्राणों के समान। ओपम=उपमा, तुलना। हत्त-सय=उसके मरने पर। नि-धनिय=विना पति के। अकुला=अकुलीन। जी-मुहई=जी-मुटाव, अभिमान।

अर्थः—सुमेरु पर्वत के चलने की सम्भावना की जा सकती है किन्तु तत्तारखां के घोडे की युद्ध स्थल से हटने की सम्भावना नहीं की जा सकती। युद्ध में एक साथ जिधर वीरों के कर-प्रहार (शस्त्राघात) होते थे, उधर ही वह बढ़ जाता था।

सूर्य की गति (सूर्य-रथ की) भी उसके बराबर नहीं थी। ममता से प्रसन्न (चचल) मन भी उसके समान नहीं चल पाता था और अन्य चचल घोड़े भी उसे नहीं पहुँच पाते थे (समता नहीं कर सकते थे)। ऐसे उस सवार के प्राणों से भी प्रिय घोड़े के प्राण युद्ध-भूमि से चले गये। घोड़े के मारे जाने से उस पर मुग्ध होकर, कवि चन्द तुलना कर कहता है कि जिस प्रकार पति हंता स्त्री सती होते समय, अकुलीन स्त्री-प्रेम के कारण और अज्ञानी मन-मुटाव (अभिमान) वश, हठ करके मारा जाता है, उसी तरह तत्तारखां का घोडा हठ पूर्वक आगे बढता हुआ श्रेष्ठ शस्त्र की धार से मारा गया।

दोहा

भै भग्गा सुरतान दल, ले लग्गा चहुवान।
ताप तेज तुगी भिरण, पृथीराज फिरि आन ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ:—भै-भग्गा=भय पाकर, भागने लगा। लै=लय, लीन, अनुरक्त। लग्गा=लग गया, पीछा किया। ताप=संतप्त। तेज-तुंगी=तेज घोड़े, तेज अश्वारोही। भिरन=भिड़ने पर। आन=दुहाई।

अर्थ:—तत्तार के घोड़े के मारे जाने से शाही दल भयभीत होकर भागने लगा। यह देखकर युद्ध में अनुरक्त हुए चहुवान (पृथ्वीराज) ने उसका पीछा किया। तेज घोडे पर चढ़े हुए उसके सैनिकों के भिड़ जाने पर विपक्षी संतप्त हो गये और युद्ध स्थल में पृथ्वीराज की दुहाई फिरने लगी।

कवित्त

हय हथ्थी[१] किननकि, वाजि[२] झनन कि[३] झनक्कहि[४]।
दति दत उढि[५] परहि खड खडेनि[६] ठनक्कहि ॥
घट घट्टह[७] लगि सगि[८], फुट्टि[९] पित्ती[१०] पितवान[११]।
जनु खचै वलराम, हथ्थ हथिनापुर जान ॥
खचै कि द्रोन हनवत कपि, (कै) कन्ह खचि गोवर्धनह।
कर करिणि[१२] सगि[१३] सलखह धरत[१४], यौं सुम्भैं हथ्थी रणह[१५] ॥ ५९ ॥

ग्रा० पा० १ से ८ दे०। ९ पा०। १० से १५ दे०।

शब्दार्थः—किननकि=आवाज। वाजि=बाजे, वाद्य। खड=खंडित करते हुए। खडेनि=खांडे, खड्ग। ठनक्कहि=आवाज, खन खनाहट। घट=घट्टह=प्रत्येक अंग पर। लगि—सगि=सांग (लोह कृत) का प्रहार। पिति=पक्ति (गज पंक्ति)। पितवानं=पंक्ति वाले (गजारोही)। हथ्थ=हाथों से। हथिनापुर=हस्तिनापुर। हनवत=हनुमान। कन्ह=कृष्णा। करिणि=हाथियों।

अर्थः—हाथी, घोड़ों की आवाज और वाद्यों की झनझनाहट होने लगी। हाथियों के दाँत टुकड़े २ होकर गिरने लगे। गजपंक्ति के प्रत्येक अंगों पर (सलख जैन द्वारा) साँग (लोहकृत) के दिये गये वार से गजारोहियों सहित गज विंध गये और साँग के साथ ही वे हाथी इस प्रकार खींच लिये गये, मानों हलायुद्ध (वलराम) ने अपने हाथों के वल पर हल द्वारा हस्तिनापुर को खींच लिया, अथवा हनुमान ने द्रोणाचल को या कृष्ण ने गोवर्धन को उठा लिया हो, इस प्रकार उसके हाथ मे साँग ग्रहण करने और उसके द्वारा खींचे जाने पर युद्ध स्थल में हाथियों की ऐसी ही छटा (दृश्य) दिखाई दी।

खिज्जि राज पृथिराज, गहिय करिवान चंपि कर।
रोस मुट्ठि[1] निरोधरिय, दति[2] वाही सुकुंभथर॥
धार मुत्ति आहुरिय, पति लग्गिय रसुवीरं[3]।
रोल चपि खगु[4] चुवे, धरह[5] धाराहर रगीरं[6]॥
कै दुतिय चन्द वद्दल विचह, पति लग्गि उडगन रहिय।
धर धुकत मंत इमि पिक्खियहि, इन्द्र वज्र पर्वत ढहिय॥ ६०॥

प्रा० पा० १ पा०। २ दे०। ३ भी० पा०। ४, ५, ६ दे०।

शब्दार्थः—करिवान=कृपाण, तलवार। निरुधरिय=निपट गई (कुम्भस्थल को विदीर्ण कर दिया) कुंभ—थर=कुमस्थल। मुत्ति=मोती। आहुरिय=अड़ गई, लग गई। पति=पक्ति, लड़ी, धार। रसु=रस। रोस—चपि=क्रोध पूर्वक दबाई हुई। खगु=खड्ग। धारा हर=धाराधर, खड्ग और वारिधर, (बादल)। रगीर=नीर। दुतिय=द्वितीया का, दूज का। धर धुक्त=पृथ्वी पर झुकता हुआ, धराशाई होता हुआ। मत=मतवाला हाथी।

अर्थः—क्रोध मे आकर राजा पृथ्वीराज ने तलवार को दृढ़ता से पकड़ा। क्रोध पूर्वक मुष्टिका मे दबी हुई खड्ग ने हाथी के कुम्भस्थल पर पड़कर उसका निपटारा (विदीर्ण) कर दिया। उस खड्ग से वहती हुई (वरसती हुई) शोणित धारा के साथ २ विदीर्ण

गज कुम्भ से झरती हुई मुक्ताओं की लड़ी से ऐसा दृश्य दिखाई दिया मानों खड्ग से वीर-रस चू रहा हो या क्रोध पूर्वक पकड़ी हुई वह खड्ग, वारिधर (मेघ) रूप हो पृथ्वी पर जल वृष्टि कर रही हो, अथवा द्वितीया का चन्द्रमा बादल में प्रवेश कर रहा हो और उससे नक्षत्र माला लगी (चिपटी) हुई हो। उस समय मतवाले हाथी के धराशायी होने पर ऐसा ज्ञात हुआ मानो इन्द्र ने वज्रास्त्र चला कर पर्वत को ढहा दिया हो।

दोहा

जिन लग्गो तिनि[1] ब्रनन[2] किय, धर धर धुक्किय धार।
पहर इक्क पर हथ्थरै, सिर सिर वुट्ठिय[3] सार॥ ६१॥
प्रा पा. १, २, ३ दे।

शब्दार्थः—ब्रनकिय=वर्णन किया, कहा। धर-धर=धड़ाधड़। धुक्किय=पड़ी। धार=शस्त्र धारा। पर हथ्थरैं=दूसरे के हाथों से। वुट्ठिग=बरसा।

अर्थ—जिन पर शस्त्राघात हुआ था उन वीरों ने वर्णन किया (कहा) कि एक दूसरे के हाथों से प्रत्येक व्यक्ति के मुंड पर लोहास्त्र की धार एक प्रहर तक धड़ाधड़ बरसती रही।

सस्त्र अस्त्र सिर-सिर परहि, डरहि न जनुकि मदग।
भीर स्वामी सकट लखत, परत कि दीप पतग॥ ६२॥

शब्दार्थ—जनुकि=जनु, मानों। मदग=मृदग। भीर=भीड़।

अर्थ—प्रत्येक वीर के सिर पर शस्त्राघात होते हुए भी मृदग के समान निर्भय (आघात सहते) थे और उस युद्ध की भीड़ मे स्वामी पर आपत्ति दिखाई देते ही जिस प्रकार दीपक पर पतग गिरते है उसी प्रकार वे शत्रुओं की ओर झपट पड़ते थे।

गाथा—

पतन पतग रूप, भूप धरा जानि विषमाई[1]।
हरण[2] स्वामि भय चित्त, हित वियन जम्म मरनाई॥ ६३॥
प्रा० पा० १ पा०। २ दे।

शब्दार्थः—धूपधरा=खड्गधारी । विषमाई=विषम, भयानक । वियन=अन्य नहीं ।

अर्थः—वे खड्गधारी वीर भयानक रुप से युद्ध में पतंगे के समान झपट पड़ते थे । उनके मन में जन्म-मरण का हेतु, अन्य न होकर, केवल स्वामी के चित्त से भय को हटाने का ही था (युद्ध शंका दूर करना ही था) ।

ठाम ठाम स्यंधू[1] वजहि, वजहि सार, मुख मार ।
तन तर वर जहँ तहँ ढरहि, जे जुझार मुच्छार ॥ ६४ ॥

ग्रा. पा. १ दे ।

शब्दार्थः—ठाम २=स्थान २ पर । स्यंधू=सिन्धु राग । जुझार=योद्धा । मुच्छार=मुछाले ।

अर्थः—स्थान २ पर सिन्धु राग में रणवाद्य वजते थे और शस्त्रों के आघात की ध्वनि के साथ २ युद्ध में वीरों के मुख से मार २ शब्द उच्चारण होता था । उन में से जो मूँछ वाले वीर थे, उनके शरीर वृक्ष के समान कट २ कर यत्र तत्र गिर पड़ते थे ।

स्वामि सलख लक्खिय[1] लरत, भंजि मीर चहुँआंन ।
हुँकार्यौ[2] नां जांहि मिछ, तो सम को पहुआंन ॥ ६५ ॥

ग्रा. पा. १, २ दे ।

शब्दार्थः—हुंकारयौ=हुंकार की, ललकारा, उत्तेजित किया । मिछ=म्लेच्छ । पहु=राजा, राजवंशी । आंन = अन्य ।

अर्थः—उस समय जब पृथ्वीराज ने वीर सलख को लड़ता हुआ देखा तब पृथ्वीराज ने भी मीरों का नाश करते हुए सलख को ललकारा कि तेरे समान राजवंशी अन्य कौन हो सकता है ? देखना ? सामने से मुसलमान (शाह) जाने न पावे ।

कवित्त

तूं अब्बूधर[1] लज्ज[2], रज्ज[3] रक्खन दिल्ली धर ।
तूं चालुक्क चंपनो, भार भंजन गुज्जर धर ॥
अडर अकल अज्जान-पान, भंजन मिच्छाइन[4] ।
अपु[5] मुख आयौ साहि, ताहि साहिन[6] इच्छाइन ॥

प्रथिराज प्रवुद्धिय धार – धर, हंकि साह उप्पर परिय ।
जाने कि अग्गि उद्यान वन, वंस थूर दव प्रज्जरिय ॥ ६६ ॥
ग्रा पा १ से ५ दे । ६ पा. घ. ।

शब्दार्थः—रज्ज=राज, राज्य । चंपनो=दबाने वाला । अकल=अज्ञात, अलक्ष । अपु मुख=तेरे सामने । इच्छाइन=इच्छा युक्त । अज्जान पान=लम्बे हाथ । मिच्छाइन=म्लेच्छ । वस थूर=वांसों के झुंड । दव=दावाग्नि ।

अर्थः—पृथ्वीराज ने कहा– हे सलख ! तू आबू–धरा की लाज स्वरुप, दिल्ली राज्य का रक्षक, गुर्जर धरा के भार स्वरुपी चालुक्यों को दवाने वाला और उन्हें नष्ट करने वाला तथा निर्भय (दीखने मे सीधा किन्तु बांका वीर) है । तेरी लम्बी भुजाये यवनों को नष्ट करने वाली हैं । हे वीर ! देख, तेरे सामने वादशाह पड़ गया (आ-गया) है । उसे पकडने का इच्छुक होकर भी क्यों नहीं पकडता ? इस प्रकार पृथ्वीराज के सचेत करने पर उस खड्गधारी वीर सलख ने घोडे को आगे वढाया और शाह के ऊपर इस तरह झपटा (आक्रमण किया) मानों घने जगल मे वॉसों के झुड मे आग प्रज्वलित हो गई हो ।

फुनि प्रथिराज नर्यंद[1], करिय उप्पर जैतह रण[2] ।
भरणि[3] भार भभरिय, हकि हु करिय स्यघ जन ॥
मद गज ढहनकि तरणि[4], तरणि[5] लुप्पन जनु जल धर ।
अकह कथ्थ करिवार, कालु[6] कुप्पिय जीवनि पर ॥
सोमेस सुअन विरचंत रण, चट पट घट भट्टह लुटहि ।
इय अजुत वत्त पिख्खत रणह, भुंजत भार अन कि फुटहि ॥ ६७ ॥
ग्रा पा १ से ६ दे ।

शब्दार्थः—फुनि=पुनि, पुन । नर्यंद=नरेन्द्र । करिय उप्पर=सहायता की, साथ दिया । जैतह=सलख वंशज जैत्र प्रमार । भरणि=भिड़ने वाले विपक्षी । भभरिय=भागना, हाहाकार करना । स्यघ=सिंघ, सिंह । तरणि=नौका । तरणि=सूर्य । अकह कथ्थ=अकथक, अवर्णनीय ख्याति । कालु=काल, यम । विरचत=विरचने पर, छेड़ने पर, क्रोध करने पर, विफुरने पर । चटपट=शीघ्रता पूर्वक । घट=शरीर । भट्टह= वीर । लुट्टहि=लोटने लगे, तड़ फाडाने लगे । इय=यह । अजुत=अयुक्ति, सगत । भुंजत=भूंजे जाकर, भूने जाकर, तपाये जाकर । अन=अन्न कण । फुटहि=फूटते, फूलते ।

अर्थः—तब राजा पृथ्वीराज ने भी युद्ध में सलख-जैत्र का साथ दिया जिससे युद्ध करने वाले विपक्षी वीरों पर दवाव पड़ने लगा और कायर हाहाकार करने लग गये। उस समय पृथ्वीराज इस प्रकार वढ़ा- जिस प्रकार हुंकार करता हुआ सिंह, नौकाओं को डुवाने के लिए मस्त हाथी, सूर्य को लुप्त करने के लिये वादल या प्राणी मात्र पर वार करता हुआ यमराज कुपित हुआ हो। वह सोमेश्वर का पुत्र (पृथ्वी-राज) युद्ध मे क्रोधित हुआ तब विपक्षी वीरों के शरीर पृथ्वी पर शीघ्रता पूर्वक इस प्रकार छट-पटाने (तड़फने) लगे और युद्ध स्थल में वात ऐसी अयुक्ति संगत (दयनीय) दिखाई दी मानों भाड़ में भूने (तपाये) हुए अन्न के दाणें फोड़ें (फुलाये) जा रहे हों।

भरणि[1] भीर खल भलति[2], रेण[3] चल मलति पमन करि।
लुथ्थि[4] लुथ्थी[5] पर परति, अर्क नहिं सकत गवन करि॥
श्रोन छिछि उच्छरति[6], सुभट सुभ्भित जनु किं सुव।
गजनि ढाल क ढुरति, मार संघरत कमध भुव॥
विरचंत विफुरि सोमेस सुअ, सहस करन वर कर वढिय।
वन-व्यूंद पियन वडवानल कि, कुस्न जानु संमुह कढिय॥ ६८॥
आ० पा० १ से ३, ६, ७ दे०। ४, ५, दे० पा०।

शब्दार्थः—भरणि भीर=विपक्षी वीर समूह। खल भलति=खलवली मच गई। रेण=रेणु, रजकण। चलमलति=चलकर मिल गई, चल-पड़ी, छा गई। पमन-करि=पमन से करके, पमग से करके, घोड़े के कारण, घोडे के चलने से। छिछि=धारा, पिचकारी। उच्छरति=उछलती, छूटती। किंसुव=पलास। गजनि ढाल=गज-पंक्ति। क=कहीं पर, कू पृथ्वी। ढरति=लुढकती। मार=मार करते हुए, वार करते हुए। कमध=कमध, मुंड विहीन रुण्ड। विरचंत=छेड़ा जाकर। सहस-करन=सूर्य। कर=किरणे। वढिय=फैलाई। वन-व्यूंद=वृ दावन। समुह-कढिय=समुख, प्रत्यक्ष हुए।

अर्थः—जव सोमेश्वर का पुत्र पृथ्वीराज उन्मत्त हुआ, तव युद्ध-भूमि में विपक्षी-वीर-समूह में खल वली मच गई। घोड़ों की तीव्र गति से रजकण उड़ने लगे। लोथों पर लोथे पड़ गई, जिससे सूर्य की गति रुक गई। लहू की पिचकारियों के चलने से वहादुर रक्त रंजित होगये, जिससे वे कुसुमित-पलाश के समान दिखाई देने लगे। गज-पंक्ति धरा पर लुड़कने लगी और मस्तक विहीन धड़ वार करते हुए

संहार करने लगे। उस समय पृथ्वीराज ऐसा मालूम पड रहा था मानो सूर्य ने प्रखर किरणे फैलाई हो या वृन्दावन में रहते हुए श्री कृष्ण वाड़वाग्नि का पान करने के लिये सम्मुख खडे हुए हों।

दोहा

हालाहल हुअ पिथ्थ जहँ, झाला हल झंकाल।
उतरण कुप्पौ सलख लखि, काला हल कंकाल ॥ ६९ ॥

शब्दार्थः—पिथ्थ=पृथ्वीराज। झालाहल=ज्वाला। झकाल=झोंक देने वाली। उतरण=उतर पड़ा, युद्ध करने लगा।

अर्थः—इस प्रकार इधर पृथ्वीराज हलाहल या भयंकर ज्वाला के समान दिखाई देता था, उधर वीर सलख को क्रोधित हो कर आक्रमण करते हुए देख देहधारियों मे कोलाहल मच गया।

मिच्छ[1]-सयन[2] बहुझरि परिय, कै विड्डरि गय डग्गि।
फिर्यौ मुक्ख सुलतान को, हथ्थि छंडि हय मग्गि[3] ॥ ७० ॥

प्रा० पा० १ पा०। २ दे०। ३ का०।

शब्दार्थः—मिच्छ सयन=मुसलमानी सेना। झरि परिय=कट पड़ी। विड्डरि=भयभीत होकर। गय डग्गि=हट गये। मग्गि=मांगा।

अर्थः—इस प्रकार पृथ्वीराज और सलख के आक्रमण से बहुत सी मुस्लिम सेना कट गई। कितने ही भयभीत होकर वहाँ से हट गये और बादशाह का मुख भी युद्धस्थल से फिर गया। बादशाह ने हाथी छोड़ घोडा मांगा (भागने का इरादा किया)।

कवित्त

चामर छत्र रखत्त, तरवत लुट्टै सब कोई।
जस लभ्यौ पामार, सेन - सागर मथि जोई ॥
रतन कीत्ति सग्रही, रज्ज अब्बू तन धोई।
हय-गय दल-बल मथनि, कित्ति फल लब्भिय सोई ॥

वंध्यौ सु चंपि खुरसान पति, रति वाहे चालुक जितिय ।
जै जै सु देव जंपत जसह, तवसु चन्द कित्ती सजिय ॥ ७१ ॥

शब्दार्थ—रखत्त=रसद, खाद्य वस्तु । जस=यश । लभ्यौ=प्राप्त किया । कित्ति=कीर्ति । रज्ज=रज, कालिमा । अब्बू=आबू (या उस आबू राजवशी ने) । सोई=वैसा ही । रति वाहे=रात को छापा मार कर । सजिय=सँवारी, सुन्दर ढग मे वर्णन की ।

अर्थः—सब ने मिल कर शाही-छत्र, रसद-सामान (खाद्यवस्तुएँ) और तख्त लूट लिया । वीर प्रमार ने इस युद्ध मे जो यश प्राप्त किया है, वह सिन्धु के समान शत्रु-सेना के मंथन से ही प्राप्त हुआ है । उसने रत्न के समान कीर्ति का संग्रह किया और आबू पर लगी हुई रज-रूपी कालिमा को धो दिया । पृथ्वीराज ने भी शक्ति द्वारा मंथन किये गये सैन्य-सिन्धु से हाथी, घोड़े और उन्हीं के समान कीर्ति-रूपी फल प्राप्त किया ।

इस प्रकार बादशाह को दबाकर बंधन मे ले लिया और साथ ही रात में सामंतों द्वारा चालुक्यों पर हमला करवा कर विजय प्राप्त की । इन दोनों विजयों से देवता गण पृथ्वीराज की जय २ कार के साथ यश-गान करने लगे और तभी मैंने (कवि चन्द ने) इस कीर्ति का सुन्दर वर्णन किया ।

दोहा

जीति लियो[1] जय-पत्त रिन[2], वर चतुरंगी मोरि ।
पक्खर लक्ख सलक्ख हुअ, गौरी ढाल ढंढोरि ॥ ७२ ॥

आ पा १, २, घ. ।

शब्दार्थः—जय-पत्त=जय पत्र । रिन=रण, युद्ध में । मोरि=मोड़ कर । पक्खर=पखरैत, अश्वारोही । लक्ख=लख । ढाल=ढाल स्वरूपी (अग रक्षक) । ढंढोरि=खोज कर, टटोल कर, परख कर ।

अर्थः—इस प्रकार युद्ध मे शत्रु की श्रेष्ठ चतुरंगिनी सेना को पराजित कर पृथ्वीराज ने जय-पत्र प्राप्त किया । इस युद्ध में शाह गौरी के ढाल-स्वरूपी वीरों को परखता हुआ अकेला अश्वारोही वीर सलख ही लक्ष वीरों के तुल्य बन गया ।

कवित्त

जीति लियौ जै - पत्त, चारु चतुरंग सु गोरी।
इक्क लक्ख पक्खर प्रमान, ढाल गौरी ढंढोरी॥
खा-निसुरति[1] परि खेत[2], खेत गौरी उप्पारी।
रिन दु दूयौ चहुआंन, साह झोरी करि डारी॥
वज्जे सु वीर वज्जन नृपति, रहु लुट्टे सुरतान गं।
निस्मान खांन खुरसान पति, चामर छत्र रखत्त मैं[3] ॥७३॥

ग्रा पा. १ भीं। २ पा. घ। ३ का।

शब्दार्थः—जै पत्त=जय पत्र। प्रमान=अनुमानन। खेत=रण क्षेत्र। उप्पारी=उठाया गया। रिन-दु दूयौ=युद्ध क्षेत्र की खोज की। झोरी=झोली। वीर-वज्जन=वीर वाद्य। खुरसान-पति=खुरासानियों का स्वामी, मुसलमानों का स्वामी। रखत्त मैं=छोड़ने पड़े।

अर्थः—पृथ्वीराज ने चतुरंगिनी सेना को भगाकर जय-पत्र प्राप्त किया। उसने गौरीशाह के लगभग एक लक्ष अंग रक्षक अश्वारोहियों को परख लिया। समराङ्गण में ढूंढने पर निसुरतखा धराशाई हुआ मिला और शहाबुद्दीन को भी घायल अवस्था में उठा कर झोली में डाल कर लाया गया। फिर राजा पृथ्वीराज ने वीर-वाद्य बजवाये और शाही सेना को लूटा, मुसलमानों के स्वामी (शहाबुद्दीन) को उस युद्ध में नक्कारे चमर-छत्रादि राज चिन्ह वहीं छोड़ने पड़े।

कहि जित्यौ चहुवान, गरुअ गोरी दलु[1] भज्यौ।
कहि जित्यौ चहुवान, ईस सीसह धरि[2] रज्यौ॥
कहि जित्यौ चहुवान, चड नागौर सुनंगे।
कहि जित्यौ चहुवान, मत्त सामंत अभंगे॥
जित्यौ सु सोम-नंदनु[3] कहिय, सहिय सद सुरलोक हुअ।
पामार परम्व सलष्वनह, धरणि काज धर करन धुअ ॥७४॥

ग्रा पा १ से ३ दे।

शब्दार्थः—कहि=कहा गया। ईस=शिव। सुनंगे=सुना गया। सद=विजय नाद। धुअ=ध्रुव, निश्चय।

अर्थः—लोग कहने लगे– पृथ्वीराज की विजय हुई और शाह की भारी सेना नष्ट हो गई। शिव मुण्ड माला धारण कर प्रसन्न हुए। चंद के कारण नागौर के युद्ध में भी उसकी विजय हुई। पृथ्वीराज के १०० सामन्त सही–सलामत रह पाये और उसका विजय–नाद स्वर्ग मे हुआ। यह युद्ध सलख प्रमार की परीक्षा के लिये और अपने भू–भाग के लिए हुआ। उस समय (उसके आंतक के कारण) पृथ्वी भी कंपायमान हो गई।

छत्र धारि सुविहान, खत्रधारी[1] लौहानौ।
पत्र धारि जुग्गिनिय[2], कुक्कि लग्गिय आसानौ॥
लोहधार[3] पामार, सलख भंज्यौ मिच्छानौ[4]।
ज्यौं गुवाल गो डंड, सेनु हंक्यौ सुलितानौ[5]॥
जित्यौ जुवान चहुवान रिण[6], मुरिग वयर वलि वंडवल।
धर गवरि नाह नंचिय रहसि, गह्यौ साहि[7] भंज्यौ सु खल॥ ७५॥

प्रा० पा० १ सर्वप्रति। २ पा० दे०। ३ से ७ दे०।

शब्दार्थः—सुविहान=सुवहान, धर्म का धारण करने वाला शाह। खत्र धारी=क्षात्र धर्म धारक। आसानो=आसमान। गो=गायें। डड=डडा, लकड़ी। मुरिग=मुड़ गये। वयर=वैरी, शत्रु। गवरि नाह=शिव। रहसि=रहस्य, या रस पूर्वक।

अर्थः—इस युद्ध मे शाही–छत्र को छीन कर क्षात्र–धर्म धारी लोहाने ने धारण कर लिया और किलकारियो से आकाश को गुंजायमान करती हुई योगिनियों ने भी शोणित–पात्र गृहण किया। सलख प्रमार ने लोहा (शस्त्र) गृहण कर मुसलमानी दल को नष्ट प्राय. कर दिया। जिस तरह ग्वाल डंडे के वल पर गायों को आगे कर लेता है उसी तरह वादशाह की सेना को भी उसने आगे कर लिया (भगा दिया)। युवक पृथ्वीराज चौहान ने रण मे विजय प्राप्त की और उस (वलवान पृथ्वीराज) के वल से शत्रु लौट गये। पृथ्वीपर इस रहस्य पूर्ण युद्ध–घटना को देख कर शिव ने ताण्डव नृत्य किया और उसी क्षण मार काट के साथ वादशाह को पकड़ लिया गया।

साहि डंड डडियो, मेहु[1] मड्यौ नागौरी।
भट्टिरा भटनैरि[2], राव सिंघा तन तौरी॥

जारानी[१] जगतम्म, भंजि मंडोवर पावार ।
जै जै जै पृथिराज, देव सद्देति अगासह[२] ॥
सारज्ज लज्ज मुलतान गहि[३], फिरि दिल्ली[४] पत्तो[५] पुरं ।
वज्जत जेत वज्जा विविध, पृथीराज पत्तो घरं ॥७६॥

मा० पा० १ से ३, ५, ६, [illegible] । ४ [illegible] पा० ।

शब्दार्थः—[illegible], भेग, लोह गहि । भटनेरी भटनेर, राज [illegible] । जारानी जालौनी, जालौन । सद्दे कहा । अगासह आकाश से । सारज्ज—[illegible] आर्यों की [illegible] । [illegible] पुन । पत्तो किया, किया । पुरं पुर की ओर, राजधानी की ओर । जेत [illegible] विजय [illegible] । पत्तो पहुंचा ।

अर्थः—शाह पकड़ा जाकर दण्डित किया गया । नागोर—युद्ध में लोह [illegible] । भटनेर राजवंशी भट्टी—राज [illegible] मारा गया, जालौन और मंडोवर के निकट पमार ने जाग्रत होकर चालुक्यों से लोहा लिया । इन सभी विजयों का श्रेय पृथ्वीराज को है । देवताओं ने आकाश से उसका जय जय कार किया । आर्यों की लज्जा को रखने वाले वीर—(पृथ्वीराज) ने शाह को पकड़ कर पुनः अपनी राजधानी की ओर [illegible] किया तथा विविध बाजे बजवाता हुआ अपने घर पहुंचा ।

दोहा

[illegible] सारिसु[१] मुक्क उच्चरयो, भेम सहित आनन्द ।
चालुक्क [illegible] [illegible], [illegible] ॥७७॥

मा पा १, पा [illegible] । २, [illegible] ।

शब्दार्थः—[illegible] ([illegible]), [illegible] ([illegible]) ।

अर्थ—[illegible] (चन्द ने) अपनी [illegible] से प्रसन्न होकर [illegible] कहा, [illegible] । चालुक्यों से [illegible] और [illegible] से [illegible], उपर्युक्त [illegible] युद्ध हुआ ।

[illegible]

धर्म कथा

(समय २२)

दोहा

खट्टू आखेटक रमैं, महा मुरस्थल[1] थांन ।
नागौरे गौरी ग्रहन, मति त्रिमल परधान ।। १ ।।

ग्रा० पा० १, पा० ।

शब्दार्थः—महा=महान । मुरस्थल=मरु भूमि, मारवाड़ । त्रिमल=निर्मल, पवित्र । परधान=प्रधान ।

अर्थः—(कवि कहता है कि) महान् मरु भूमि में स्थित खट्टू नामक स्थान पर पृथ्वीराज का शिकार खेलना एव मुख्य मन्त्री कयमास की पवित्र बुद्धि का परिचय देना इस समय में वर्णन किया जाता है ।

कवित्त

मत्र जोग कयमास, मत्र प्रथिराज सु पुच्छन ।
तू मन्त्री मंत्रग, मंत्र जानहि सुभ लच्छन ।।
सांम दांम[1] अरू भेद, डंड निरनै करि लक्खै ।
वहु मंत्रह उप्पाइ, राज मत्रह करि रक्खै ।।
मत्रह सुमंत्र मन अनुसरै, (अरु) मंत्र भेद जानै सकल ।
अदभुत चरित्त पाखान लिखि, वचि न किन आवै अकल ।। २ ।।

ग्रा० पा० १ का० भौं० ।

शब्दार्थ—मत्र जोग=योग्य मन्त्री । मत्रग=मत्रणा के अग । डड=दंड । निरनै=निर्णय । मत्रह-उप्पाइ=प्रयत्न करके । पाखान=पाषाण । वंचिन किन आवै=क्यों नहीं पढता, क्यों नहीं स्पष्ट करता । अकल=अज्ञात, अस्पष्ट ।

अर्थः—राजा पृथ्वीराज ने कयमास की प्रशसा करके उससे पूछा कि हे मन्त्री-कयमास ! तुम योग्य मन्त्री हो । मंत्रणा और उसके अंगों के शुभ लक्षणों को जानते हो । तुमने साम, दाम दण्ड और भेद को निर्णय करके देखा है । अपने प्रयत्नों से ही राज मंत्रणा को (मर्यादा को) तुमने स्थापित कर रक्खी है । तुम अपनी

श्रेष्ठ मंत्रणा से ही सबके मन को वश मे कर लेते हो और मत्रणा के सब भेदों को जानते हो। अतः किसी की बुद्धि मे नहीं आने लायक, इस पाषाण मे लिखे हुए अद्भुत चरित्र (लेख) को तुम पढ कर क्यों नहीं स्पष्ट करते।

तू मत्री कैमास, मत्र पय पय उप्पावहि।
तूं मत्री मंत्रग, मत्र मंत्रीन दिखावहि॥
तूं मत्री सामत, स्राम ध्रम्मं विच्चारै।
धर समूह सग्रहै, मत्र करि अरिन विडारै॥
तुम जोग मत्र, मत्री न कोइ, सह बत्तन उच्चारकै।
ससार सार मत्रह प्रबल, कहो सुमंत्र[1] विचारिकै॥ ३॥

म्रा० पा० १, पा०।

शब्दार्थ—पय पय=पद पद पर, कदम कदम पर। ध्रम्म=धर्म। विडारै=विदारने वाला। जोग=योग्य, लायक।

अर्थ—हे मत्री कैमास! तुम पद पद पर मत्रणा उत्पन्न (सुझाने) वाले, मत्रणा और उसके अगों को अन्य मंत्रीगणों को दिखाने वाले, सामन्त होकर स्वामी धर्म को सोचने वाले, भूभाग की वृद्धि करने वाले और मत्रणा द्वारा शत्रुओं को विदीर्ण करने वाले हो। तुम्हारे समान न तो किसी अन्य की मत्रणा होती है और न तुम्हारे समान ही सब बातों को कहने वाला दूसरा कोई मत्री ही है। ससार के तत्व और प्रबलता का कारण मत्रणा ही है। इसीलिए (इस पाषाण लिपि को पढ कर, इसमे जो कुछ लिखा है उस पर) विचार कर श्रेष्ठ मत्रणा कह सुनाओ।

सलिल सुबर पाखांन, मध्य पूतली अचभ।
सलिल मत्त तनजा विसाल,उररि उप्पर-रिस[1] रभ॥
ता उप्पर त्रिय नाम, प्रगट आकार उचारै।
भूलि भूलि भ्रम लोइ, मुद्ध मनसा करि डारै॥
वचौ सु वीर कैमास तुम, त्रियौ त्रच नाही लनिय।
भूतह भविक्ख अरुत्रत्त मन, इह अपुव्व कथ मैं सुनिय॥ ४॥

म्रा० पा० १ सर्व प्रति।

शब्दार्थः—सलील=जल । सलील=जल देव, वरुण । तनजा=तनुजा । उररि-उप्पर-रिस=ऊपर उठ रही है । रंभ=रम्भा । वियनाम=बीजक के अंक (विवरण) । लोइ=लोग । मुद्ध मनसा=मन मुग्ध । वियो=अन्य । मविक्ख=भविष्य । वत्तमन=वर्तमान । इह=यह । अपुव्व=अपूर्व । कथ=कथा ।

अर्थः—जल में एक श्रेष्ठ एवं आश्चर्य दायक पाषाण पुत्तलिका है । वह स्वयं जलदेव (वरुण) की मस्त पुत्री (लक्ष्मी) के समान विशाल है । वह जल से उठी हुई (निकली हुई) रम्भा के समान सुन्दर प्रतीत होती है । उसके निकटस्थ स्थित दीवाल पर अंकित विवरण भी इसी कथन का द्योतक है । उक्त विवरण को पढ कर लोग भ्रमित हो जाते हैं, तब वह पुत्तलिका भी उनको मन से मुग्ध कर लेती है । हे कैमास ! इसे केवल तुम ही पढ़ सकते हो—अन्य नहीं पढ़ सकता । इसके बारे में भूत, भविष्य और वर्तमान में अनेक अपूर्व कथाए कही जाती हैं (जिन्हें तुम ही स्पष्ट कर सकते हो) ।

दोहा

सिर कट्टै धन सग्रहै, सिर सट्टै[1] धन जाइ ।
सो मत्री कैमास तूं, मत्रहि करै उपाइ ॥ ५ ॥

- प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थ—सट्टै=सटारहने पर । धन जाइ=धन प्राप्त नहीं होता [हाथ से धन चला जाता] । मत्रहि=मंत्रणा से । उपाइ=उपाय; प्रयत्न ।

अर्थः—उस पर लिखा है कि सिर कटने से धन की प्राप्ति हो सकती है और सिर के बचे रहने पर धन हाथ से चला जाता है (प्राप्ति नहीं होती) । अत हे मत्री कयमास ! तुमही अपनी मत्रणा द्वारा उस धन की प्राप्ति का प्रयत्न कर सकते हो ।

कवित्त

श्रवन राज द्रग रत्त, श्रवन जानहि परि मान न ।
वेद दिष्ट देखै सु भेद, अभ्भेद सु ग्यान न ॥
पसुअ नयन आचरहि, धनह परिमान सु लक्खइ ।
विपत्ति लोइ ससार, सार द्रग इक्कय दिक्खइ ॥

मत्रीन दिष्ट मत्र तनी, मत्र भेद अनुसर स—रति।
त्रिमान बीर जांने सकल, मूढ ग्यांन प्रौढह सुमति॥ ६॥

शब्दार्थः—श्रवन=श्रवण। राज=राजाओं के। श्रवन=सुनते। रत्त=लीन। परिमान न=प्रमाण नहीं मानते [सत्यासत्य नहीं सोचते]। वेद दिष्ट देखे सु=वेद तुल्य मानते। धनह=वित्त, धन। विपति=दुखी। लोई=लोग। सरति=उसीसे रति, लीन। त्रिमान=निर्माण।

अर्थ—कैमास कहने लगा कि राजाओं के कर्ण ही दृग होते हैं और वे उसी में लीन रहते हैं (सुनी हुई बात पर विश्वास कर लेते हैं) वे केवल सुन जानते हैं किन्तु उसका प्रमाण (सत्यासत्य का विचार) नहीं जानते। वे सुनी हुई बातों को अपनी दृष्टि से वेद के समान देखते हैं। (वेद वाक्य मानते हैं)। उनको भेदाभेद का ज्ञान नहीं होता, उनके नैत्र पशुओं के नैत्रों के समान आचरण करने वाले होते हैं (जिस प्रकार पशुओं के नैत्र केवल आहार खोज पाते हैं)। उसी प्रकार राजाओं के नैत्र धन के परिणाम को ही देख पाते हैं (लक्ष्मी का ही दर्शन कर पाते हैं)। लेकिन दुखी पुरुष संसार के तत्व को केवल एक दृष्टि (सत्यता पूर्वक) से ही देखता है। मंत्रियों की दृष्टि मत्रणा की ओर ही होती है और वे मत्रणा के भेद (सधि विग्रह) का प्रचार करते और उसी मे लीन रहते हैं। वीरों की मति प्रौढ होते हुए भी वे मूढ ज्ञान का ही (उद्दण्डता का ही) निर्माण कर पाते हैं।

तिष्ण तरगनि पर्यौ[१], मत्र तारक हरि सुद्धरि।
बद्दरि अध कल्हार[२], राज दडह लिय उद्धरि॥
सार खख जकजीव, नयन त्रिघ्घात घात जुरि।
अखिल अखेटक भुल्लि, डुल्लि जब चित्त मित्त परि॥
भुल्लहि सु दान त्रिम्मान गति, मरन मन्न[३] नहँ लिक्खवै।
मत्रीन-मत्र भुल्लै तत्रै, विधि विचार-विवि दिक्खवै॥ ७॥

ग्रा० पा० १, पा० का० भीं०। २ ३ पा०।

शब्दार्थ—तिष्ण=तृष्णा। सुद्धरि=उमे धरा रक्खा, नहीं रटता। बद्दरि=बडुरि, बढ़ुई, वढई। कल्हार=कुल्हार, कुल्हाड़ा। उद्धरि=उसने धर लिया, उसने ग्रहण कर लिया। सार=पारना, उठाना। खख=खाख, छार। जक=विश्राम, सतोष। नय न=न्याय नहीं, न्याय का अभाव। त्रिघात-घात=

बुरेवार। -जुरि=जुटता, झगड़ता। अखिल-अखेटक=संसार की शिकार में लगा हुआ। डुल्लि=डुल जाता। सिखवै=सखता, देखता। विधि=ब्रह्मा। विचार-विधि=विचार का तरीका।

अर्थः—तृष्णा की तरंगों में पड़ा हुआ प्राणी संसार सागर से पार कर देने वाले हरि-नाम के मंत्र का स्मरण नहीं करता है। जिस प्रकार अंधे वढ़ई (सूत्रधार) के हाथ में कुल्हाड़ा दे दिया गया हो उसी प्रकार वह (राजा) राज-दण्ड को गृहण करता है और जब उसकी चिता की क्षार उठाली जाती है तब ही उसको संतोष होता है अन्यथा वहाँ तक तो उसके पास न्याय नहीं फटकता। वह बुरी तरह वार करता हुआ अन्य से भूझता (झगड़ता) ही रहता है और ससार की शिकार मे लगा हुआ स्वयं बेसुध हो जाता है। उसका चित्त तृष्णा से तभी हटता है। जब वह मृत्यु शय्या पर सो जाता है। उस समय तक वह दान और निर्माता की गति की स्मृति नहीं करता और न मन से मृत्यु को ही वह देख सकता है। मंत्रियों और उनकी सुमंत्रणाओं को भी वह ध्यान मे नहीं लाता। वह तो अपने विचारों की पूर्ति के तरीके (प्रयत्न) में स्वयं ब्रह्मा बना हुआ दिखाई देता है।

दोहा

हरखि राज प्रथिराज कहि, मति के वास दे नाम।
मति के वास के मास तुम, सकल सुमति के धाम ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—मति के-वास=बुद्धि के आगार, ब्रह्मा। मति-के-वास=(कैमास शब्द का विकृत रूप) बुद्धि के घर।

अर्थः—इन उपदेश वाक्यों को सुन कर राजा पृथ्वीराज ने प्रसन्न होकर कहा हे कैमास? बुद्धि के आगार ब्रह्मा ने तुम्हें मति-के-वास (बुद्धि के घर) नाम वास्तव में विचार पूर्वक ही दिया है, क्योंकि तुम सब प्रकार से सुबुद्धि के आगार हो।

जामत्रह प्रव्वत[1] नृपति, साँई अंग सु काज[2]।
समर सिंघ रावर मिले, तव घन कढ्ढिय[3] राज ॥ ६ ॥

प्रा० पा० १ का०। २, ३ पा०।

शब्दार्थ—जामंत्रह=जामात, जंवाई। प्रव्वत-नृपति=पहाडी प्रदेश का स्वामी। साँई-अग=हे स्वामिन आपका अंगस्वरूही। कढ्ढिय=निकाले।

है तो आप मुंज (मालवेश प्रमार मुंज) या मुंज वंशजों पर विजय प्राप्त कर उनके नाश करता है। ऐसे आपके विरुद हैं। शिव और आप दोनों नाग मुखी और सैली से सुशोभित रहते हैं। आप और वे दोनों चित्तौड़ के अर्गला स्वरूप हैं (दोनों का भेद भाव बाह्य है, वास्तव मे आप दोनों एक ही हैं। अस्तु-हम महान् आरभ (धन निकालने के बहाने युद्ध) का मडन कर (छेड़) रहे है। इसीलिये इसे श्रेष्ठ मानकर इसमे सम्मिलित होना स्वीकार कीजिये।

बंचि वीर कग्गद नृपति, हसिय चित्त वर बक्र।
कछु लज्जा सगपन सुहित, रख पुंडीरॉ सक्र ॥ १४ ॥

शब्दार्थः—बांच=बांचकर, पढकर। कग्गद=कागद, पत्र। वर-वक्र=श्रेष्ठ बांका। हसिय=हँसा।

अर्थः—चन्द पुडीर के चित्तौड़ पहुँचने पर वीर नृपति समर विक्रम ने उस पत्र को पढा और वह चित्त मे पुडीर की शका रखता हुआ पृथ्वीराज से अपने सम्बन्ध और प्रेमका विचार करके कुछ कुछ लज्जाशील होकर मन ही मन हँसा।

कवित्त

हँसि जोगिन्द नरिन्द, वत्त संमुख उच्चारी।
एक ग्रध्ध संमूह, मंस लद्धौ पल हारी ॥
श्रब्ब ग्रिद्ध विंटयो, मम चप्पी जैकारिय।
तब सु मन्त उप्पनो, मस लद्धौ गहि डारिय।
भुगवॅति कोइ गड्ढॅति कोइ, कोइक पढ कोइ लम्भवै।
दैवान दुमंकह दैव गति, जो त्रिम्मान सू त्रिम्मवै ॥ १५ ॥

शब्दार्थः—संमुख=सम्मुख। श्रब्ब=सब। विंटया=घेरलिया। मन्त=मतवाला। उप्पनो=उत्पन्न हुआ। भुगवॅति=भोगता है। गड्ढॅति=गाड़ता है। दुमकह=दु मह। सुत्रिम्मवै=वैसाही होता है।

अर्थ—उस योगीन्द्र नरेन्द्र ने हँसकर पुडीर के सम्मुख यह बात कही एक पल भक्षी गृद्ध समूह ने मास प्राप्त किया, और सबने उस मास पिंड को घेर लिया। उनमे से जो सब पर विजय करने वाला (बलवान) था, उसने उस मास के लोथ को दबा लिया (प्राप्त किया)। जब उससे भी कोई बलवान पैदा हुआ तब उसने प्राप्त किये हुए उस मास को छीन लिया (अपने अधिकार मे कर लिया)। सत्य है इसी तरह कोई लक्ष्मी को भोगता है, कोई गाड़ता है, कोई पढता है-और कोई प्राप्त

करता है। दैवगति देवताओं के लिए भी दु.रसह है। ईश्वर ने जैसा रच दिया है, वैसा ही होता है।

सुनिरू बत्त पुंडीर, बत्त जंपी सु तत्त जोइ।
तुम जोगिन्द्र नरिंद्र, मत्त जपौ सु तत्त होइ ॥
सुअ सोमेस नरिंद, वत्त सगपन मिस पुच्छिय।
तुम लहुआना गरुअ, मुक्ख कड्ढौ किम उच्छिय ॥
सामन्तनाथ सामन्त बल, मेर ठेलि दच्छिन धरहि।
प्रथीराज आज राजिन्द गुर, इन्द फनिन्द न सों डरहिं ॥ १६ ॥

शब्दार्थ:—तत्त=तत्व। जोइ=देखकर, समझ कर। तत्त-होइ=तत्व युक्त हो। लहुआना=लोह के। गरुअ=गर्व में। इन्द=इन्द्र। फनिन्द=सर्पों के स्वामी, शेषनाग।

अर्थ—समर विक्रम की बात को सुन कर और उसके तत्व को समझ कर चन्द पुंडीर बोला-हे योगीन्द्र नरेश्वर! आप इस समय अन्य बातों को जाने दीजिये। और केवल तत्व युक्त मंत्रणा ही कहिये। राजा सोमेश्वर के पुत्र ने आपसे सम्बन्ध होने के कारण ही यह बात पूछी है। आप लोह (शस्त्र) के अभिमान में आकर अपने मुँह से ऐसी तुच्छ बात क्यों निकालते हैं? वह सामन्तों का स्वामी पृथ्वीराज सामन्तों के बल पर सुमेरु पर्वत को धकेल कर दक्षिण दिशा में रख सकता है। हे राजेन्द्र गुरु! वह इस समय ऐसा वीर है जो इन्द्र और नागों के स्वामी (शेषनाग) से भी नहीं डरता है।

अग्गैइ रावर समर, करन साहस चहुवानिय।
हालाहल अग प्रचंड, सम्भ सौभै गरवानिय ॥
अग्गौं अग्गि जुगिन्द, अग्गि लग्गै विरुझानिय।
अग्गै के हरि निडर, दड्ढ चम्पै पर-वानिय ॥
अग्गेव काल सुनियै दु सहु, सह पिच्छै फिरि ठड्डयौ।
चित्रंग राव रावर समर, सम्भरिवै दिसि चड्डयौ ॥ १७ ॥

शब्दार्थ:—अग्गैइ=पहले से ही। करन=करने वाला। हालाहल=हलाहल। अग=आगे से, पहले से ही। प्रचंड=तेज। सम्भ=शम्भु, शिव। गरवानिय=ग्रीवा। अग्गौं=पहले से ही। अग्गि=आग, क्रोधी। जुगिन्द=योगीन्द्र, शिव। अग्गि लग्गै=आग प्रज्वलित, तृतीय नैत्र से आग प्रगट।

विरुझानिय=उलझ पड़ने पर। अग्गे=पहले से ही। केहरि=केशरी, सिंह। दड्ढ-चम्पे=दाढ चबाता हो। पर वानिय=अन्य द्वारा ललकारने पर। अग्गैव-पहले से ही। दुसहु=दुस्सह। सह=सहगामी होकर। पिच्छै=पीछे होने वाली बात, होनहार, भविष्य। फिरि=फिर। ठड्ढयौ=ठाढा खड़ा। चित्रंगराव=चित्तौडेश्वर। सम्मरि वै=सम्भरेश्वर। दिसि=ओर, मदत पर।

अर्थः—हे चित्तौडेश्वर रावल समर (समर विक्रम)। चहुवान राजा (पृथ्वीराज) पहले से ही पराक्रमी है फिर आपके संपर्क से वह इस प्रकार बलशाली हो जायगा जैसे पहले से ही तेज जहर हो और फिर वह शङ्कर की ग्रीवा में शोभित हो गया हो। अथवा योगेश्वर शिव पहले से ही आग स्वरूपी (क्रोधी) है फिर उनसे उलझ पड़ने पर उनके तृतीय नैत्र से आग सुलग पड़ी हो अथवा पहले से ही सिंह निड़र होता है फिर वह अन्य के ललकारने पर दाढे चबाने लग जाता है अथवा पहले ही काल (यम) दुस्सह होता है फिर बाद में होने वाली बात (भविष्य) उसकी सह गामिनी होकर खड़ी हो गई हो। अतः आप सभरी नरेश (पृथ्वीराज) की मदद पर चढ़ कर सहायता कीजिये।

रिंग्यौ सबर नरिंद, सज्जि है गै चतुरगिय।
है गै दल चतुरग, जम्पि माहाभर जगिय॥
महामत्त गज्जंत, खूदि खुर धर आहुट्टिय।
सेस सहस फन फट्टि, सकिलि सलमलि सा हुट्टिय॥
फट्यौ सु सेस फन चद कहि, तब फूकर करि जग्गयौ।
फन किन्न उद्ध कुडल करिय, तब सु सेस बल भग्गयौ॥ १८ ॥

शब्दार्थ—रिंग्यौ=खानगी की। सबर=सबल, सर विक्रम, विक्रम केशरी। है=हय, घोड़े। गै=गय, हाथी। माहाभर=बड़े २ वीर। जगिय=युद्ध वीर, रणदक्ष। मत्त=मतवाले, हाथी। गज्जंत=गर्जना करने लगे। खूदि=कुचली गई खुर=अश्व टाप। आहुट्टिय=आघात। सकिलि=सिकुड़ कर। सलमलि=हिलता हुआ। सा=वह। हुटिय=वट खाने लगा। बलभग्गयौ=सैन्य बल को बेकार किया सैन्य बल को बरदाश्त कर सका।

अर्थः—यह सुनकर राजा विक्रम (विक्रम केशरी रावल) ने अपने हाथी घोडे और चतुरंगिनी सेना को सजाया, अपने बडे २ रण दक्ष वीरों को साथ चलने की आज्ञा दी बडे २ मतवाले हाथी गर्जना करने लगे और घोडों की टापों के आघात से

पृथ्वी कुचली जाने लगी। शेष नाग के हजार फन फटने लगे। (विशेष कष्ट पहुँचा) जिससे वह सिकुड़कर हिलता हुआ बॅट खाने लगा। कवि चंद कहता है कि जब उसके सहस्र फन फटने लगे। तब वह फुंकार करके सावधान हुआ और कुडलाकृति होकर उसने अपने फन को उठाया तब ही वह (शेष नाग) सैन्य बल को सहन कर सका।

जाइ सपत्तो समर, चपि ढिल्ली धरवानं।
चहुवाना रै हथ्थ, दूत धन्नो फुरमानं॥
असम विषम साहसी, रत्त माया अनु-रत्तं।
मनौ कमल जल पत्त, मध्धि, अरु न्यारो नित्तं।
छिप्पै न कलॅक, कट्टन कलॅक, राज बंध बध्यौ नहीं।
दस कोसे कोस ढिल्लीय तैं, राज मुक्कि राजन तहीं॥ १६॥

शब्दार्थः—जाइ-सपत्ते=जा पहुचा। चपि=दबाये जानेपर। दिल्ली धर-वान=दिल्ली के भूमाग वाला, दिल्लीश्वर। चहुवाना-रै=चहुवान के पृथ्वीराज के। हत्थ=हाथ। धन्नौ=दिया। फुरमानं=फरमान, परवाना, खलीता। असम=जिसके कोई समान नहीं। विषम—साहसी=अतुल्य, पराक्रमी। रत्त=लीन। अनु=अन, नहीं। जल—पत्त=पानी में रहता हुआ। मद्धि=मध्य में, अतर में। न्यारो=अलग। नित्त=नित्य, हमेशा। छिप्पै—न कलॅक=जो कलॅक छिप नहीं पाता। कट्टन—कलॅक=कलॅक नाशक। राज-बध=राज्य बंधन। दस-कोस-कोस=ग्यारह कोम। राज मुक्की=राजा (रावल) को छोड़कर। तहीं=उसे, वहाँ।

अर्थ.—दिल्लीश्वर को धन निकालने के कारण शत्रुओं द्वारा दबाये जाने की सूचना पाकर रावल समर वहाँ जा पहुँचा। उसके आने की सूचना लेकर दूत दिल्ली पहुँचा, और पृथ्वीराज के हाथ मे पत्र देकर कहने लगा—उस (रावल समर विक्रम) के समान विषम साहसी (अतुल्य पराक्रमी) दूसरा कोई भी नहीं है। वह माया में लीन होता हुआ भी इस प्रकार विरक्त है, जैसे कमल पानी में रहता हुआ भी हमेशा अलग प्रतीत होता है (जल से उसका सम्पर्क नहीं होता, डूबता नहीं)। जो कलक छिपाये छिप नहीं सकता (प्रकाश मे आगया है) उसे वह नष्ट कर देने वाला है। राज्य के बन्धन में होते हुए भी वह निर्बन्ध है। हे राजन्! ऐसे राजा (रावल समर विक्रम) को दिल्ली से ग्यारह कोस दूर छोड़कर मैं आपकी सेवा मे उपस्थित हुआ हूँ।

राज्यंदै दरवार, सुबर आनंद उपन्नौ[१]।
पुव्व पाप कट्टनह, समर जित समर सपन्नौ ॥
सुवर वीर जोगिन्द, चद विरदावलि दिन्नौ।
दिल्ली ते अधकोस, राज अग्गै ह्वै ल्यंन्नौ[२] ॥
डमरिय सेन आडंब रह, आडम्बर चहुवांन मिलि[३]।
जंगल अहूठ जब मिलिय दुव, सुखि अडंवर बहुत[४] इलि ॥ २० ॥

ग्रा० पा० १ से ४ दे०।

शब्दार्थः—राज्यं दै=दरबार=राज सभा। सुवर=उसी समय। उपन्नौ=पैदा हुआ, छा गया। पुव्व=पूर्व। कट्टनह=काटने वाला, नाश करने वाला, मेटने वाला। समर=जित=युद्ध विजयी। सपन्नौ=आया, आ रहा है। सुवर=सबल, सह विक्रम, विक्रम नरेश। विरदावलि–दिन्नौ=विरदाया। राजा–राज पृथ्वीराज। अग्गै ल्है=सामने जाकर, प्रस्थाग करके। ल्यन्नौ=लिया, लाया। डमरिय=उमड़ पड़ी। जगल=जंगल नरेश, पृथ्वीराज। आहुट्ट=आहड़ा नरेश। दुव=दोनों। सुक्खि=सुख। अडम्बर=आडम्वर। इलि=पृथ्वी।

अर्थः—जिस समय दूत द्वारा पूर्वकृत पापों का नाश करने वाले युद्ध विजयी रावल समर के आने की सूचना मिली, उसी समय राज सभा में हर्ष छा गया। राजा (पृथ्वीराज) ने दिल्ली से आध कोस प्रस्थान करके उसको (रावल की) अगवानी की। कविचन्द ने उसे विक्रम नरेश और वीर योगीन्द्र कह कर विरुदा या। उधर से रावल की सेना आडम्बर युक्त उमड पडी और इधर से चाहुवान की सेना भी आडम्वर युक्त आगे वढ कर उससे मिली। जब जगलेश्वर (पृथ्वीराज) और आहडा नरेश्वर (रावल) दोनों परस्पर मिले तब पृथ्वी पर सुख के आडम्वर ने बहुत विस्तार पाया (सुख का विस्तार होगया)।

अनग पाल ग्रह जो[१] विसाल, तत्थ[२] उत्तरिय प्रिथापति।
विधि अनेक भोजन सु अन्न[३], राज उद्दार[४] सार भति ॥
उभय दिवस वित्तिय प्रमान[५], सव्व सामत सु पुन्छिय।
साम दाम[६] अरु भेद, कऊ भजि कद्दय[७] लन्छिय ॥
क कहन वंक तुम अनुसरहु, समर रगघ[८] रावल सुमन।
उप्पाइ मिटे सो मत करि, सुवर वीर कट्ठौ सु धन ॥ २१ ॥

ग्रा० पा० १ से ५ दे०। ६ भों। ७, ८, दे०।

शब्दार्थः—तथ्थ=तहा। उत्तरिय=ठहराये गये। प्रिथा-पति=पृथा कुमारी के पति। सार=साल, शाला, ग्रह। मति=भाँति, योग्य। प्रमान=सोच, विचार। सव्व=सब। कंक-भजि=शत्रु कंकालों को नष्ट कर, दण्ड देकर, युद्ध करके। कं=क्या। कहन=कहें, निवेदन करें। समर स्यंव=समर केशरी। उप्पाइ मिटै=प्रयत्न न करना पड़े। मंत=मंत्रणा। सुवर=सबल, विक्रम।

अर्थः—अनगपाल के विशाल महल में पृथाकुमारी के पति रावल समर को ठहराया गया, और उदार राजा पृथ्वीराज के गृह योग्य श्रेष्ठ अन्न से बने हुए विविध व्यंजन बनवाकर उनका स्वागत किया। आतिथ्य सत्कार करते हुए दो दिन बीतने पर सब सामंत रावलजी से कहने लगे, शत्रुओं के शरीर को दण्ड द्वारा नष्ट करके हमें किसी भी प्रकार साम दाम या भेद द्वारा लक्ष्मी को प्राप्त करना चाहिये। हे श्रेष्ठ मनवाले रावल समर केशरी ? हम आपसे क्या निवेदन करें ? आप स्वयं बांकेपन (वीरता) का अनुसरण करते हैं। हे वीर विक्रम नरेश ! ऐसी मंत्रणा दीजिये जिससे बिना ही प्रयत्न किये ही धन निकाला जा सके।

मति सु चारु कयमास, द्रव्य कड्ढन उच्चारिय।
सेन मुख्ख सुरतांन, राज दिज्जै प्रथुभारिय ॥
चालुक्कां चपै न सीम, रावल मुख दिज्जै।
आप आप मुख रक्खि, कड्ढि लच्छी वर लिज्जै ॥
आलाभ जुच्छ पय लाभ तुछ, सु कछु काम किज्जै नही।
गोइन्दराज खीची सुमति, मिलि विभूति कड्ढै मही[1] ॥ २२ ॥

[1] प्रा० पा० १ भौं०।

शब्दार्थः—मुख=मुहाना। रक्खि=रक्षा करे। लच्छी=लक्ष्मी, द्रव्य। आलाभ=अलाभ, हानि। जुच्छ=तथ्य, युत्थ। पय=पै, के लिये। तुछ=तुच्छ। सु=ऐसा। विभूति=लक्ष्मी, द्रव्य।

अर्थ—चन्द पुण्डीर ने कहा-श्रेष्ठ बुद्धि सम्पन्न मन्त्री कैमास द्रव्य निकालने में लगे। विशिष्ट बलवान राजा पृथ्वीराज स्वयं शाही सेना के मुहाने पर डट जॉय और मुहाना रोकने के लिए चालुक्यों की सीमा पर रावलजी को नियुक्त किया जाय, ताकि वे (चालुक्य) सीमा को न दबा सकें। इस प्रकार सभी अपने २ मुहानों पर रह कर रक्षा करते रहें, तभी द्रव्य निकाला जाय, ऐसा काम नहीं किया जाय जिससे

लिया। (सब वृत्तान्त जान लिया और उन्होंने वहाँ सेन पुंडीर के पुत्र लक्ष्मण पुण्डीर के बलको भी भाँप लिया। उन्होंने देखा कि नागौर से चार कोस पर चाहुवान और दो कोस पर चित्तौड़ पति है। वे दूत आवागमन (आने जाने के रास्ते) की सारी बातों को जानने वाले, अपनी २ मंत्रणा के पथ का अनुसरण करने वाले, मन में हिताहित को सोचने वाले, बडे बहादुर और निर्भीक तस्कर तुल्य थे। उन्होंने जब सब प्रकार से वास्तविक भेद को जान लिया, तब वे गज्जनेश्वर (शहाबुद्दीन) के पास लौट गये।

दोहा

कलि-चरित्त नागोर-पहु, दूत सपत्ते आइ।
ढिल्ली[1] वै कढ़ै सु धन, वज्जा वज्जन वाइ॥ २६॥

प्रा० पा० १ पा० घ० का०।

शब्दार्थः—कलि-चरित्त=निश्चित वृत्तान्त। नागोर-पहु=नागौर से। सपत्ते आइ=आ पहुंचे। ढिल्ली वै=दिल्लीश्वर। वज्जा=बाजे, वाद्य। वज्जन वाइ=बजवा कर।

अर्थः—नागौर की निश्चित खबर लेकर शाही दूत शाह के पास पहुँचे और कहा कि दिल्लीश्वर बाजे बजवाकर (डंके की चोट) पृथ्वी से द्रव्य निकलवा रहा है।

कवित्त

वज्जा वज्जनवाइ, दिक्खि[1] दैवान दुसकह।
चित्र कोट रावर नर्यन्द[2], भार झिल्लन[3] भुज-अकह॥
सभरवै आहूट, लच्छि कढ्ढन बत्ती सह।
गज्जन वै सुलितान[4], दूत लै आइ चरित्तह॥
सुनि सद्द[5] नद्द[6] नीसांन किय, वोलि उम्मराँ खान सह।
सज्जौ सु सेन[7] संभरि दिसह[8], चाहुआन किज्जै वसह॥ २७॥

प्रा० पा० १ पा०। २, ३, ७, ८ दे०। ४ दे० पा०। ५ दे० पा० घ० का०। ६ का० पा० घ०।

शब्दार्थः—दिक्खि=देखकर। दुसकह=सशंकित। भार झिल्लन=भार झेलने वाला, उठाने वाला। भुज-अकह=बाहुपाश में, भुजाओं पर। सभरवै=सँभरेश्वर (पृथ्वीराज)। आहूट=आहड़ा, गुहिलवंशी। कढ्ढन=निकालने में। बत्ती-सह=सहमत। गज्जनवै=गजनेश्वर। सुलितान=सुलतान।

आइ=आये। चरितह=चरित्र, वृत्तान्त। सद्द=सद्य, उसी समय, शीघ्र नद्द—नीसांन किय=नक्कारे बजवाये। उंम्मरां=उमराव। संभरि=चाहुवान राजा, पृथ्वीराज। दिसह=दिशा। किज्जै=करें। वसह=वश में, काबू में।

अर्थः—दूत कहने लगे-जिसके रण वाद्यों के रव को सुनकर देवता भी सशंकित हो जाते हैं, ऐसा वह चित्तौड़ का रावल वंशी राजा (समर) अपनी भुजाओं पर युद्ध-भार को झेलने वाला है। संभरेश्वर (पृथ्वीराज) और आहड़ा (रावल समर) दोनों ही द्रव्य निकालने मे सहमत हैं। हे गज्जनेश्वर सुलतान! हम इसकी सही सूचना प्राप्त करके आये हैं। यह सुनते ही शाह ने शीघ्र ही अपने उमरावों (वीरों) और मुसलमान सैनिकों को बुलाकर नक्कारे बजवाये और आज्ञा दी कि चौहान राजा (पृथ्वीराज) की ओर सेना सजा कर उसे वश में किया जाय।

सज्जि[1] सेन[2] सुलतान, चकाव्यूह रचि चल्लिय।
इक्क इक्क[3] असवार, बीच पाइक तिन[4] हल्लिय[5]॥
ता पच्छे गजपंति, पत्ति असवार समूहं।
जवर—जंग औराक, गोर जंबूर ति जूह॥
ता पच्छ पंति खुरसानखां, ता पच्छे गज्जन[6] अनिय।
तत्तार खांन निसुरत्तिखां, पच्छ[7] हासम खोखर पनिय॥ २८॥

प्रा० पा० १, २, ४ से ७ दे०। ३ दे० पा०।

शब्दार्थ—चकाव्यूहं=चक्रव्यूह। पाइक=पैदल। हल्लिय=चलते थे। जवरजंग=ऊँचे कद के, बड़े। औराक=ऐराकी घोड़े। गोर जंबूर ति जूह=गोले और जमूरे चलाने वालों का यूथ। अनिय=अनि, सेना। पनिय=पल्लिय, चलते थे।

अर्थ—सुलतान चक्रव्यूहाकार सेना सजा कर चला। एक २ सवार के पीछे एक-एक पैदल चल रहा था। उसने पीछे क्रमशः गज पंक्ति, बड़े २ एराकी अश्वारोहियों का समूह, गोले और जंबूरों (छोटी तोपों) का प्रयोग करने वालों का यूथ, खुरासानखाँ की सैन्य पक्ति, गजनी की सेना तथा तत्तार खाँ, निसुरत्तिखाँ, हासिम और खोखर चल रहे थे।

वाम कोद पृथिराज[1], मुक्कि[2] सुलतांन सु चल्लय।
सज्जि सेन चतुरंग, समर दिसि समर सु हल्लय॥

भूंमि धसिय, धस-मसिय सेस-कस-मसिय[3] उसरिसय[4] ।
कमठ विमठ हुव पिट्ठ, दड्ढ कोलंम[5] करस्सिय ॥
रिंगयौ सबल सुलितान दल, करि मुकाम सक्क्यो न कुइ[6] ।
मुर[7] अद्ध कोस नागौर तैं, सुनि अवाज वडक्यौस सुइ ॥ २६ ॥

ग्रा० पा० १, ३, ४, पा० । २ पा० भीं० । ५, ६ दे० । ७ पा० भीं० दे० ।

शब्दार्थ.—वामकोद=बाँई ओर । धसिय=घुसने लगी । धस मसिय=कुचली जाकर । कम मसिय=सिकुड़ कर । उसस्सिय=उठा । कोलंम=कौल, कवल, वाराह । करस्सिय=खिचपड़ी, हिलपड़ी । रिंगयौ=चला । कुइ=कोई । मुर=मुड़कर कूंच कर । सुइ=वह भी ।

अर्थः—पृथ्वीराज जिस मुहाने पर डटा हुआ था, उसे बाँई ओर छोड़ कर बादशाह चतुरंगिनी सेना सजाये हुए रावल से युद्ध करने के लिये सीधा चल पडा । सेना के चलने से पृथ्वी कुचली जाकर नीचे को घुसने लगी, जिससे शेष नाग सिकुड़ कर उकस पड़ा, (ऊपर उठ गया) । कच्छप की पीठ दबकर समतल हो गई और वाराह की दाढ भी हिलने लगी । इस प्रकार बलवान् बादशाह अपने दल के साथ चल पडा, और रास्ते में कोई भी सैनिक मुकाम (विश्राम) न कर सका । उधर नागौर से आधे कोस की दूरी पर रावल समरसिंह मुकाम किये हुए (पड़ाव डाले हुए) था, शाह के आने की आवाज सुनकर वह भी सामने की ओर बढ़ा ।

समरस्यघ सुनि समर[1], वीर निस्सान दियदे[2] ।
सज्जि सेन चतुरग, तख्खि[3] तुख्खार[4] चढ़ दे ॥
थिर थप्प्यौ[5] कयमास, लच्छि ऊप्परि[6] गहि रख्खिय ।
तरकि तोंन सजि द्रोंन, वलिय पारथ सम दिख्खिय ॥
भारथ्थ कथ्थ कवि चद कहि, समर सार वर चल्लवै ।
उच्छारि सेन सुलितान कौऊ, हय अट्ठिनि करि हल्लवै ॥ ३० ॥

ग्रा० पा० १, ३, ४, ५ दे० । २ गों । ६ पा० ।

शब्दार्थः—निस्सांन दियदे=नक्कारे बजवाये । तख्खि=तेज, तीखे । तुख्खार=घोड़े । तरकि=क्रोधित हो । तोंन=तोण । वर=बल, साहस, विक्रम । उच्छारि=उखाड़ना, पछाड़ना । अट्ठिनि=ऐंठकर ।

अर्थः—युद्ध की खबर सुनकर समर-केशरी ने भी नक्कारे बजवाये। वह अपनी चतुरंगिनी सेना को एकत्रित कर तीव्रगामी घोड़े पर चढ़ा। उसने द्रव्य प्राप्त होने वाले स्थान को सुरक्षित रखने के लिये वहाँ पर कैमास को स्थायी रूप से नियुक्त कर दिया। उस समय रावल समर-विक्रम इस प्रकार दिखाई दिया मानों तूणीर से सज्जित द्रोणाचार्य हो, या बलवान पार्थ हो। कवि (चंद) कहता है कि समर-विक्रम ने श्रेष्ठ शस्त्र प्रहार किया जिसकी (युद्ध) ख्याति महाभारत युद्ध की कथा की समता करने लगी। उसने सुलतान की सेना को नष्ट करने के लिये रास खींचकर घोड़े को बढाया।

दोहा

साहस कर पत्तिय समुद, कमुद प्रफुल्लिय रंग।
उतरि सेन सुरतान तँह, सह आई समरंग ॥ ३१ ॥

शब्दार्थः—साहस-कर=समर साहस (विक्रम रावल) के हाथ, सहस्र कर सूर्य। पत्तिय-समुद= उत्साह पूर्वक चलने लगे, समुद्र में उतर पड़ा, अस्त हो गया। कमुद=उत्साह हीन, कुमोदिनी। उतरि-सेन=उतर पड़ी, डेरा डाल दिया। आई-समरंग=युद्धार्थ आई हुई।

अर्थः—इधर समर साहस (विक्रम रावल) के हाथ उत्साह पूर्वक चलने लगे,
[illegible] ुद्ध करने के लिये उत्साहित हो गये और उनमें युद्ध-रंग
[illegible] ूर्य) समुद्र में प्रवेश करगया (अस्त हो गया) और
[illegible] यह देखकर (रात्रि हो जाने से) युद्धार्थ आई हुई
[illegible] ा दिया (युद्ध बन्द कर दिया)

[illegible] रत्त रंग, समर समर दिसि जग्गि।
[illegible] सुलतान के, खेह सु उड्डन लग्गि ॥ ३२ ॥

[illegible] र्य रक्त वर्ण धारण करके उदय हुआ। उस समय वीर
[illegible] उद्यत हो गया। इतने में शाही सेना भी सजकर आगे
[illegible] ।

खहति[१] खेह डंमरिय, दिसा अबरिय[२] सुराजै ।
अग्ग मग्ग उच्छरै, चित्त उच्छरै पराजै ॥
पवन वेग संचरै, श्रवन लग्गा असि मंतं ।
रथकु मेरु[३] चढ्ढए, वान वढ्ढए सुमंतं ॥
दऊ दीन करण[४] वल[५] दुन्द दल, लरण[६] लोह सज्जै सुभर ।
चप्यौ[७] नर्यद[८] आहुट्ट पति, अगिनि सार उड्डिय दुफर ॥ ३३ ॥

प्रा० पा० १, २, ६ से ८ दे० । ३ पा० । ४, ५ दे० पा० ।

शब्दार्थ:—खहति=आकाश में विशेष रूप से । डंमरिय=फैल गई, छागई । अग्ग-मग्ग=स्वर्ग-मार्ग । पराजै=पराजय । श्रवन=स्रवने, बरसाने । मतं=मतवाले । रथकु=सूर्य । मेरू=सुमेरु । वढ्ढए=बढाये, चलाये । करण=करने को । दुन्द=द्वन्द । लरण=लड़ने को । दुफर=भयकर ।

अर्थ:—आकाश में विशेष रूप रूप से रज के छाजाने से ऐसा प्रतीत हुआ मानों दिशाओं ने उस रजकण का ही वस्त्र धारण किया हो । उस समय वीरों के चित्त अपने प्रति पक्षियों को पराजय देने एवं स्वयं स्वर्ग-को (मोक्ष) प्राप्त करने के लिए उछलने लगे । वे मतवाले वीर तीव्रगति (पवन गति) से बढते हुए खड्गाघात करने लगे । उन उन्मत्त वीरों ने सुमेरु पर्वत से सूर्य-रथ के उपर उठते ही बाण-वर्षा करना प्रारम्भ कर दिया । जिस समय दोनों धर्मों के श्रेष्ठ योद्धाओं (हिन्दू और मुसलमान) ने द्वन्द्व युद्ध करने को शस्त्र उठाये, उसी समय एक ओर से पृथ्वीराज ने और दूसरी ओर से आहडे नरेश (समर विक्रम) ने शत्रुसेना को धर दबाया, जिसमें भयकर लोहाग्नि उडने लगी (फैलने लगी) ।

धनि[१] नर्यद[२] सुलितान[३], पान दुव[४] वीच समाहिय ।
उभय[५] मुक्ख अरि रुक्कि, स्यघ[६] वन की गति साहिय ॥
धार धार वज्जै प्रहार, नद गज्जै[७] निस्सांन ।
भभरि[८] सेन सुलितान[९], मीर उट्ठे झुकि खान ॥
दोउ दीन भीन घन धुम्मि, घर उसरि[१०] सेन लग्गे लरण[११] ।
घरि च्यारि लग्गि तरवारि झरि, अगिनि[१२]-झार लग्गी[१३] झरण[१४] ॥ ३४ ॥

प्रा० पा० १, ७ पा० । २ से ६, ८ से १४ दे० ।

शब्दार्थ:—धनि=धन्य हैं। भमुरि=भयभीत हो गई। उट्ठै=खड़े हुए, उमड़ पड़े। झुकि=टेढ़े होकर। मीन=तर हो गये। धुम्मि=झूमने लगे। घट=शरीर। लरण=लड़ने लगे। झरण=झड़ने।

अर्थ:—धन्य है, उन दोनों राजाओं (पृथ्वीराज और समर विक्रम) को जिन्होंने दोनों ओर से शाह को उसी प्रकार दबाया जिस प्रकार किसी वस्तु को दोनों हाथों से दबाया जाता है, या जैसे किसी प्राणी को एक ओर से सिंह और दूसरी ओर से वन (की भयानकता) दु खी कर देता है। परस्पर प्रहार के कारण तलवार से तलवार टकराने लगी और नक्कारों का स्वर मेघ गर्जना के समान होने लगा। जिससे शाही सेना भयभीत हो गई। यह देख कर मीर और खान (मुसलमान योद्धा) टेढ़े होकर तलवारें निकाल कर आगे बढ़े। उस समय दोनों धर्मों के योद्धाओं के शरीर रक्त से तर होकर झूमने और सेना को उत्साहित कर भिड़ने लगे। जिसके कारण चार घड़ी तक तलवारों के परस्पर प्रहार से अग्नि-ज्वाला बरसने लगी।

वलिय पु ज[1] पाहार दुविय भारथ्थ जिन मंड्यौ।
अरि अच्छरि वर ल्यंन धार धारह तन खंड्यौ॥
ईश सीस सग्रह्यौ हथ्थते[2] हथ्थन मुक्यौ॥
सूर[3] सुरस[4] कह जानि गवनु अम्मरते[5] चूक्यौ॥
जानयौ गवरि कह मानु[6] किय, कहा जानि नन्दी हस्यौ।
जानयौ चन्द यह काव्व करि चन्द लिलाटह ते खस्यौ॥ ३५॥

ग्रा० पा० १ स०। २, सर्वप्रति। ३, ४ पा०। ५, ६ दे०। ७ दे० पा०।

शब्दार्थ:—भारथ्थ=महाभारत के समान। सुर=देव योनि। धारह=प्रहारों। सूर=सूर्य। सुरस=सरस। चूक्यौ=भूल गया (रूक गया)। काव्व=काव्य।

अर्थ:—पुंज पहाड़ नामक वलवान योद्धा ने द्वितीय महाभारत के समान ही युद्ध छेड़ दिया। उसने शत्रुओं से भिडकर एवं अपने शरीर को तलवारों के प्रहारों से खण्ड-खण्ड करवा कर अप्सराओं को वरण किया। शिव ने उसके मस्तक को (अपनी मुडमाला के लिए) हस्तगत करके नहीं छोड़ा। सूर्य भी उस युद्ध की सरसता पर विचार करते हुए आकाश में, गमन करना भूलसा गया। न जाने गौरी ने भी (शिव से) मान क्यों किया? नन्दी भी क्या समझ कर हँस पड़ा। कवि चन्द

कहता है कि काव्य रचना द्वारा केवल मैं ही उस रहस्य को समझ पाया हूँ कि शिव के मस्तक से चन्द्रमाँ के खिसक पडने से ही यह सब कुछ हुआ। पार्वती इतने दिनों तक शिवको चन्द्रमाँ का प्राकृतिक चिह्न ही समझ रही थी किन्तु युद्ध की हलचल मे जब चन्द्रमा अपने स्थान से हट गया तब उसको यह आभास होगया कि वह सिर का भूषण कृत्रिम है। उसने यह भी विचार किया कि शिव ने इसे मुझे न देकर अपने ही सिर पर धारण क्यों किया? इसी कारण उसने मान किया। नन्दीगण के हँसने का कारण पार्वती का अज्ञान है, क्योंकि चन्द्रमाँ वास्तव में भूषण नहीं है।

मुत्ति लहत सामत, सिद्ध मन डोलन लग्गा।
चुकि समाधि जगि सिंभ, बभ आराधन भग्गा॥
आपु तुचा तजि सूर, तुचा मृग्ग न आराधी।
तन तुट्टिग असिधार, मग्ग नहि अच्छरि बाधी॥
अचिरज्ज एक आतम गमन, देह–मटी मुक्की निमुख।
खखेरि खाल मुक्किय जगत, सुकर किति चल्लिय सु रुख॥ ३६॥

शब्दार्थ—मुत्ति=मुक्ति, मोक्ष। लहत=प्राप्त करने पर। सिंभ=शभू। बभ=ब्रह्म। भग्गा=मिट गई, बाधा पड़ गई। आपु तुचा=अपनी त्वचा। सूर=शूर, बहादुर। आराधी=सेवन की, काम में ली। बाधी=बाधक। आतम=आत्मा। देह–मटी=मिट्टी की बनी हुई काया। मुक्की=छोड़दी। निमुख=निमेष मात्र में। खखेरि=ऊपर तले करके जला दी। खाल-मुक्किय=छोडी हुई त्वचामयी देह को। जगत=ससार, लोगों ने। किति=कीर्ति। रुख=रूह, आत्मा अक्षुण्ण स्वरूप।

अर्थः—उस वीर ने मोक्ष प्राप्ति के लिए कभी भी मृग त्वचा को काम मे नहीं लिया (अर्थात् जिस आसन पर बैठकर व्यक्ति ईश्वरोपासना करते हैं उसे उसने काम मे नहीं लिया) और केवल मात्र अपने त्वचामय शरीर को खड्ग द्वारा कटवाकर ही मोक्ष प्राप्त कर लिया। उसकी मोक्ष प्राप्ति मे अप्सराओं ने भी बाधा नहीं दी (अर्थात् उसे वरण करने का साहस नहीं किया) और उसकी आत्मा ने मृत्तिका निर्मित देह को क्षण मात्र मे ही छोडकर आश्चर्य उत्पन्न कर दिया। लोगों ने यद्यपि उसकी देह को जला दिया किन्तु उसकी आत्मा अपना यश फैलाती हुई स्वर्गस्थ होगई (अर्थात् उसने बिना ईश्वरोपासना के ही युद्ध करके परमगति को प्राप्तकर सबको आश्चर्यान्वित कर दिया) उस सामन्त के इस प्रकार मोक्ष प्राप्त करने को देखकर सिद्धों के

मन-फूलने लग गये और शिव की समाधि भी भग होगई, जिससे उनकी ब्रह्मोपासना में बाधा पड़गई।

दोहा

खां ततार रुस्तम सुभर, अरु जे मीर मसंद।
सोइ तत्ते गहि तेग खरि, वर वीरां-रस[1] मंद ॥ ३७॥

प्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थः—सोइ=उन्होंने। तत्ते=तेजी से। खरि=खड़कर, बढ़कर। वर-वीरां=श्रेष्ठ वीरों। रस=प्रेम, युद्धेच्छा। मंद=हीन, तुच्छ।

अर्थः—उस (पुंज पहाड़) के समक्ष यद्यपि अच्छे २ योद्धाओं ने जैसे तत्तार खां, रुस्तमखां, और भी कितने ही मसनद-धारी मीरों ने, बढ़कर तीव्र वेग से खड्ग गृहण किये किन्तु उन श्रेष्ठ वीरों का युद्ध-प्रेम उस समय हीन रूप में ही दिखाई दिया।

चद वंध पुंडीर वर, लक्खन लक्खां-सार।
मिले मीर मरदान मुख, धरि कर खग्ग करार[1] ॥ ३८॥

शब्दार्थ—बंध=बंधु। लक्खां-सार=लाखों में श्रेष्ठ। मिले=मिला, भिड़ा। मुख=संमुख।

प्रा० पा० १ पा०।

अर्थ—पुंज पहाड़ के मारे जाने पर, लाखों वीरों में श्रेष्ठ लक्खन नामक चन्द पुंडीर का भाई हाथ में भीषण खड्ग गृहण कर मीर योद्धाओं से जा भिड़ा।

कवित्त

खां ततार रुस्तम, हुजाव, खान[1] मुस्तफा महंमद।
है सज्जै वरसार, तत्थ आये मीरं वद।
मार मार कहि घोर, मिले लक्खन लक्खे सर।
सार धार वज्जत[2] पहार, भिरे मुख मुखह मीर गुर[3] ॥
पुंडीर सभर[4] साहस वरह, करिव इक्क[5] खदे सु[6] लल।
कौतिग्ग देव देखत सिर, अरिय भूत नंचे अकल ॥ ३९॥

मा० पा० १, २ सर्व प्रति। ३ का० घ० भीं०। ४ पा०। ५, ६ पा० भीं०।

शब्दार्थ:—है-सज्जे=घोड़ों पर चढ़े हुए। तत्थ=तहाँ पर। मीरं=मीर। बढ=बदते हुए, ललकार करते हुए। लक्खे-सर=लाखों के सिर पर, लाखों से। पहार=प्रहार। मुख मुखह=प्रत्येक के मुँह से, चारों ओर से। गुर=गुरु, बड़े,। स-त्तर=उस समय। करिव=करके। हक्क=हुंकार। खद=खा गया, नष्ट कर दिये, खदेड़ दिये। अरिय=अड़ने वाले। भूत=प्राणी। नच्चे=नृत्य करने लगे। अकल=कल रहित=बैचेन, पीड़ित।

अर्थ—अश्वों पर चढ़े हुए तत्तारखां, हुजाबखां, मुस्ताफखां और मुहम्मद आदि मीरों ने श्रेष्ठ शस्त्रों को ग्रहण किया, एवं ललकारते हुए उस (लक्ष्मण) के समक्ष आ-पहुँचे। तब वह धीर वीर (लक्ष्मण पुंडीर) भी मार २ शब्दोच्चारण करता हुआ उन लाखों शत्रुओं से जा भिड़ा। उधर से बड़े २ मीर भी प्रहार द्वारा शस्त्रों को ध्वनित करते हुए चारों ओर से आ जुटे। उस समय वह श्रेष्ठ पराक्रम धारी वीर पुंडीर भी हुँकार करते हुए शत्रुओं को नष्ट करने लगा। उससे भिडने वाले वे प्राणी (घायल होकर) पीडित अवस्था मे रणाङ्गण में नृत्य करने लगे। देवतागण इस दृश्य को गगन मण्डल से देख रहे थे।

कवित्त

चन्द बँध पुण्डीर नाम, लक्खन लक्ख्ये सुर।
दुंद देवि पचारि[1] दीन, हुंकार हकि गुर॥
ईस सीस आनन्द, प्यडु[2], गिध्धिनि मन भाइय।
हूर सूर अच्छरि विमान, चढ़ि दिक्खन[3] नभ आइय॥
आतम्म सोइ उत पति, चल्यौ देव थान विश्राम भय।
जम लोक लोपि बसि ब्रह्म पुर, जपि सेन दुत्र[4] सद्द जय॥ ४० ॥

मा० पा० १ पा० का०। २ से ४ दे०।

शब्दार्थ—बध=बधु, भाई। दुंद=द्वन्द, युद्ध। पच्चारि=प्रचार कर, ललकार कर। प्यड=पिंड, शरीर। उतपति=वहाँ से चलकर।

अर्थः—चन्द पुण्डीर के लक्खन नामक भाई को देवताओं ने युद्ध करते हुए देखा। उस समय हुँकार करती हुई स्वयं देवी भी वहाँ आकर शत्रुओं को ललकारती हुई बड़े २ वीरों को विचलित करने लगी। उस वीर के मस्तक (को प्राप्त करने)

के लिए शकर प्रसन्न हुए और उसका शरीर गिद्धनियों के मन को अच्छा लगने लगा। हूरें, अप्सराएँ और सूर्य-सभी अपने-अपने विमानों और रथों पर आरूढ़ होकर उस कौतुक को देखने के लिए नभ में आगये। उसकी आत्मा वहाँ से चलकर देवलोक में पहुँची और वहाँ विश्राम कर, बाद में यमलोक का लोप करती हुई ब्रह्म लोक मे जा बसी। यह देखकर दोनों ओर को सेनाएँ जय जय कार करने लगीं।

दोहा

स त्रन सन्नन उव्वरिय, मन-बर छुट्टिय नांहि।
ज्यों मध्या-प्रिय तुच्छ-निसि, सैरो सहर समांहि॥ ४१॥

शब्दार्थ:—सत्र=शत्रु। छुट्टिय-नाहि=नहीं छूटा, लगा रहा। मध्या प्रिय=मध्या स्त्री का पति। तुच्छ निसि=छोटी रात्रि। सैरो=सोहा सबका सो जाना। सहर स=शहर के। मांहि=अंदर।

अर्थ:—उस वीर के शस्त्राघात द्वारा कोई भी शत्रु नहीं बच पाया (सभी रणशय्या पर सोगये) फिर भी उसके श्रेष्ठ मन की इच्छा उसी प्रकार तृप्त नहीं हुई जिस प्रकार मध्या स्त्री के पति की इच्छा, शहर में सबके सोजाने पर भी छोटी रात्रि होने के कारण प्रेयसी के साथ सुरति सुख की प्राप्ति में अधिक आतुर बनी रहती है।

दोहा

कित्ति-जोग-करनह समथ, मिले सक्क सा सेन।
आये मीर सु कूह करि, परिय सिंह सिर जेन॥ ४२॥

शब्दार्थ:—कित्ति-जोग-करनह=कीर्ति करने योग्य, कीर्ति फैलाने योग्य। समथ=सामर्थ्यवान। सक्क=शाह। शाह। सा=उसकी। सेन=सेना। कूहकरि=किलकारी की, किलकारी करके। परिय=आक्रमण किया। सिंह=केशरी रावल (समर केशरी रावल)। सिर जेन= उन पर।

अर्थ.—[लख्खन पुण्डीर के मारे जाने पर] कीर्ति फैलाने योग्य सामर्थ्यवान शाह और उसकी सेना तथा मीर किलकारी (हर्ष-ध्वनि) करके आगे बढ़े। उन पर "सिंह रावल" (समर केशरी) ने आक्रमण किया।

कवित्त

घरी अद्ध दिनु रहयौ, साहि साहब "वल" भग्गिय ।
गात-खभ नृघात हाथ सामंतन लग्गिय ॥
परयौ खान आकूब जेन सेना ढढोरिय ।
केलीखाँ कुंजर कुलाह तुट्टि तन तुंग[1] विछोरिय ॥
चहुवान सेन चवदत च तनुढि तत्तिन[2] वरि[3] नंखयौ ।
सुरतान मींच पचौ परत सूर सूर[4] दिन[5] अथयौ[6] ॥ ४३ ॥

प्रा० पा० १, २, ४ से ६ दे० । ३ पा० ।

शब्दार्थः—वल=बल, विक्रम (रावल) । भागीय=भगा दिया । नृघात=बुरे आघात । जेन=जिसने । तु ग=उत्तंग । चवदत=अति समीप । तनु नत्तिन=तत्तार खां के शरीर को । वरि=फिर । नखयौ=पटक दिया, धराशायी कर दिया ।

अर्थः—अर्ध घड़ी दिन के शेष रहने पर रावल समर विक्रम ने शाहबुद्दीन को भगा दिया। उस समय चाहुवानी सामन्तों ने भी अपने हाथों से स्तम्भ-काय शत्रु वीरों पर बुरी तरह से आघात किया जिससे याकूब खा, जो कि सेना को टटोल (परख) चुका था, धराशायी हो गया। उसी प्रकार उन्होंने केलीखा, कुजर खा, और कुलाह खां आदि वीरों के उत्तंग शरीरों को भी नष्ट प्राय (घायल) कर उन्हें युद्धस्थल से भगा दिया। चाहुवान की सेना ने अत्यन्त समीप पहुँच कर तत्तारी के शरीर को भी धराशायी कर दिया। इस प्रकार सुलतान के उक्त पाचों भयकर वीरों के धराशाई होने पर, कितने ही वहादुरों के साथ २ उस दिन का सूर्य भी अस्त हुआ।

गाथा

अध वत दीह सुधीर, साहिव सेरन हति निड्डुरय ।
करि प्राक्रम अपार, जल निधि भद्धि गत्त पतग ॥ ४४ ॥

शब्दार्थः—सुधीर=श्रेष्ठ धैर्यवान । साहिव-सेरन=शेरन=शेरन शाह । हति=आहत किया । गत्त=गया, डूबा, प्रवेश किया । पतग=पतंग, सूर्य ।

अर्थ—सूर्यास्त होते होते श्रेष्ठ एव धैर्यवान निड्डुरराय ने अपार पराक्रम प्रदर्शित कर शेरनशाह को भी आहत कर दिया। इतने मे सूर्य भी समुद्र मे प्रवेश कर (गया अस्त हो गया)।

कवित्त

जल निधि मध्य पतंग, पतत[1] दिक्खिय तम ग्रासिय।
कायर पंकज मुदिग, कुमुद उग्घरि अलि वासिय॥
कोतर चितव विहग, वाम विरहनि दुख वढिड्य।
संजोगिनि शृंगार, चित्त कामह — रथ चढिड्य॥
चक्रवाक चित्त चकित्त हुअ, चोर विटी[2] मन उल्लसिय।
ऊसरी[3] सेन विय उत्तरिय, स्वामि धर्म मन मह वसिय॥ ४५॥

प्रा० पा० १ भीं०। २, ३ पा०।

शब्दार्थः—पतत=गिरता हुआ, डूबता हुआ। उग्घरि=खिल पड़ी। वासिय=बसगये, विराम किया। कोतर=घोंसले। विटी=विट (सखा विशेष) उल्लसिय=उल्लास युक्त, सोल्लास। ऊसरी=उमड़ी हुई। विय=दोनों। उत्तरिय=उतर पड़ी, विश्राम किया।

अर्थः—तम-ग्रसित सूर्य समुद्र में डूबता हुआ दृष्टि गोचर हुआ। कायरों के साथ-साथ कमल भी मुंद गये। कुमोदिनी प्रफुल्लित हुई। भ्रमरों ने विश्राम लिया। पक्षियों ने घोंसलों का विचार किया (घोंसलों की ओर चल पड़े)। वियोगिनी स्त्रियों की वियोग व्यथा में वृद्धि हुई। संयोगिनी स्त्रियों ने शृंगार किया और उनके चित्त स्मर स्यदन (कामदेव के रथ) पर सवार हो गये। चक्रवाक दम्पति के चित्त (वियोग का स्मरण कर) चकित होगये। तस्करों और विटों (स्त्री पुरुष को परस्पर मिला देने वाले सखाओं) के मन उल्लास युक्त दिखाई पड़े। इस प्रकार निशाका आगमन होने पर उमड़ती हुई दोनों सेनाओं ने भी, स्वामी धर्म को मन में स्थान देते हुए (वितानों में), विश्राम किया।

दोहा

निस—चर वर चर चित्त, चित्तं जाग्रत उभय सयनेय।
जाम सर—सरि हितं, वामाय काम सयनायं॥ ४६॥

शब्दार्थः—निस-चर=रात्रि व्यतीत होती है। वर=श्रेष्ठ। चरचित=चलचित्त, चंचल चित्त। चित्त=देखे गये। जागृत=जागृत काम द्वारा उत्तेजित। उभय=दोनों, दम्पति।

अर्थः—ज्यों ज्यों रात्रि व्यतीत होती थी, त्यों त्यों प्रेमी और प्रेमिका दोनों के श्रेष्ठ चित्त चंचल और जागृत (काम से उत्तेजित) दिखाई देते थे। काम शैया

पर कामिनियों और उनके पतियों का एक दूसरे के प्रति प्रेम इस प्रकार प्रदर्शित हो रहा था जिस प्रकार समुद्र और सरिता दोनों का परस्पर रसास्वादन (जल द्वारा सहयोग) होता है।

जबहि राज प्रथिराज, सेन उत्तरिय रयन गत।
तबहि सु राजन कज्ज, रहे सामत सु जग्गत॥
रा—चामॅड निड्डुर कमंध, अत्तताईय, ईस वर।
सु गुरु जैत पामार, अरिय भज्जन अलक्खभर॥
अवरे सु सब्ब सामत भर, चढे राज चौकी समथ।
गुर—लज्ज अवरभर सज्जि रहि, है—पक्खर चवरार हथ॥ ४७॥

शब्दार्थ:—उत्तरिय=उतर पड़ी, पड़ाव डाला। रयन—गत=रात पहुचने पर, रात्रि होने पर। राजन-कज्ज=राजा की रक्षा की। जग्गत=जागृत। ईस=ईश्वरदास (चाहुवान)। गुरु=बड़ा, भारी वीर। पामार=प्रमार। अवरें=अवर, अन्य। राज—चौकी=राजा के पहरे पर। है—घोड़े सजाये हुवे। चवरार हथ=हाथों से चमर चलाये जाने जैसे। या चरवादारों (सइसो) द्वारा।

अर्थ - रात्रि हो जाने पर पृथ्वीराज ने युद्ध बन्द करके जब सेना का पड़ाव डाला, तब राजा की रक्षा के लिये चामडराय, कमधज—निड्डुरराय, अत्ताताई श्रेष्ठवीर ईश्वरदास (चाहुवान) और शत्रु नाशक अलक्ष वीर जैत्र प्रमार और अन्य सामर्थ्य-वान सामतादि जगते हुए चौकी (पहरा) देते रहे। अपने गुरु की लज्जा रखने वाले अन्य वीरों ने भी अपने २ प्रमुख अश्वों को, जिन पर चॅवर डुलाये जाते थे, सजाये रखा (अर्थात् वे सजधज कर सावधान रहे अथवा सईसों द्वारा अपने घोडों को सजाकर सावधान रहे)।

दोहा

रामरेन पावार भर, अरु सु कन्ह भत्तीज।
फुनि रघुवशी, राजगुर[१] सब चौकी सजि नीज॥ ४८॥

शब्दार्थ:—पावार=प्रमार। भत्तीज=भतीज, भतीजा, भ्रातृ पुत्र। फुनि=पुनि, फिर। राजगुर=राजाओं के गुरु स्वरूपी रावल समर। सजि—नीज=स्वयम् सजकर।

अर्थ:—प्रमार रामरेन, नरनाह कन्ह का भतीजा और स्वय वीर रघुवशी तीनों सजकर राजगुरु रावल समर के प्रहरी (रक्षक) नियुक्त हुए।

कवित्त

खां-रुस्तम तत्तार-खांन, चौकी वे लग्गा ।
खां-नूरी हुज्जाब-खांन, महमद असि जग्गा ॥
केली-खां भक्खरी, रोम खोखर-खांपन्नी ।
घर भट्टी महनग, स्वामि मॅड्यौ साअन्नी ॥
वीरग वीर वज्जर वि-रज, वर चरित्त चिहुँ दिसि लगे ।
सुरतांन काम अरि-भजनो, सुव्वर वीर वीरह जगे[1] ॥ ४६ ॥

म्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थ:—चौकी=पहरे पर । वे=दोनों । लग्गा=लगे, नियुक्त हुए । असि जग्गा=तलवारें जग-मगाई । (चमचमाई), नगी तलवारें लिये हुए फिरने लगे । भक्खरी=पहाड़ी । खांपन्नी=खांप के, खान दान के । स्वामि=स्वामी ने, राजा पृथ्वीराज ने । सा-अन्नी=उस ओर को ससैन्य । वज्जर=वज्र तुल्य । वि-रज=वह सुशोभित हुआ । वर चरित=श्रेष्ठ चरित्रवान । चिंहु दिसि=चारों ओर । लगे= नियुक्त हुए । काम=कार्य, उद्देश्य, कर्तव्य । अरि-भजनों=शत्रुओं का नाश करना । सु-वर=उस समय । वीर-वीरह=वीर शिरोमणि, श्रेष्ठ वीर ।

अर्थ:— उधर शाह की चौकी (रक्षा) पर रुस्तम खा और तत्तार खां दोनों नियुक्त हुए । पहाड़ी, रोमी और खोखर खानदान (वंश) के नूर खां, हुजाब खा, महमूद (मुहम्मद) खां, और केली खां, भी सावधान रहते हुए चमकती तलवारें लिये हुए फिरने लगे । पृथ्वीराज ने उस ओर श्रेष्ट वीर महनसी भट्टी को सेना सहित नियुक्त किया । उसी ओर नियुक्त होकर वज्र काय वीरग वीर भी सुशोभित होने लगा । इस प्रकार चारों ओर ऐसे वीर नियुक्त हुए, जो चरित्रवान थे । सुल्तान का मुख्य कर्तव्य (उद्देश्य) शत्रुओं का नाश करना ही हैं इस बात को सोचते हुए श्रेष्ठ वीर उस समय जागते हुए सावधान रहने लगे । ॥ ४६ ॥

अग्गिवान उजवक्क, धाइ धावड़ सुलतानी ।
ता पच्छै[1] साहाव, खांन वध्यौ तुल सानी ॥
ता पाछे नूरी हुजाब, काली[2] संचारी ।
केली खां कुजर कुलाह, किन्नी कुटवारी ॥

बानिक बिराह दुल्लाह बर, भाई खा भट्टी सु सिर ।
प्रिथिराज राज आहुट्ठते, बर निसांन बज्जै दुसर ॥ ५० ॥

प्रा० पा० १, २ पा० ।

शब्दार्थ:—अगिवान=अगुआ । धाइ=बढ़ा । धात्रइ=धात्रृ बंधु । सुरतांनी=सुलतान का, शाह का । ता=उसके । पच्छै=पीछे । काली =कालेखां । सचारी=चलाया । किन्नी=की, किया । कुटवारी=कोट वाली, नेतृत्व । बानिक=तुल्य । बिराह=दोनों (शृंगार और वीर) रास्तों पर । दुल्लाह=दुलहा । भाई=भाता, अच्छा लगता । खांभट्टी=खांप में रहने वाला म्यान में रहने वाला खड्ग, (खड्गाघात) । राज-आहुट्ठ=आहडे नरेश (रावल समर विक्रम) । दुसर=दुस्सह ।

अर्थः—बादशाह की आज्ञा से उसका धात्रृ बधु उजबक उन प्रहरी वीरों का अग्रणी होकर आगे बढा । उसके पीछे शहाबुद्दीन ने उसके ही समान वीर मान कर खान को, एव उसके पीछे नूरखा, हुजाबखा और कालेखा को बढाया। इस क्रम से नियुक्त किये हुए वीरों का नेतृत्व शृंगार और वीर दोनों रसों के रसिक केलीखॉ, कुजरखॉ और कुलाहखा ने किया । उन वीरोंने, जिन्हें सिरपर खडगाघात अच्छा लगता था, प्रात काल होता देखकर पृथ्वीराज और आहडे नरेश्वर (रावल समर विक्रम) से युद्ध प्रारम्भ करने के लिए दुरसह नक्कारे बजवाये ।

सुलताना रै मुक्ख, समर उत्तरयौ नरिंद ।
मनौ बिद्धि[१] बिद्धान, माड म्रजाद समुद ॥
दोउ सेन उत्तरिय, ध्रम अप-अपन उचारिय ।
अरि समूह करि प्रान, जुद्ध बर मडि उछारिय ॥
पहु फट्टि निसा पह फट्टिकर, घरिय बज्जि घरियार घन ।
प्राची सुमत दिसि वर भिलिय, अमर किंत्ति चिंते सुमन ॥ ५१ ॥

प्रा० पा० १ भीं० का० घ० ।

शब्दार्थ—सुलताना=शाह । रै=कै । मुक्ख=समुख । बिद्धि-बिद्धान=विधि विधान । मांड-म्रज्जाद=मर्यादा का मण्डन कर्ता, मर्यादान्वित । अप-अपन=अपने अपने । उचारिय=उचारा, घोषित किया । अरि-समूह-करि=शत्रु समूह की ओर । उछारिय=उछाले, उछलने लगे । पहु-फट्टी=राजा फट गये, राजा पृथ्वीराज और समर-विक्रम स सैन्य अलग अलग चल पड़े । निसा-पह-फट्टि-

करि=अरुण वेला ने रात्रि को चीर दिया (समाप्त कर दी)। प्राची=पूर्व। मत=मित्र, सूर्य। दिसिवर=श्रेष्ठ दिशाओं को। झिलिय=झिलमिलादी, चम चमादी। अमर=कीति=अक्षुण कीर्ति।

अर्थः—उस समय अमिट विधि विधान स्वरूप और समुद्र के समान मर्यादित समर नरेश्वर युद्ध करने के लिए शाह के सम्मुख आगया। श्रेष्ठ युद्ध का प्रारम्भ करते हुए वीरों के प्राण शत्रु समूह का नाश करने के लिए उछलने लगे। जब अरूण वेला होने पर रात्रि समाप्त हो चली, घड़ी बजाने वाले ने प्रात काल सूचक घड़ी को जोर से बजायी और पूर्व दिशा में सूर्योदय होने से समस्त दिशाएँ भली प्रकार प्रकाशित होगई तब अपने अपने धर्म की दुहाई देती हुई दोनों (हिन्दू और मुस्लिम) सेनाएँ परस्पर युद्ध करने के लिए एक दूसरे के सामने बढ़ीं। उस समय वीरों ने अपने मन में अक्षुण्ण कीर्ति का चिंतन किया।

कवित

अद्ध सूर उग्गत, ढाल ढुक्की सुरतानिय।
ठांम ठांम मदगध[1], सज्जि चल्लै अगवानिय॥
धर तर गिरधावत समूह, जूह चतुरंग जगाइय।
ढिल्ली वै सुरतांन, धुक्कि नीसान वजाइय॥
जा हत्थ हत्थ कवि चंद कहि, अल्लह देइसु पाइयै।
तत्तार खांन निसुरत्तिखा, सुवर सेन रिंगाइयै[2] ॥ ५२ ॥

ग्रा० पा० १ पा० का० घ०। २ पा० भीं०।

शब्दार्थः—अद्ध=अर्ध, आधा। सुर=सूर्य। उग्गंत=उगते, उदय होते, निकलते। ढाल=ढाल स्वरूपी, अंगरक्षक सेना। ढुक्की=लग गई, तत्पर हुई। सुरतानिय=शाह की। ठांम ठांम=जगह जगह, यत्र तत्र। मदगंध=मद सौरभ युक्त, मतवाले हाथी। अगवानिय=आगे। धर-तर=धरातल पर। गिर=गिरि। धावत=विचरण करते। जूह=यूथ समूह। जगाइय=जागृत हो गये, उत्तेजित हो गये। ढिल्ली वै=ढिल्लीश्वर [पृथ्वीराज]। धुक्कि=धोंकते हुए, जोर से। जा=जिसके। हत्थ हत्थ=हाथों हाथ। अल्लह=अल्ला, खुदा, ईश्वर। सुवर=सबल। रिंगाइये=चलावो,।

अर्थः—जब आधा सूर्य निकल गया, तब शाह की अग रक्षक सेना युद्ध करने के लिए तत्पर होगई। अग्रगामी मतवाले हाथी इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे मानों

पृथ्वी पर गिरि समूह विचरण कर रहे हों। चतुरंगिनी सेनाओं के यूथ के यूथ युद्ध करने के लिए उत्तेजित हो गये। तब दिल्लीश्वर पृथ्वीराज और सुलतान ने नक्कारे बजवाये। यह देखकर कविचंद, तत्तार खाँ और निसुपत्ति खाँ को सम्बोधित कर कहता है कि तुम चाहे जितनी सबल सेनाएं बढ़ाओ, किन्तु खुदा (ईश्वर) जिसके हाथों में जो कुछ (जय पराजय) देता है, वही उसे प्राप्त होता है।

प्रात समर रावर नरिंद, साहस गत पुच्छिय।
कहै सब्ब सामन्त, मत्ति जंपौ गति अच्छिय[1] ॥
कौन वीर को धीर, कौन साहस को कातर।
कवनदूत अवधूत, जोग को वध समातर ॥
बंधनह कौन कौ बंधियै, किन बंधन तन छुट्टयै[2]।
चित्रंग राज राजग गुर, रहसि मत बर जुट्टयै[3] ॥ ५३ ॥

ग्रा० पा० १ पा०। २, ३ सशोधित।

शब्दार्थ:—साहस-गत=पराक्रम की गति, पराक्रम के हालात, पराक्रम का विषय। मति=मंत्रणा, समति। जपौ=कहो। गति-अच्छिय=श्रेष्ठ गति। को=कौन। कातर=कायर। अवधूत योगी (शिवस्वरूप)। जोग=योग्य। वध=बधु, भाई। समातर=समान, तुल्य। चित्रंग राज=चित्तौडेश्वर। राजग गुर=राजगुरु। रहसि=रहस्य मय। मत्त=मंत्रणा। जुट्टयै=जुटाइये, कहिये।

अर्थ:—प्रातः काल युद्धार्थ विदा होते समय सामन्तों ने समर रावल नरेश्वर से पराक्रम के विषय में पूछा कि श्रेष्ठ गति किसे कहते हैं? कौन पुरुष धीर और वीर कहलाने योग्य हैं? किसे साहसी और किसे कायर समझना चाहिये? हे अवधूत योगी (शिवस्वरूप)! कौन भाई तुल्य योद्धा माना जा सकता है? बंधन किसे कहते हैं, उस बंधन से बंधा हुआ कौन है और कौनसे बंधन में पडकर शरीर को छोड़ना चाहिये? हे चितोडेश्वर! हे राज गुरु? यह रहस्यमय श्रेष्ठ मन्त्रणा हमको कहिये।

इहै वीर अत्रजोग, प्रानपति सत्थन छुट्टै।
चुके न वीर अवसर प्रमान, जोग[1] जिहिं जोग अहुट्टै ॥
इक बंधन बंधियै, यहत तन बंधन अग्गै।
स्वामि सकरे छांडि[2], स्वामि हक्कारति भग्गै ॥

सोइ वीर धीर साहस सुई, सुइ रनवीर सु बीर हुइ ।
चित्रंग राव रा-वल चवै, जल डूबत रन कीर सुइ[3] ॥ ५४ ॥

प्रा० पा० १ से ३ पा०

शब्दार्थः—इहै=ऐसा, वह । अवजोग=अयोग्य । पति=स्वामि । चुक्केन=नहीं चूकते, हाथ से नहीं जाने देते । प्रमान=सोचते, विचारते हुए । जोग-जिहि-जोग=अपने ही समान से । अहुट्टै=भिड़पड़ता । इक बंधन=एकता के वधन में । यहत=यह तो, ऐसे को तो । अग्गे=आगे को, भविष्य में । संकरें=आपत्ति समय । छडि=छोड़ देता । हक्कारति=ललकारने पर भी । भग्गै=भाग जाता । वीर-धीर=धैर्य-वीर साहसी, पराक्रमी । सुई=वही । रन-वीर=युद्ध वीर । सु-बीर=श्रेष्ठ वीर, वीर शिरोमणि । हुइ=होता, हो सकता । चित्रंगराव=चितौड़ेश्वर । रा-वल=वलराय राजा विक्रम । चवे=कहता । कीर=मल्लाह ।

अर्थ— तब चित्तौडेश्वर रावल समर विक्रम कहने लगे—हे वीरों ! सुनो ! वह वीर अयोग्य है, जो स्वामी के साथ (आपत्ति पड़ने पर) अपने प्राणों को नहीं छोड़ देता। वीर पुरुष उपयुक्त अवसर प्राप्त कर उसे हाथ से नहीं जाने देता, किन्तु अपने ही समान वीरों से भिड़कर एकता के वन्धन में बँध जाता है। जो व्यक्ति स्वामी को आपत्ति में छोड़कर, ललकारने पर भी स्वामी का साथ नहीं देते हुए, शत्रु को पीठ दिखाकर भाग जाता है, उसके लिए भविष्य में भी यह शारीरिक वधन (आवागमन) तैयार रहता है, किन्तु स्वामी के युद्ध सलिल में (युद्ध-सिन्धु में डूबने पर जो व्यक्ति मल्लाह स्वरूप हो जाता है, वही धीरवीर, युद्धवीर और वीर शिरोमणि तथा पराक्रमी कहा जाता है।

दोहा

उदित अर्क दिसि पुब्ब पहु, जगे सेन दोउ[1] जग ।
अस्व अप्प वल वढ्ढए, वल वज्रंगी अग ॥ ५५ ॥

प्रा० पा० १ दे० ।

शब्दार्थ—पहु=प्रात समय । जगे=छेड़ा । अप्प=अपने । वल=वलपर । वल=विक्रम रावल । वज्रं गी-अंग=वज्रकाय ।

अर्थः—(प्रात:काल) पूर्व दिशा में सूर्य के उदित होने पर दोनों सेनाओं ने युद्ध छेड़ दिया। उसी समय वज्रकाय महावीर रावल विक्रम ने अपने ही वल पर घोड़ों को आगे वढाया।

कवित्त

तब पृथिराज नरयंद समर उत्तरिय चढाइय ।
सज्जि सेन चतुरंग वाम को दह[1] बल साहिय[2] ॥
स्याम सेत धज बद्धि नेत निक्करि निक्याइय ।
वंदि वीर विभ्भूति, लुलिय लिल्लाट लगाइय ॥
नारद नद तु वर सुचिर सिव ममाधि जग्गाइवसि ।
अद्भूत जुद्ध दोउ दीन कौ, अप्पु आन दिख्खे रहसि ॥ ५६ ॥

ग्रा० पा० १, २, दे० ।

शब्दार्थ—उत्तरिय=उत्तर को । वाम कोदह=वाम पार्श्व पर । वल=विक्रम । साहिय=डट गया । युद्ध के लिये उद्यत हुआ । स्याम=स्वामी, राजा । निक्काइय=आच्छादन । रहसि=रहस्यमय । लुलिय=झुककर । जग्गाइवसि=जगादी ।

अर्थ—तब राजा पृथ्वीराज ने रावल समर को उत्तर की ओर बढने के लिये निवेदन किया । इस बात को मानकर विक्रम रावल ने अपनी चतुरंगिनी सेना को सजाया और मुख्य चाहुआनी सेना के वाम पार्श्व पर युद्ध करने को उद्यत हुआ । जिस समय उसने ईश्वर की श्वेत रग की ध्वजाएँ फहराती हुई आगे बढ चलीं उस समय प्रमुख वीरों की रण दक्षता प्रगट हो गयी । उस (नरेश्वर) ने शिव से वन्दना करते हुए झुककर ललाट (भाल) पर विभूति (भस्म) लगाई । उसी समय नारद के तानपूरे का नाद होने लगा और शिव भी समाधि से जाग गये । स्वय शिव, दोनों धर्मावलम्बियों के उस अद्भुत रहस्य मय युद्ध को रणागण में आकर देखने लगे ।

दोहा

सुनि रु वत्त सुरतान चढि, सजि नख सिख अप सिद्ध ।
अरु भर सकल सनाह कसि, चढि अवधूत्त सनद्ध ॥ ५७ ॥

शब्दार्थः—अप=आप, स्वयम् । सिद्ध=सिधाया, चलपड़ा । सनाह=कवच । अवधूत=शिव स्वरूप रावल । सनद्ध=सन्नद्ध ।

अर्थः—अवधूत (शिव स्वरूप) रावल (मेवाडेश्वर) को सन्नद्ध हुआ (चढा) । सुनकर बादशाह ने अपने को नख से शिखा तक सजाकर और समस्त योद्धाओं ने कवच कसकर उस पर चढ़ाई की ।

जब हिन्दू दल जोर हुअ, छुट्टि मीर धर ध्रम ॥
असम समै साहस्स करि, आरब खां प्राक्रम्म ॥ ५८ ॥

शब्दार्थः—जोर=शक्ति । छुट्टि=छूटे, झपटे । धर ध्रम=धर्म धारके । असम=विषम । प्राक्रम=पराक्रम, रावल ।

अर्थः—इधर जिस समय हिन्दुओं ने सैन्य शक्ति में वृद्धि की उधर से उसी समय अपने धर्म को दृढ धारण करने वाले मीर झपट पड़े । ऐसे विषम (आपत्ति प्रद) समय में साहस करने वाले आरबखां और रावल पराक्रम (मेवाडेश्वर) ही दिखाई दिये ।

इत राजन उत समर वर, दुअ दल सज्जि असंख ।
तन तुरग तिन वर करन, नमिय तेज हय नंख ॥ ५६ ॥

शब्दार्थः—राजन=राजा [पृथ्वीराज] । समर-वर=समर-वल, समर-विक्रम । असंख=असंख्य, अपार । तन=ताना रास ऐंची । वर-करन=वल करने को । नमिय=टेढ़ा हुआ । नरव=बढाया ।

अर्थः—इधर से पृथ्वीराज और उधर से रावल समर-विक्रम ने शत्रुओं से युद्ध करने के लिए अपने अपार सैन्य समूह को सज्जित किया । जब एक ओर पृथ्वीराज ने वल-प्रदर्शित करने के लिए घोडे की रास को खींचा तो दूसरी ओर रावल समर ने भी झुक कर घोडे को तीव्र गति से आगे बढ़ाया ।

कवित्त

घरी[1]-चारि दिन चढयौ, उमडि[2] आराव खांन खरि ।
ह्यंदु[4] सेन समूह मोह-छंड्यौ सु कंक करि ॥
असि पहार चढिधार, मनुन[5] तुट्यौ तनु[6] तुट्टिय ।
अस्त वस्त वज्री कपाट दध्धीचन जुट्टिय ॥
पग पगति संभ[7] पग पग मुकति, भुगति भुम्मि कित्ती चलिय ।
धनि सुभट[8] सेन[9] सुलितांन, दल दरिय वीर मुत्ती खुलिय ॥ ६० ॥

मा० पा०, १ से ६ दे० ।

शब्दार्थः—उमडि=उमड़ कर। खरि=खड़ा, बढ़ा। ह्न्दू=हिन्दू। कक=युद्ध। मनु=मन। तनु=तन। पग पगति=कदम कदम पर। संभ=शंभू। दरिय=दल-कर। मुक्ति खुलिय=मोक्ष मार्ग को खोल दिया।

अर्थः—जब चार घड़ी दिन चढ़ गया, तब आरब खाँ सेना सहित आगे बढ़ा। हिन्दुओं का दल भी शारीरिक मोह को छोड़ कर युद्ध करने लगा। वीर गण एक दूसरे पर तलवार का प्रहार करते हुए करने-मरने लगे। युद्ध करते २ उनके शरीर टूट गये (खण्ड २ हो गये) किन्तु मन नहीं टूटे (युद्ध से विरक्त नहीं हुए) दधीचि ऋषि की हड्डियों से बने हुए वज्र के समान वक्ष स्थल वाले वे वीर युद्ध मे एक दूसरे से भिड गये। उस समय उन वीरों को पग पग पर शिव और मोक्ष मिलने लगा। उन पृथ्वी के भोग करने वाले वीरों को कीर्ति चारों ओर फैल गई। धन्य है उन वीर सामन्तों को जिन्होंने सुलतान की सेना का दलन कर उनके लिए मोक्ष के द्वार खोल दिये।

एका दसि दिन जुद्ध उमड्डि आरावखाँन जुरि।
बल घट्यौ पतिसाहि[१] खिभिर[२] खुम्मान वान[३] तुरि[४] ॥
परि अरिष्ट सुविहान, भयै सब सत्थ उतारै।
अप्प आप मुख छड्डि मंड्डि करि वार करारै ॥
घरियार सम सु" घन धाइ[५] बजि, लरत लोह भये लल्लरिय।
दोउ दीन दद दारूण[७] दुरदु[८] करहि[९] कहर[१०] गुर गल्हरिय ॥ ६१ ॥

मा० पा० १, ५, १०, दे० । २, ३, ४ पा० ।

शब्दार्थः—खिभिरि=खदेड़े। वान तुरि=बाण वर्षा करके। परि अरिष्ट=अरिष्ट दृष्टि पड़ी। सु विहान=सुबहान, सुभान, स्वरूपा शाह। उतारै=उतर पडे, (लड़ने को तैयार हुए)। मुख=मुहाना, नियुक्त स्थान। धाइ=घाव, आघात। लल्लरिय=लाल रंग के, रक्त रंजित। दुरदु=द्विरद, हाथी। गर गुल्हरिय=भारी गल्ह, विशेष ख्याति।

अर्थ—अरब खा ने एकादशी के दिन भीषण युद्ध किया। वीर खुम्मान (रावल समर विक्रम) ने भी बाण वर्षा कर शत्रुओं को खदेड दिया, जिससे बादशाह की ताकत (सैन्य शक्ति) कम होती चली गई और उस सुबहान (स्वरूपी शाह) की पराजय निश्चित हो गई। यह देख कर सब मुसलमान एक साथ उतर पडे (लडने

को तैयार हो गये)। सबने अपने २ मुहाने (निश्चित स्थान) को छोड़कर, शाह की रक्षा के लिये कटिबद्ध होकर भीषण वार करने शुरू किये। एक दूसरे पर होने वाले तलवार के आघात घड़ियाल के समान बजने लगे और लड़ते हुए उन सबके शरीर रक्त रंजित हो गये। दोनों धर्मावलम्बी (हिन्दू और मुसलमान) योद्धा विघ्नकारी दारूण हाथियों के समान थे। वे युद्ध में शत्रु के लिए आपत्ति उत्पन्न करते हुए प्रचुर ख्याति प्राप्त करने लगे।

खा खुरसांन ढहाइ, खान खुरसांन गहन पति।
सत्त दून भर समर, समर आहुंति मंहि छिति॥
सैन नवत भ्रत नवत नघत गजराज साज नव।
ते समस्त नव मत, जंत्र तंत्रन नवत सव॥
दित अदित हंस इक सथ उड़त, रण[2] आहुट्टिय वीरवर।
दिखहिति जख्य गधर्व गन[3], जपत जीह कित्ती सभर॥ ६२॥

प्रा० पा० १ पा०। २, ३, दे०।

शब्दार्थः—ढहाइ=ढहाकर, धराशायी करके। गहन=गृहण। सत्त-दून=दोसौ। आहुंति=आहुति। मंहि=दी। नवत=झुकपड़े, टूट पड़े, नष्ट हो गये। नवमंत=नमने पर, झुक पड़ने पर। जंत्र=यंत्र, [आग्नेयास्त्र आदि]। तंत्रन=तंत्र [मंत्रे हुए तावीज आदि]। दित=दिति से उत्पन्न, देवता स्वरूपी हिन्दू। अदित=अदिती से उत्पन्न, दानव स्वरूपी मुसलमान। हंस=प्राणपखेरु। जख्य=यक्ष। जीह=जिव्हा। कित्ती=कीर्ति।

अर्थः—खुरासांन खां को धराशायी करके रावल चित्तौडेश्वर खुरासानी खानों और उनके स्वामी (वादशाह) को ग्रसने के लिए गृहण के समान हो गया। उस युद्ध में स्वयं रावल समर के दो सौ योद्धाओं ने भी अपने प्राणों की आहुति दे दी। उस समय सेना सेवक, नवीन साज सहित हाथी और यंत्र (आग्नेयास्त्र) तंत्र आदि नष्ट होगये। देवता और दानव स्वरूपी हिन्दू और मुस्लिम वीरों के प्राण पखेरू एक साथ उडने लगे। उस युद्ध में श्रेष्ठ वीर परस्पर भिड़ गये, जिसे देखते हुए यक्ष और गधर्व उन वीरों का यशगान करने लगे।

परयो समर खावास समर, जित्यौ[1] सुलितांनी[2]।
जुटि भट्टी महनग छत्र[3] नख्यौ[4] सुत्रिहानी॥

परयौ गौर केहरी, रेह अजमेरां रक्खी[५]।
स्वामि ध्रम्म रस रक्त, कित्ति भारथ भर भक्खी।
रघुवश पच पचह मिले, वर पञ्चानन नॉउ[६] कवि[७]।
चित्रग भींच[८] पचौ परत, भय[९] भयान[१०] मध्यान्ह रवि[११] ॥ ६३॥
ग्रा० पा० १ से ११ दे०।

शब्दार्थः—खावास=पास में रहने वाले, अग रक्षक। छुटि=छुटकर। नंख्यौ=पटक दिया। सुबहांन=शाह का। गौर=गौड़, क्षत्रीय। भींच=भयानक। भयान=भयानक।

अर्थ—उस युद्ध में समर विक्रम के अग रक्षक योद्धाओं के धराशायी हो जाने पर भी ऐसा प्रतीत हुआ कि उस (रावत समर) की ही विजय होगी। महनमी भट्टी ने भी युद्ध करके शाह के छत्र को गिरा दिया। अपने पूर्वजों के "अजमेर पति" (नामक) विरुद (मर्यादा) को निभाता हुआ तथा स्वामी-धर्म और वीर रस मे लीन रहता हुआ केहरी गौड़ भी धराशायी होगया। जिसका कीर्तिगान समस्त भारत ने किया। श्रेष्ठ पचानन (सिंह) के समान पॉच रघुवंशी वीर भी अपना नाम अमर कर पचतत्व मे मिल गये। चित्तौड पति के कुलवाले वे भयानक योद्धा जिस समय धराशागी हुए, उस समय मध्यान्ह के सूर्य ने भी भयानक रूप धारण कर लिया।

चढत भान मध्यान, विरचि गल्लर उघरि[१] खर।
सिमटि[२] सेन सामन्त, उमडि[३] तत्तार खांन पर[४] ॥
वज्र घात आरिष्ट, वीर वालिष्ट[५] गरिष्ट्यि।
हत्त[६] वत्त[७] विस्तरिय, लुथ्थि लुथ्थिन[९] पर लिट्टिय[१०] ॥
धारंग लुट्टियन[११] छडि[१२] है इड[१३], हक्क[१४] वज्जी खलक[१५]।
कल[१६] कूह मचि[१७] मानहु[१८] महन[१९], उघरि स्यभ[२०] दिग्लिय[२१] पलक[२२] ॥६४॥
ग्रा० पा० १ पा० का० घ०। २ से २२ दे०।

शब्दार्थ—चढत भान=सूर्य के ऊपर उठने पर। विरचि=ललकारते हुए। उघरिखर=ऊपर चढे, आक्रमण किया। सिमटि=एकत्रित होकर। वालिष्ट=बलवान। गरिष्ट्यि=ग्रसना शुरू किया। हत्त=हाथ, कर प्रहार। वत्त=बात। ख्याति। धारग=घायल वीर। छडि है=घोड़े छोड़कर। ढक्क=कूदते हुए। हक्क=हुकार। वज्जी=की। कलकूह=अँधेरी रात्रि [अमावस्या]। मचि=हो गया, हो गई। स्यम्भ=शम्भू।

अर्थ—मध्यान्ह के समय गक्खरी वीर ललकारते हुए आगे बढ़े, यह देखकर सब सामन्त ससैन्य एकत्रित होकर तत्तार खाँ पर उमड़ पड़े। उन बलवान वीरों ने अनिष्टकारी वज्राघात करते हुए शत्रुओं को ग्रसना (नष्ट करना) शुरु कर दिया, जिससे उनके क्रर प्रहार की ख्याति फैलने लगी। लोथों से लोथे अड़ गईं, किन्तु वीर घायल होकर भी युद्ध से नहीं हटे। वे घोडे छोड़कर पृथ्वी पर कूदते हुए हुंकार करने लगे। उस समय ऐसा दिखाई दिया, मानों घनघोर अँधेरी रात्रि (अमावस्या) होगई हो, अथवा शिव ने पलक (तृतीय नैत्र) खोल कर देखा हो।

पल उघ्घरि दिखि स्यम्भ[1], ब्रह्म दिक्खिय[2] ब्रह्मासन।
प्रकृति पुरुष दिख्खियन, [3]प्रकृति दिख्यौ पुरखातन[4] ॥
थान थान जम पुच्छि,रम्भ पुच्छयौ[5]नभ[6] फिरि[7]फिरि।
भौ अचंभ कवि चंद लोक मग्गै[8] सु देवसरि[9]।
लम्भी सु मुकति छिन खग्ग मग, जोग मग्गु जिन[10] ढुक्कयौ।
सामन्त सूर मिलि सूर ग्रह, फिरिन तिनन तनु मुक्कयौ[11] ॥६५॥
प्रा० पा० १ से ३, ५ से ११ दे०। ४ पा०।

शब्दार्थः—स्यम=शंभू। प्रकृति पुरुष=विष्णु। दिक्खियन=देखा। पुरखातन=पुरुषातन, पौरुष, शौर्य। पुच्छियौ=तलाश की। लोक-मग्गै=लोगों के आवागमन के रास्ते पर। देव सरि=गंगा, आकाश गंगा। लम्भी=प्राप्त की। ढुक्कयौ=ढूकदिया, ठेल दिया, धकेल दिया। सूर-ग्रह=सूर्य गृह, सूर्य मण्डल। तिन न=तिन ने, नहीं, उन्होंने नहीं। तनु-मुक्कयौ=शरीर त्याग दिया।

अर्थ—पलक (नैत्र) खोलते हुए शिवने, ब्रह्मासन स्थित ब्रह्माने, प्रकृति पुरुष (विष्णु) ने और प्रकृति ने युद्ध से मारे गये वीरों के शौर्य को ही देखा किन्तु उनकी लुप्त आत्मा जो मोक्ष प्राप्त कर चुकी थी, वे भी नहीं देख सके। यम ने भी यत्र तत्र खोज की, रभा ने आकाश मार्ग में भ्रमण कर वहुत तलाश की, किन्तु किसी ने उन्हें नहीं पाया। कवि चद कहता है कि लोको मे आवागमन के मार्ग पर स्थित गगा (आकाश गगा) को भी उनके यकायक अदृश्य होने पर आश्चर्य हुआ। उन मृत वीरों ने योग-मार्ग को छोड कर खड्ग मार्ग से ही मोक्ष को प्राप्त कर लिया। सूर्य-मण्डल मे मिलकर उन्होंने फिर से अपने शरीर (ग्रहण और) त्याग का अवसर नहीं आने दिया।

दोहा

उभय सहस गक्खर परिग, थल ध्यस्यौ सुविहान[1] ।
समर स्यंघ[2] रावल समुख-परिग, वीर बिय खांन ॥ ६६ ॥

पा० पा० १ दे० घ०, २, दे० ।

शब्दार्थ—उभय सहस=दो सहस्र । परिग=धराशाई हुए । थल=रणस्थल में । ध्यस्यौ=घेर लिया । समुख-परिग=सामने पड़े, सामना किया ।

अर्थः—दो हजार गक्खर वीरों के धराशाई हो जाने पर सुलतान को रणस्थल मे घेर लिया गया यह देख कर दो मुस्लिम वीरों ने रावल समर-केशरी का सामना किया।

रहिग जाम तन अद्ध घटि, टरिन वीर जुधवार ।
खा-निसुरत्ति तत्तारखा, लयौ सैन सिर भार ॥ ६७ ॥

शब्दार्थः—रहिग=रहगया । जाम=जब । तन=तिन, वह दिन । टरिन=नहीं टले, नहीं हटे । जुधवार=जुझवार, युद्ध कर्ता ।

अर्थ—युद्ध करते २ दिन आधो घड़ी शेष रह गया, फिर भी युद्ध कर्ता वीर युद्ध से नहीं हटे। तब निसुरत्तखां और तत्तारखा ने सेना का भार ग्रहण किया (रावल समर केशरी से युद्ध छेड़ा)।

अति प्राक्रम-रावर सुभर, कूरॅभ नरसिंघ जग्गि ।
रघुवशी अति क्रम्म गुर, क्त्थ करन कलि लग्गि ॥ ६८ ॥

शब्दार्थ—अति=इधर से । प्राक्रम-रावल=पराक्रम रावल, विक्रम रावल, समर-विक्रम । सुभर=योद्धा । जग्गि=जग पड़ा, उत्तेजित हो गया । अतिक्रम=विशेष । गुर=भारी, गौरव मई । क्त्थ=ख्याति । करन=करने, बनाने । लग्गि=लगा ।

अर्थ—(दोनों मुस्लिम वीरों के आक्रमण करने पर) श्रेष्ठ वीर रावल समर-विक्रम भी कच्छप और नृसिंहावतार के समान जग पड़ा (उत्तेजित हो गया)। (युद्ध करते हुए) उस रघुवशी राजा ने कलियुग मे अपनी ख्याति को विशेष गौरवमयी बना लिया ।

कवित्त

जबहि सेन चतुरग, साहि अरि जग आइ जुहि[1],
तबहि राज रघुवस, झुकित वर खड्ग अप्प गहि ॥
हनिय मत्त गजराज, सिंघ कर मत्थ सिंघ[2] वहि ।
मनो वास[3] रँगरेज, मट्ट फुट्टयो सुरग ढहि ॥
दौरे मसद किलकार करि, धुअ समान साहस धरै ।
वज्जै वहून असिवर सबर, सुकवि चद कीरति करै ॥ ६६ ॥

मा० पा० १ घ०, का०, भीं० । २, ३, पा०, घ, का० ।

शब्दार्थ—साहि=शाह । अरि=अड़ा, जुटा । आई=आकर । जुहि=जो कर, देखकर । झुकित=झुक कर, टेढे होकर (या लटकती हुई) । सिंघ=सिंह । सिंघ=सिंघली जाति का हाथी । मट्ट=मटका, पात्र । किलकार=किलकारी । धुअ=ध्रुव । वज्जैव=बजाई, चलाई । सबर=सहबल, विक्रम (रावलो) ।

अर्थः—जब चतुरंगिनी सेना सहित बादशाह ने आकर युद्ध करना प्रारम्भ किया, तब रघुवंशियों के राजा (रावल) ने टेढ़े होकर अपनी श्रेष्ठ तलवार से शाह के मतवाले हाथी पर इस प्रकार प्रहार किया, मानों सिंह ने सिंघली हाथी के मस्तक पर कराघात किया हो । इस आघात से खण्ड न होकर वह हाथी इस प्रकार लुढ़क पड़ा, मानों रगरेज के घर (हाट) पर रग से भरा हुआ पात्र फूट कर लुढ़क गया हो । शाह के हाथी को इस तरह लुढकता देखकर, शाह के मसनद धारी योद्धा किलकारी करते हुए रावल की ओर दौड पड़े । फिर भी विक्रम रावल ने, ध्रुव के समान अटल रहते हुए धैर्य धारण किया और द्विगुण वेग से तलवार चलाई । यह देखकर मैंने (कविचंद ने) भी उसका कीर्ति गान किया ।

हुइ[1] तत्तौ रघुवस भीर भजन चहुवानी,
भौ[2] दुल्लह तिहिवेर वरण वरणी सुलितानी[3] ।
वीर मत्र उच्चार लोह अच्छित उच्छारै ।
मिलि अच्छरि करि गान लौन गिद्धनी सु उत्तारै ॥
पूजतु कलस धपि धवल सिर कलह केलि भाँवरि[4] फिरहि ॥
मंडप्प खेत मानिनि युगल[5] सस्त्र कटाच्छसि झुकि करहि ॥ ७० ॥

मा० पा० १ से ३ दे० । ४ पा० भीं० । ५ संशोधित ।

शब्दार्थः—हुल्लत्तौ=तेज हुआ, तेश में आया। भीर=आपत्ति। भौ=भयो, हुआ बना। वरणी=वरण की हुई, अधिकार में रहने वाली। सुलितानी=शाह की। अच्छित=अक्षत। उच्छारें=अप्सराएँ। धपि= तृप्त। धवल=वृषभ।

अर्थः— चाहुवान पर आई हुई आपत्ति को दूर करने के लिये रघुवशी रावल-समर विक्रम उत्तेजित हो गया। वह एक सेना (रूपी नायिका) का पति होते भी (दूसरी-मुस्लिम सेना के लिए) दुलहा स्वरूप बनकर शाह की वरण की हुई (शाह के अधिकार मे रहने वाली) सेना (रूपी नायिका) को भी वरण (अधिकार मे) करने के लिए तैयार हो गया। वहाँ पर वैवाहिक मत्र के स्थान पर वीर मन्त्र का उच्चारण होने लगा। अक्षत के स्थान पर शस्त्र उछाले जाने लगे। अप्सराओं द्वारा मगल गान होने लगा। गिद्धनियाँ राई-लोन वारने लगीं (दृष्टि नहीं लगने के लिये वीरों पर पख फैलाकर चक्कर देने लगी)। युद्ध रस से तृप्त (छके हुए) वीरों के सिर कलश के वजाय पूजे जाने लगे। कलह-क्रीड़ा (युद्ध क्रीडा) के रूप मे भावरी होने लगी। रणक्षेत्र विवाह मडप बन गया। तब दोनों (हिन्दू, मुस्लिम) विपक्षियों की सेनाएँ मानवती नायिका के रूप मे झुक-झुक कर, शस्त्र प्रहार के रूप मे एक दूसरी पर कटाक्ष करने लगीं।

दस हिंमर[१] कटि समर, छोरि गज-गाह-हथ्थ लिय।
श्रोन छिछि सब अग, पुहप जनू वृष्टि देव किय॥
किल-किंचित रसु भयौ[२], लुत्थि पर लुत्थि अहुट्टिय।
सीस टुट्टि धर टुट्टि[३], जुट्टि[४] अरियन फिरि जुट्टिय॥
विहर्‌यौ देख सुलतान मन, सेन सब्ब मन विहुरिय।
अटिहार कोइ पूज्जै नहीं, वल अभूत आतम करिय॥ ७१ ॥

मा० पा० १, ३, ४, दे०। २ का० भो० पा०।

शब्दार्थः—हिंमर=हैवर, घोड़े। छोरि=छोड़े, चलाये, प्रहार किया। गज गाह=हाथियों को कुचल देने वाला सिंह। हथ्थ लिय=हाथल, हाथ। छिछि=धारा, पिचकारी। पुहप=पुष्प। किल किंचित रस=किल किंचित हाव में त्रास, हास, रस और क्रोध एक साथ क्षणिक उत्पन्न होते हैं। अहुट्टिय=गड़ गई, छुट गई। धर=धड़, रुण्ड। जुट्टि=जुगाकर, चमक। जुट्टिय=जुट पड़े। विहुर्‌यो=डरा भयातुर हुआ। अटिहार=अटल करने वाले, युद्ध में बढ़ बढ़ कर आक्रमण करने वाले। पुज्जै नहीं=नहीं पहुँच सके। आतम=आत्मा।

अर्थः—उस युद्ध मे समर विक्रम के दस घोडे मारे गये । लगातार एक के बाद दूसरे पर सवार होता हुआ, वह क्रोध में आकर शत्रुओं पर सिंह तुल्य कर-प्रहार करने लग । उसका सारा शरीर खून की पिचकारियों से तर होकर ऐसा दिखाई पड़ा, मानों देवताओं ने उसके शरीर पर विविध रग की पुष्प वृष्टि की हो। वहाँ पर किल किंचित हाव (समर विक्रम के आतंक से शत्रुओं में त्रास, मित्रों में प्रसन्नता, अप्सराओं मे रस, (प्रेम) स्वयं समर विक्रम में या विपत्तियों में क्रोध) छा गया। लोथों पर लोथें अड़ गई, वीरों के सिर फूट गये, रुड टूट गये, फिर भी वे, उन्हें बाँधकर, शत्रुओं से बराबर युद्ध करते रहे। इस प्रकार समर-विक्रम और उसके साथियों के युद्ध में जुट पड़ने पर शाही दल का और शाह के साथियों की सेना का मन भयातुर हो गया। रावल ने जिस अद्भुत आत्म बल का प्रदर्शन किया। उसकी समानता, युद्ध में बढ़ बढ़ कर आक्रमण करने वाले वीरों मे से उसे कोई भी नहीं कर सका।

तब पृथिराज नर्‌यद[1] साहि सम्मुह[2] असि[3] साहिय ॥
पंचवान कम्मान साहि गौरी झुकि वाहिय ॥
सरकि सेन सब धरकि पच्छ जगल भए ठड्ढे ।
प्रथ्थ जेम भारथ्थ कृष्ण सारथ सम गड्ढ ॥
कर करकि करकि कम्मान कर, पत्र तेज छुट्यौ सबल ।
नट डौरि जानि पट्टह चढ्यौ, रुधिर धारि मंडी सुकल[4] ॥ ७२ ॥

आ० पा० १, २, ३ दे० । ४ दे० का० घ० ।

शब्दार्थः—साहि=शाह । असि=तलवार । साहिय=पकड़ी । साहि=ग्रहण कर, पकड़ कर । धरकि=कंपित होकर । पच्छ=पत्त । जगल=जगलेश्वर [पृथ्वीराज] । भए ठड्ढे=डटगया । पथ्थ=पार्थ, अर्जुन । जैम=जेसे । सारथ=सारथी । गड्ढे=दृढवीर । करकि=कड़क कर, ललकारकर । करकि-कमान=टंकार करती हुई कम्मान । पत्र=पत्र, पत्री, बाण । तेज= तेजी से, शीघ्रता से । छुट्यौ=छोड़ा, चलाया । पट्टह=पट्टा [एक प्रकार की तलवार] ।

अर्थः—इधर राजा पृथ्वीराज ने भी शाह के सामने होकर तलवार पकड़ी, उधर गौरी शाह ने हाथ में लेकर पांच बाण चलाये, जिससे समस्त चाहुवानी सेना कम्पित होकर पीछे की ओर हट गई। यह देखकर जंगलेश्वर (पृथ्वीराज) महाभारत कालीन

पार्थ के समान उस सेना की सहायता के लिए डट गया, और दृढ वीर रावल समर भी पृथ्वीराज के पक्ष मे कृष्ण के समान ही सारथी बन गया। उस समय बलवान पृथ्वीराज ने शत्रुओं को ललकारते हुए टङ्कार करती हुई कमान को उठाकर, इस प्रकार शीघ्रता पूर्वक वाण वृष्टि की मानों नट, डोरी पर चढकर शीघ्रता पूर्वक तलवार चला रहा हो। इसके कारण सब ओर रक्तधारा प्रवाहित हो गई।

गाथा

इत असुराण नरयदं (उत) हिंद इद चम्पि चहुवानम ॥
तक्कि तिरछे पच मसंद, हंके हक्क वक्र विखमाही ॥७३॥

शब्दार्थ—असुराण नरयदं=तुरुष्क पति, असुरपति, बादशाह। हिन्दं इद=हिन्दू राजा। चम्पि= दबाया। तक्कि=ताक कर, देखकर। तिरछे=टेढे। मसद=मसनद धारी, जिनको गादी मोडे पर बैठने का सम्मान था। हंके=बढे। हक्क=बढाये, आगे किये। वक्र=बांके। विषमाही=विषम।

अर्थ—इधर से ज्योंही बादशाह आगे बढा त्योंही उधर से हिन्दू राजा चाहुवान पृथ्वीराज ने उसे धर दबाया। यह देख कर पॉच मसनद धारी मुसलमान सैनिक अपने बॉके और विषम वीरो को आगे करते हुए बढ़े।

दोहा

अलीखॉन आलम असद, सूर सरीफ सलेम।
वज्र वान वज्जै वलिय तक्यौ राज जगलेम ॥७४॥

शब्दार्थः—सूर=शूरवीर। सलेम=सलीम। वज्र वान=वज्र के समान वाण। वज्जै=वज्रकाय। तक्यो=देखा। राज जगलेम=जगलेश्वर, नरेश।

अर्थः—उन पॉचों वीरों को जिनके नाम अलिखॉ, आलमखॉ, असदखॉ, शरीफखॉ, और सलीमखॉ थे, और जिनके वाण तथा अग दोनों वज्र तुल्य थे, (ऐसे उन वीरो का) बढते हुए जगलेश्वर (पृथ्वीराज) ने देखा।

कवित्त

तक्किराज तन हक्कि वक्कि वीरुदैत वीर जनु।
चाहुवान कमान, वान वज्जीय मेघ जनु ॥

अलीखांन, इकत्रान, संगि आलम उद्धारिय ।
असिवर असद असंध उघरि सारीफ कटारिय ॥
सल्लेम सीस कर चम्पि विय, रुधिर भेजि इक्कत उडिय ।
जयजया सद्द दुव-दीन, विन प्रांन पच करि कर छुडिय ॥ ७५ ॥

शब्दार्थः—तक्कि=देखकर । तन=तनकर, क्रोधकर, खिंचकर । इक्कि=बढा । वक्कि=बांका । विरुदैत=विरुदाया हुआ, उत्तेजित हुआ । बान वज्जिय=वज्र बाण । संगि=साथी । उद्धारिय=उद्धार किया, नष्ट किया, मोक्ष किया । असि=तलवार । असद=असदखां । असध=सध रहित, जोड़ रहित । सारीफ=शरीफखां । सल्लेम=सलीम खां । विय=दोनों । भेजि=मज्जा, गूदा । इक्कत=एक साथ । उडिय=निकल पड़ी । दुवदीन=दोनों दीन । पच=पांचों की । करिकर=करके । छुडिय=छोड़े ।

अर्थ—यह देखते ही पृथ्वीराज क्रोधित होता हुआ उत्तेजित किये गये वीर के समान उनकी ओर बढ़ा और कमान से वज्र-बाणों को मेघ के सदृश बरसाने लगा। उसके एक ही बाण ने अलीखां और उसके साथी आलमखां का उद्धार कर दिया [मोक्ष कर दिया]। उसकी श्रेष्ठ तलवार ने असदखां के जोड़ खोल दिये (अंग-काट डिये) उसकी कटारी से शरीफखां का मोक्ष हो गया। उसने सलीम के शीश को हाथों से धर दबाया, जिससे रुधिर और मज्जा, एक साथ निकल पड़ा।

पच पहु मि परि पिक्खि, भँवरि तुरकान सेन दुरि ।
अहुटि प्यंड पचास, त्रास भयभीत पिक्खि करि ॥
हक्कारिय चहुवान, जान पावहि कँह गौरिय ।
अतक वर वर कहर, कहर खिल्लिय जनु होरिय ॥
सोमेस सूर सुवनह मरद, वाज विद्धि पक्खर सहित ।
विय वाज सज्जि गज्जिय गजन, इमि सुहिंद पिक्खिय अहित ॥ ७६ ॥

शब्दार्थः—पंच=पांचो । पहुमि परि=पृथ्वी पर पड़े, धराशायी हुए । भँवरि=भमरि, डरकर, भहरा कर । अहुटि=भिड़पड़े । प्यंड पंचास=पचास पिंड, शरीर, वीरकाय । हंकारिय=घोड़े को बढाया । अतंक=काल । वरवर=लगातार, बारबार । कहर=विघ्न । कहर=आपत्ति । होरिय=फाग । सरह=शर, बाण । वाज=वाजि, घोड़ा । पक्खर=पाखर । विय वाज=दूसरा घोड़ा । गजन=गजनेश्वर, शाहबुद्दीन गोरी ।

अर्थ—उपर्युक्त पांचों मुसलमानों को धराशायी होते देखकर मुस्लिम सेना डरकर छिप गई (सामने से हट गई)। उसे भयभीत और त्रसित देखकर पचास मुसलमान योद्धा पृथ्वीराज से भिड़ गये। तब चाहुवान (पृथ्वीराज) ने भी गोरी शाह की ओर अपने घोडे को बढ़ाया उस समय ऐसा प्रतीत हुआ मानों यमराज और विघ्न लगातार आपत्ति की होली खेल रहे हों। उसी समय सोमेश्वर के पुत्र (पृथ्वीराज) ने एक ही बॉण से गोरीशाह के घोड़े को पाखर सहित बेध दिया। तब गजनी पति (गोरीशाह) दूसरे घोडे पर चढ़कर गर्जना करने लगा। जिसको सुनकर हिन्दुओं को अपने अहित की ही संभावना दिखाई पड़ी।

सुवर घोर गज्जन[1] नरयंद[2], खान[3] तत्तार वत्त सुनि।
राज रक्खि[4] कीजे[5] विचार, रीति[6] नर नाग देव दुनि[7] ॥
सुणि[8] गज्जनवै साहि[9], दाउ[10] दिज्जै नहिं दुज्जन।
जस अपजस हुई[11] मरन, भोग भुगवइ धर[12] कुज्जन ॥
सुक्ख दुक्ख लाभ[13] अद्‌सा दसा, गे शरीर लग्गा रहै।
उँच नीच चअपत चक्रगति, पति-पवित्र जिय सब सहै ॥ ७७ ॥

प्रा० पा० १ से ५, ७ से १३ दे०। ६ सर्वप्रति।

शब्दार्थ—राज रक्खि=राज रक्षा का। दुनि=दुनियाँ, संसार। कुज्जन=कौन मनुष्य। अद्‌सा=दशा बुरी, भली दशा। ऊँचनीच=ऊँच, नीच। चअपत=चपता है, चलता है। पति-पवित्र=पवित्र स्वामी।

अर्थ—तब शहाबुद्दीन बोला—हे तत्तार खाँ मेरी बात सुनो, नर, नाग, देवता और दुनिया की यह रीति है कि राज्य रक्षा के लिए विचार करते रहना चाहिये। तब तत्तार खाँ बोला—हे गज्जनेश्वर। इस समय शत्रु पर घात करने का अवसर नहीं है। यश अपयश तो होता ही रहता है, मृत्यु होने पर पृथ्वी को न जाने कौन भोगेगा? सुख-दुख, लाभ-हानि अच्छी और खराब दशा तो शरीर के साथ लगी ही रहता है। संसार का ऊँच-नीच होना हमें सदैव दबाता रहता है। अतः हे पवित्र स्वामी! जीवन बचाये रखने के लिये सब सहना पड़ता है (अतः आप अपनी रक्षा करने लिए युद्ध से हट जाइए)।

दोहा

का काया मायातिका, का महनी अह कौन ।
अप्पौं अख्यौं मिहचतें, जो देखियै सुलौन ॥ ७८ ॥

शब्दार्थ—का=क्या। अप्पौं=अपनी। मिहचतें=मीचते, बद होते, मृत्यु से पूर्व । सुलौन=सलोने, सुन्दर।

अर्थः— काया, माया, गृहिणी और घर किसी के नहीं होते। अपने नेत्रों के बंद होने के पहले २ ही ये सब सुन्दर दिखाई पड़ते हैं (वास्तव में मृत्यु हो जाने पर ये सब निस्सार सिद्ध हो जाते हैं)।

कवित्त

सुनहि खान तत्तार, अप्प स्वारथ सह लग्गै ।
पसु पंखि वर जित्तौ, तत्त सोई तन मग्गै ॥
त्रिय वधव[1] सेवक सुमित[2], अप्प तन पै तन चाहैं ।
सुर णर[3] गन गधर्व[4], जप्प जापहि अवगाहै ॥
आचेत अत्र परवस परै, भोयन विन मरदग कह ।
जम्म हथ्थ जीव पजर परै, पच सलाकह तुच्छ सह ॥ ७९ ॥

म्रा० पा० १, २, पा० । ३ दे० । ४ पा० दे० ।

शब्दार्थ—सह=सब । पसु=पशु । तत्त=तत्व । वंधन=वंधु । सुमित्त=मित्र । णर=नर । अगगाहे= अवगाहन करते, खोज करते । आचेत=अचेता । मोयन=भुवन, पृथ्वी । मरदंग=मरदानगी, पौरुष । पच=पंच तत्व मय ।

अर्थ—शाह बोला=हे तत्तार खॉं ? मेरी बात सुनों, सभी अपनी २ स्वार्थ-सिद्धि में लगे हैं। पशु-पत्ती आदि जितने श्रेष्ठ जीव हैं, वे भी इसी तत्व को (स्वार्थ को) मुख्य तत्व समझते हैं (और इसी मार्ग पर चलते रहते हैं)। स्त्री, बन्धु, सेवक और मित्र भी अपने ही शरीर सुख लिये एक दूसरे को चाहते हैं। सुर, नर और गधर्व गण आदि भी अपने स्वार्थ के लिये ही जप यज्ञादि करते हैं। पराधीन होने से ही वे सब अचेतन अवस्था में पडे हुए समझे जाते हैं। किन्तु पृथ्वी के स्वामित्व विना पौरुषत्व कैसा ? एक न एक दिन यह पिंजड़ा (शरीर) जिसमें रहता है, यम के हाथ में पड़

जाता है और तब यह पंच तत्व मय शरीर (पजर) ज्योति रहित होने पर तुच्छ (हीन) हो जाता है।

दोहा

जम्मर काल सु व्याल भ्रम, पंजर तुट्टत तेम ।
खा तत्तार अरदासि सुनि, मो आलम-मति एम ।। ८० ।।

शब्दार्थः—जम्मर=जबर, भारी। पजर=शरीर। तुट्टत=टूटता, नष्ट होता। तेम=तैसे ही, योंही, स्वत। आलम-मति=संसार की बुद्धि में। ऐम=ऐसा।

अर्थः—तत्तार खा ने कहा मेरी प्रार्थना सुनिये, सांसारिक बुद्धि मे काल रूपी भयकर सर्प द्वारा नाश को प्राप्त होना केवल भ्रम मात्र ही है। शरीर तो स्वत नाशवान है।

कवित्त

सोइ सेवक सुनि साहि,[१], स्वामि संकरै[२] छुडावै।
सोइ सुमित्त[३] अप्पनौ, चित्त मित्तें न दुरावै ।।
सोइ सुबध[४] अप्पनौ, दसा अवदसा न कथ्थै।
साइ सुतीय अप्पनी[५], असु[६] मुक्कै असु सथ्थै ।।
मति सोइ जोइ[७] पय उपजै, तत्त[८] सोइ तत्तहि मिलै।
हम भिरत[९] परत सुलतान सुनि, गज्जन वै गज्जन चलै ।। ८१ ।।
ग्रा० पा० १ से ४, ८ दे०। ५, ६, दे० पा०। ७, ६, पा०।

शब्दार्थः—साहि=बादशाह। सकरै=आपत्ति से। मित्त=मित्र। चित्त मित्तें=चित्त की बात मित्र से। नदुरावे=नहीं छिपाता है। बध=बन्धु, भाई। दसा अवदसा=भली बुरी बात। कथ्थै=कहता है। असु=अशु, शरीर। मुक्कै=छोड़ देती। पय=पद, पद पर शीघ्र। तत्तु=तत्व। गज्जन वै=गजनेश्वर। गज्जन=गजनी को।

अर्थ—हे बादशाह! सुनिये श्रेष्ठ सेवक वही है जो स्वामि को आपत्ति से छुडावे, श्रेष्ठ वहीं है जो मित्र से कोई बात नहीं छिपावे, श्रेष्ठ बन्धु वही है जो अपनी भली बुरी बात को प्रगट नहीं करे, श्रेष्ठ स्त्री वही है जो पति के शरीर के साथ ही अपने शरीर को छोड दे, श्रेष्ठ मति (बुद्धि) वही है। जो शीघ्र उत्पन्न हो जावे और तत्व मे

मिल जाना ही सच्चा तत्व है। अस्तु हम आपके लिये शत्रु से भिड जाने को तैयार हैं। अत: हे गजनेश्वर! आप गजनी को लौट जाइये।

तमक्कि तेज गौरी नरयद[1], चित्त डोलै वलु[2] साह्यौ।
अध्रम भत्त विनु अम्भ, पुट्ठि गौरीए समायौ॥
सुवर वीर सुलितान, सेन चहुवान ढँढोरी।
पगी जानि पारख्खि, जेम दरिया हिल्लोरी॥
पछ्छिलौ वल न सुलितांन लखि[3], स्यंघ-वलोकन लख्खयौ[4]।
मुरि गयौ सेन सुलितांन कौ, छत्र मीस तत्र रणंरक्खयौ[5] ॥८२॥

ग्रा० पा० १, से ३, ५, दे०। ४ पा०।

शब्दार्थ—चित डोले=विचलित चित्त को स्थिर करके। वलु-साह्यौ=बलको गृहण किया। अध्रम=नीच। भत्त=नौकर। अम्भ=जल, नूर, कांति। पुट्ठि=पीठ पक्ष। गौरी खांन दांन के योद्धा। समाद्यौ=डटे रहे। पगी=थाह लेने वाला। पारख्खि=परीख, चतुर। जेम=जैसे। पछ्छिलौ=पीछेका। स्यंघ-वलोकन=सिंहावलोकन, शेर की तरह पीछे। सेन=सेना। रणरक्खयौ=नखयौ, डालदिया, हटादिया।

अर्थ—गौरीशाह ने जोश में आकर अपने विचलित होते हुए चित्त को स्थिर कर बल ग्रहण किया। इस पर कान्ति रहित नीच सेवक चलते बने, केवल गौरी खान दान के योद्धा ही उसके पक्ष में डटे रहे। उस बहादुर सुलतान ने अपने ही बल पर चाहुवानी सेना को इस तरह टटोल (परख) लिया, जैसे कोई थाह लेने में चतुर मल्लाह समुद्र को झकझोर कर थाह लेलेता है। शेर जिस प्रकार पीछे देखता है, उस प्रकार पीछे फिर कर देखने पर उसे पार्श्व सेना नहीं दिखाई दी। उसके (पार्श्व सेना के) पीठ दिखाकर भाग जाने पर, उसने पहचान में नहीं आने के उद्देश्य से, अपने मस्तक पर से शाही छत्र को हटवा दिया।

छत्र सीस धर परत, फिरिय तत्तार खाँन रण।
वडवानल वलिवंड, समुद्र चहुवान दहन जनु॥
हूह हक्क उच्छरिय, तेक तच्छरिय सु रज्जिय।
समर भ्रमर परि सूर, हूर अच्छारी सुरज्जिय॥

पल पुज्जि सद्द जम्बुक गिधिय, रुद्धि चवसमठि रज्जई।
घन घुम्मि घाइ तत्तार धुकि, जुद्ध वत्त जग वज्जई ॥ ८३ ॥

शब्दार्थः—समुद=समुद्र। हूह हक्क=हुकार करता हुआ। उच्छरिय=उछला। तेग=तलवार। तच्छरिय=तराशती हुई, काटती हुई। समर-भ्रमर=युद्ध के चक्कर में। पल-पुज्जि=पल प्राप्त करके। सद्द=आवाज करने लगी। गिधिय=गिद्धनियाँ। रुद्धि=रुधिर। चवसमठी=चौंसठ योगिनियां। रज्जई=रजई, तृप्त हो गई। घुम्मि=झूमता हुआ। धुक्कि=झुका। जग वज्जई=ससार में फैल गई।

अर्थः—शाही छत्र के जमीन पर पडते ही तत्तार खा युद्ध करने के लिए मुड़ गया। उस समय समुद्र रूपी चाहुवान को जलाने के लिये वह वीर वडवानल के समान हो गया। हूं-हू—हुँकार करता हुआ वह उछल पडा, और उसकी तलवार शत्रुओं को काटती हुई (नष्ट करती हुई) सुशोभित होने लगी। उस युद्ध-चक्र मे कई वीर पड़ गये (पड़ कर नष्ट होने लगे) अत वहाँ हूरे और अप्सराएँ सुशोभित होने लगीं, गीदड और गिद्धनिया माँस प्राप्त कर आवाज करने लगीं और चौसठ ही योगिनियाँ रुधिर से तृप्त हो गईं। इसी समय घने घावों से छककर (घायल होकर) झूमता हुआ तत्तारखाँ पृथ्वी की ओर झुका, जिससे उसकी युद्ध ख्याति ससार में फैल गई।

पच खान सुलितान, पच खावास सु चढ्ढिय।
पास वान सुलितान, पास विय विय दस ठढ्ढिय ॥
रण रुद्धिय सुलितान, सेन विय तन वल भज्जिय।
मन पलट्यौ नटु भेख, वीर करुणा रस सज्जिय ॥
भर भीर तीर छुट्टिय दिखिय, तवसु ओट आलम गहिय।
तत्तार खान खुरसान खा, मन्त मण्डि मन्न दिखि कहिय ॥ ८४ ॥

शब्दार्थः—सुलितान=शाह उपाधिधारी। खावास=अगरक्षक। पासवान=अगरक्षक। पास विय=दोनों ओर। वियदस=बीस। रुद्धिय=रोक लिया गया। सेन विय=शाह और उसके साथियों की सेना, दोनों। नटु=नट। भेख=भेष। भर-भीर=सामन्त समूह। ओट=आड। आलम=मत्र मत मण्डिय=युद्ध स्थिति पर विचार करने को। मन्न दिखि=मन्त्र की ओर देखते हुए।

अर्थः—यद्यपि पाँचखान, पाच शाह-उपाधिधारी वीर और उनके पाच अग रक्षक तथा शाह के बीस प्रमुख अग रक्षक उसकी ओर (बादशाह के पक्ष मे) डट गये,

फिर भी वह (सुलतान) रण स्थल में रोक लिया गया जिससे उसकी और उसके साथियों की सेना की ताकत नष्ट हो गई। वीर रस से हटकर करुण रस को धारण करता हुआ शाह का मन इसी प्रकार पलट गया, जिस प्रकार नट भेष पलट देता है। सामन्त समूह ने बाणों की वर्षा करना प्रारम्भ किया। उन्हें देख कर सब शत्रुओं ने आड़ लेली। तब तत्तार खां और खुरासान खां ने उनकी ओर देखते हुए युद्ध स्थिति पर विचार करने को कहा।

जब सु खान खावास, भरर लग्गिय भय तप्पन।
बहिय सार मुख मार, छंडि गोरिय बल अप्पन॥
लाल डह सिर छत्र, दिक्खि[1] सुरतान साहि पर।
तब दोरे भर सुभर, हले हल हल्ल धराधर॥
बिच्चलिय फौज सुरतान लखि, तब छुट्टिय धर धीर सचि।
खानह सु पच खावास भिरि, सिर[2] परि आवध रीठ मचि॥ ८५॥

प्रा० पा० १, २ पा०।

शब्दार्थः—भरर=उमड़कर। भय तप्पन=तृप्त होकर, तमतमाकर। साहि-पर=अन्य ने ग्रहण करके तन दिया। भर-सुभर=श्रेष्ठ योद्धा। हले-हल=हल्ला करते हुए। हल्ल=हिल पड़े। धराधर=पर्वत। सचि=संचय की हुई। सिर-परि=सिर पर। आवध=आयुध, शस्त्र। रीठ=झड़ी। मचि=हुई।

अर्थः—यद्यपि उस समय खवास खां ने क्रोध मे तम तमाकर मार-मार उच्चारण करते हुए हिन्दू सेना पर शस्त्र प्रहार करना प्रारम्भ किया, फिर भी गौरीशाह ने अपनी शक्ति छोड ही दी। तब सुलतान के मस्तक पर उसके अन्य वीरों ने लाल दंडे वाले छत्र को जो पहले हटा दिया गया था, पुनः तान दिया। यह देखते ही हिन्दू सेना के श्रेष्ठ योद्धा उस (शाह) की ओर हल्ला (शोर गुल) करते हुए दौडे जिससे पहाड हिल पडे और शाही सेना विचलित हो गई। यह देख कर शाह द्वारा सचित किया हुआ अवशिष्ट धैर्य भी जाता रहा। उसी समय पॉच खांन योद्धाओं के बल पर खवास खॉ ने आगे बढकर युद्ध करते हुए वीरों के सिर पर शस्त्र प्रहार करना प्रारम्भ किया।

इत सुखान खावास, उतह "सामंत" सिंघ भर।
रिस रिन मत्ती रीठ, तुट्टि ताइय मसंद धर॥

गह गहंत उच्चार, कही राजेन्द्र राज-गुर ।
तबह खान रिस गव्ब, हथ्थ बाहत हंस धर ॥
जै जै सुसद्द जुग्गिनि करहि, कर खप्पर उनमत मत ।
दुअ लरै दीन बल स्वांम कें, घुरत त्रंब त्रंबान घत ॥ ८६ ॥

शब्दार्थः—सामंत=सामत सिंह नामका । सिंघ-मर=सिंह रावल (चित्तोड़ेश्वर विक्रम केसरी) का रिन=रण, युद्ध । मत्ती=मची, की । रीठ=शस्त्रास्त्र की झड़ी । तुट्टि=टूट पड़े, कट पड़े । ताइग=तप्त, तेज । गह-गहंत=उच्च स्वर । राजेन्द्र=राज राजेश्वर, पृथ्वीराज । राजगुर=राजगुरु [रावल समर विक्रम] । खांन=खवास खा । गव्ब=गर्व । हंस-धर=चंद्रहास' खड्ग । सद=शब्द । उन मत-मत=उन्मत्तवत, उन्मत्त की तरह । स्याम=स्वामी । घुरत=बजवाते हुए । त्रंब त्रबान=तामे आदि रणवाद्य । घत=घात, चोट ।

अर्थः—इधर से खवास खाँ और उधर से सिंह रावल चित्तौड़ेश्वर (विक्रम केसरी) का योद्धा सामंत (सिंह) नामक वीर आगे बढ़ा। उस सामत ने क्रोध मे आकर युद्ध भूमि मे शस्त्र प्रहार की झड़ी लगादी जिससे कितने ही मसनद धारी मुस्लिम वीर कट पडे । यह देखकर राज राजेश्वर (पृथ्वीराज) और राजगुरु (रावल समर-विक्रम) ने उच्च स्वर से प्रशसा करते हुए उसे और भी अधिक उत्तेजित किया । तब खवास खा भी गर्व और क्रोध से भरकर खड्ग चलाने लगा । यह देखकर हाथ मे खप्पर लिये हुए योगिनियाँ उन्मत्त होती हुई दोनो के लिये जय २ शब्दोच्चारण करने लगी । इस प्रकार दोनों ही वीर (खवास खा और सामत सिंह) रणवाद्य बजवाते हुए अपने धर्म और स्वामी के बल पर भिड़ पडे ।

दोहा

परे खित्त[1] खुरसांन खा, ढहि घन घाय अचेत ।
फिरि दल हिंदू जोर हुअ, बजि बरताई खेत[2] ॥ ८७ ॥

पा० पा० १ पा० । २ पा० भौं० ।

शब्दार्थः—खित्त=खेत । जोर हुग=परजोर हुआ । बजि=बजाई, तलवार चलाई । बरताई=भरदी ।

अर्थः—गहरे घावों से बेसुध होकर खुरासानखा रण क्षेत्र मे धराशायी होगया । इस पर हिन्दू सेना के बल (साहस) मे और भी वृद्धि हो गई और उसने अपने शस्त्राघातों द्वारा रणक्षेत्र को (शत्रु-शवों से) पाट दिया (भर दिया) ।

अति-सकर वर जुद्ध हुअ, इत राजन उत साहि।
दोऊ नैंन अकुरि परै, वजि बीरा रस ताहि॥ ८८॥

शब्दार्थ:—अति-सकर=विशेष कष्ट प्रद [भयानक]। अंकुरि परे=उठे, मिले। वजि=कहे जाने योग्य। वीरारस=वीर रस।

अर्थ:—तब राजा पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन मे भयानक युद्ध छिड गया। एक दूसरे की दृष्टि मिलते ही वे दोनों, वीर रस की साक्षात् मूर्ति कहे जाने योग्य दिखाई पडे।

उअ रुख आइ सहावदी, इय रुख आइय राज।
इय कर खोले खग्ग वर, उअ कामान कर साज॥ ८९॥

शब्दार्थ:—उअ रुख=उधर से। सहावदी=शहाबुद्दीन। इय रुख=इधर से। राज=राजा पृथ्वीराज। इय=इसने, पृथ्वीराज ने। कर खोले=तलवार निकाली। उअ=उसने, शहाबुद्दीन, बादशाह ने।

अर्थ:—इधर से शहाबुद्दीन और उधर से पृथ्वीराज आगे बढा। बादशाह ने हाथ में कमान ली और पृथ्वीराज ने श्रेष्ठ खड्ग निकाला।

कवित्त

जवहि साह आलम्म, झुक्कि कम्मान अप्प गहि।
तबहि राज प्रथिराज, तेग पक्करिय अप्प रहि॥
वह वरखत वर तीर, खचि वरखत सार दहि।
इहै तेज खग झमहि, करी तुट्टे कमध वहि॥
आलम्भ राज दुअ जुद्ध हुअ, नह दिख्यौ दानव रू सुर।
वर दाय चद इम उच्चरैं, करत कित्ति गैनह अमर॥ ९०॥

शब्दार्थ:—शाह-आलम=संसार का बादशाह, शहाबुद्दीन। वरखत सार=लोहा चलाने वाले। इह=इधर से, पृथ्वीराज। खग=खड्ग। झमहि=चम चमाती, झन झनाने लगी। कमध=मुंड रहित रुंड। वहि=वहन करने लगे। आलम=बादशाह। राज=राजा, पृथ्वीराज। गैनह=आकाश।

अर्थ:—जब बादशाह ने टेढ़े होकर कमान पकड़ी, तब पृथ्वीराज ने भी तलवार ग्रहण की। उधर से बादशाह ने कमान को खींचकर तीर चलाना शुरु किया, जिससे

शस्त्रधारी वीर धराशायी हुए। इधर से पृथ्वीराज ने भी खडगाघात प्रारम्भ किया। जिससे कितने ही हाथी कट पडे और युद्ध स्थल में रुण्ड फिरने लगे। इस प्रकार बादशाह और पृथ्वीराज में युद्ध हुआ। ऐसा युद्ध देवताओं और दानवों मे भी होता हुआ कभी नहीं देखा गया। चंद बरदाई कहता है कि इस समय आकाश मडल से देवतागण भी उन दोनों का कीर्तिगान करने लगे।

दोहा

भगी अनी सुरसांन खां, छुट्टि मीर धर ध्रम्म।
गह्यौ साह आलंम कर, विचलि सुभर तजि श्रम ॥ ६१॥

प्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थः—अनी=सेना। ध्रम्म=धर्म। श्रम्म=शरम।

अर्थः—इस प्रकार भयानक युद्ध होने पर, जब शाही सेना भाग गई, खुरासानखा जैसे धर्म पर दृढ रहने वाले अच्छे२ मीर भी धर्म से पतित हो गये और अन्य मुस्लिम वीर भी लज्जा का परित्याग कर पलायन कर गये, उसी समय शाह पकडा गया।

कवित्त

गहि लीनौ सुरतान, समर लिन्नौ जसु भारी।
चामर छत्र तखत[1], रखत[2] लुट्टै रन रारी॥
चित्र कोट चव रग, साहि दिन्नौ चहुआन।
चतुर दसी रवीवार, वीर वज्जे परवान॥
बुल्लयौ वीर कैमास तब, धन कट्टन चल्लो समुह।
आरब्ब राव भौंरा[3] सुभर, चपि जु रक्खौ गजि उह॥ ६२॥

प्रा० पा० १, २, पा०। ३, पा०, का०, भौं०, घ०।

शब्दार्थ—रखत=रसद, सामान। चवरग=चौगुना रग है, चौगुना धन्य है। परवान=प्रमाण युक्त, सत्य। आरब्ब राव=अर्बुदराजवशी प्रमार। सुभर=योद्धा। उह=उसे, या वह।

अर्थ—बादशाह को पकड लेने पर रावल समर विक्रम को विशेष ख्याति प्राप्त हुई। उसने युद्ध कर शाह से उसका चमर, छत्र, तख्त और रसद का सामान छीन

लिया। उस चित्तौडेश्वर को चौगुना धन्य है-जिसने बादशाह को पकड़ कर चाहुवान पृथ्वीराज को सौंप दिया। इस विजय की तिथि चतुर्दशी रविवार थी। उस दिन वीर वाद्य बजवाये गये। उसी समय वीर कयमास ने सम्मति दी कि द्रव्य तो निकाल ही लिया है, अतः अब हमें वर्त्तमान आबू नरेश (धारावर्ष) को, जो भोला भीम का योद्धा (साथी) कहलाता है, दबाकर नष्ट कर देना चाहिए।

दोहा

परे सेन गोरी गरु, गहि लिन्नौ सुरतान।
सोमेसर नदन सुकर, जै लिन्नौ जय पान॥ ६३॥

प्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थ—परे=धराशायी हुआ। गरुव=भारी वीर। जै=जय, विजय। जय-पान=जय पत्र।

अर्थः—इस प्रकार वीरवर गौरीशाह के घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ने पर, उसे पकड़ लिया गया, जिससे सोमेश्वर के पुत्र पृथ्वीराज के हाथों में जयलक्ष्मी के साथ ही जय-पत्र भी प्राप्त हुआ।

कवित्त

गह्यौ साहि आलम्म, सुजस लिन्नौ चहुआन।
खलक खान भग्गिय बिहाल, परै है गै धर थान॥
मीर मसद मसंद, कटे सामत हथ्थ भर।
दुअ राजन भर जुरे, सुबर लिन्नौ सु अप्प कर॥
जै जै सबद जुग्गिनि करै, सीस गहे ईसनि समथ।
कवि कहै चद भारथ्थ वर, करिय राज प्रारभ कथ॥ ६४॥

शब्दार्थः—खलक खांन=सब मुस्लिम वीर। बिहाल=घबरा कर। है-गै=हाथी घोड़े। भर=भट। जुरे=जुटे। सुबर=सबल, विक्रम रावल। ईसनि=ईश ने, शिव ने। कथ=कथा, ख्याति।

अर्थः—बादशाह के पकडे जाने के कारण चाहुवान राजा ने यश प्राप्त किया। जितने भी मुस्लिम योद्धा थे, वे सब घबरा कर भाग गये। युद्ध भूमि में बहुत से हाथी-घोडे कट पडे। सामतों के हाथों से बहुत से मसनद धारी वीर नष्ट हो गये। दोनों राजाओं (पृथ्वीराज और रावल समर विक्रम) के योद्धाओं

द्वारा विपक्षियों से घिर पड़ने पर ही विक्रम रावल (समर विक्रम) अपने हाथों से बादशाह को पकड़ने में समर्थ हुआ। उस समय रणस्थल में योगनियाँ जय जय शब्दोच्चारण करने लगीं, शिव ने बलवान वीरों के सिरों को अपनी मुण्ड माला के लिये ग्रहण किया। कवि चन्द कहता है कि राजा ने श्रेष्ठ युद्ध कर यश ख्याति का प्रारम्भ कर दिया (वृद्धि करदी)।

वजि नर्यंद[1] जय पत्त, दोय वज्जा घन घज्जे।
ताइय[2] भर[3] गज राज राज, दरबारांण[4] गज्जे॥
चामर छत्र रखत्त, तखत लिन्नो सुलितानी[5]।
उत्तर धड़ उत्तम[6] गयो, सुलतानंह पानी।
छन्न्यौ छत्र सुलितांन सिर, राज-छत्र सिर मन्न्यौ॥
वाजत नद्द निस्सांन घन, बधि साहि दँडि छन्न्यौ॥ ६५॥

प्रा० पा० १, ३ से ६ दे०। २ पा० भीं० घ०।

शब्दार्थ—वजि=बजाकर। जय पत्त=जय पति, विजय वधू का पति। दोय दोनों (पृथ्वीराज और समर विक्रम)। वज्जा=बाजे। घन वज्जे=जोर से बजाये, उच्च स्वर से बजाये। ताइय=तपाची, त्रसित की। भर=भू भाग। गज=गजनी। दरबारणि=सभा में। सुलितानी=शाही। उत्तर-धड़=उत्तर भारत के स्वामी, (पृथ्वीराज और समर विक्रम) पानी=नूर, कांति। दंडि=दण्डित करके।

अर्थ:— विजय वधू के स्वामी कहला कर दोनों राजाओं (पृथ्वीराज और समर विक्रम ने उच्च स्वर से विजय वाद्य बजवाये। गजनी के भूभाग को त्रस्त करते हुए हिन्दू वीर राज सभा में गर्जना करने लगे। शाह के चवर, छत्र, सिंहासन और रसद सामग्री को लूट लिया गया। उत्तर भारत के स्वामी पृथ्वीराज और समर विक्रम के गौरव में वृद्धि हुई और मुलतान प्रदेश वाले शाहबुद्दीन की कान्ति नष्ट हो गई। सुलतान के सिर से छत्र को हटाकर राजा पृथ्वीराज के मस्तक पर सुशोभित किया गया। इस प्रकार नक्कारों की आवाज के साथ ही शाह को बन्दी बनाकर दंडित कर छोड़ दिया गया।

गाथा

जिते वज्जन, वज्जय, जै जं नद्द नभ सुर[1] करई।
सुभट खेत सु सूरम उप्पारय, जिनके सुभटाई॥ ६६॥

प्रा० पा० १ दे०।

शब्दार्थ—जित्ते=जीत के। वज्जन=बाजे। वज्जम=बजवाये। करई=करने लगे। सुद्धै=सोधे, खोजे। किक्क=कईक, कितने को।

अर्थः—विजय वाद्य बजवाये गये, आकाश से देवता भी जय २ की ध्वनि करने लगे। रणक्षेत्र से कितने ही बहादुर सामन्तों को, जो घायल हो गये थे, खोजकर उठाया गया।

सित्त[1] कलस त्रबक्किय, सत्त अध मद्धि रजक्किय।
हेम कलस सत पच, कलस पाखान सतक्किय॥
सत्त अद्ध वाजित्र, सहस अध खग्ग प्रमान।
हेम हीर हिंडोल, एक आचभ सु थानं॥
जान्यो न देव देवाधि गति, दैव जोग सिंहासनह।
चित्रग राव रावर समर, सम सु राज प्रथु आसनह॥ ६७॥

आ० पा० १, का०।

शब्दार्थ—सित्त=सौ। त्रबक्किय=तांबे के। सत अध=पच्चास। रज्जाकय=रूपे के। हेम=हर्म, सोना। सत-पच=पाच सौ। सतक्किय=सौ। वाजित्र=बाध। सहस-आध=सहस्र के आधे, पांचसौ। हीर=हीरे। हिंडोल=हिंडोला, झूला, हिंगुलाट। आचभ=आश्चर्य। सम,सु=समान ही, एक ही।

अर्थः— जिस वितान में राजा पृथ्वीराज और समर विक्रम एक ही आसन पर बैठे हुए थे, वहाँ पर निकाला हुआ द्रव्य लाया गया। उसमे सौ घडे तांबे के, सौ चांदी के, पांच सौ सुवर्ण के और सौ पाषाण के, द्रव्य से भरे हुए थे। इसके अतिरिक्त उसमें ५० वाद्य यत्र, ५०० तलवारें और स्वर्णिम शृंखला वाला, हीरोंसे मंडित एक हिंडोला (झूला) भी था। इन सबसे आश्चर्य दायक एक सिंहासन था। जिसकी रचना देवाधिदेव भी नहीं जान सकते थे।

मगि सिंघासन राज, लच्छि चतुरंग सु अप्पिय।
समर सिंघ रावर नरिंद, अग्गैं धरि जप्पिय॥
रजि ाज आहुट्ठ, राज दिल्लीय दिस आइय।
वर पट्टन जहाँ नरिंद, लिखि दूत पठाइय।
ओतान-राग चहुआन हुअ, कथा जपि ससि वृत्त किय।
पावस प्रमान कट्टिय विकट, सुवर राज यों मत्तकिय॥ ६८॥

शब्दार्थः—मँगि=मंगवाकर। लच्छि=लक्ष्मी। चतुरंग=चार प्रकार की। अप्पिय=अर्पित की। जप्पिय=कहा, विनम्र वाक्य कहे। रंजि=रंजन कर, प्रसन्नकर। राज-आहुट्ठ=आहडे नरेश के। जद्दों=यादव। कथा-जपि=सुन्दरता की ख्याति। ससिवृत्त=शशिवृता कुमारी। किय=की। मत्तकिय=मतवाला।

अर्थः—पृथ्वीराज ने उस सिंहासन सहित चार प्रकार की लक्ष्मी को रावल समर केशरी के समक्ष सविनय रखदी। इस प्रकार आहडे-नरेश्वर को प्रसन्न कर (विदाकर) वह दिल्ली की ओर चल पड़ा। उसी समय पट्टन पति यादव राज ने पत्र लिखकर पृथ्वीराज के पास दूत भेजा। उस दूत द्वारा शशिवृता की प्रशंसा सुनकर पृथ्वीराज को श्रोतानुराग हो गया, जिससे उस मतवाले राजा की प्रेम विह्वल दशा पावस ऋतु के तुल्य होगई।

बंचि राज कैमास, सोई अतर सिल लीनह।
द्रव्य ताम उध्घरिय[1], भरिय करहासे—तीनह॥
एकादस गज पूर, पथ सभरि पुर थानह।
वासुर सत सक्रमे, भरिय भंडार विधानह॥
संचरिय राज मृगया बहुरि, पुर खट्टू पारस रवन।
कर पत्र रूढ जट जूट पह[2], आइ राज भेट्यो[3] सुजन॥ ६६॥

मा० पा० १ का० घ० भीं०। २, ३ का० घ०।

शब्दार्थः—सोई=सो, जो। सिल=शिला। लीनह=लिया। ताम=तब, उसमें से। उध्घरिय=उघाड़ा, निकाला। करहा=उष्ट्र, ऊँट। से-तीनह=तीन सौ। पूर=परिपूर्ण, भरे। सत=सात (या सौ)। सक्रमे=चले। भंडार=भांडागार, कोष। विधानह=तरीके से। संचरिय=गया। राज=राजा पृथ्वीराज। पारस=पास। रवन=रमने को, खेलने को। रूढ=आरूढ। जटजूट=उष्ट्र। पह=पर।

अर्थः—कैमास ने पाषाण लेख को पढने के बाद शिला को उखाड कर जो द्रव्य निकाला, वह ३०० ऊँटों और ११ हाथियों पर लादा जाकर सात (या सौ) दिन चलने पर दिल्ली पहुँचा और कोष में सुरक्षित कर दिया गया। उस समय पृथ्वीराज रास्ते में ही खट्टू पुर के पास शिकार खेलने रुक गया। (कैमास द्वारा भेजे गया) राजा का एक विश्वास पात्र व्यक्ति, हाथ में पत्र

(द्रव्य की सूची) लिये हुए और ऊँट पर चढ़ा हुआ पृथ्वीराज के पास आया। उसने आकर राजा की वन्दना की।

वटि-दियौ पृथिराज, भाग किन्नै सह अव्वर।
एक भाग कैमास, तीय अप्पे नर सिंघ नर ॥
पंच भाग चावड, भाग अद्धौ वर कन्ह।
द्वादस भाग नरिंद, दियौ परिगह सब थनं ॥
प्रथिराज दिट्ठ आये नहीं, चिकट कुंभ ज्यों जल अभिद।
लगै न नीर पत्रह कमल, भिदै न मति-छीवै उछिद ॥ १०० ॥

शब्दार्थ.—वंटि दियौ=वितीर्ण कर दिया। अव्वर=बराबर, समान, यथायोग्य। तीय=तीन। अप्पे=अर्पित किया, दिया। परिगह=कुटुम्बी, या पास में रहने वालों को। थनं=स्थान। दिट्ठ=दृष्टि। चिकट=चिकने। मति-छीवै=बुद्धि ने जिसे स्पर्श कर लिया, बुद्धिमान। उछिद=बुरे छिद्र अन्य की निन्दा।

अर्थः—पृथ्वीराज ने उस द्रव्य को समान भाग में बाँटकर वितरण कर दिया। उस द्रव्य में से १ भाग कैमास को, ३ भाग नृसिंह को, ५ भाग चामुंड को, ½ भाग कन्ह को और १२ भाग अपने कुटुम्बियों तथा आश्रितों को दिया। पृथ्वीराज ने स्वयं उस द्रव्य पर अपने मन को चलित नहीं किया। स्वार्थ ने उसे उसी प्रकार नहीं छुआ जैसे चिकने घडे पर जल नहीं ठहरता या कमल पत्र को जल नहीं छूता, या बुद्धिमान व्यक्ति की दूसरों की निन्दा करने की प्रवृत्ति नहीं होती।

दोहा

एक भाग दिय विप्रकर, करै राज सुख कंद।
धन लभ्भिय प्रथिराज धन, कथी कथ्थ कवि चंद ॥ १०१ ॥

शब्दार्थः—धन=द्रव्य। लभ्भिय=प्राप्त किया। धन=धन्य। कथी-कथ्थ=वर्णन किया।

अर्थ.—धन्य है राजा पृथ्वीराज को जिसने इस प्रकार धन को प्राप्त किया। उसमें से एक भाग ब्राह्मणों को भी देकर वह सुख पूर्वक शासन करने लगा। उसी का वर्णन मैंने (कविचंद ने) किया है।

कवित्त

अ तितोरन-उछ्छ्वह, आइ ढिल्लीय निकट वर ।
रँन कुमार सु आइ, सुबर सामत मधुत्तार ॥
सत्त दूअ असवार, कहन नामी अग्गै भर ।
छंडि तुरिय पय लग्गि, दीय सा चढन सीख गुर ॥
बंदैव चढै तुरियं समथ, आए नद उछाह घर ।
जित्ते मलेच्छ लभ्यौ सु धन, अति तोरन उच्छव नयर ॥ १०२ ॥

शब्दार्थ—तोरन-उछ्छाह=विशेष हर्ष जैसे अवसर पर राज द्वार पर तोरण लटका कर उत्साह मनाया जाना । ढिल्लीय=दिल्ली के । मधुत्तर=मधुशाह । सत्त-दूअ=दो सौ । कहन-नामी=कहने में नामी, वर्णन करने योग्य । छडि-तुरिय=घोड़े को छोड़ा, घोडे से उत्तरा । पय-पग्गि=पैर लगा, चरण छुये । सीख=आज्ञा । गुर=गुरु ने । नंद-उछाह=राजकुमार (छोटे राजकुमार गोविन्दराय) के उत्पन्न होने का उत्साह । जित्ते-मलेछ=बादशाह पर विजय प्राप्त की ।

अर्थ—जिस समय राजा तोरणोत्सव मनाने के लिये दिल्ली के निकट पहुँचा, उसी समय राजकुमार रयनसिंह को साथ लेकर श्रेष्ठ सामत और मधुशाह अगवानी के लिए आये । राजा की सेना के हरावल भाग मे प्रशसा करने योग्य और प्रसिद्ध दो सौ अश्वारोही योद्धा थे । राजा राज गुरु को आता देखकर पृथ्वीराज घोडे से उतर पड़ा और उसने गुरु के चरण छुए । इसके पश्चात् जब गुरु की आज्ञा से राजा घोड़े पर चढा तब उसके सामर्थ्यवान साथी भी गुरु की वन्दना करके घोडे पर चढ़े और राज महलों में प्रवेश किया । सारे शहर में राजकुमार (छोटे राजकुमार गोविन्दराय) के जन्म होने, बादशाह को जीतने और धन की प्राप्ति होने के उपलक्ष में तोरणोत्सव मनाया जाने लगा ।

गाथा

अति तोरन उच्छाह, आए जेठ सुदि त्रयोदसिय ।
सुभ जोग रविवार, गहन साह वढ्ढि जस भार ॥ १०३ ॥

शब्दार्थः—गहन साह=बादशाह को पकड़ने मे । वढ्ढि=बढा, फैला । भार=भारी, विशेष ।

अर्थ—ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी रविवार के शुभ योग में राजा ने दिल्ली में प्रवेश किया और तोरणोत्सव मनाया। बादशाह को पकड़ने के कारण उसका यश विशेप रूप से चारों ओर फैल गया।

दोहा

ग्रहन साहि जस बढिय धर, आइ धवल मधि साल।
त्रिया सकल मुजरा करन, आइय [1] तत्थ सहाल॥ १०४ ॥

ग्रा० पा० 1 पा० का० घ ०

शब्दार्थः—धवल=वृषभ तुल्य बलवान। मधि=अन्दर। साल=शाला, महल। मुजरा करन=वंदना करने, अभिवादन करने। तत्थ=तहाँ। सहाल=शाल, शाला, महल।

अर्थः—बादशाह को पकड़ लेने के कारण पृथ्वीराज का यश पृथ्वीपर फैल गया, जब उस वृषभ तुल्य बलवान पृथ्वीराज ने राजमहलों मे प्रवेश किया, तब सब रानियाँ राजा से अभिवादन करने के लिए महलों में आई।

गाथा

दाहिम्मी पृथु भट्टी, पुण्डीरी आइ नृप ढिग्गं।
करि न्यौछावरि सकलं, नृप दी सीख गइय ग्रह अप्पं॥ १०५ ॥

शब्दार्थः—सीख=विदा। अप्पं=अपने।

अर्थः—दाहिमी, भटियानी और पुण्डीरनी रानियाँ, पृथ्वीराज की बहिन पृथा-कुमारी के साथ राजा के पास आयीं और उसकी बलैयाँ ली। उसके बाद राजाज्ञा से वे सब महलों में लौट गयी।

राजा धवल संपत्तं, गये ग्रह रत्ति तथ्थ पुण्डीरं।
करि रस अनंग क्रीड़ा,बढ़िय सुवेलि सुमन मनमत्थी॥१०६॥

शब्दार्थः—धवल=महल। संपत्तं=गया। पुण्डीरं=पुण्डीरनी रानी।

अर्थः—रात्रि होने पर राजा अन्त.पुर में गया और वहाँ पुण्डीरनी रानी के साथ सुरति-सुख में लिप्त हो गया। उस काम क्रीड़ा से वह कामलता (रानी) विस्तार प्राप्त

कर पुष्पवती हो गई अथवा उसकी काम-क्रीडा में अनुरक्त मनरूपी वेली ने वृद्धि प्राप्त की (अत्यधिक प्रसन्न हुई) ।

सुमन चेलि मनमथ्थी, करि क्रीडा हूअ बर प्रात ।
अंतर साल वयट्ठं, मन विच्चार साहय दडं ॥१०७॥

शब्दार्थः—अतर साल=एकान्त भवन । ववट्ठं=बैठा ।

अर्थ—उस काम लता से क्रीड़ा करते हुए प्रात काल हो जाने पर राजा बाहर आकर एकान्त महल मे बैठा और बादशाह से दड मे लिये हुए घोडे, हाथी आदि पर विचार किया ।

कवित्त

दंड सुबर पतिसाह, दोय हय बटि राज बर ।
बीस सुभर हय कंन्ह, बीस हय ऊचह निड्डुर[1] ।
बीस दूअ रघुवंस, बीस उभमय दाहिम्म ।
अत्तताइ अल्हन पहाड़, बीस हय जैत गुरंम ॥
औरह सु सकल भर बीस अध, बटि बंटि दिय सबर नर ।
रख्खन सु गल्ह राजंद गुर, जस रक्ख्यौ निज वर सुकर ॥ १०८ ॥

[1] मा० पा० १, घरु० ।

शब्दार्थः—ऊँचह=उच्च, ऊँचे, उन्नत काय । गुरम=गुरुराम । बीस-अध=बीस के आधे, दस । गल्लह=ख्याति ।

अर्थ—बादशाह से दण्ड में प्राप्त घोड़ों का उसने अपने सामन्तों मे वितरण कर दिया । उसने रघुवशीराय और कैमास को बाईस-बाईस (या चालीस-चालीस), श्रेष्ठ योद्धा कन्ह, निड्डुराय, अत्ताताई, अल्हन, पहाड़राय, जैत्र प्रमार और गुरुराम पुरोहित को बीस-बीस और अन्य सभी सामन्तों को दस दस घोडे दिये । पृथ्वीराज ने तो अपनी महान् ख्याति अक्षुण्ण रखने के लिए केवल यश ही अपने पास रखा ।

गाथा

जस रक्ख्यौ कर अर्प्प, मुत्तिय माल लालय द्रव्वं ।
आरोही पुर दत्तं, कवि दीनौ सु अवर कर साहं ॥१०९॥

शब्दार्थ—दत्तं=दान में । कर साहं=शाह से लिया हुआ दण्ड ।

अर्थः—केवल यश को ही अपने हिस्से में रखने वाले उस राजा पृथ्वीराज ने मुक्ता और लालों की मालायें, बहुतसा द्रव्य तथा शाह से लिया हुआ शेष दंड और आरोही नामक पुर मुझे (कवि चद को) दान में दिया ।

दोहा

सकल दंड पतिसाह कौ, वटि दियौ सब सूर ।
तपत राज अति खित्ति वर, ग्रीखम वित्तिय पूर ॥११०॥

शब्दार्थः—खित्ति—वर=श्रेष्ठ क्षत्रिय । पूर=सम्पूर्ण ।

अर्थ—जब पृथ्वीराज ने बादशाह से दण्ड स्वरूप लिये हुए समस्त द्रव्य को सामन्तों में बाँट दिया तब उस श्रेष्ठ क्षत्रिय नरेश ने प्रताप युक्त शासन करते हुए ग्रीष्म ऋतु व्यतीत की ।



शशिवृता-समय

(समय-२३)

दोहा

आदि कथा शशिवृत्त की, कहत अन्त समूल ।
दिल्ली वै पतिसाहि ग्रहि, कढ़ि लच्छि उनमूल ॥ १ ॥

शब्दार्थ—आदि=प्रारम से । अन्त=अन्त । समूल=समूची, सम्पूर्ण रूप से । दिल्ली वै=दिल्लीश्वर । ग्रहि=पकड़ा । लच्छि=लक्ष्मी । उनमूलन=उखाड़ना, खोदना ।

अर्थः—दिल्लीश्वर ने बादशाह को पकड़ लिया और खोदकर लक्ष्मी निकाल ली अब प्रारंभ से अन्त तक शशिवृता की कथा सम्पूर्ण रूप से वर्णन की जाती है ।

कवित्त

लग्गि सीत कल मद, नीर निकट सुरजत घट ।
अमित सुरग सुगंध[1], तनह उवटत रजत[2] पट ॥
मलय चद मल्लिका, धाम-धारा-ग्रह सुब्बर ।
रजि बिपन बाटिका, सीत[3] द्रुम छांह रजति तर ॥
कुम कुमा अग उवटत अधि, मधि केसरि[4] धनसार घति ।
कीलत राज ग्रीखम सु रिति, आगम पावस भइय भति ॥ २ ॥
ग्रा० पा०, १, पा० का० घ० । २, पा० । ३, सर्वप्रति । ४ पा० दे० स० ।

शब्दार्थः—कल=कला, तेज, प्रताप, [या चन्द्रमा की शीतल कला] । रजत=रौप्य । मलय=चदन । रजत=शोभित होते । मल्लिका=मौक्तिक नामक पुष्प विशेष । धारा ग्रह=फौहारों युक्त गृह, एक प्रकार का कुज जिसमें यत्र द्वारा जल ऊपर पहुचाया जाकर ऊपर से टपकता रहता है (ऐसे पुज को श्रावण, भाद्रपद नाम से भी कहा करते थे) सुब्बर=अति श्रेष्ठ । तर=तले । अधि=ऊपर । मधि=में । केसरि=केशर । घति=डाली हुई, मिश्रित । कीलत=क्रीडत, विनोद करने लगा । रिति=ऋतु । भति=भाति ।

अर्थः—ग्रीष्मागमन से सर्दी का प्रभाव कम होगया । जल से परिपूर्ण चांदी के घडे सदा पास मे रखे जाने लगे । सुगंधित पदार्थों का शरीर पर लेप किया जाने

लगा और अच्छे रग के वस्त्र पहने जाने लगे। चन्दन, चन्द्र, चन्द्रिका, मल्लिका और जल के फव्वारों से युक्त घर वहुत सुन्दर लगने लगे। वृक्षों की छाया से वन-उपवन आनन्द प्रद हो होगये। राजा पृथ्वीराज गरमी मे केसर और कपूर मिश्रित कुंकुम का शरीर पर लेप कर आनन्द करने लगा। इस प्रकार ग्रीष्म ऋतु के वीतते ही मन-भावन पावस ऋतु आगई।

गाथा

ग्रीषम विन्तिय कालं, आगम पावस दीह मभ्भेनं।
दिसि दख्खिन वर देशं, नाइक आइ चंद्रोदय ताम[1] ॥ ३॥

म्र० पा०, १, का०।

शब्दार्थः—मभ्भेनं=में। नाइक=नायक, प्रमुख नर्तक।

अर्थः—गीष्म के वीतने और पावस के आने पर (दिल्ली से) दक्षिण दिशा की ओर से चद्रोदय नामक नर्तक आया।

सभा विराजित राजं, तहा नट आइ पत्त-सगीतं।
मिलत मान दिय राज, पुच्छिय विगति देस रह मभ्भं ॥ ४ ॥

शब्दार्थः—नर=नर्तको। पत्त-सगीत=गाना शुरु किया। विगति=विगत, ब्यौरेवार, वृत्तान्त। देस-रह-मभ्भं=मध्य प्रदेश में रहता था (अत उससे वहाँ का वृत्तान्त पूछा गया)।

अर्थः—जब राजा (पृथ्वीराज) सभा में बैठा हुआ था, तब वहाँ पर वह नर्तक आकर गाने लगा। राजा ने उसका यथोचित सम्मान किया। वह मध्य प्रदेश का रहने वाला था, इसलिये उससे वहाँ का वृत्तान्ति पूछा।

तव नट नमि करि उच्चरिय, सुनहु राज दिल्लीस।
सोम वंश जद्दव नृपति, देव गिरि वसि जीस ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—सोम वंस=चंद्रवंशी। जद्दव=यादव। देवगिरी=देवास [देवास भी देवगिरि कहलाता था]। वसि=वसही, वस्ती। जीस=जिसकी।

अर्थः— नर्तक ने सिर नवाकर निवेदन किया:—हे दिल्लीश्वर! जिसकी वस्ती देवगिरि (देवास) है वहाँ का राजा चद्रवशी यादव क्षत्रिय है।

कवित्त

देवगिरी जद्दव नरेश, अति प्रवल तपत तय ।
संगीतरु बर कला, लहन शुभ ग्यान सुभत वय ।।
तान सु गुन्न लहन, भेद सुभ ग्यान विचारं ।
तास राज संमीप, रहौं नट—विद्य उचारं ।।
ता ग्रह सु पात्र अन्नेक गुन, रहे सु तहँ निशि दीह पर ।
राजत राज जद्दव नृपति, ज्यों सु देव-पति नाक गुर ।। ६ ।।

प्रा० पा० १, का० ।

शब्दार्थः—तय=वह । सुमत=सुशोभित । वय=वह । तान=तवन पाल । सुगुन्न=श्रेष्ठ गुण । लहन्न=लेकर, प्राप्त करके । भेद=भेदनीति । तास=उस । नट-विद्य=नृत्य विद्या । उचार=उच्चारण करता, प्रकाश में लाता । नाक=स्वर्ग । गुर=गुरुता ।

अर्थः—देवगिरि (देवास) का वह यादव राजा प्रभाव शाली ढग से शासन करता है । सगीत आदि कला का अच्छा ज्ञान होने से वह विशेप रूप से सुशोभित है । यादव नरेश तवन पाल ने श्रेष्ठ गुणों को प्राप्त कर लिया है । भेद नोति तथा उत्तम ज्ञान को वह विचारने वाला है । ऐसे उस राजा के पास में नृत्य (सगीत) विद्या को विकसित करता हुआ रहता हू । उसके यहाँ हमेशा अन्य भी अनेक पात्र (पुरुप) रहते हैं । इस समय वह यादव-राज स्वर्ग स्थित इन्द्र के तुल्य प्रभुता लिये हुए सुशोभित है ।

गाथा

तिहि ग्रह नटवर रूप, आए मगेव सीख कुरखेत ।
तुम गुन अति सभरिय, आवन[१] हुअ एम दिल्ली मझझेन ।। ७ ।।

प्रा० पा० १ सर्वप्रति ।

शब्दार्थ—मगेव=मांगकर, आज्ञा लेकर । सीख=विदा । सभरिय=सुनकर । आवन हुअ=आना हुआ । एम=इस तरह । मझझेन=में ।

अर्थः—मैं उस राजा के यहाँ श्रेष्ठ नर्तक के रूप मे रहता हूँ । उससे कुरुक्षेत्र-यात्रा की विदा लेकर निकला हू और आपके विशेप गुणों को सुनकर ही मैं दिल्ली आया हू ।

कहि सभरि नृप राजं, हो नट राइ सुनहु वर वचन।
किहि व्याहन वर सग, को राजैन-कवन धर-ममक ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—नटराइ=नर्तकेश्वर, प्रमुख नर्तक। किहि-व्याहन=किसके यहां विवाह करने पर। वर संग=श्रेष्ठ समानता हो सके, हमारे योग्य हों। को=कहो। राजैन=राजा। कवन=कौन। धर-ममर्भ=मध्य प्रदेश में।

अर्थः—नृपराज सभरी (पृथ्वीराज) ने तब कहा—हे प्रमुख नर्तक! मध्य प्रदेश मे कौन ऐसा राजा है जो हमारे योग्य हो और जिसके यहाँ हमारा विवाह होना ठीक माना जा सके।

दोहा

सुनि राजन क्योंकरि कहौं, जो शशिवृत्ता रूप।
जीह एक ब्रन्न न बने[1], तिन गुन ब्रन्न अनूप ॥ ६ ॥

मा० पा० १ पा०।

शब्दार्थ—जीह=जिह्वा। ब्रन्न=वर्णन करना। न बने=नहीं बनता, नहीं हो सकता। ब्रन्न=वर्णन। अनूप=अनुपम।

अर्थः—नर्तक ने कहा हे नरेश्वर (पृथ्वीराज)! मैं राजकुमारी शशिव्रता के सौन्दर्य की प्रशसा कहाँ तक करूँ, उसमें अनेक अनुपम गुण है। मैं अपनी एक जिह्वा से उनका वर्णन नहीं कर सकता।

तब राजन ऊठी सभा, फिरि दिन्नी[1] सब सीख।
अन्दर नट्ट बुलाइकैं, पुच्छिय बिगति विसिक्ख[2] ॥ १० ॥

मा० पा० १, २ पा०।

शब्दार्थः—तब=तब। ऊठी-सभा=सभा बरखास्त की, समाप्त की। दिन्नी=दी। सब=सबको। सीख=विदा। विसिक्ख=विशेष।

अर्थ.—राजा (पृथ्वीराज) ने यह सुन कर उपस्थित सब सामन्त आदि को विदा कर सभा को समाप्त कर दिया और नर्तक को एकान्त महल में बुला कर शशिवृता के विषय में विशेष पूछताछ की।

कवित्त

कहै सु नट राजेंद[1], ब्रह्म आमोद इक्क[2] दिन।
चद कला मुख कज, लच्छि सहजह[3] सरूप तन ॥

नैन सु मृग शुक नास, अधर बर बिंब पक्क भति[४] ।
कँठ कपोत भुज वर[५] मृनाल, युगल[६] नारंगि[७] उरज सति ॥
कटि लक सिंघ जघ रँभ, चलत हस-गति गयद लजि ।
सा नृपति काज ब्रंमिय तरुनि, मनो मेनिका रूप सजि ॥ ११ ॥

प्रा० पा० १, ३, ८, पा० । २, सर्वप्रति । ४ पा० का० घ, । ५, पा०, घ० । ६, ७ का० भीं घ० ।

शब्दार्थ–आमोद=प्रसन्न होकर । लच्छि=लक्ष्मी । पक्क=परिपक्व । भति=तरह । सति=सटय ही या सटे हुए, जोड़पर । रँभ=कदली । सा=वह । ब्रंमिय=निर्मित की ।

अर्थ—नर्तक ने कहाः—हे नरेश्वर ! चन्द्र-कला के समान जिसकी कान्ति है, कमल के समान जिसका मुख है और लक्ष्मी के समान जिसका प्राकृतिक सौन्दर्य है, ऐसी इस शशिवृत्ता के, नैत्र मृगी के समान, नासिका शुक के समान और ओष्ठ पके हुए बिंब के समान तथा कठ कपोत के सदृश, भुजायें मृनाल डडिका-सदृश श्रेष्ट और दोनों कुच नारगी के सदृश हैं । सिंह के समान जिसकी कटि है, कदली के समान जिसकी जघाये हैं, और हाथियों को लज्जित करने वाली हँस के समान जिसकी चाल है । ऐसी उस तरुणी को ब्रह्मा ने मानो स्वय अपने हाथों से एक दिन प्रसन्न होकर आपके लिये ही मेनका अप्सरा के रूप मे निर्मित किया हो ।

दोहा

कह गुन वरनौ राज कहि, कुँअरी जद्दव नाथ ।
विधना रचि पचि कर करि, मनु मेनिका समाथ ॥ १२ ॥

शब्दार्थ–कह=कहाँ तक । पचि=श्रम करके । समाथ=मस्तक पर रहने योग्य, शिरोमणि ।

अर्थः—हे नरेश्वर (पृथ्वीराज) ! मैं उस यादव राजकुमारी के गुणों का कहाँ तक वर्णन सुनाऊँ । उसे तो स्वयं विधाता ने मानों श्रम पूर्वक रचकर मेनका अप्सरा की भी शिरोमणि बना दिया है ।

दोहा

पुनि नटवर यौं उच्चरिय, फिरि कहि हों राजिंद ।
जो मुझ कीयौ होइ है, तो करिहौं नृपइंद ॥ १३ ॥

शब्दार्थः—मुझ कीयौ होइ है=मेरे से हो सका ।

अर्थः— फिर उस श्रेष्ठ नर्तक ने कहा—हे नरेश्वर ! मैं इस विषय में फिर कभी निवेदन करूँगा और मुझ से होसका तो आपकी अभिलाषा को पूर्ण करने का भी प्रयत्न करूँगा ।

तब राजन नट सीख दिय, गज सु इक्क[1] है पच ।
चल्यौ दिसा[2] कुरखेत प्रति, परसन हरि चरनंच ॥ १४ ॥

प्रा० पा० १, २ पा० ।

शब्दार्थः—है=हय, घोड़े । परसन=स्पर्श करने को । चरनंच=चरण ॥

अर्थ—तब राजा ने एक हाथी तथा पांच घोडे देकर नर्तक को विदा किया । नर्तक कुरु क्षेत्र की ओर हरि के चरण स्पर्श (तीर्थ) करने के लिये विदा हुआ ।

हर सेवा राजन करत, क्रमिय मास जब संग ।
अद्ध निसा शिव आइ कै, दिय सु वचन मन रंग ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—क्रमिय=समाप्त हुआ । संग=सिंघ, सिंह-सक्रांति । अद्ध=अर्ध । मन-रंग=मन को प्रसन्न करने वाला, मन इच्छित, मनोरथ ।

अर्थः— राजा (पृथ्वीराज) ने शशिवृता की प्राप्ति के लिये शिव की उपासना की, जिस मास में सिंह-सक्रान्ति आती है, उस (भाद्र पद) मास के समाप्त होने पर अर्धरात्रि के समय शिव ने (स्वप्न में) आकर (मनोरथ) इच्छा- पूर्ण होने का वर दिया ।

जो कामन मन सद्धई, सो पूरे हर ईस ।
नन चिंता करि राज गुर, आयौ गुन तुछ दीस ॥ १६ ॥

शब्दार्थः—कामन=कामिनी, सुन्दरी । मन-सद्धई=मन से साधना करता है, मन में चाहता है । पूरे=पूर्ण करेगा । हर-ईस=शिव का स्वामी, विष्णु भगवान । नन=नहीं । गुन=फल । दीस=दिखाई ।

अर्थः—शिव ने (स्वप्न में) कहा—हे राजाओं के गुरु (पृथ्वीराज) ! तुमने जिस सुन्दरी को मन से चाहा है । तेरी उस इच्छा को भगवान पूर्ण करेगा । इस विषय

में तुझे चिंता नहीं करनी चाहिये-क्योंकि इसका कुछ सफल परिणाम मुझे दिखाई दिया है।

कवित्त

हुअ प्रभात जब राज, सुपन मन मद्धि राज रस।
प्रसन होइ शिव शिवा, काम सिद्धै[1] सु इद जस॥
मन जाने वर अप्प, लग्गिओ तान राज उर।
चित्र महावत[2] गयँद, बहुरि उतरैन अवर पर॥
ननधीर करय पावस सु रिति, छिन-छिन जुग जुग जात जिय।
वर मोर सोर दद्दुर वचन, लग्गि तपति[3] तन असम किय॥ १७॥

ग्रा० पा० १ पा०। २, सर्वपति। ३ पा० घ०।

शब्दार्थ: सुपन=स्वप्न। मद्धि=मध्य में। रस=रसित, प्रसन्न। प्रसन=प्रसन्न। सिद्धै=सिद्ध। इन्द=राजा। जस=जो, जैसा भी। लग्गिओ=लग गया, चटपटी लग गई। राज=राज्य। रिति=ऋतु। दद्दुर=दादुर। तपति=तप्त, ज्वाला। असम=विषम।

अर्थ—रात्रि के स्वप्न से राजा (पृथ्वीराज) को प्रात काल प्रसन्नता हुई। शिव पार्वती के प्रसन्न होने से उस कार्य के सिद्ध होने की आशा हो आई। इस बात को उसका मन ही जानता था। (अन्य पर यह प्रेम कथा प्रगट नहीं हो पाई थी)। उसके हृदय में तवनपाल के राज्य मे जाने की आतुरता बढ़ गई। वह इस प्रकार नहीं मिटती, जैसे भित्ति पर चित्रित किये हुए हाथी पर महावत को चित्रित कर देने पर वह उससे नीचे नहीं उतरता और न वह दूसरे पर सवार किया जा सकता है। पावस ऋतु में राजा धैर्य नहीं रख पाता था और उसका एक २ क्षण युग के समान बीतता था। मयूरों के शोर गुल और दादुरों के बोलने से उसके शरीर में विषम (विरह) ज्वाला प्रज्जवलित हो गई।

मोर सोर चिहुँ ओर, घटा आसाढ बधि नभ।
वच दादुर झिंगुरन, रटत[1] चातिग रजत सुभ॥
नील बरन वसुमतिय, पहरि[2] आभ्र न अलकिय।
इद्र-वधू[3] सिर व्यद[4], धरे वसुमती सु रज्जिय॥
वरखत वूंद घन मेघ सर, तब सुमरै जद्दव कुँअरि।
नन हस धीर धीरज सुतन, इव फुट्टै मन मथ्थ करि॥ १८॥

ग्रा० पा० १, भीं०। २, पा०। ३ संशोधित। ४ पा० का० घ०।

शब्दार्थ—चिहु=चारों ओर । नील वरन=हरितवर्ण । आभ्रंन=आभरण, वस्त्र । अलंकिय=अलंकृत । इद्रवधू=इन्द्रवधूटी, एक प्रकार का लाल वर्ण का जीव जो वर्षा के साथ ही प्रगट होता है, जिसे राजस्थान में सावन की डोकरी भी कहते हैं । व्यद=विन्दुका । सर=शर, वाण । हंस=आत्मा, प्राण । इस=इषु, आशुग, वाण । मनमत्थ-करि=कामदेव द्वारा, कामदेव के हाथों ।

अर्थः—चारों ओर मयूरों का शोरगुल होने लगा, आकाश में आषाढ के बादलों की घटा छागई, दादुर और झिंगुर बोलने लगे, चातक बोलकर चित्त को प्रसन्न करने लगे, पृथ्वी हरित वर्ण के आभरणों (वस्त्रों) से अलंकृत हो गई और उसने इन्द्रवधूटी को भाल पर विन्दु के समान स्थान देकर शोभा प्राप्त की, ऐसी पावस ऋतु में जब वाण तुल्य मेघ की बूंदें बरसने लगती थी, तब राजा को यादव-कुमारी का स्मरण हो आता था। उसके प्राण और शरीर को रंच मात्र भी धैर्य नहीं होता था। कामदेव के वाणों ने मानो उसे वेध दिया।

दोहा

गत पावस आगम सरद, गई गुडल नभ मान ।
(ज्यों) सद गुरु मिलि[1] अंदर दरस, मिलि प्रगट्ट[2] गुरु ज्ञान[3] ॥ १९ ॥

मा० पा०, १, घ० । २, पा० । ३, का० भीं० घ० ।

शब्दार्थः—गत=जानेपर । गुडल=गुदलापन, मेलापन, श्यामता ।

अर्थः— पावस ऋतु के जाने पर शरद ऋतु आई और आकाश इस प्रकार स्वच्छ हो गया, जैसे सदगुरु के द्वारा अंतर में दर्शन प्राप्त होते (सत्य विभू को जानलेते) ही विशेषज्ञान की प्राप्ति हो जाती है ।

सुक्कि पंक उत्तरि सरित, गय वल्ली[1] कुमिलाय[2] ।
जलधर विनयों मेदिनी, ज्यों पति हीन त्रियाय[3] ॥ २० ॥

मा० पा, १, २, ३ पा० ।

शब्दार्थः—सुक्कि=सूख गया । उत्तरि=उतर गई, प्रवाह कम हो गया । गय=गई । वल्ली=वेली, लता । मेदिनी=पृथ्वी । त्रियाय=त्रिया, स्त्री ।

अर्थः—पंक (कीचड़) सूख गया, सरिताओं का प्रवाह कम हो गया, लतायें मुरझा गईं, और पृथ्वी विना बादल के इस प्रकार (कुरूप) दिखाई दी जैसे कोई पतिहीन स्त्री हो ।

कवित्त

सम सिकार कजि राज, सबर चतुरग सु सज्जिय ।
सघन सूर सामंत, आप्प अप्पन भर गज्जिय ॥
रंजि राज पृथिराज, राज क्रीलन मन भाइय[१] ।
बर पट्टन जद्दौंन[२], दूत राज पै पठाइय ॥
श्रोतान राग चहुआन हुअ, कथा जपि ससिवृत्त किय ।
अब कहौं[३] कथा[४] विस्तार करि[५], ज्यों राजन[६] दूतन करिय ॥ २१ ॥

प्रा० पा० १, घ० । २ पा० घ० का० । ३, से ६, पा०, का०, घ० ।

शब्दार्थ—सम=समुहाकर, तत्पर होकर । कजि=के, लिये । सबर=उस समय । सघन=गहरे, बहुत से । भर=भट साथी, योद्धा । क्रीलन=क्रीडा । पट्टन-जद्दौंन=बड़ी यादव रानी (पृथ्वीराज के शशिवृता और हसावती दो यादव रानियाँ थीं उनमें शशिवृता बड़ी थी)। श्रोतान राग=श्रोत्रानुराग ।

अर्थ—उस समय पृथ्वीराज ने शिकार के लिये अपनी चतुरगिनी सेना सजाई । बहुत से बहादुर सामंत भी साथियों सहित गर्जना करते हुए, राजा के साथ चल पडे । प्रसन्न होकर राजा पृथ्वीराज शिकार की क्रीडा विनोद) में लग गया, उसी समय बड़ी यादव रानी (कुमारी शशिव्रता) ने भी राजा (पृथ्वीराज) के पास दूत भेजा । उसने शशिव्रता का परिचय दिया, जिससे उस चाहुवान नरेश को श्रोत्रानुराग हो गया । उसी कथा का अब मैं विस्तार से वर्णन करता हूँ । दूतों ने आकर जैसा कुमारी का परिचय दिया और राजा ने कुमारी पर मोहित होकर उसे लाने मे जैसा पुरुपार्थ प्रदर्शित किया उसे मैं कहता हूँ ।

गाथा

तुछ-दिन अन्तर क्रमिय, राजन[१] क्रीलत अप्प धर मभ्भ ।
एक सु दिन राजान, क्रीलन आखेट अप्प चढि चलिय ॥ २२ ॥

प्रा० पा० १, सर्वप्रति ।

शब्दार्थः—तुछ-दिन-अतर=कुछ ही दिनों में । अप्प=स्वय । धर-मभ्भ=मध्यप्रदेश में ।

अर्थः—कुछ ही दिनों में शिकार करता हुआ पृथ्वीराज स्वय मध्यप्रदेश पहुचा, वहाँ एक दिन पृथ्वीराज घोडे पर सवार होकर शिकार के लिये निकला ।

दोहा

क्रील राज आखेट चढि, अन्तर दिन हुअ-आदि।
मिलिन जोग विधि लिखियवर, करि सनद्ध चढ़ि-सादि ॥ २३ ॥

शब्दार्थः—क्रील=क्रीड़ा। अन्तर दिन=दिन में, दिनको ही। हुअ-आदि=स्मृति हो आती। सनद्ध=सावधान। चढि सादि=चढाई की आवाज, चढाई के वाद्यों की ध्वनि।

अर्थः—[मन बहलाने को] राजा घोड़े पर सवार होकर शिकार के लिये चल पड़ा परन्तु उसका मन नहीं लगता था। उसे दिन मे भी (शशिवृता की) स्मृति हो आती थी; किन्तु उसकी चढाई (के रण वाद्यों) की आवाज उसे सावधान किये देती थी कि—हे राजन्! विधाता ने उस (शशिवृता) का मिलन-योग आपकी भाल-स्थली पर ही लिखा है।

कवित्त

चढ़िय राज प्रथिराज, साज आखेट लिये सजि।
सज्ज सुभट सामत, संग सेना सु तुच्छ रजि ॥
जाम देव का-कन्ह, अत्तताई निड्डुर गुर।
मति मन्त्रि कैमास, राव चामड जुमक्त-भर ॥
परमार सिंघ सूरन समथ, रघुवसी राजन सु वर।
इत्तने सहित भर सैंन चलि, उड़ी रेनु आयास भर ॥ २४ ॥

शब्दार्थः—तुच्छ=थोड़ी संख्या में। गुर=भारी, विशेष वीर। मति=बुद्धि। जुमक्त-भर=युद्ध में भिड़ने वाला। इत्तने सहित=इतने सामंतों युक्त। आयास=आकाश।

अर्थः—पृथ्वीराज ने शिकारी साज सजा चढ़ाई की। बहादुर सामंत और थोड़ी संख्या में सेना भी साथ चली। सामन्तों में से जामराय यादव, काका कन्ह, अत्तात्ताई, निड्डुरराय, बुद्धिमान मंत्री कयमास, युद्ध में लड़ने वाला चामुण्डराय, सामर्थ्यवान योद्धा सिंह प्रमार तथा उत्तम वीर रघुवशराय आदि साथ में थे। इतने सामन्तों सहित सेना के चलने से धूल उड़कर आकाश में आच्छादित होगई।

वग्गुरि[1] जाल वयल्ल, हिरन चीते सु स्वांन गन।
काल वूत म्रग विहँग, विविह तट्टीय चलत वन ॥
सर नावक वदूक, हरित जन वसन विरज्जिय।

गै जिमि गिरि करि अग्ग अप्प वन सपति छज्जिय[२]।।
है भार भरिय[३] कानन सकल, मग अमग्ग दल सचरिय ।
खिल्लन सिकार चढ्ढिय नृपति, प्रथियराज महि संभरिय ।। २५ ।।
प्रा० पा० १, २ पा० का० भीं० । ३ पा० घ० ।

शब्दार्थः—बग्गुरि=वागरिये, (जाति विशेष जो अब खजूर के बुहारे व चटाइयां बनाते हैं और पक्षियों को फांसने के फंदे भी बनाते हैं और आज भी वे पक्षियों को फास कर शिकार करते हैं) फंदा डालने वाले । बयल्ल=बहलियें, छोटी गाड़ियें । हिरन=हेर रहे थे देख रहे थे । काल-वृत=काल । च्योंत, अनक तुल्य । बिवह=विविध । तट्टीय=तट, किनारे, समीप । सर-नावक=तीर, बाण । बन्दूक=तुपक । गै=हाथी । छज्जिय=शोभा बढ़ा दी । सचरिय==चली । खिल्लन=शिकार खेलने के लिये, शिकार करने के लिये । महि-समरिय=पृथ्वी ने सुना, पृथ्वी पर शोर गुल हो गया ।

अर्थः—जाल सहित जाल फेंकने वाले और छोटी गाडियाँ आगे आगे चल रही थीं । पालतू मृग, चीते और श्वान शिकार की खोज मे यत्रतत्र मृग और पक्षियों को फुसला और घेर कर लाने मे अतक स्वरूप थे, वे वन के किनारे २ विहर रहे थे । बाण और तुपक धारी शिकारी-समूह हरे रग के कपड़े (जिमसे जानवर उन्हें भाँप न सके) पहने हुए सुशोभित थे । गिरि-तुल्य उन्नत हाथियों को आगे बढ़ाया जा रहा था, जिससे वन वैभव की शोभा और भी बढ़ गई थी । सारे वन में बड़े २ अश्वारोहियों की भीड सी लग गई । सेना राह-बेराह चलने लगी, इस प्रकार चाहुवान राजा पृथ्वीराज ने शिकार के लिये चढाई की । जिसका शोर गुल पृथ्वी पर मच गया ।

इन सु साज मृगया सु, बाज उत्तग अग वर ।
निमख निमख सचरहि, निमिख जोजन जोजन सर ।।
छित्त लिये जित[१] पवन, वेग जग्गी जिम अग्गिय ।
घट छुट्टै जिम सद्द, उरह चक्रवाक विसग्गिय[२] ।।
यों बधि राज आखेट वर, बपु सु बमुत्र दिक्खे सुचख ।
थह[३] मगि अवि मगज पवन, सवै होइ जोवन[४] समख ।। २६ ।।
मा० पा० १, २, ४, घ० । ३, पा०, भीं०, घ० ।

शब्दार्थ—इन=इस, ऐसे । बाज=बाजि, घोड़े । निमख-निमख=क्षण भर में । सचरहि=सचार करते, उड़ते । निमिख=निमेष मात्र में । जोजन सर=कई योजन को । छित=पृथ्वी (पृथ्वीपर)

लिए-जित=जीत लिया। जग्गै=जग उठे भमक पड़े। घट-छुट्टै=मुख से निकल कर फैला हो। सद्=शब्द। उरह=हृदय वक्षस्थल। त्रि-मग्गिय=दो साथ में हों, दो जुड़े हुए हों। बंधि=ढंग रचा, व्यवस्था की। वसुअ=वसु, आठों दिग्गज। धर=पृथ्वी। मगि=याचना की। पत्रन=पाने को, देखने को। जोवन=देखने को। समख=संमुख, टक टकी लगाये।

अर्थः—इस साज बाज के साथ शिकारार्थ चढ़ने पर उन्नत काय घोडे क्षण २ मे उड़ने वाले तीर की तरह कई योजन भूमि को इस प्रकार पार करने लगे, मानों पृथ्वीपर वे पवन गति प्राप्त किये हुए हों तथा अग्नि के समान भभक उठे हों, या मुख से शब्द निकल कर फैल गया हो।

ऐसे उन वेगवान घोड़ों के वक्षस्थल, दो जुडे हुए चक्रवाकों के तुल्य थे। इस प्रकार राजा पृथ्वीराज ने शिकार की उत्तम व्यवस्था की, उस दृश्य को देखने के लिये अच्छे शरीर वाले दिग्गज भी अपनी दृष्टि प्रसारने लगे, पृथ्वी ने भी इस मागलिक दृश्य को देखने के लिये चक्षु की याचना की, और सब कोई उसे देखने के लिये समक्ष हो गया (टक टकी लगाली)।

घुर घुरत घन स्वान, अप्प पजर तीतर बर।
मच्छ जाल वग्गुरिहि. फद फदैत[1] सुवर धर॥
धनकवान हक्का सुरान[2], सिंघ पजर जर[3] लक्र व्रन[4]।
खाट खैरविस भिल्ल[5], तार तारक्क चित्र पन॥
सर हद चोट[6] लगै रमत, भुलै साथ श्री नाथ पति।
कविचद विरद व्रंनन[7] करै, श्रवन सुनै दिल्लिय न्रपति॥ २७॥
ग्रा०पा० १, २, का०पा०भों० । ३, ४, पा०घ० ५, घ पा मों । ६, घ. । ७ पा.।

शब्दार्थः—अप्प=दिये, छोड़े। पजर=पिंजड़ा। हक्का=हाक, हुंकार। सुरांन=वीरों की। जर=जड़कर पकड़कर। खांट-खेरविस-भिल्ल=खांट, खेरवी, भील आदि जंगली जाति के। तार=ताड़कर, भाँपकर। तारक्क=भाँपने वाले, बताने वाले। चित्र-पन=हाथों में चीतों को ग्रहण किये हुए। सरहद् चोट=तीर द्वारा निशाना मारने का। लग्गे रमत=खेल करने लगे। भुलै=भूल गये। साथ=साथियों को। श्रीनाथ=लक्ष्मीपति, ईश्वर। व्रन्नन=वर्णन।

अर्थः—शिकार मे गुर्राते हुए बहुत से शिकारी कुत्ते और पिंजड़ों से बन्द किये हुए पालतू तीतर (जो छोड़ देने पर अन्य जगली तीतरों को फुसला कर पिंजड़ों या फंदों

मे डाल देते थे) छोडे गये । मच्छियों को पकडने के लिये जाले डाली गई । तथा पृथ्वी पर विचरण करने वाले जानवरों को फांसने के फदे-(वग्गुरी आदि) फंदा डालने वालों के द्वारा डाले गये । धनुप-बाण धारी वीरों की हुँकारें होने लगी-सिंहों को पकड़ कर पिंजड़ों मे रक्खा जाने लगा—

खाट, खेरवी, भील आदि शिकारी लोग शिकार किये जाने वाले जानवरों को भांप कर हाथ में गृहण किये हुए पालतू चीतों को बताने लगे, इस प्रकार अन्य जीवों को तीरों का निशाना बनाने के खेल मे लीन होकर शिकारी अपने साथियों को ही नहीं ईश्वर को (ईश्वर के डर को) भी भूल गये । इम शिकार मे मैं (कविचद) राजा के विरुदों का वर्णन कर रहा था, और दिल्लीश्वर उन्हें सुन रहा था ।

गाथा

जित तित छुट्टै-पखी[१], थावर जलह जंगम जोती ।
ससि पाल हरि पाल[२], भूपाल काल प्रति पाल ॥ २८ ॥

मा० पा० १, २, सर्वप्रति ।

शब्दार्थः—छुट्टै-पंखी=उड़ते हुए पक्षी । थावर=स्थावर । जलह=जलचर । जगम=जगम । जोती=देखते हुए । ससिपाल=शशपाल, शशांक, चद्रमा, कन्नोजेश्वर, जयचद और कवि चद । हरिपाल=सिंह की पालना करने वाली, सिंहवाहिनी, गौरी, शहाबुद्दीन गौरी, और सिंह तुल्य वीर । प्रति पाल=प्रति पालन करिये, रक्षा करिये ।

अर्थः—शिकार के भयानक दृश्य को देखकर यत्रतत्र उडते हुए पक्षी और स्थावर जगम तथा जलाश्रित जीव कहने लगे, जयचन्द और गौरी जैसे राज ों के अतक-स्वरूपी हे राजा (पृथ्वीराज) ! हमारी रक्षा करिये —

श्लेपार्थ

उड़ते हुए पक्षी स्थावर जगम और जलचर कहने लगे-चद (कवि) और सिंह स्वरूपी वीरों के प्रति पालक एव शत्रु राजाओं के अतक स्वरूपी हे राजा (पृथ्वीराज) ! हमारी रक्षा करिये ।

दोहा

दिल्ली वै है गै गहन, रवन आखेटक राज ।
चावद्दिसि सुर जपई, धन[१] चहुआन समाज ॥ २६ ॥

मा० पा० १, धौं० ।

शब्दार्थः—दिल्ली वै=दिल्लीश्वर । है-गै=घोडे, हाथी । गहन=गहरे, बहु सख्यक । रवन-आखेटक=शिकार खेला, शिकार की । सुर=स्वर ।

अर्थ—बहुत से हाथी घोड़ों को साथ में लेकर दिल्लीश्वर ने शिकार की, जिसे देख-कर चारों ओर से दर्शक गण उच्च स्वर से कहने लगे—चाहुवान नरेश्वर के इस वीर समुदाय को धन्य है।

कवित्त

उभय सत्त मृग मुदित, वधि फदैत[1] इहति[2] बर ।
यो वधै मृगग्रीय, कहै उप्पमा[3] चन्द बर ॥
मन वधै कुलटा विटय[4], ग्यान वधि मुकतिसु[5] आवै ।
दिन वधि आवै कुमति, काल नर बुद्धि डुलावै ॥
आनई लज्ज गुन जस पकरि. आनि[6] संचि आवै अजस ।
आनई क्रोध वर कलह को, यौं आने म्रगग्रीय गस ॥ ३० ॥

पा. पा. १पा का भीं. घ । २ का.भीं. । ३ पा. घ. । ४,६ पा. । ५ पा का. घ. ।

शब्दार्थ—उभय सत्त=दो सौ । इहति-वर=उसी समय । मृगग्रीय=मृगादि को फंदे में डालने वाले, या पालतू मृगों को रखने वाले, उन पालतु मृगों द्वारा फुसला कर जंगली मृगों को फासने वाले । विटय=विट, स्त्री पुरुष को प्रेम बंधन में लाने वाला एक सखा । दिन=बुरे दिन । आनि=आन, अभिमान । संचि=संचय करने पर । आनई=लाता है । गस=ग्रसकर, फांसकर ।

अर्थ—उस समय शिकार में फंदा डालने वालों ने प्रसन्नता पूर्वक दो सौ मृगों को इस प्रकार बंधन में लिया, जिस प्रकार कुलटा स्त्री का मन विट के, मोक्ष-ज्ञान के, कुमति दिन (समय) के, बुद्धि काल के, यश-लज्जा के, अयश अभिमान के और कलह क्रोध के काबू में हो जाता है।

दोहा

सझ सपत्तौ न्रपति पै, दूत सु जद्दवराइ ।
वर कग्गद न्रप हथ्थ दै, कहि श्रोत्रान वधाइ ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ—संझ=सांझ, सायकाल । सपत्तौ=पहुंचा । कहि=कहते हुए, शशीवृत्ता की प्रशंसा करते हुए । श्रोतान=श्रोतानुराग । वधाइ=वृद्धि ।

अर्थ—सायकाल हो जाने पर (देवास के) यादवराज का भेजा हुआ दूत, राजा (पृथ्वीराज) के पास पहुँचा उसने राजा के हाथ मे पत्र देकर शशिव्रता की प्रशसा की और श्रोतानुराग में वृद्धि की।

कह्यो दूत मन अप्पनै, जो ब्रंनो विधि जोइ ।
दोषु जानि नन ब्रंनवहि, न्नप श्रोतान न होइ ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ—विधि जोइ=ढग से । दोषु=दोष ।

अर्थ —दूत ने अपने मन मे विचार किया कि कुमारी के सौन्दर्य को ठीक ढग से वर्णन करना दोष है, किन्तु यह सोचकर यदि रूप वर्णन न किया जाय तो राजा पर श्रोतानुराग का ठीक असर न होगा ।

इह कहि बत्त ठठुक्कि रहि, उत्तर एक न आइ ।
मानों उरग छछून्दरी, कंठ लगावन धाइ ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ.—उरग=सर्प, सांप । छछून्दरी=छछून्दर ।

अर्थ.—ऐसा सोच वह (चुप) खड़ा रहा कुछ भी न बोल सका । उस समय उसकी ऐसी दशा थी, मानों सांप ने मुह से छछून्दर को पकड लिया हो (साप छछून्दर को पकड लेता है फिर उसे छोड़ता है तो वह फूक मारकर उसे अधा कर देती है और वह खा जाता है तो मर जाता है) वही दशा दूत की थी । (कहता है तो कुमारी के अंगों का वर्णन करना दोष है और सौन्दर्य पर प्रकाश नहीं डालता है तो राजा का चित्त कुमारी की ओर आकर्पित करने मे वह सफल नहीं होता है) ।

गाथा

मुख जपी नन[१] बत्त, दूत[२] जे नवाइ सिर[३] पुच्छ ।
बर चहुआन कमान, किम जद्दों नमों नमनाऊ ॥ ३४ ॥

ग्रा० पा० १, ३, का०, पा०, घ०, । २, का० ।

शब्दार्थ:—किम=कैसे । जद्दों=यादव कुमारी, शशिव्रता । नमों=नमाया जाय । नमनाऊ=नमने वाला ।

अर्थ:—दूत ने मुख से कुछ न कहा, और कुमारी की स्मृति करके मन ही मन उससे सिर नॅवा अपराध की क्षमा मांगकर मन में ही बोला, हे यादव । (राज कुमारी जो चाहुवान राजा (पृथ्वीराज) कमान तुल्य (प्रेम सदेश पर) नमने वाला है । उसे तेरी ओर कैसे झुकाया जाय । (अर्थात् अग वर्णन आवश्यक है और ऐसा करना दोप है । जिसके लिये मैं क्षमा चाहता हूॅ) ।

दोहा

इह अख्खी चहुआंन सों, नतो मार कहि आइ।
सुनिबे को ससिवृत्त गुन, सारदऊ ललचाइ ॥ ३५ ॥

शब्दार्थः—अख्खी=कहा, निवेदन किया। नतो=नहीं। मार=मेरे से। कहि आइ=कहा जा सकता।

अर्थः—इसके पश्चात् वह दूत चाहुवान राजा (पृथ्वीराज) से निवेदन करने लगा— कुमारी शशिव्रता का वर्णन करना मुझसे नहीं बन सकता। उसके गुणों को सुनने के लिये सरस्वती भी लालायित रहती है।

राका अरु सूरिज्ज[1] विचि,[2] उदै अस्त दुअ वेर[3]।
वर शशिवृत्ता सोभई, मनों शृङ्गार सुमेर ॥ ३६ ॥

ग्रा० पा० १, ३, पा० घ०। २ घ०।

शब्दार्थः—विचि=बीच। दुअ=दोनों। सुमेर=सुमेरु पर्वत।

अर्थः—जितने भूभाग पर चन्द्रमा और सूर्य क्रमशः दोनों उदय और अस्त होते हैं उतने भूभाग मे कुमारी शशिव्रत्ता शृंगार किये हुए देदीप्यमान सुमेरु पर्वत (स्वर्णिम) के समान शोभायमान है।

विशेषार्थ

चन्द्रमा और सूर्य उदय और अस्त होते हैं उनके बीच वह शृंगार माला की सुमेरु (मध्य के बडे अक्षत मणि) के तुल्य है। माला फेरने वाला मेरु तक पहुँच कर लौट जाता है। इसी प्रकार चद्रमॉ और सूर्य उस तक पहुँच कर लौट जाते हैं लेकिन स्पर्श नहीं कर पाते [अर्थात वह कुमारी अन्य की तो बात ही क्या, चंद्रमा और सूर्य द्वारा भी अस्पर्श की हुई है]।

इन वै इन रूपह तरुनि, इन गुन आवै मान।
सौ वरवर कविचंद कहि, सुनहु तो कहूँ प्रमान ॥ ३७ ॥

शब्दार्थः—इन=ऐसी। वै=वय। आवे-मान=मानने में आ सकता है, अनुमान लगाया जा सकता है। सो=उसने, दूतने। वर २=बार २। प्रमान=प्रमाण करके, दृष्टान्त देकर।

अर्थः—कवि चंद कहता है—कि दूतने राजा से बार २ कहा—हे राजन! उस कुमारी के रूप और गुण का इस प्रकार अनुमान लगाया जा सकता है। यदि आप सुने तो मैं सप्रमाण (दृष्टान्त देकर) निवेदन करूँ।

कवित्त

ससिर अंत आवन वसत, अत[1] बालह सैसव गम ।
अलिन पंख कोकिल सुकठ सज्जि पौगुंड[2] मिलत भ्रम ॥
मुर मारुत मुरि वेलि[3], मुरे मुरि वैस प्रमान ।
तुछ कौंपर सिस फुट्टि, आंन किस्सौर रँगान ॥
लीनी न अमी नक-स्याम मन[4], मधुप मधुर धुनि धुनि करिय ।
जानी न वयन आवन वसँत, अग्याता जोवन अरिय ॥ ३८ ॥

प्रा० पा० १, २, सर्वप्रति । ३, ४, पा० ।

शब्दार्थ—गम=गमन कर, विदा होकर । पोगुंड=प्रौढता, प्रौढत्व । मुर-मारुत=पवन के मुड़ने (झोके) से । मुर-वेलि=लचकीली लता । मुरे=नमने लगी । मुरि वेस=प्रथम अवस्था के मुड़ जाने (चले जाने) पर । कौंपर=कोपलें, पल्लव । सिस=ऊपर । फुट्टि=निकली । किस्सौर=किशोरावस्था । अमी=अमिय, रस । नक-स्याम=नक्र श्याम (स्वामी), मकरध्वज, कामदेव । वयन=वय, अवस्था ।

अर्थः—जिस प्रकार वसन्त के आगमन पर शिशिरऋतु का अन्त हो जाता है उसी प्रकार उस बाला से शैशवावस्था विदा होकर अन्त को प्राप्त हो गई । जिस प्रकार कीट पंख प्राप्त करके भ्रमर रूप मे हो जाता है, उसी प्रकार उस कोकिल कंठी ने प्रौढत्व को प्राप्त कर लोगों को आश्चर्यान्वित कर दिया, अपनी शैशवावस्था के चले जाने पर वह लचकीली लता तुल्य कुमारी वय की हवा के झोके से नमने लगी और वह पल्लवित हो गई, जिसपर किशोरावस्था का रंग छागया, उसकी अगवास (सुगंध) पर भ्रमर सिर धुन २ कर मधुर गुन्जार करते है लेकिन रस (अधर रस) का पान इस लिये नहीं करते कि उसके मन में कामदेव ने निवास कर लिया है । (भ्रमरों को डर है कि इसके मन में स्थित कामदेव जिसने भ्रमर पंक्ति की चाप कर रक्खी है । जो पुरानी हो जाने से कहीं हमे पकड़ कर पुन यह नई प्रत्यंचा न बनाने लग जाय) वसन्त के तुल्य युवावस्था उसमे प्रवेश कर गई फिर भी उसे वह न जान सकी ।

कवित्त

पत्त पुरातन झरिग, पत्त अंकुरिय उट्ठ तुच्छ ।
ज्यौं सैसव उत्तरिय, चढ़िय सैसव किसोर कुच्छ ॥

शीतल मद सुगध[1], आइ रितिराज अचान ।
रोम राइ अ कुचि नितब, तुच्छ[2] तुच्छ सरसानं ॥
वढ्ढै न सीत कटि छीन ह्है, लज्ज मान ठकनि[3] फिरै ।
ढकै न पत्त ढकै कहै, बन बसत मत जु करै ॥ ३९ ॥

ग्रा० पा० १, २, ३ सर्वप्रति ।

शब्दार्थ:—पत्त=पत्ते, लज्जा । उत्तरिय=उतर गई, दूर होगई । रितिराज=ऋतुराज । अचान=अचानक । रोम राइ=रोम राजी । अ=उसी तरह । लज्ज मान=लजवंती के समान । ठंकनि=ठुठकति, संकुचित । न-पत्त=पत्ते रहित । ढके-न=नहीं ढकती, नहीं छिपाती, संकोच नहीं करती । ढंकै=ढाक, पलाश । कहै=कहीजाती मत-जु-करै=मतपर चलती, समता करती ।

अर्थ:—जिस प्रकार पुराने पत्ते झड़कर नये पत्ते थोडे २ अंकुरित होते हैं उसी प्रकार उस बाला की शैशवावस्था दूर होकर उस पर कुछ २ युवापन के साथ-साथ लज्जा झलकने लगी है । जिस प्रकार ऋतुराज के अचानक आगमन पर शीतल, मद, सुगधित पवन चलता है, उसी प्रकार उसके रोमराजि, कुच, और नितवों में कुछ २ सरसता बढ़ चली है । जिस प्रकार शीत की वृद्धि में कमी हो जाती है उसी प्रकार उसकी कमर क्षीण होती गई है । जिस प्रकार लजवंती (एक पौधा जिसको छूने से उसके पत्ते सिकुड़ जाते हैं) सिकुड़ जाता है उसी प्रकार वह कभी २ सकुचित हो जाती है, जिस प्रकार ढाक पत्ते रहित होते हैं उसी प्रकार वह अनभिज्ञ कभी कभी निसकोच कही जाती है, इस प्रकार वह वनाच्छादित वसन्त के मत पर चलती है (समानता करती है) ।

दोहा

श्रवनन भो[1] श्रोतान नृप, मन वछै चहुआन ।
मनु ससिवृत्त कुंआरि कौ, पर्यौ उरद्धर वान ॥ ४० ॥

ग्रा० पा० १, पा० ।

शब्दार्थ·—श्रोतान=श्रोतानुराग । वछै=चाहने लगा । उर द्धर=उरस्थर, हीतल, हृदय ।

अर्थ:—राजा यह सुनकर श्रोतानुरागी होगया और वह शशिव्रता को मन से चाहने लगा । उसकी सौन्दर्य-चर्चा कानों में क्या पड़ी मानों राजा के हृदय में (कामदेव का) बाण लग गया ।

कवित्त

निसि नरिंद चहुआन, चित्त मनुरत्थ विचारै ।
भई दीह सब निशा, निशा सपनतर[1] धारै ॥
सपनतर[2] ससिवृत्त, चाटु चटु बैन उचारै ।
चारु चारू बर बचन[3], मान माननि सभारै ॥
दैवान मनोरथ चित्त बर, भव भवच्छ-नन-कह-करै[4] ।
भौ प्रात दूत पुन्छै नृपति, जद्दौवै[5] चित्तै धरै ॥ ४१ ॥

ग्रा० पा० १, २, पा० का० भीं० घ० । ३ का० । ४, घ० । ५, का० घ० ।

शब्दार्थ—मनुरत्थ=मनोरथ । सपनंतर=स्वप्न में । धारै=देखता रहा । चाटु=जादू । चटु=चट, शीघ्र । मान=तुल्य । सभारै=सुने । देवान=दैविक, देव तुल्य । भव=ससार । भवच्छ=भविष्य । न-कह-करै=कुछ नहीं कर सकता, वश नहीं चलता । जद्दौवै=यादव राजकुमारी को ।

अर्थः—चाहुवान नरेश्वर रात भर मन में अपनी इच्छा का चिन्तन करता रहा । निशा उसके लिये दिन हो गई । अर्धजागृत अवस्था मे वह रात्रि भर स्वप्न देखता रहा । उसे स्वप्न मे कुमारी शशिव्रत्ता जादू करती हुई मालूम पडी और ऐसे ही सम्मोहक शब्द कहती हुई जान पड़ी । उसके वे वचन मानवती के मान-वाक्य के समान राजा को सुनाई पडे । कवि कहता है जिनका श्रेष्ठ चित्त है । उनके मनोरथ देवतुल्य होते हैं । ससार में भविष्य का वश उन पर नहीं चलता । प्रात होने पर यादव कुमारी को चित्त मे वसाता हुआ राजा पृथ्वीराज दूत से उस शशिव्रता के विपय में पुन. पूछने लगा ।

दोहा

बीर चद जैचद बँधु, दे वरु पु ज कुआरि[1] ।
त्रप पठये चहुआन पै, दै शशिव्रत्ता नारि ॥ ४२ ॥

ग्रा० पा० १, पा० ।

शब्दार्थः—दें-वरु=वरदेगा, निवाह करेगा । पु ज=यादव-राज का भाई, शशिव्रता का पिता पुज ।

अर्थः—दूत कहने लगा -हे चाहुवान नरेश्वर ! जय चद के भाइयों मे एक वीर चद है उससे यादव राजा के भाई "पु ज" ने अपनी कुमारी शशिव्रत्ता का विवाह करना निश्चित किया है । इसीलिये यादव-राज ने मुझे आपके पास कुमारी शशिव्रता को समर्पित करने के लिये भेजा है ।

आगम वीर वंसत कौ, शिशिर संपत्ते अत ।
प्रीतम पतन सु प्रीति कौ, दै न-ठाह सो कत ॥ ४३ ॥

शब्दार्थः—संपत्ते=जाँय, मिट सकती अंत=अतर । दै-न-ठाह=स्थान नहीं देती । कंत=कांता ।

अर्थः—हे वीर (पृथ्वीराज) ! आपके वसन्त तुल्य आगमन पर ही उस बाला के अन्तर से वह शिशिर तुल्य कपन (अन्य के साथ विवाह करने का भय) मिट सकता है। हे प्यारे ! वह कान्ता (कुमारी) पवित्र प्रेम को अपने पास से दूसरों को देना नहीं चाहती, (आपके प्रति जो उसका पवित्र प्रेम है। उसे वह नहीं छोड़ना चाहती ।

कवित्त

शशिर सु विथुरत वन वियोग, विथुरत[1] वन कते ।
दुहन आस रहि सास, कत आयौं न वसंते ॥
उपवन पत्त झंझरिय, विरह पजर स झंझरि ।
आस अनहिन हुलसि, विपन हुलसै सुसमझरि ॥
अनमेछ[2] जपत इच्छा सघन आनद वर भूषण तजै ॥
दोऊ न होइ कवि चन्द कहि, असु रख्खिरु धज सम सजै ॥ ४४ ॥

मा० पा० १, स० । २ पा० ।

शब्दार्थ—विथुरत=विस्तृत । वन-कते=विना स्वामी के विना आपके । दुहन=दुरुह, मुश्किल । पत=पत्ते । झंझरिय=जर्जरित कर देता । पंजर=शरीर रूपी पिंजड़ा । स=उसका । झंझरि=झझोड़ दिया । आस-अन हिन=आशा हो आती । हुलसे=खिल पड़ता । सुसन-झरि=सूक्ष्म झड़ी (वर्षा) से । अनमेछ=अनिमेष, निरन्तर । असु=प्राण । धज-सम-सजै=ध्वजा के समान प्रकपित रहे ।

अर्थः—जिस प्रकार शिशिर वन में विस्तार पाता है, उसी प्रकार हे प्यारे, आपके विना, वियोग ने उसमें विस्तार पा रक्खा है। आपकी आशा में ही उसके श्वास इतने दिन मुश्किल से रह सके हैं। वह सोचती है कि वसन्त तुल्य कत (आप) अब तक क्यों नहीं आये। उपवन के द्रुमों की पत्रावलि को जिस प्रकार शिशिर जर्जरित कर देता है, उसी प्रकार उसके शरीर रूपी पिंजड़े को विरह ने झँझोड़ दिया है। जब आपके आने की आशा होती है तब वह कुछ २ इस प्रकार प्रसन्न हो जाती है, जिस प्रकार वन, तनिक झड़ी (वर्षा) से खिल उठता है। आन्तरिक

शब्दार्थः—उतिम=उत्तम, शुभ। लच्छिन=लक्षण। केक=कितनें ही, अनेकों।

अर्थ—हंस नामक दूत कहने लगा— हे नरेश्वर! विवेक पूर्वक उस यादव कुमारी का कहाँ तक वर्णन किया जाय? आपकी उस प्रियतमा में अनेकों शुभ लक्षण हैं।

श्लोक (काव्य)

पीनो-रु-पीन उरजा शशि सम वदना[1], पद्म पत्रायताक्षी[2]।
व्यबोष्टी तु ग नासा, गज पति गमना, दक्षना वृत्त नाभी।
सुस्निग्धा[3] चारु केशी मृदु पृथु जघना,[4] वाम मध्या सुवेसी।
हेमांगी कंति हेला वर रुचि[5] दसना, काम वाना कटाक्षी॥ ५०॥

आ० पा० १, पा०। २ से ४, सर्वप्रति।

शब्दार्थ—पीनो-रु-पीने=पेने से भी पेने। उरजा=उरोज, कुच। सम=समान। पद्मपत्रायताक्षी=कमल पत्र से चक्षु। तुंग=उत्तंग, उठी हुई। दक्षनावृत्त=दाहिनी ओर से चक्राकृति। सु-स्निग्धा=श्रेष्ठ प्रेम युक्त। मृदु=कोमल। प्रथु=प्रस्थूल, स्थूल। वेसी=वेय, अवस्था। कंति=कान्ता। हेला=एक प्रकार का हाव, (विनोद सूचक विलास मुद्रा)।

अर्थः—उस बाला के कुच विशेष पेने, मुख चंद्रमा के समान, चक्षु कमल-पत्र के समान, ओष्ठ बिम्ब फल की भांति, नासिका उठी चाल हथिनी की तरह, नाभि दक्षिणावृत्त (दाहिनी ओर से चक्राकृति), प्रेम श्रेष्ठ, केश मजुल, स्थूल और कोमल जघाय, वय मध्या, काया सर्वाङ्ग स्वर्णिम, हाव भाव (विलास क्रीडा) युक्त, रद पक्ति रुचिकर और कटाक्ष कामदेव के बाणों के तुल्य हैं।

दोहा

कही हंस जद्दोंन[1] कथ, लगि श्रोतान सु राज।
छिनन हस वीरज धरै, लगै बान सम साज॥ ५१॥

आ० पा० १ पा० का०।

शब्दार्थ—हस=दूत विशेष। जद्दोंन कथ=यादव कुमारी का वर्णन। हस=प्राण। साज=सधे हुए।

अर्थः—इस प्रकार हस नामक दूत ने यादव-कुमारी का वर्णन कह सुनाया, जिसमे राजा (पृथ्वीराज) को और भी श्रोतानुराग होगया। उसके (पृथ्वीराज)

प्राणों को क्षण मात्र भी धैर्य नहीं हुआ। दूत द्वारा शशिवृत्ताकी प्रशंसा में कहे हुए वचन सधे हुए कामदेव के बाणों के समान काम कर गये।

कहै हंस वर राज सुनि, तिअ[1] अनेक है जाति।
पदमनि है जद्दव कुंअरि, आन तरुनि अनि भाति॥ ५२॥

आ० पा० १ पा०।

शब्दार्थः—[1]तिअ=तिय, स्त्रियें। अनि=अन्य।

अर्थः—फिर हंस (दूत) कहने लगाः— हे नरेश्वर सुनो! स्त्रियों की अनेक जातियाँ हैं, जिनमें अन्य स्त्रियाँ अन्य जाति की हो सकती हैं, किन्तु यादव-कुमारी (शशिव्रता) वास्तव में पद्मिनी जाति की ही है।

राज कहै दुजराज सुनि, करि वरनन कथि सोइ।
को लच्छिन उत्तिम त्रिया, कहियै सो सब जोइ॥ ५३॥

शब्दार्थः—दुजराज=द्विजराज। कथि=कहो। को=कौन २, क्या२। जोइ=जोकर, सोचकर।

अर्थ—तब राजा ने कहा, हे द्विजवर (विप्रवर)! स्त्रियों के लक्षणों को सोचकर हमें उनका वर्णन सुनाओ। उत्तम स्त्रियों के क्या२ लक्षण होते हैं?

चारि जाति हैं त्रीय तन, पदमिनि हस्तिनि चित्र।
फुनि संखिनिय प्रमान इह[1], मन नह रजिय मित्र[2]॥ ५४॥

आ० पा० १, २, पा० का० घ० भीं।

चारि=चार। तन=शारीरिक रचना, स्वरूप। चित्र=चित्रनी। फुनि=पुनि और। प्रमानइह=प्रमाने गये, माने गये। रजिय=रंजित, प्रसन्न।

अर्थ—दूत कहने लगाः-स्त्रियों के शारीरिक स्वरूप चार प्रकार के हैं। उसी के अनुसार क्रमशः पद्मिनी, हस्तिनी, चित्रनी, और शखिनी भेद माने गये हैं। हे मित्र! उनमे शखिनी से मन रजित नहीं होता।

गाथा

कहै विवेक सु हसं, त्रीय प्रकार चारि[1] तहि इंदं।
सुनि राजन सुभ वानी, आनंदे श्रवन ममकेतं॥ ५५॥

पा० पा० १ प० ।

शब्दार्थ—इद=राजा । मभभेन=में, से ।

अर्थ —फिर (दूत) हंस विवेक पूर्वक यह कहने लगा, हे राजन ! स्त्रियाँ चार प्रकार की पाई जाती हैं । तब उसके वचनों को सुनने के लिये राजा के कान लालायित होगये ।

दोहा

तब दुजराज सु उच्चरिय, रे सभरि पुर इद ।
पद्मिनि हस्तिनि चित्रनी, सखिनि सखन नद ॥ ५६ ॥

शब्दार्थः—नद=निंघ, निन्दनीय ।

अर्थः—फिर द्विजराज (विप्र) बोला - हे सभरी नरेश (पृथ्वीराज) ! पद्मिनी, हस्तिनी, चित्रनी, और शखिनी ये चार प्रकार की स्त्रियाँ होती हैं, जिसमे शखिनी निन्दनीय है ।

कवित्त

कुटिल केस पद्मिनी, चक्र हस्तिन[1] तन सोभा ।
स्निग्ध दत सोभा विसाल, गध पद्म[2] आलोभा ॥
सुरस मूह[3] हसी प्रमान, अलप[4] निद्रा तुच्छ जपै ।
अलप वाद मित काम, रत्ति[5] अभया भै कपै ॥
धीरज्ज छिमा लच्छिन सहज, असन बसन चतुरग गति ।
आवक लोइ लग्गै सहज, काम वान भूलत रति ॥ ५७ ॥

प्रा० पा० १, पा० । २, पा० घ० । ३, घ० । ४, सर्वप्रति । ५ दे० ।

शब्दार्थ —कुटिल=टेढे मेढे, स्वाभाविक बने हुए । हस्तिन=हाथ । तन-सोभा=शरीर शोभा युक्त, सुन्दर । स्निग्ध=चिकने, चमकीले । दत=दांत । गध=सुवास पद्म =पद्म, कमल । आलोभा=लुभाने वाली, मुदित करने वाली, या—अलभ्य । सुरस=सरस । मूह=मुह, मुख । अलप=अल्प । तुच्छ जपै= मितभाषी । मितकाम=सूक्ष्म कामेच्छा । रत्ति=रति समय, सुरति समय । भै=भय छिमा=क्षमा । लच्छिन=लक्षण । चतुरग=चतुर । आवक लोइ लग्ग=उसकी आंखें चितवन लगने पर, कटाक्ष होने पर ।

अर्थः—जिसके केश टेढ़े मेढ़े (स्वाभाविक बने हुए), हाथ चक्र चिन्हों से सुशोभित, सुन्दर शरीर, विशेष शोभा युक्त चमकीली रदपंक्ति, मोहित करने वाली कमल के समान अगवास, मुँह पर सरस हँसी, तुच्छ निद्रा, मितभाषी, अल्पवाद, सूक्ष्म कामेच्छा, सूरति समय निर्भय और सकप समय, धैर्यवान, सहज ही क्षमावान, स्वाभाविक सुलक्षणवती, भोजन बनाने और वस्त्र पहनने में चतुर एवं उसके स्वाभाविक ही कटाक्ष करने पर स्वयम् कामदेव भी अपने शरासन और अपनी प्रियतमा रति को भूलसा जाता है। ऐसे लक्षणों वाली स्त्री पद्मिनी है।

उर्द्ध केस हस्तिनी, वक्र अस्तन दसननि[१] दुति।
मधुर[२] गध गरणाट, भुल्लि-भ्रम काम वाम रति ॥
गूढ सवद मन-जा विखान, रंग रगन[३] छामोदरि।
चित्र नयन चचल विसाल, श्याम[४] वरनी जामोदरि[५] ॥
छिनु[६] रुदय हसय विहसय लसय, वसि चित्तह चित-पुत्तलिय।
नीवीय मान जानई महुत, कत चित्त जाइ न कलिय ॥ ५८ ॥

प्रा० पा० १ दे० । २, ३, ४, सर्व प्रति । ५ घ० ।

शब्दार्थः—अस्तन=स्तन, कुच । दसननि=दात, दन्त । दुति=दोनों । मधुत=मधु (रस) तुल्य । गरणाट=गहरी । भुल्लि-भ्रम=भूलकर भ्रमित । गूढ-सवद=व्यंग्य वाक्य । मन-जा=जिसका मन । विखान=विषयों में । छामोदरी=क्षीण कटि, कृशोदरी । चित्र=चित्रक हिरण से । जामोदरि=यामिनी से दलित, यामिनी से मोह, रात्रि में अभिसार करती रहने वाली ।

अर्थः—जिसके केश उठे हुए हों, कुच और दंत पंक्ति जिसके दोनों ही वक्र हो, मधु (रस) तुल्य गहरी जिसकी अगवास हो, काम में लीन हो, सुधबुध भूलकर भ्रमित हो, जो व्यंग बोलने वाली हो, मन जिसका विषयानुरक्त रहता हो, विविध रगों मे जो रगी हुई हो, जिसका उदर सम हो, पतली जिसकी कमर हो, चित्रक हिरण के समान जिसके विशाल चंचल नैत्र हों, जिसका श्याम वर्ण हो, यामिनी से जिसका प्रेम हो (कृष्णाऽभिसारिका हो), जिसका रोना, प्रसन्न होना, तथा विलास क्षणिक हो, जो चित्त मे चित्र-पुत्तलिका के तुल्य बसने वाली हो। अन्य कुछ नहीं केवल मान करना जानती हो, ऐसी स्त्री हस्तिनी जाति की है। उसके पति के चित्त मे उससे क्रीड़ा विषयक तृप्ति नहीं होती।

दीग्घ[1] केस चित्रिनी, चित्त हरणी[2] चन्द्राननि[3] ।
गध म्रगमद[4] विदे,[5] कोक शब्दनि उच्चारणि[6] ।।
सील नील लज्जा प्रमान, रत्तिभै भय घन मारै ।
अलस-नयन रस वलित, कलित कल बोल उचारै ।।
धीरज्ज छिमा छव[7] लोक करि[8], अवलोकन गुन औसरे ।
विस्तीर्ण मत्र मोहन पढै, चित्त वित्त कथ्था[9] हरै ।। ५६ ।।
ग्रा० पा० १ से ३, ६, ६ दे० । ४, ५, ७, ८ सर्व प्रति ।

शब्दार्थ:—दीग्घ=बड़े, लम्बे । म्रगमद=मृगमद, कस्तुरी । विदे=वदे, कहीजाती । नील=सौ अरब सख्या का एक नील । रत्ति-भै=रात्रि होने पर । मारै=मार, काम [क्रीड़ा] । अलस नयन=अलसित नैत्र । रस-वलित=रस से ओत प्रोत, सरसता युक्त । कलित=खिली, प्रसन्न । कल=मधुर, सुन्दर । छिमा=क्षमा । छव=छवि, शोभा । लोक-करि=लोक की, ससार की । अवलोकन=देखने पर । औसरे=टपके, बरसे । मोहन=मोहनी । कथ्था=कत, पति । हरै=चुराती ।

अर्थ:—लम्बे केशों वाली, चित्त को हरने वाली, चन्द्रमॉ के समान मुख वाली, कस्तूरी के समान अंग-वास वाली, कोक शास्त्र के अनुसार शव्द बोलने वाली, शील और लज्जाअपरिमित रखने वाली, रात्रि में भय और काम की इच्छा रखने वाली, अलसित नैत्रों वाली, रस सिक्त मधुर बोलने वाली, धैर्य और क्षमा भावना रखने वाली, ससार में शोभा युक्त, दिखने में गुणवाली-ऐसे लक्षणों से युक्त स्त्री चित्रणी जाति की होती है। वह ऐसी होती है, मानो मोहिनी-मत्र का पठन किया हो। ऐसी स्त्री सहज ही अपने पत्ति के चित्त को चुरा लेती है।

अलप केस कुच थूल[1], थूल[2] दती उच्चारन ।
थूल उदर लकीस, जघ क्रिसल गॅध वारुण[3] ।।
घोर णिद्र[4] तन तास, अलप रसणा[5] रस छडै ।
अलप सील गभीर, सबद कलहतर मडै ।।
आचार ध्रम[6] नहि सुद्ध मन, विधि विचार विभचार घन ।
आसख-सख सखिनि गुनत्ति, सुक्ख नाह पावै न तन ।। ६० ।।
ग्रा पा० १, २ स० । ३, ४, ५ दे० । ६ सर्वप्रति ।

शब्दार्थ—अलप=छोटे, सूक्ष्म, तुच्छ । थूल=बटे, उच्च, मोटे, भारी । उदर=पेट । लंकीस=कमर । क्रिसल=कृष, पतली । णिद्र=निद्रा । तन तास=त्रसित काय, भयावने शरीर वाली । रसणा=रसना । छडे=छोडती, बरसाती

गंभरि=गहरे, उच्च । सबद=शब्द, आवाज, स्वर । विधि=विविध । आ=इस प्रकार । संख-संख= विशेष संख्या में । नाह=पति ।

अर्थः—छोटे केश और बड़े २कुच, बडे २दांत वाली, भारी पेट और भारी कमरवाली, पतली जघाओ वाली, हथिनी के समान अग-वास वाली, गहरी निद्रा में सोने वाली, भयावने शरीर वाली, वाणी में तुच्छ सरसता रखने वाली, तुच्छ शील वाली, उच्च स्वर से कलह-वाक्य कहने वाली, आचार, धर्म और मन को शुद्ध नहीं रखने वाली; विविध विचार वाली तथा व्यभिचार में विशेष रुचि रखने वाली-स्त्री शखिनी होती है । ऐसी स्त्री से उसके पति को कभी सुख नहीं मिलता ।

दोहा

जंपि राज दुज राज सम, तुम मति-रूप अलोई ।
कवन काज अवतार इह[1], सत्ति[2] कहो तुम सोइ ॥ ६१ ॥

प्रा० पा० १, पा० का० घ० । २, घ० ।

शब्दार्थः—जपि=कहा । मति-रूप=बुद्धि का स्वरूप । अलोई=अलौकिक । इह=इसका । सति= सत्य, स्पष्ट ।

अर्थः—तब राजा (पृथ्वीराज) ने द्विज (दूत) से कहा तुम्हारी बुद्धि का स्वरूप अलौकिक है । अत ऐसी राजकुमारी (शशिव्रता) का अवतार पृथ्वी पर किस लिये हुआ, उसका स्पष्ट वर्णन सुनाओ ?

हस कहै राजान सुनि, कहौं उतपत्ति त्रियेन ।
सुनहु राज मन प्रसन होइ, त्रिवरि कहौं सब वैन ॥ ६२ ॥

शब्दार्थः—राजान=नरेश्वर । त्रियेन=स्त्री की, कुमारी की । सुनहि=सुनने से । त्रिवरि=व्यौरेवार, सविस्तार ।

अर्थः—तब हंस (नामक द्विज) कहने लगा—हे नरेश्वर ! जिसके सुनने से मन को प्रसन्नता होती है, उस स्त्री (कुमारी) की उत्पत्ति, मैं आपसे सविस्तार कहता हूँ ।

कवित्त

इक्क[1] समै सुर ईस, अप्प पुरइंद थान गय ।
आगम देव सुनेव, नागपति अति उछाह भय ॥

अरघ पाद करिधूप, करै मगल अपुब्ब सुर।
सुभ आसन रजि रुद्र, करै घनसार[२] वारितर ॥
अस्तुति करंन लग्गौ सुरिंद, तब प्रसन्न भय ईस प्रति।
उच्चरिय कूट-जट इद्रसों, सुभ दिक्खौ[३] अच्छरि[४] नृपति ॥ ६३ ॥

ग्रा० पा०, १, पा०। २, सर्वप्रति। ३, का० पा०। ४ घ०।

शब्दार्थ—इक्क-समै=एक समय। सुरईस=महादेव, शिव। अप्प=स्वयम्। पुर इन्द=पुरेन्द्र, इन्द्र। गय=गये। नागपति=स्वर्गाधिप, इन्द्र। भय=हुआ। घनसार-वारि—तर=तव वहा पर विशेष कर्पूर (दीप) जलाये। प्रति=उस (इन्द्र) के प्रति। कूट-जट=जटाशेखर, शिव। सुभ= मंगल रूप में, मंगल मुखियों को। अच्छरि=अप्सरायें। नृपति=राजन, देवेन्द्र।

अर्थ—एक समय महादेव, इन्द्र के स्थान पर गये। महादेव का आगमन सुनकर इन्द्र ने विशेष रूप से उत्सव मनाया। उनके चरणों में अर्घ्य देकर उसने धूप दीपादि का मगल कार्य किया। शिव जब आसनारूढ हो गये तो वहाँ कर्पूर दीप जलाये गये। स्तुति करने पर शिव ने प्रसन्न हो इन्द्र से कहा—हे देवेन्द्र! आपकी मंगलमुखी अप्सराओं को (उनकी नृत्य कथा को) देखना चाहता हूँ।

रभ घृताची मैन, मॅजु घोपा सुरग त्रिय।
उरवसि केसी नारि, तुरत तिल्लोत्तमानि पिय ॥
किय शृंगार सुदरिय, आइ उभ्भी सुर वाम।
दिक्खि[१] त्रियामन प्रमुदि, हुओ मनउदित काम।
अव सरस नृत्य कारनह कजि, जन्त्र मृदग उपग[२] सजि।
अस्तुति अनेक पढि घोप त्रिय, पहु पजुलि सुर इद्र-कजि ॥ ६४ ॥

ग्रा० पा० १, पा०। २, पा०, घ०,।

शब्दार्थ:—रभ=रभा। घृताची=घृताञ्ची। मेन=मेनका। सुरग=सुरंगी, सुन्दर। उरवसि= उर्वशी। केसी=सुकेशी। तिल्लोत्तमानि=तिलोत्तमा। पिय=प्रिय। उभ्भी=खड़ी। दिक्खि=देखने से। प्रमुदि=प्रमुदित, प्रसन्न। कजि=लिये। जन्त्र=यन्त्र, तन्त्रि। उपग= वाद्य विशेष। घोप= पजुघोप। पहु पजुलि=पुष्पाञ्जलि। इन्द्र-कज=इन्द्र को।

अर्थ:—तब-रभा, घृताञ्ची, मैनका, मजुघोषा, उर्वशी, सुकेशी, तिलोत्तमा आदि सुन्दर अप्सरायें जो इन्द्र को अधिक प्रिय थी, वे सब सुर सुन्दरी (सुर बालायें)

शृंगार किये हुए सामने आ उपस्थित हुईं, जिनको देखने मात्र से मन को प्रसन्नता और कामोद्दीपन हो जाता था। उन्होंने सरस नृत्य करने के लिये तन्त्र वाद्य, मृदग तथा उपग को तय्यार किया, एवं प्रारभ मे पुष्पाञ्जलि देने के लिये मजुघोषा आगे वढ़ी और स्तुति कर इन्द्र को पुष्पाञ्जलि समर्पित की। (उसने अतिथि रूप में आये हुए शिव को समर्पित न कर इन्द्र को समर्पित की, जिससे उसके द्वारा शिव ने अपना अपमान समझा)।

तब सु कोप धरि ईस, दियौ सुर-श्राप पतन धर[1]।
और रंभ[1] किय नृत्य, सुबर अन्नेक विद्धि पर ॥
वहु[1] विवेक कल मान ताल मढै त्रिगंन[2] सुर।
रजि राज-सुर ईस, दीन-बर-वानि रंभ गुर ॥
अति प्रमुहि चित्त कैलाम पति, उभय देव आनद हुअ।
सुभ सभा बिराजै राज सुर, सुवर प्रमोदिय मन सँभुअ ॥ ६५ ॥

प्रा० पा० १ पा० का०। २ सर्व प्रति।

शब्दार्थः—सुर-श्राप=श्राप वाक्य। पतन-धर=पृथ्वी पर जन्म लेने का। विद्धि पर=ढंग पर, ढंग से। कल=कला। त्रिगन=तीन। राज-सुर=सुरराज। दीन-बर-वानि= श्रेष्ठ वाणी कही। गुर=बड़ी, श्रेष्ठ उभय=दोनों। सँभुअ=शभू।

अर्थः—इससे शिव ने (मजुघोषा पर) क्रुद्ध होकर श्राप दिया कि तेरा पतन होगा और तू भूमि पर जन्म लेगी। इसके वाद शिव को प्रसन्न करने के लिये रंभा ने अनेक प्रकार से नृत्य किया और विशेष कला-युक्त तीन स्वरों में ताल की रचना की। जिससे इन्द्र और शिव दोनों ने उसे सवसे श्रेष्ठ कहा। जव शकर का चित्त प्रसन्न हुआ तो इन्द्र को भी हर्ष हुआ। इस प्रकार दोनों प्रसन्न दीख पड़े। उस श्रेष्ठ सभा में बैठे हुए शम्भु के मन को इन्द्र ने भी प्रसन्न किया।

दोहा

करि प्रसन्न सुर-राज त्रिय, मुख अस्तुति सुर कीन।
वर वानी पुर इंद्र के, यह सु वाक्य सिव दीन ॥ ६६ ॥

शब्दार्थः—त्रिय=स्त्री रूप में अप्सरायें। दीन=दिये, कहे।

अर्थः—अप्सराओं, देवताओं और इन्द्र ने जब स्तुति करके शिव को प्रसन्न किया। तब शिव ने इन्द्र को सम्बोधित कर कहा —

परै—तुमभ्क उत्तिम धरनि[1], पुत्री भूमि नरिंद।
दुअ पख्खां सिर छत्र है, करि सेवा हर इंद॥ ६७॥

शब्दार्थः—परै-तुमभ्क=पड़ेगी तूं, जन्म लेगी। दुअ-पक्खां=दोनों पक्ष, नेहर और सुसराल। इंद=इन्द्र।

अर्थः—हे इन्द्र! यह (मंजुघोष अप्सरा) उत्तम (मालव) भूमि पर राज वंश मे जन्म लेगी, वहाँ पर इसे चाहिये कि शिव की उपासना करे, जिससे इसके दोनों पक्ष (नेहर और सुसराल) छत्र से सुशोभित होंगे।

वचन ईस तें वर लहै, हरन होइ तुअ दार[1]।
कलह केलि भावन भवन, ह्वै हैं युद्ध अपार॥ ६८॥

प्रा० पा० १ पा० घ०

शब्दार्थः—दारा=दारा, स्त्री। भावन=मन भावन पति।

अर्थः—मेरे वचनों के प्रभाव से इसका अपहरण होगा, और अपने मन भावन (पति) के भवन मे जाते समय कलह होगा और भयानक युद्ध होगा।

गाथा

तुच्छ दिन अंतर कमिय, आगम भरतार पामि[1] उध लोक[2]।
फिरि अच्छरि अवतार, पांमै तुमभ्क ईस वर-बानी॥ ६९॥

प्रा० पा० १ का०। २ पा०।

शब्दार्थ—तुच्छ=तुच्छ, कुछ। आगम-भरतार=पति के स्वर्गारोहण पर, आने पर। पामि=प्राप्त करेगी। उधलोक=ऊर्ध्व लोक, स्वर्ग। फिरि=फिर। पामै=पायगी।

अर्थ—कुछ समय व्यतीत होने पर पति के स्वर्गारोहण के साथ २ ही ऊर्ध्व लोक (स्वर्ग) को प्राप्त कर यह अप्सरा रूप में फिर परिवर्तित होगी। यह मेरी श्रेष्ठ वाणी इसे फलेगी।

दै सराप[1] सुर नारि, आप करि ईस थान चलि।
घन अस्तुति कर इंद, प्रमुदि अति इन्द्रानि फलि॥

चलै थान कैलास, परी अच्छरी मृत-पुर ।
जद्दव ग्रह त्रिय जाइ, उअर उप्पजी कुँअरि वर ॥
देवास थान तपि भांन नृप, तिहि पुत्री ससिवृत कुँअरि ।
सोइ वाच रुद्र देवह सुत्रिय, तुअ कारन साथह उअरि ॥ ७० ॥

ग्रा० पा० १, का० पा० भीं० ।

शब्दार्थ:—सराप=श्राप । सुर-नारि=अप्सरा । अप्प-करि=अपनाकर, क्षमाकर । घन=विशेष । परि=पड़ी, जन्म लिया । मृतंपुर=मृतपुर, मृत्युलोक । उअर=उर, कुक्षि । उप्पजी=उत्पन्न हुई । तिहि पुत्री शशिव्रत कुँअरि=उसकी (भानुराय की) पुत्री और (पुंज की) कुमारी शशिव्रता । वाच=वाचा, वरदान । साथह=साथ २ ही । उअरि=कुक्षि में पड़ी, उत्पन्न हुई, या उर्वरा पर आई, पृथ्वीपर जन्म लिया ।

अर्थ:—इस प्रकार श्राप देकर पुनः क्षमा कर (वरदान देकर) शिव अपने स्थान के लिये रवाना हुए। इन्द्र के अधिक स्तुति करने से ही शिव प्रसन्न हुए और उनकी वाणी (उस अप्सराको) फली। उधर शिव ने कैलाश के लिये प्रस्थान किया और इधर वह अप्सरा मृत्यु लोक में यादव (पुंज) की स्त्री की कुक्षि से कुमारी (शशिव्रता) के रूप में उत्पन्न हुई। इस समय देवास नामक नगर पर भानु नाम का राजा शासन करता है। उसी की पुत्री के अतिरिक्त वहां वह (शशिवृत्ता) भी कुमारी रूप में है। वे दोनों (भान कुमारी-हंसावती और पुंज कुमारी-शशिव्रता) शिव के वरदान से आपके ही लिये दोनों साथ साथ ही पैदा हुई है।

गाथा

जपै दुज सम राजं, तव—गुन वंन कीन अप्पारं ।
हम गुन किम समरियं, लग्गो श्रोतान राग किम जद्दों ॥ ७१ ॥

शब्दार्थ:—सम=से । तव-गुन=अपने यहाँ के गुण, शशिव्रता के गुण । अप्पारं=अपार । हम=हमारे । संमरियं=सुने । जद्दों=यादव कुमारी, शशिवृत्ता ।

अर्थ:—तब राजा (पृथ्वीराज) ने द्विज-दूत से कहा—तुमने अपने यहां के (कुमारी शशिव्रत्ता के) गुणों का काफी विस्तार पूर्वक वर्णन सुनाया है, किन्तु हमारे गुणों को उसने (कुमारी ने) किस प्रकार सुना है और उस को कैसे श्रोतानुराग हुआ उसे भी हमे सुनाओ !

दोहा

हंस कहै राजन्न सुनि, इह उतपति अनुराग ।
श्रवन सुनौ सभरि सु पहु, कहौ वृत्त—स—लाग ॥ ७२ ॥

शब्दार्थ—इह=इस प्रकार । वृत्त-स-लाग=वह व्रत में लगी, उसने व्रत ग्रहण किया ।

अर्थः—तब हँस (दूत) ने कहा — हे सभरी-नरेश ! उसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में तो जैसी मैंने कही है, वैसी ही हुई है और उसको आपके प्रति जिस प्रकार अनुराग हुआ है तथा जैसा व्रत उसने लिया है, उसे मैं कहता हूँ ।

कवित्त

देवग्गिरि नृप भान, सोमवंसी सुतपै नृप ।
तिन अनत बल तेज, बहुल है गै पैदल तप ।
नयर मध्य कोटीस, बसै बानिक अनतलछि ।
धम तप्प नह पार, नहीं कोउ दास रहै इछु ।
सा एक लक्ख पयदल पुलत, खग्गजोर खूनी[1] वहै ।
जद्दव नरिंद सब गुन कुसल, धन प्रताप दिन दिन लहै ॥ ७३ ॥

प्रा० पा० १ सर्वप्रति ।

शब्दार्थः—देवगिरि=देवास । बहुल=बहुत से । है-गै=हाथी घोड़े । तप=तहप, तत्पर । कोटीस=कोटाध्यक्ष, कोटीध्वज, करोड़पति । बानिक=वणिक, वैश्य । लछि=लक्ष्मी । तप्प=तप । इछु=इच्छुक । सा=उसके । पुलत=पलायन करते, चलते । वहै=चलते बनते, भगा देता ।

अर्थः—देवगिरि (देवास) पर इस समय भानु चन्द्रवशी राजा श्रेष्ठ ढग से शासन करता है । उसका बल और तेज अपार है । उसके यहाँ हाथी, घोडे और पैदल सेना बहुत है । अपार श्री सम्पन्न करोड पति वैश्य उसके नगर मे बसते है । उसके धर्म और तप का पार नहीं है । उसके सेवकों को किसी बात की इच्छा नहीं है । (सब प्रकार से वैभव सम्पन्न है) उसके चलने से एक लाख सेना चल पडती है और वह अपने खड्ग-बल से खूनी शत्रु को भगा देता है । ऐसा वर यादव-राजा सब गुणों से युक्त है । उसके चित्त और प्रताप की हमेशा वृद्धि होती रहती है ।

तिन-राजन कै मंत्रि, नाम आनद चन्द भर ।
तिन भगिनी चन्द्रिका, व्याह व्याही सु दूरि घर[1] ॥
नैर कोट हिस्सार, तास खित्रीय प्रथम बर ।
अति सु प्रीति नर नारि, सुक्ख अनुभवै डाह पर ॥
कोइक्क दिवस भरतार वहि, तुच्छ दीह परलाक गत ।
आनई बहिनी फिर अप्प गृह,अति सु दुक्ख निसिदिन करत ॥ ७४ ॥

प्रा० पा० १ का०, पा० ।

शब्दार्थः—तिन राजन के=उस राजा के । भर=वीर । व्याह व्याही सु=उसे व्याही । दूरि-घर= दूर देश में । हिस्सार=हीसार । तास=जो । खित्रीय=खत्री जाती में । प्रथम=प्रमुख । दीह-पर= प्रतिदिन,हमेशा । को इक्क=कोई, किसी । भरतार=पति । वहि=वह । तुच्छदीह=कुछ ही दिनों में, तुच्छ वय में । आनई=ले आया ।

अर्थः—उस राजा के वीर मन्त्री आनन्दचन्द की वहिन चन्द्रिका का विवाह दूर देश नैर कोट हिसार में किया गया था । उसका पति खत्रियों में प्रमुख था । दम्पत्ति में विशेष प्रेम था । प्रति दिन वे सुख का अनुभव करते थे । कुछ ही दिनों बाद चन्द्रिका का पति स्वर्ग लोक सिधार गया । तब मन्त्री आनन्दचन्द अपनी वहन को अपने घर ले आया और वहिन के विधवा हो जाने से वह रात-दिन दुःखी रहने लगा ।

दोहा

अति प्रवीन विद्या लहन, गान तान सुभ साज ।
केइक दिन अतर वहिग, गइ अंतवर राज ॥ ७५ ॥

शब्दार्थः—लहन=लेने, प्राप्त करने, अध्ययन में । वहिग=बीतने पर । अंतेवर-राज=राजा के अंतहपुर में ।

अर्थः—उसकी बहिन चन्द्रिका विद्या में अति प्रवीण और अच्छे साजवाज के साथ (श्रेष्ठ वाद्यों पर) लय से गाने वाली थी । कुछ दिन बीतने पर वह राजा के अंतःपुर मे आई ।

तिन संगह ससिव्रत्त सुअ, पढन विद्य सुभ काज ।
देखि[1] कुवरि अद्भुत अनय, रंजित ह्वै भले लाज ॥ ७६ ॥

प्रा० पा० १, दीं० घ० ।

शब्दार्थ—तिन सगह=उसके साथ, उसके द्वारा। सुत्र=उस। श्रवय=श्रवयव, अग स्वरूप।

अर्थः—उसके द्वारा शशिव्रत्ता का विद्याध्ययन प्रारम्भ हुआ। चन्द्रिका, कुमारी के अद्भुत स्वरूप को देखकर प्रसन्न हुई और विशेष सकोच मे पड गई (योग्य वर सोचकर सकोच पूर्वक आपका परिचय देने का विचार किया)।

कवित्त

जब खित्रिनी चंद्रिका, कहै गुन नित चहुवान।
जेस पराक्रम राज, तेइ बरने दिन मान॥
राज कुंअरि जब सुनै, तबै उब्भरै रोम तन।
फिरि पुच्छै ससिवृत्त, सद्दि एकत मत[1] गुन॥
जे जे सु पराक्रम राजकिय, सोइ कहै खित्रिनि समथ।
श्रोतान राग लग्यौ उअर, तो वृत लीनौ[2] सुकथ॥७७॥

म्रा० पा० १, पा० घ०। २ का० पा०।

शब्दार्थ—खित्रिनी=खत्राणी, वैश्य जाति में खत्री गौत्र की। जेस=जैसा। पराक्रम=पुरुषार्थ। तेइ=तैसा। दिनमान=प्रत्येक दिन, हमेशा। उब्भरै=उठते। फिरि=बार २। सद्दि=बुलाकर। मत=मत्रणा। समथ=समस्त या कार्य साधने में विशेष साहस रखने वाली। उअर=हृदय।

अर्थ—चन्द्रिका ने आपके गुण उसे (कुमारी को) बताये और जैसा आपका पुरुषार्थ है वैसा ही वर्णन वह सदैव कुमारी के समक्ष करने लगी। जब आपके शौर्य-वर्णन को कुमारी सुनती तब उसका शरीर रोमाञ्चित हो जाता और वह (शशिव्रत्ता) उससे बार २ आपके विषय में पूछती तथा एकान्त मे चन्द्रिका को बुला कर मत्रणा करती। वह खत्राणी आपके समस्त पराक्रम का वर्णन सुनाया करती, उसी से कुमारी को श्रोतानुराग हुआ, और आपकी सुन्दर ख्याति को सुनकर ही उसने आपको वरण करने का व्रत लिया।

दोहा

यों वरक्ख दुअ वित्ति गय, भइय वैस वर उच।
तब कामन सु कलेव सुर करे सेव सुचि सच॥७८॥

शब्दार्थः—वरक्ख=वर्ष। वैस=वय, आयु। उच=बड़ी। कामन=कामिनी, सुन्दरी। कलेव-सुर=केलवेश्वर शिव। सुचि=शुचि, पवित्रता। सच=सचय।

अर्थः—इस प्रकार दो वर्ष बीतने पर जब वह बड़ी हुई तब वह (शशिवृता) पवित्रता का संचय कर (बाह्य और अतर से शुद्ध हो) केलवेश्वर शिव की उपासना करने लगी।

हर सेवा नित प्रति करै, मन वाचा[1] क्रम बंध।
वर चहुआन सु कामना, सेवा ईस सुगंध ॥ ७६ ॥

प्रा० पा० १, पा०।

शब्दार्थः—बंध=बँधी हुई। वर=पति। कामना=चाह, इच्छा।

अर्थः—हे चाहुआन नरेश (पृथ्वीराज)! आपको पति रूप में प्राप्त करने की इच्छा से वह (कुमारी) मनसा, वाचा, और कर्मणा से शिवकी सेवा सदैव करने लगी और सेवा में केवल सुगंधित पदार्थ ही भेंट करती थीं (पत्र पुष्प ही भेंट कर श्रद्धा से ही सतुष्ट करती थी)।

कवित्त

कहै हंस सुनि राज, करौं व्रनन सु कह्यौ गुर।
दिवस च्यारि[1] प्रज्जत, ओं-णमो[2] सरन लहो पर॥
सेवत नितप्रति ईस, मास पचह वित्तय[3] वर।
एक सुदिन सिव सिवा, वचन सपुट लग्गो कर॥
देवाधिदेव सुनि ईस वर, करिसुचित्त कूंअरि सू व्रत।
प्रारथ्थ[4] सु डमाली[5] सरस, परसंसा[6] गवरी करत॥ ८० ॥

प्रा० पा० १, ३ घ०। ४, ६ पा० घ० भीं। २, ५ स०।

शब्दार्थः—गुर=गुरु। च्यारि=चार। प्रज्जंत=पर्यंत। ओं-णमो=ॐ नमो। संपुट=जोड़े। सुचित्त=सूचित, या सचेत। प्रारथ्थ=प्रार्थना। परससा=प्रशंसा।

अर्थः—हंस (दूत) कहने लगा — हे नरेश्वर! कुमारी की शिवोपासना के विषय में जैसा मेरे गुरु ने मुझसे कहा, वही बात आपसे कहता हूँ। राज कुमारी (शशिव्रता) ने चारदिन तक ॐ नम (शिवाय) मंत्र की शरण ली (ॐ नम शिवाय रटती रही) निरंतर शिव की सेवा करते हुए जब उसे पाँच मास व्यतीत होगये तब पार्वती ने दोनों हाथ जोडकर शिव-शिव उच्चारण किया। उस शब्द को (समाधिस्थित) देवाधिदेव शिव ने सुना, उन्हें सजग देखकर पार्वती ने

कुमारी के व्रत लेने के विषय में सूचित किया और प्रार्थना करती हुई गौरी ने उस कुमारी के व्रत ग्रहण की प्रशंसा की।

दोहा

इह सुनि दस दिन गए-वहि सुनि रहि वचन सुईश।
इक्क[1] सु दिन ससिवृत्त ने, किय द्रढ नेम जगीश ॥ ८१ ॥

गा० पा० १, पा०।

शब्दार्थः—गये-वहि=चले गये, बीत गये। रहि=रह गये, चुप रहे। नेम=नियम, विश्राम। जगीश=जगतपति, शिव।

अर्थः—कुमारी के व्रत की प्रशंसा सुनकर भी शिव चुप रहे। इस प्रकार दस दिन बीत जाने पर एक दिन शशिव्रता ने जगतपति (शिव) का द्रढ नियम (विश्वास) लिया।

वर बरिहों सभरि सुपहु, वियौ पुरुप मुझ भ्रात।
मिलन कियौ[1] हर मास प्रति, भखि वैसनर घात ॥ ८२ ॥

ग्रा० पा० १, पा० का० घ०।

शब्दार्थ—सभरि सु पहु=सभरी नरेश पृथ्वीराज। वियो=अन्य। मुझ=मेरे। मिलन कियौ= मिला लिया। मास-प्रति=एक महिने में। भखि=भक्षण की जा कर। वैसनर=अग्नि। घात=मृत्यु।

अर्थ—उस (कुमारी) ने प्रतिज्ञा की कि मैं सभरी नरेश (पृथ्वीराज) को ही पति रूप में वरण करूँगी, क्योंकि अन्य पुरुप मेरे लिये भाई तुल्य है। यदि शिव ने एक मास मे उन्हें (पृथ्वीराज को) मिला दिया तो ठीक है नहीं तो अग्नि द्वारा भस्म होकर शरीर का त्याग कर दूँगी।

वचन सिवा सिव-वाच दिय, पति पावै चहुआन।
वर प्रमुदिय प्रमथाधिपति, हुअ सुपनतर मान ॥ ८३ ॥

शब्दार्थः—वाच दिय=वचन दिया, वचन कहा। प्रमुदिय=प्रसन्न हुए हैं। प्रमथाधिपति=शिव। सुपनतर=स्वप्न में। मान=मान जा, या अब मेरे वाक्य मानकर शरीर को कष्ट मत दे।

अर्थः—तब शिव के वचनों को पार्वती ने स्वप्न मे कुमारी से कहा—कि पति रूप में तू चाहुवान (पृथ्वीराज) को प्राप्त करेगी। तुझ पर शिव प्रसन्न है। तू मेरे इन वचनों को ध्रुव तुल्य समझना।

कै जानै मन अप्पनौ, कै खित्रिन कै ईस ।
और शिवा सुनि ईस प्रति, किय अस्तुति बर-दीस ॥ ८४ ॥

शब्दार्थ:—कै=या । बर-दीस=वर दिया ।

अर्थ:—इस बात को कुमारी का मन खत्रानी तथा शिव और पार्वती ही जानती हैं। जिसने वर-प्राप्ति के विषय में कुमारी के लिये शिव को स्तुति करके प्रसन्न किया और वर दिया (उसे अन्य कोई नहीं जानता)।

कवित्त

हुअ प्रसन सिव सिवा, बोलि हूँ पठय तुमम्फ प्रति ।
इह-रवनी[1] तुम जोग, चंद-जोसना बान-वृत ।
ज्यों रुकमिनि- हरिदेव, प्रीति अति वढै प्रेम पर[2] ।
इह गुन हंससरूप, नाम दुजराज भनिय वर ॥
बुल्लिय सु पिता कमधज्ज नर, व्याहन पठयौ सु गुर दुज ।
आवै सु भ्रात-जैचद सुत, कमधपुज व्याहन सु कज ॥ ८५ ॥

म्रा० पा० [1], पा० घ० । २ का० ।

शब्दार्थ:—हू=मुझे । पठय=भेजा । इह-रवनी=यह रमणी, वह सुंदरी । जोसना=ज्योत्स्ना ज्योति । बान-वृत्त=व्रत ग्रहण करने वाली । प्रेम-पर=प्रेम करने पर । भ्रात-जैचद=जयचद का भाई वीर चन्द । सु=तश्रुत, सुना है । पुंज=पुंजानी पुजपुत्री शशिव्रत्ता ।

अर्थ:—शिव पार्वती के प्रसन्न होने पर मुझे बुलाया और कुमारी ने तुम्हारे पास सदेश देने के लिये भेजा है। व्रत-ग्रहण करने वाली कुमारी चन्द्र की ज्योति स्वरूपा है। जो तुम्हारे वरण करने योग्य है। हे देव (पृथ्वीराज)! जिस प्रकार कृष्ण और रुक्मणी में प्रेम था वैसा ही उससे प्रेम करने पर आप में और उसमें प्रेम वृद्धि होने की संभावना है। इस प्रकार हम द्विज ने कुमारी के ये सब गुण वर्णन किये, और कहा—उस (कुमारी) के पिता ने अपने पुरोहित को भेजकर कमधज (कन्नौजेश्वर के भाइयों में से वीर चन्द) को कुमारी से विवाह करने के लिये बुलाया है। अत सुना है कन्नौजेश्वर जयचन्द का भाई उस (पुंज पुत्री शशिव्रता) से विवाह के लिये आने वाला है।

दोहा

फिरि राजन यों उच्चरिय, सुनि दुजराज सुजान।
पिता ब्याह क्योकरि रचिय, क्यों प्रोहित पठवान ॥ ८६ ॥

शब्दार्थः—पठवान=पठाया, भेजा।

अर्थ:—राजा (पृथ्वीराज) ने तब कहा —हे पटुद्विज ! ऐसा होते हुए कुमारी के पिता ने क्यों विवाह रचा, और क्यों अन्य को ब्याह ने के लिये बुलाने को पुरोहित भेजा।

कवित्त

कहि दुजेस कल बानि[1], अहो ढिल्ली नरेस सुनि।
देगिग्वरी जद्दव नरेस, रच्चिच बहु भति[2] ब्याह गुनि ॥
अति रचना विधि करिय, तासु गुन कहि न सकों बर।
सखेपक दुज कही, सुनि रु राजन वहै नर ॥
प्रोहित सु हत्थ जदुनाथ लै, पठइय श्रीफल सुदिन धरि।
कनवज्ज दिसा इकमास प्रति, चलि राजन गुर मिलि सुजुरि ॥ ८७ ॥

प्रा० पा० १ पा०। २ घ० का०।

शब्दार्थ—दुजेम=द्विजेश, द्विज, दूत। जद्दव नरेश=यादव राजवशी। गुनि=सोच समझकर। गुन=सोचते हुए। सखेपक=सक्षेप में। राजन=प्रमुख यादवराज। जदुनाथ=यादव नरेश। सुदिन-धरि=विवाह के लिये श्रेष्ठ दिन निश्चित करके। सुजुरि=साथियों सहित, जुटकर [एकत्रित होकर]।

अर्थः—सुन्दर वाणी में तब द्विज कहने लगा —हे दिल्लीश्वर (देवास) के राजवशज उस यादव (पुंज) ने सोच समझकर विशेष ढग से विवाह की रचना की है, जिसके लिये सोचते हुए भी मैं उस रचना का वर्णन नहीं कर सकता। फिर भी सक्षेप में कहता हू। जब यादव राजवशी (पुंज) ने (वीरचद के विषय मे) सुना तो आज्ञा देकर विवाह के लिये श्रेष्ठ दिन निश्चित कर पुरोहित के द्वारा कुमारी के सबध का श्रीफल भेजा। वह पुरोहित एक मास तक चलकर कन्नोज गया और अपने साथियों सहित वहाँ के राजा से मिला।

मिले राज जयचद, सु गुर प्रोहित्त ममत्थ।
पठए जद्दव — नाथ, बम्म श्रीफल सुभ सत्थं ॥

हय साकति सज्जि पंच, सहस इक वस्त्र पटंबर ।
मुत्ति माल जुरि पच, अवर जो वस्त व्याह पर ॥
हेमंग पंच सत लेइ दुल, सुर राजन अग्गै धरिय ।
ते वस्त अनेकं विधि सुबर, रंजि राज अप्पन सुजिय ॥ ८८ ॥

शब्दार्थः—समत्य=सामर्थ्यवान । जद्दव-नाथ=यादव राज वंशी पुज । वस्त=वस्तु । सुम=शुभ, मांगलिक । साकति=जीन । पटंवर=रेशमी वस्त्र । मुत्तिमाल=मोतियों की मालायें । जुरि=जोड़ी । व्याह=विवाह, सम्बन्ध । हेमग=स्वर्णिम मुद्रायें । सत=सौ । दुल-सुर=द्विज देव । अग्गै=आगे, सामने । रंजि=प्रसन्न हुआ ।

अर्थः—वह सामर्थ्यवान राजगुरु पुरोहित, राजा जयचन्द से मिला, और यादव राज वंशी (पुज) ने जो, जो मांगलिक वस्तुएँ श्रीफल के साथ भेजी उन्हें और सजे हुए पॉच घोड़े एक सहस्र रेशमी वस्त्र, पॉच जोड़ी मोतियों की मालायें तथा अन्य सामान जो सम्बन्ध-समय में भेजा जाता हैं वह सब एवं पॉच सौ स्वर्ण मुद्रायें सम्मुख रक्खी। उन त्रिविध मूल्यवान वस्तुओं को देखकर राजा मन से प्रसन्न हुआ।

मिलि प्रोहित जैचन्द, दियौ श्रीफल सु विंद-कर ।
जे पठई वर वस्त, अग्ग लै धरिय राजवर ॥
सोइ श्रीफल कमधज्ज, दियौ सुई अवज पुंज नर ।
अति उछाह मान निय, मिले रस हास परस पर ॥
वोलयौ तब्ब प्रोहित सुवर, अहो राज पगुरन सुनि ।
लै चलै वींद नन करि विलँव, दिन तुच्छै साहौ सु पुनि ॥ ८९ ॥

शब्दार्थः—विंद-कर=वन्दना करके । कमधज्ज=कमधज, वीर चन्द को । अवध=अवधि, लग्न पत्र । पुंज=यादव पुंज, शशिव्रता के पिता । निय=नजदीक, सटकर । राज पुगुन=पगुराज, कन्नौजेश्वर । वींद=दुलहा । दिन-तुच्छै=थोड़े ही दिनों में, निकट ही सा हो=लग्न दिन ।

अर्थः— पुरोहित ने मिल कर कुमारी के सम्बन्ध का श्रीफल वन्दना करके जयचन्द को दिया और जो श्रेष्ठ वस्तुएँ भेजी थी वे भी सब सामने रक्खी। यादव पुन्ज द्वारा श्रीफल और लग्न पत्र जो जयचन्द के यहा भेजा था। वह जयचन्द ने कमधज (वीरचन्द) को बुला कर समर्पित कराया और विशेष हर्ष प्रकट किया। एक दूसरे

से हास्यपूर्वक (सम्बन्धियों में व्यग वाक्य कहे जाते हैं उस ढंग से) गले मिले। तब पुरोहित ने कहा—हे पगुराज (कन्नौजेश्वर)! दुल्हे को लेकर चलिये, इसमे विलम्ब न कीजिये, क्योंकि लग्न दिन निकट ही आ गया है।

दोहा

हैं प्रसन पहु पगुरै[1], दियौ हुकुम सुअ्र बध।
प्रेरि सथ्थ जब अप्प पर, अति पर घर सुअ्र नध[2] ॥ ६० ॥

मा० पा० १ का० पा० घ०। २ पा०।

शब्दार्थः—सुअ्र–उस। बंध=बंधु, भाई को। प्रेरि=बुलालो। अप्प-पर=अपने और पराये। सुअ्र=उसे। नध=नोधकर, सोचकर, विचार कर।

अर्थः—प्रसन्न होकर पगुराज (जयचन्द) ने अपने भाइयों मे से उस वीरचद को आज्ञा दी कि पराये घर (कन्या के पिता) की स्थिति को देख कर अपने और परायों को साथ में ले जाने को बुलालो।

सजि सेन चतुरग वर[1], देवगिरि कज व्याह।
अति अगनित सथ द्रव्य लिय, नर उच्छव करनाह ॥ ६१ ॥

मा० पा० १ पा० का० घ०।

शब्दार्थः—कज-व्याह=विवाह के लिये। करनाह=करने को, मनाने को।

अर्थः—फिर देवगिरि नगर (देवास) मे विवाह के लिये जाने को चतुरगिनी सेना सजाई और साथ मे असख्य द्रव्य उत्सव मनाने के लिये लिया।

कह सभरि[1] वर हम सुनि, कहि[2] जहाँ सकेत।
कोन थान हम मिलन है, कहन बीच समेत ॥ ६२ ॥

मा० पा० १, २, पा०।

शब्दार्थः—सकेत=सकेत स्थान, मिलन स्थान।

अर्थः—सभरी नरेश (पृथ्वीराज) ने तब हम से कहा—यादव कुमारी का सकेत (मिलन) स्थान कौनसा है और हम किस स्थान पर उससे मिलें तथा मध्यस्थ कौन होगा? यह सब हमे कहो।

गाथा

कहि इय[1] दुज सकेतं, हो राज्यंद धीर ढीलीसं[2] ।
तेरसि उज्जल माघे, व्याहन वरनीय थान हरसिद्धीं[3] ॥ ६३ ॥

ग्रा० पा०, १, पा०, का०, । २, पा० का० घ० । ३, पा० ।

शब्दार्थः—तेरसि=तेरस, बुलाया । उज्जल=उज्जवल, शुक्ल पक्ष । माघे=माघ । वरनीय=कहा ।

अर्थ—द्विज कहने लगा.-हे धीर वीर दिल्लीश्वर ! माघ मास के शुक्ल पक्ष मे त्रयोदशी को हरसिद्धि नामक स्थान पर वरण करने के लिये आने को कहा है ।

दोहा

तब राजन फिरि उच्चरै, हो 'देवस दुजराज ।
जो सङ्केत सु हम कहिय, सो अक्खौ[1] त्रिय काज ॥ ६४ ॥

ग्रा० पा०, १, पा०, का० घ० ।

शब्दार्थः—देवस=देवास निवासी । अक्खौ=कहो । त्रिय-काज=स्त्री के लिये, कुमारी को ।

अर्थः—तब राजा (पृथ्वीराज) ने कहाः-हे देवास निवासी द्विजराज ! जिस संकेत-स्थान के लिये तुमने हमें कहा है वही स्थान हमारे मिलने का निश्चित है। तुम जाकर यह सब कुमारी से कह देना ।

दस सहस्र हैंवर चढिय, न्रप दिल्ली चहुआन ।
हुकम सदि साहन कियौ, दै सूरनि[1] विलहांन ॥ ६५ ॥

ग्रा० पा० १, पा० ।

शब्दार्थः—हैंवर चढिय=अश्वारोही वीर घोड़ों पर चढे । सदि=बुलाकर । साहन=साहनी, हय-शाला के अधिकारी । सूरनि=बहादूरों को । विलहान=विलहने, (वे घोड़े जो खासाहय शाला से प्रमुख वीरों को चढ़ने के लिये दिये जाते थे ।)

अर्थः—दिल्लीश्वर चाहुवान (पृथ्वीराज) दस सहस्र अश्वारोहियों को लेकर चलने लगा और हयशाला के अधिकारी को बुलाकर आज्ञा दी कि वीरों को विलहने (खासा घोडे) चढने को दो ।

अगम-निरागम जानि कै, चलि न्रप सुक्रह वार[1] ।
माह वद्दि पचमि दिवस, चढि चल्लिय[2] तुक्खार[3] ॥ ६६ ॥

ग्रा० पा० १, २, पा० का० । ३, संशोधित ।

शब्दार्थ—गगम-निरागम=गमनागमन । जानिके=सोचकर, मुहूर्त दिखाकर । माह=माघ । बदि=विद, कृष्णा । तुक्खार=घोड़े पर ।

अर्थः—इसके बाद गमनागमन का मुहूर्त दिखाकर माघ कृष्णा पंचमी शुक्रवार को राजा (पृथ्वीराज) घोड़े पर चढ़कर रवाना हुआ ।

> चढ़ि चलिय प्रथिराज बर, देवगिरि धर राज ।
> तब सु कन्ह बरदाय बर, पुच्छिय बिगति[1] सु काज ।। ६७ ।।

प्रा० पा० १, पा० भीं० ।

शब्दार्थः—विगत-सु-काज=कार्य की विगत, कार्य का ब्यौरा, विषय ।

अर्थः—राजा पृथ्वीराज, देवगिरि (देवास) के भू भाग की ओर चढ़ चला, तब काका कन्ह ने चन्द बरदाई से चढ़ाई किस लिये की गई, इस विषय मे पूछा ।

> कहत कन्ह बरदायबर, अहो राज-सुभ-मानि ।
> कहो पधान सज्ज्यो कहा, सो हम कहो प्रमान ।। ६८ ।।

शब्दार्थः—राज-सुभ-मानि=राजा का शुभ मनाने वाले, राजा के शुभ चिंतक । पधान=पृथ्वीराज । प्रमान=सोचकर, स्पष्ट ।

अर्थः—कन्ह ने कहा -हे राजा के शुभ चिंतक बरदाई (कविचन्द) ! पृथ्वीराज ने किस पर चढ़ाई की है, इस बात को हमें स्पष्ट बताओ ।

> चढत राज पृथिराज, सगुन भैभीत उपन्नौ ।
> स्याम अंग तन छिद्र, कलस समुह[1] सपन्नौ ।।
> रत्त वस्त्र आरुह्य, रत्त तिलकावलि छुट्टिय ।
> मुकत माल छुट्टिय बिसाल[2], केस छुट्टिय कस टुट्टिय[3] ।।
> लुट्टिय अनग भयभीत गति, मन अलुभ्भ निद्रा असति ।
> बिभ्भाइ भाइ उनमोद पति, मद मद सक्रति हसति ।। ६९ ।।

मा० पा० १, पा० का० भीं० । २, पा० । ३, दे० ।

शब्दार्थ—भैभीत=भयानक । उपन्नौ=हुआ । समुह=सामने । सपन्नो=मिला । रत्त=रक्त, गरवा । आरुह्य=पहने हुए । छुट्टिय=छूट रही थी, छटा दे रही थी । छुट्टिय=छूटी हुई, टूटी हुई । तुट्टिय=

तूटी। लुट्टिय। धनग=काम क्रीड़ा से श्रमित। गति=दशा। अलुम्भ=अलुब्ध, अप्रसन्न। असति अलसित। विम्भाई=विभाव। भाइ=भाव। उनमोद=अनुमोदन। सकति=सिकुड़ती, संकुचित होती हुई

अर्थ:—उसी समय विदा होते ही राजा पृथ्वीराज को भयानक शकुन हुआ। ए स्त्री सामने मिली जिसके सिर पर कृष्ण वर्ण का सच्छिद्र कुंभ (काली हांडी) था उस स्त्री के वस्त्र रक्त वर्ण के थे और तिलक भी रक्त वर्ण का था। वह टूटी हु मोतियों की लड़ी माला पहने हुए थी। उसके सिर के बाल खुले हुए थे। कंचुक की कसें टूटी हुई थीं। उसकी दशा काम-क्रीड़ा से श्रमित और भयातुर थी। व मन से अप्रसन्न, निद्रित तथा अलसित अवस्था में थी। भाव-विभावों द्वारा अ पति का अनुमोदन करती हुई सकुचाती और मंद २ हँसती हुई दिखाई देती थी।

दोहा

पाछे वीर सगुन्न भय, ते कहंत कविचंद।
कै दंदय[1] गुन उप्पजै, के नवीन ग्रह दंद ॥१००॥

प्रा० पा० १, पा० का० भीं०।

शब्दार्थ:—पाछे=पीछे, पश्चात्। के=या, अथवा। दंदय=युद्ध। गुन=फल उप्पजै=होगा। दंद=कलह।

अर्थ:—पश्चात् वीरतापूर्ण शकुन हुए। उन्हें देखकर कवि चन्द ने कहा—या तो इस युद्ध से फल की प्राप्ति होगी अथवा इससे घर में नया कलह छिड़ेगा।

कवित्त

सीस डुल्लि[1] कविचंद, चित्त अदेह उपन्नौ।
पुव्व वैर चहुआन, वैर कमधज्ज दिपन्नौ॥
सबर जोर संग्राम, निबर अगम्यौ न जाइय।
को जम हथ्थ पसारि, लेय[2] ग्रह आप बुलाइय॥
मडाय पेट डकिन सरसि, कोन वाह सायर तिरै।
अप सगुन जानि चहुआन चलि, दैचि-थान निम्मित[3] करै॥१०१॥

प्रा० पा० १ दे०। २, ३ भीं० घ०।

शब्दार्थ:—डुलि=डुलाया, हिलाया। अदेह=संदेह, शंका। पुब्ब=पूर्व, पहले से। दिपन्नौ=उद्दिप्त हुआ, वृद्धि को प्राप्त हुआ। सबर=सबल। जोर=जोड़ी, समानता। निबर=निर्बल। अगम्यो=अपनाना, समानता करना। मडाय=मांडे, सामने करे, हाथ फिराये। डंकिन=डायनी, पिशाचिनी। सरसि=से। बाह=बाहें, हाथ। सायर=समुद्र। अपसगुन=अपशकुन। देवि–धान=देवी का ध्यान। निम्मित=निमित्त, लिये।

अर्थ:—अप शकुन से चित्त में सशंक हो कविचद ने सिर हिलाया और कहने लगा.— चाहुवान राजा (पृथ्वीराज) की कमधज (जयचन्द) के साथ पहले से ही शत्रुता है फिर इस कलह के कारण वह और भी बढ जायगी। सबल शत्रु की समानता सबल ही कर पाता है। निर्बल उनका सामना नहीं कर सकते वह मूर्ख है जो बलवान को छेड़ता है। यमराज को हाथ फैलाकर कौन अपने गृह पर बुलायेगा ? डायन को पेट पर हाथ फेरने को कौन कहेगा ? (वह यों ही कलेजे का भक्षण कर जाती है), समुद्र को अपने हाथों के बल पर कौन पार करेगा ? इन अपशकुनों को जान कर भी पृथ्वीराजने चढाई की है, यह सोच कर उन अप शकुनों की शाति के लिये कविचन्द देवी का ध्यान करने लगा।

बेस मद्द बलमद्द, और बध्यौ सुरतानी।
राज मद्द उनमद्द काम मद्दह परिमानी ॥
अरु अन्नौ श्रौतान, तौन बध्यौ चहुआन ॥
दल बद्दल पावस[1] नरिंद, चल्यौ दच्छिन धरवान ॥
छत्तीस कुली बर बम बिय, चढि पृथीराज नरिंद चलि।
उप वन्न बव बज्जी विषम, थान थान[2] द्रिगपाल हलि ॥ १०२ ॥

पा० पा० १ पा०, घ०। २, का०, भीं०, घ०।

शब्दार्थ:—बेस=आयु जवानी। उनमद्द=उनमत्त। काम=कामदेव, पुरुषार्थ। परिमानी=माना गया। तौन=चोथा, माथा। दच्छिन=दक्षिण दिशा की ओर। धर-वान=भूमिपति। बिय=अन्य। उप=पास। वन्न=वन, अरण्य। बव=बाद्य विशेष। द्रिगपाल=दिगपाल।

अर्थ:—जवानी के, बल के, बादशाह को बंधनमें लेने के कारण और राज एवं कामदेव के मद मे उन्मत्त हुआ चाहुवान राजा (पृथ्वीराज) श्रोतानुरागी होकर (शशिव्रता

के रूप की प्रशंसा सुनकर) माथा कसकर वर्षा-कालीन बादलों के तुल्य सेना सजा कर दक्षिण (दिशा) की ओर चल पड़ा। पृथ्वीराज की चढाई सुनकर छत्तीस ही वंश के क्षत्रिय साथ हो गये। उस अरण्य के समीप भयानक रणवाद्यों के बजने से दिग्पाल अपने २ स्थानों से विचलित हो हिल पडे।

दोहा

इन-अग्गैं कम धज्ज लै, आई संपत्तौ जान[१]।
माघ नवमि त्रवक वजै, चहुआना परिमान ॥ १०३ ॥

मा० पा० १ पा०।

शब्दार्थः—इन-अग्गैं=इनसे पहले, पृथ्वीराज से पूर्व। कमधज्ज=कमधज वीरचंद। संपत्तौ=पहुचा। जान=वरात त्रवक=तासे, बाघ विशेष।

अर्थः—पृथ्वीराज से पूर्व ही, कमधज-वीरचन्द बरात सजाकर देवगिरि (देवास) पहुँच गया। इधर माघ मास की नवमी को चाहुवान राजा (पृथ्वीराज) के भी वहाँ (देवास) पहुँचने से बाजे बजने लगे।

वाल प्रान कढ्ढत सु फुणि[१], सगुन एक मन मान।
वढि अवाज चहुआन की, अली सुन्यौ अपुकान[२] ॥ १०४ ॥

मा० पा० १, २, दे०।

शब्दार्थः—वाल=वाला, शशिव्रता। मनमान=मन माना, मनोइच्छित। वढि अवाज=शोरगुल। अप्प=अपने।

अर्थः—वीरचद के आगमन पर वाला (शशिव्रता) ने अपने प्राण त्यागना निश्चित किया, उसी समय मनवांछित शकुन उसको हुए और चाहुवान राजा (पृथ्वीराज) के आगमन का भी शोरगुल उसके कानों पर पडा।

यों सु सुनिय नृप भान नैं, पुत्रि प्रलय व्रत-कीन।
चर छिप्पय[१] चहुआन पै, जहत्र मोकलि[२] दीन ॥१०५॥

मा० पा० १ का०। २ पा० घ०।

शब्दार्थः—प्रलय-व्रत=प्राण त्याग ने की प्रतिज्ञा। चर=दूत। छिप्पय=विप्र गुप्त। मोकलिदीन=भेज दिया।

अर्थः—यादव राजा भान ने सुना कि कुमारी शशीव्रता ने (यदि उसको वीरचन्द से विवाह करने के लिये बाध्य किया तो) प्राण त्यागना निश्चित किया है। तब उसने चाहुवान राजा के पास गुप्त रूप से दूत भेज दिया।

मुक्काए मति वंतिनी, नृप कग्गद दै हथ्थ ।
पूजा मिसि बाला सुभर, संभु थान मिलि तथ्थ ॥१०६॥

शब्दार्थः—मुक्काए=भेजा। तथ्थ=तहाँ पर।

अर्थः—उस दूत द्वारा यादव राजा के पत्र के साथ २ बुद्धिमति शशिव्रता ने भी संदेश भेजा कि पूजा के बहाने शिव-मदिर में आकर मैं आपसे मिलूगी।

कवित्त

हय गय दल चतुरग, कक मड्यौनि कन्ह सिर ।
राजद्दव वग्गरी, राम रघुवस जुद्ध जुर ॥
निड्डुर रा-रट्ठौर, सेन सज्जै भ्रत रज्जै ।
एक एक सपज्ज, एक एकह[1] गुन लज्जै ॥
जुग्गिनि डहकि बब्बरि लसय[2], जिम जिम शकर सिर धुनिय ।
अततताइ उत्त उत्तंग वर, बावारो सारह सुनिय ॥१०७॥

प्रा० पा० १, २, पा०।

शब्दार्थः—कक=युद्ध, युद्धभार। मंड्योति=मँडदिया, दे दिया, सोंप दिया। कन्ह सिर=कन्ह के सिर पर, कन्ह को। रा जद्दव=जामराय यादव। जुद्ध जुर=युद्ध में भिड़ पड़ने वाला। भ्रत=भ्रत्य, सेवक, साथी। सपज्ज=मप, मेल। एक-एकह=एक के जैसी ही दूसरे में, साम्य रूप मे। लज्जै=लज्जा। डहकि=डह डहाना, हुंकार करना। बब्बरि=बब, वाद्य विशेष। बावारो=पृथ्वीराज के बड़े बाप का पुत्र, गोविन्द राज चाहुआन। सारह=सार, लोहा।

अर्थः—हाथी-घोडों और चतुरगिनि सेना को सजाकर युद्ध का भार कन्ह को सौंपा गया। उसकी सहायता के लिये जामदेव यादव, देवराज वग्गरी, युद्ध मे अड़ पडने वाला रघुवशी रामराय, और निडडुरराय राष्ट्रवर अपनी २ सेना और साथियों सहित सुसज्जित हो सुशोभित हुए। वे सब एक दूसरे से मेल रखने वाले तथा गुण और लज्जा में साम्य रखने वाले थे। उसी समय योगिनियाँ हुंकार करने

लगी, बब (वाद्य) बजने लगा, शिव प्रसन्न होकर मस्तक को हिलाने लगे । सर्व प्रथम वहाँ उन्नत वीर अत्ताताई और गोविन्द राज (चहुआन) का लोहा बजता हुआ सुनाई दिया ।

गाथा

सार प्रहारति भेवो, देवो देवत्त जुद्धयौ बलयं ।
गध्रव्वी प्रति ब्याहं, सा ब्याह सूर कलयामी[१] ॥ १०८ ॥

ग्रा० पा० १ पा० घ० ।

शब्दार्थ—भेवो=भेद युक्त, भ्रमदायक । जुद्धयो-बलयं=युद्ध शक्ति गंध्रव्वी=गंधर्व । सूर=शूरवीर । कलयामी=सुन्दर ।

अर्थ:—उनका खड्ग प्रहार भ्रम दायक था । उनकी युद्ध-शक्ति देव-तुल्य थी (यह सब विवाह के निमित्त हो रहा था) अतः गधर्व विवाह ही वीरों के लिये सुन्दर विवाह माना गया है ।

कवित्त

सेन[१] सद्धि संमुहिय, भान आवाज राज सुनि ।
प्रान लद्धि जो मद्धि, लाज लभ्भी जु सूर-धुनि ॥
प्रिय बिरहिनि रिधि रंक, ध्यांन लभ्भै जोगिन्दं ।
बलह काम कलहत, किकह विश्वासन इंदं ॥
सभरिय कान संभरि नृपति, बीरचंद आगम विषम ।
निहकाल काल भजन गढै, बढै सार सारह विभ्रम ॥ १०९ ॥

ग्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थ—समुहिय=समुहाया । लद्धि=प्राप्त किये । मद्धि=शरीर के मध्य । लभ्भी=प्राप्त की । सूर-धुनि=वीर ध्वनि, वीर घोष । प्रिय-बिरहिनी=प्यारी वियोगिनी शशिव्रता । रिधि=रिद्धि । लभ्भे=पाये । जोगिन्दं=योगिन्द, शिव । बलह=बलवान । कलहत=कलह स्वरूप । किकह=कितने ही कहने लगे । विश्वासत=विश्वास पूर्वक । इन्दं=इन्द्र । निहकाल=निष्काल, काल रहित, मृत्यु रहित । भजन-गढै=दुर्गों का नाशक, दुर्गों को ढहा देने वाला । बढै=बढाया, मिलाया । विभ्रम=भ्रांति दायक ।

अर्थः—सेना सजाकर सामना करने के लिये पृथ्वीराज को तय्यार सुनकर यादव राजा भान के मन और शरीर को शांति मिली। उसकी वीर-ध्वनि सुनकर उसको अपनी लज्जा की रक्षा का भी विश्वास हुआ। पृथ्वीराज की प्रिया-वियोगिनी (कुमारी शशिव्रता) जो रंक तुल्य थी। वह पृथ्वीराज के आने पर रिद्धि रूप होगई (स श्रृंगार, आश्रितों के लिये उदार बन गई)। उसने ध्यान में स्वय शिव को प्राप्तकर लिया। उस समय वह बलवान राजा (पृथ्वीराज) किसी की दृष्टि मे काम के समान किसी की दृष्टि मे कलह-स्वरूप और किसी की दृष्टि मे इन्द्र तुल्य दिखाई पड़ा। उस सभरी नरेश्वर का विषम ढंग से आना वीरचन्द ने भी सुना। अत जिनकी मृत्यु कभी सभव नहीं ऐसे वीरों का भी वह काल-स्वरूपी पृथ्वीराज शत्रुओं के दुर्गों को ढहाने वाला था। उसने लोहे से लोहा बजा कर यकायक वहाँ भ्राति पैदा करदी।

दोहा

सार धार पूजै नहै, खिति सामतन नाथ।
अवृत बीर क्यों पूजई, दैव दैवतह साथ ॥११०॥

शब्दार्थः—सार-धार=शस्त्रधारा, शस्त्र प्रहार। पूजै नहै=नहीं पहुँचते, समानता नहीं कर सकते। खिति=क्षिति, पृथ्वी। अवृत=अड़कर, भिड़कर। बीर=वीर चन्द। पूजई=पहुँचेगा, सफल होगा।

अर्थः—सामतों के स्वामी (पृथ्वीराज) की लोह-धारा (शस्त्र प्रहार) की समानता पृथ्वी पर कौन कर सकता है? क्योंकि उसके सब साथी श्रेष्ठ देवताओ तुल्य हैं। तब वीरचद उससे लड़कर कैसे सफलता प्राप्त कर सकेगा?

गाथा

दुअ वस अस[1] सरिसं, बज्र बाहु बज्रयो[2] बलय।
बज्र द्रष्टिति रिष्ट, सा निष्ट अष्टयो कुलय[3] ॥१११॥

प्रा० पा० १, र्भा। २, घ०। ३, पा०।

शब्दार्थः—अस=अश, तेज। द्रष्टिति=द्रष्टि। रिष्ट=अरिष्ट। सा=वह। निष्ट=नष्टकारी। अष्टयो-कुलय= अष्ट कुली पहाड़।

अर्थः—दोनों (पृथ्वीराज और वीरचद) वश और तेज मे समान ही हैं तथा वज्राङ्ग और वज्र तुल्य बाहुबल रखने वाले हैं। एव दोनो की अरिष्टकारी अष्ट कुली पहाड़ों को ढहा देने वाली, समान वज्र दृष्टि है।

कवित्त

अति प्रचंड बलवड, वैर वाहरु तताइय[1] ।
माया हीन मसद, दद दारुन डर नाइय ॥
दल दुदन सिंधु रहि, बाहु दंतन उखारहि ।
एक एक सग्रहे, एक शस्त्रन[2] करि मारहि[3] ॥
दैवत्त वाह दैवत्त भर, देवग्गिरि सम्हो चलिय ।
बर वीर धीर साधन सकल, अकल महूरति मति कलिय ॥ ११२ ॥

प्रा० पा० १ घ० पा० । २ पा० । ३ भौं० ।

शब्दार्थः—वैर=शत्रुता, बदला । वाहरु=सहायता करना । तताइय=तेज आतुर । माया=मोह, प्रपच, कलक । हीन=रहित । मसद=मसनद, गद्दी, सिंहासन । दद=द्वद युद्ध । दारुन=दारुण, भयानक । डरनाइय=डर नहीं, निर्भय । दु दन=द्वदन, भिड़ने वाला । सिंधुरहि=हाथियों से । संग्रहै=पकड़ने वाला । वाह=वाहु, भुजा । संम्हौ=सामने, ओर । अकल=गुप्त । महूरति=मुहूर्त मनेच्छा । कलिय=कलि, सुन्दर ।

अर्थः—(फिर भी) पृथ्वीराज विशेष बलवान था जो बदला लेने और सहायता करने के लिये आतुर रहता था । जिसका सिंहासन माया (कलक) से रहित था । जो युद्ध में भयानक और निर्भय था । सेना में हाथियों से लड़कर उनके दांतों को अपने हाथों से वह उखेड़ लेता था । एक को धरपकड़ता था, तो दूसरे को शस्त्र प्रहार द्वारा काट देता था ऐसा वह देव तुल्य भुजाओं वाला (पृथ्वीराज) और सामत भी जिसके देव तुल्य हैं, देवगिरि की ओर बढा । उस श्रेष्ठ धीर वीर (पृथ्वीराज) के सब साधन और मति श्रेष्ठ होते हुए भी उसकी मनेच्छा गुप्त थी ।

दोहा

अकल वीर रस अकल[1] भुज, कलि-न जाहि सामत ।
भीम भयानक वल सु वृत, जे भजे गज दत ॥११३॥

प्रा० पा० १, सर्वप्रति ।

शब्दार्थ—अकल=बेचैन करने वाला । कलि-न=कल नहीं पड़ती, चैन नहीं पड़ती । वृत=प्रतिज्ञा ।

अर्थ—जिस (पृथ्वीराज) की वीरता और भुजायें शत्रुओं को बेचैन करने वाली हैं, जिसके सामन्तों को युद्ध किये बिना चैन नहीं पड़ती है, जिसका वज्र प्रतिज्ञा

तथा जिसकी भयानकता भीम के समान है। जो हाथियों के दांतों को तोड़ देने वाला है।

लभ्भै-जस लिख्खीय बर, दैवजोग नह हथ्थ ।
पुव्व-दई पृथिराज कौ, सोइ प्रनमन समरथ्थ ॥११४॥

शब्दार्थ:—लभ्भै-जस=यश लाभ, यश की प्राप्ति। देवजोग=दैवयोग, देवाधीन। नह हथ्थ=हाथ में नहीं, हाथ की बात नहीं पुब्ब-दई=पहले से ही देदी। सोइ=वह।

अर्थ:—(विधाता ने) लिखने वाले ने जिसकी भाल-स्थली पर यश प्राप्ति लिख दी है उसी को वह प्राप्त होती है। यह बात देवाधीन है-हाथ की बात नहीं। वह यश-प्राप्ति पहले से ही ईश्वर ने पृथ्वीराज को देदी। इसीलिये वह प्रण से और मन से सामर्थ्यवान है।

चहुआना[1] कै कृतस यन, मरन सरन प्रथिराज ।
उभै सिंघ दुअ बीच पल, उभै सिंघ सिरताज ॥११५॥

1 प्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थ:—कृतस=कार्य, चरित्र। यन=ऐसे। मरन=मृत्य। उभै=खड़े, डटे हुए। पल=मांस।

अर्थ:—चाहुवान राजा पृथ्वीराज के ऐसे कार्य थे कि मृत्यु भी (आपत्ति पडने पर) उसकी शरण लेना चाहती थी। उस समय देवगिरि के पास डटे हुए पृथ्वीराज और वीर चन्द इस प्रकार दिखाई देते थे मानों सिंहों के सिरताज दो सिंह खडे हो और उनके बीच में उनका भक्ष्य (मास) हो।

गाथा

घटिका उभय सु देवो, रहियं निकट राजन ग्राम ।
जानिज्जै नृप नैर, दिक्खन-काजैव सोभिय नैन ॥११६॥

शब्दार्थ:—जानिज्जै=मानो। नृपनैर=यादव राजा का नगर, देवगिरि, (देवास)। दिक्खन-काजैव=देखने के लिये।

अर्थ:—वह देव तुल्य राजा (पृथ्वीराज) दो घडी तक देवगिरि के निकट खडा रहा। उस समय यादव राजा का वह नगर ऐसी शोभा पा रहा था मानों पृथ्वीराज को देखने के लिये आँखें खोल रहा हो।

दोहा

रंध्र गवक्खनि नैर मधि, जारिन चिंत प्रमान ।
मानहु नृप प्रथिराजको, रध्र नैन प्रत प्रान ॥ ११७ ॥

शब्दार्थः—रध्र=छेद । गवख्खनि=गवाक्ष, झरोखे । नैर=नग्र । चिंत=देखकर । प्रमान=अनुमान, ज्ञान । रध्र नैन=रध्रों से लगे हुए नैत्र । प्रत=प्रत्येक के, या पहुँच रहे हैं ।

अर्थः—नगर के गवाक्ष (झरोखे) और जालियों के रध्रों (छेदों) को देखने से यही अनुमान होता था कि मानों उन रंध्रों से लगे हुए जिन (सुन्दरियों) के नैत्र थे उन सबके प्राण उन (रध्रों) के द्वारा पृथ्वीराज के पास पहुँच रहे हों (समर्पित ही रहे हों) ।

कवित्त

दुहूं पास नृप नयर, राज दिक्खै प्रति राजं ।
मनों हथ्थ बर नयर, राज समुह प्रति साज ॥
कोट कठिन मेखल सु, रंध्र[1] द्रिग पलक उघारिय ।
राज कीत्ति सभरन, गोख श्रवनन सभारिय ॥
किंकिनि सु पाइ घुघुर सु गज, राज निसान सवद्द प्रति ।
चहुआन राव आगम सुव्रत, कम्मल हीय बढ्ढिय सुरति[2] ॥ ११८ ॥

ग्रा० पा० १ सर्वप्रति । २ पा० का० भीं ।

शब्दार्थः—दिक्खे=देखने लगे । कोट=दिवाल । मेखल=मेखला, किंकिनी । रध्र=गवाक्षादि के छिद्र । गोख=गवाक्ष, झरोखे । सवद्द प्रति=राजा के प्रति स्वर, समान स्वर । सुव्रत=श्रेष्ठ है जिसका व्रत (श्रेष्ठ व्रत वाली शशिव्रता) ।

अर्थः—समीप आने पर राजा पृथ्वीराज की ओर देखते हुए वहाँ के दोनों राजा इस प्रकार मालूम पड़े मानों देवगिरि (देवास) ने स्वागत करने के लिये अपनी दोनों भुजायें बढाई हों और (शहर की) दृढ़ दिवार ही उसकी (देवास की) कटि किंकिनी बनगई हो । गवाक्षादि के रध्र ही (पृथ्वीराज को देखने के लिये) खुले हुए नैत्र हों । गवाक्ष (झरोखे) ही राजा (पृथ्वीराज) का यशगान सुनने को कर्ण बने हों । हाथियों के पैरों मे ध्वनित, घुंघरु द्वारा ही किंकिनी की ध्वनि की हो और राजद्वार पर बजने वाले नक्कारों ने ही स्वागत-स्वर से उसका (पृथ्वीराज का) सम्मान किया हो इस प्रकार चाहुवान राजा का आया हुआ

जानकर श्रेष्ठ व्रत वाली (शशिव्रता) के हृदय-कमल मे पृथ्वीराज के प्रति श्रेष्ठ प्रीति थी, उसमे ओर भी वृद्धि हो गई।

दोहा

काम कलह रत बद्धि प्रति, सुनिय भान नृप कान ।
आनदह दुख उप्पज्यौ, मरन सु निश्चय मान ॥११६॥

शब्दार्थः—काम कलह=कामी, कलही। मरन=मृत्यु।

अर्थः—कामी-कलही राजा (पृथ्वीराज) के प्रति कुमारी के प्रेम की वृद्धि सुनकर राजा भांन को प्रसन्नता ओर दुःख दोनों हुए और उसने निश्चय मान लिया कि अब मृत्यु से सामना करना होगा।

श्लोक

मगलस्य सदा व्याहं, अव्याहं अमंगल अगी[1] ।
ब्रह्मा चकित समो द्रष्टे,कज्जे कज्जसु[2] ककजसि ॥१२०॥

प्रा० पा० १, पा०, घ०। २, का०, घ०।

शब्दार्थः—अगी=आगे जाकर। समो द्रष्टे=देखकर। कज्जेकज्जसु=युद्ध पर युद्ध। ककजसि=किस लिये।

अर्थः—विवाह वही है जो वर वधू के लिये सदा मगल कारी हो। वह विवाह बुरा (खराब) है, जो आगे जाकर उनके लिये अमगलकारी सिद्ध हो। पृथ्वीराज और शशिव्रता के विवाह को देखते हुए ब्रह्मा भी चकित थे और सोचते थे कि इसके कारण युद्ध पर युद्ध किस लिये छिड रहा है। (वास्तव मे यह तो पृथ्वीराज के लिये ही निर्मित की गई है)।

कवित्त

फिरिग पति चिहुपास, सूरउभ्भै[1] चावद्दिसि ।
अतित जुद्ध आवद्ध, मत[2] वरखत वीर असि ॥
और व्याह मगलह, व्याह मगल अधिकारिय ।
परि पिशाच दानव सु बुध्धि,योग[3] मगगह विचारिय ।
नन करहु तात दुख पुत्त कौ, घर लीनौ जम सद्दि कै[4] ।
पृथिराज राज राजन वलिय, को पुज्जै रन वद्दिकैं ॥१२१॥

प्रा० पा० १, भी०, का०, घ०। २, पा० का० घ०। ३, ४, घ०।

शब्दार्थः—पति=पक्ति। चिहुपास=चारों ओर। चावद्दिसी=चारों ओर। अतित=अतीत, आगन्तुक महमान। आवद्ध=वाधा रहित, वे रोक टोक। मत= मतवाले। असि=तलवार। परि= परन्तु, किन्तु। पिशाच=पैशाचिक विवाह। नन=नहीं। जम=यमराज। सद्दिकैं=वुलाकर, निमन्त्रित करके। पुज्जै=पहुचे, मानता करे रन-वद्दिके=युद्धार्थ बुलाकर, रण का निमत्रण देकर।

अर्थः—यादव-राजकुमार (लक्खन) बोला-हे पिता (यादव राज भान) सुनिये। सैन्य-पक्ति और वीर सामन्त नगर के चारों ओर हो गये हैं विना रोक टोक के आये हुए आगन्तुक मेहमान युद्ध करने के लिये उद्यत हैं और उनके मतवाले वीर खड्ग प्रहार करने लगे हैं। जहाँ मागलिक विवाह के अधिकारी जुट जाते हैं वह विवाह मागलिक ही माना जाता है, किन्तु इन्होंने तो पैशाचिक विवाह करना निश्चय कर योग मार्ग प्राप्त करने की सोची है। अत. आप पुत्र की चिन्ता न करें, क्योंकि आपने स्वयम् ही जानबूझ कर यमराज को घर पर निमंत्रित कर लिया है। राजा पृथ्वीराज सब राजाओं मे वलवान है। उसे रण का निमत्रण देकर कौन उसकी समानता कर सकता है?

दोहा

को पुज्जै बद्दत सु रन, वयन सयन प्रथिराज।
अवृत जित्ति जित्तिय सयल, को मंडै कृतकाज ॥१२२॥

शब्दार्थः—बद्दत=वाद, छेड़कर। वयन=अन्य नहीं। सयन=सेनाओं में। अवृत=अड़ता। जित्ति=जितने, जो। जित्तिय=जीत लेता। सयल=सहज ही में। मडै=मँडता, प्राप्त करता। कृतकाज= कृतकार्य, सफलता।

अर्थः—युद्ध का वाद-विवाद छिडने पर उससे समानता कौन कर पाता है, क्योंकि सेनाओं में पृथ्वीराज सा वीर अन्य नहीं देखा गया। उससे जो अड़ता है उसको वह सहज ही मे जीत लेता है उसके आगे युद्ध मे सफलता प्राप्त करना कठिन है।

गाथा

को मडै कृत काज, साज जुद्धाय[1] सूर यो वंन[2]।
तारिज्जै सजि राज, वकिम भूमाइ[3] विपमय होई ॥ १२३ ॥

आ० पा० १ पा० भों। २, ३ पा० का० घ०।

शब्दार्थः—साज=सजने पर। जुद्धाय=युद्ध के लिये। तारिज्जे=उद्धार करिये। बंकिम=वीर। भूमाइ=भूमि, पृथ्वी।

अर्थः—इस युवक वीर (पृथ्वीराज) के युद्धार्थ सजने पर कौन युद्ध मे सफल हो सकता है? अतः हे नरेश्वर! ऐसे के समक्ष सजकर अपनी वीर भूमि का उद्धार करना (रक्षा करना) ही बड़ी बात है।

देवालय भगवती, पूजैव पुंजयो[1] बाल।
सु बर पुछ्यौ पृथिराज, कज[2] ससा बीरयो हथ्थ॥ १२४॥

ग्रा० पा० १ सर्वप्रति। २, भीं।

शब्दार्थः—पूजैव=पूजेगी, या पहुचेगी। पुंजयो-बाल=पुंज कुमारी। पुछ्यौ=पूछेगी, याचना करेगी, मागेगी, उसी के पक्ष में रहेगी। कज=कार्य। सपा=संशय, बाधा। बीरयो=वीरचंद के। हथ्थ=हाथ में।

अर्थः—जब वह पुंजकुमारी (शशिव्रता) भगवती के देवालय पर जाकर भगवती को पूजेगी, तब वह पृथ्वीराज को ही वर-रूप मे मागेगी और इससे स्पष्ट है कि वीरचंद के कार्य मे बाधा पैदा होगी।

दोहा

विखम ठौर बंकिम[1] विखम, कल सोभित वृत कंद।
को[2] पृथिराजह अगमे, मनों प्रथी पुरइंद॥१२५॥

ग्रा० पा० १ घ०। २ पा० का० भीं० घ०।

शब्दार्थः—ठौर-स्थान। बंकिम=बांका। विखम=विषम। कल=सुन्दर। वृत कंद=शत्रु नाशक प्रतिज्ञा। को=कौन। अग में=समानता कर सकता है। पुर इंद=पुरेंद्र, इन्द्र।

अर्थः—जो कठिन स्थान का स्वामी है और जो स्वयं बांका और प्रचण्ड वीर है तथा सुन्दर और सुशोभित है। जिसकी प्रतिज्ञा शत्रु नाशक है ऐसा पृथ्वीराज मानो इन्द्र का साक्षात अवतार है। उसे युद्धार्थ कौन निमंत्रित कर सकता है?

मनो राज पृथमी[1] पुरह, धनि सु ध्रम्म धवलेश[2]।
मानहु वीर—नरिंद कौ, रति आयो अविशेष॥१२६॥

ग्रा० पा० १ का० घ०। २ पा० का०।

शब्दार्थः—प्रथमी=पृथ्वी। धनि=धन्य है। धवलेश=धवल वृषभ। वीर-नरिन्द=वीर रूप धारी राजा। रति=प्रेम। अविशेष=अवशेष।

अर्थः—धन्य है इस नरेश्वर (पृथ्वीराज) को, यह वास्तव में पृथ्वीपर धर्म रूपी धवल वृषभ है और वीर-रूप एव प्रेम का केवल यही अवशेष-स्वरूप धारण करके समक्ष आया हो।

यों करत दुद्दिय[1] वियौ, कथा श्रमन सुनि मत।
जाकौ तें पतिवृत लियौ[3], सो आयो अलि कंत॥ १२७॥

प्रा० पा० १, टी० १,। २, ३, सर्वप्रति।

शब्दार्थ—दुद्दिय=द्वद। वियौ=दोनों (नैत्र और कान)।

अर्थः—इधर शशिव्रता के नैत्र और कान झगड़ने लगे। उसी समय उसके कानों ने शशिव्रता से कहाः—हे कुमारी! जिसका तुमने पतिव्रत गृहण कर रक्खा है वही तेरा पति (पृथ्वीराज) आगया है।

श्रवन नयन का मैल-कै, भन चचल चल चित्त।
श्रोताने दिष्टांन अरु, मिलि पुच्छै दोइ मित्त॥ १२८॥

शब्दार्थः—मेल-कै=मैल कराती हुई। श्रोताने=श्रोतानुराग। दिष्टान=दृष्टानुराग।

अर्थः—फिर वह चचला (कुमारी शशिव्रता) चल चित्त हो (क्या होगा इस दुविधा में पड़ी हुई) अपने कानों और नैत्रों में मेल कराती हुई श्रोतानुराग और दृष्टानुराग का ज्ञान, कर्ण और नैत्रों से पूछकर करने लगी।

नैन श्रवन्नन पूछई, तुम जानौ[1] वहु भति[2]।
मेरेजिय अदेस है, कही नर्मै पिय जति[3]॥१२९॥

प्रा० पा० १, पा०, का०, घ०। २, घ०। ३, पा०।

शब्दार्थः—वहु मति=विशेष प्रकार से। अदेश=शका। कही=किसी अन्य की ओर। नर्मै=नम जायगा। पिय=प्यारा (पृथ्वीराज)। जति=जाय।

अर्थः— शशिव्रता के श्रवणों ने उसके नैत्रों से प्रश्न किया किया कि हे नैत्रों-! हम श्रवण तुमसे इसलिये पूछते हैं कि तुम विशेष जानकारी रखते हो, अत हमें इस बात की शङ्का है कि कहीं प्यारा (पृथ्वीराज) किसी अन्य (सुन्दरी) की ओर तो नहीं झुक जायगा (अन्य सुन्दरी के वश में तो नहीं हो जायगा)।

श्रवनन सन नेना कही, तुम जानौ चहुआन।
काम नृपति कौ रूप धरि, आवत है इन थान ॥१३०॥

शब्दार्थः—इन=इस। थान=स्थान।

अर्थः—श्रवणों के प्रश्न का नैत्रों ने उत्तर दिया—तुम चाहुवान को जानते ही हो, वह (शशिवृता के प्रेमवश) साक्षात कामदेव का स्वरूप धारण करके इस स्थान को आता है।

ताम हस आयो समखि, कह्यो अहो शशिवृत्त।
चाहुआन आयौ प्रछन, मिलन थांन हरसित्त॥ १३१ ॥

शब्दार्थः—ताम=तब, इतने में। हस=हस नामक दूत। समखि=समक्ष। प्रछन=गुप्त रूप से। हरसित्त=हर सिद्धि।

अर्थः—उसी समय हस नामक दूत भी (शशिव्रता के पास) आ पहुँचा। और कहने लगा हे शशिवृता! चाहुवान राजा (पृथ्वीराज) तुम से मिलने को हरसिद्धि नामक स्थान पर आगया है।

कवित्त

घेरि[1] गांम जद्दव नरिंद, सिघ उभ्भै चिहु पास।
पल—नखिय रभा सु, करन आरभ प्रवास॥
एक एक गुन करहि, सब्ब फूले सतपत्त।
तिन मध्यह शशिवृत्त, भई कम्मोदनि मत॥
पित पुच्छि पुच्छि परिवार सव, पुच्छि वध-रज्जन सकल।
आवृत्त तात अग्या सुम्रहि, भईय बाल वुध्या विकल॥ १३२ ॥

मा० पा० १, २ सर्वप्रति।

शब्दार्थः—पल-नखिय=पलकें डाली, दृष्टि डाली। प्रवास=प्रवास, अन्यस्थान को जाने को, युद्ध भूमि में आने को। गुन-करहि=गुणकर, हित चाहने वाले। सव्व=पत्र। सतपत्त=शतपत्र, कमल। कम्मोदनी=कुमोदिनी। मं तं=मान, समान। पित=पिता। वंध-रझत=राजा के बधूवर्ग। श्रावृत्त=बार बार। तात=पिता (बड़े पिता यादवराज मान)। अग्य=आज्ञा। बुध्या=बुद्धि।

अर्थः—यादव राजा के गांव (देवास) को घेर कर सिंह तुल्य वीर (पृथ्वीराज के सामन्त) चारों ओर छा गये हैं। यह देखकर रभा अप्सरा ने युद्ध भूमि में आने को दृष्टि डाली। कुमारी शशिव्रता का मनोरथ सफल होता देखकर, जो शशिव्रता के हित को चाहने वाले थे (स्त्री पुरुष) थे, वे सब कमल के समान विकसित होगये। उनके बीच में शशिव्रता कुमोदिनी सी बनी हुई थी। कमल-पुष्पों के साथ कुमोदिनी नहीं खिलती। अत. वह उदास मुख थी। उसने अपने पिता, परिवार, राजा के बंधु वर्ग आदि से इस विषय मे (हरसिद्धि के स्थान पर जाने को) पूछा और बडे पिता भान की आज्ञा प्राप्त की, उस समय वह बालिका व्याकुल थी और बुद्धि कुंठित थी।

दोहा

विकल बाल जहँ सकल हुअ, बुद्धि विकल प्रति-साज।
तान वचन सच्चै सुकरि, जिन अप्पी प्रथिराज ॥ १३३ ॥

ग्रा० पा० १ टि०।

शब्दार्थ:—प्रति साज=प्रत्येक सजकर, सब तत्पर होकर।

अर्थः—बालिका (शशिव्रता) को विकल देखकर सब विकल होगये और सब यही मनाने लगे कि यादव राजा भान (या तान) ने जो पृथ्वीराज को शशिव्रत्ता अर्पण कर दी है उस बात को ईश्वर सत्य कर बतावे।

गाथा

वीरं चद सु व्याह, सो व्याहं जोगिनी पुरयं।
सभरि क्रन शशिव्रत्त, आगम[1] वीराइ मंजन तनयी[2] ॥ १३४ ॥

ग्रा० पा० १, पा० का०। २, पा०।

शब्दार्थ:—जोगिनी पुरयं=योगिनी पुरेश्वर, दिल्लीश्वर, पृथ्वीराज। संभरि=सँभल कर, सुनकर। क्रन=कान, या किया। मंजन तनयं=शरीर मजन।

अर्थः—वीरचद के बजाय योगिनी पुरेश्वर (दिल्लीश्वर पृथ्वीराज) के साथ विवाह होने का निश्चय और पृथ्वीराज का आना सुनकर शशिव्रता ने शृङ्गार करने के लिये शरीर का मजन किया।

कवित्त

पुच्छि मात पित पुच्छि, पुच्छि परिवार ग्रेह सब ।
मैं वृत लियौ निबद्ध, गवरि पुज्जन बाल जब ॥
तिन थानक सब देव, नीति आरम्भ व्रत लिन्नौ[1] ।
तव प्रसाद उप्पनौ, मोहिं इच्छाव्रत दिन्नौ[2] ॥
तिन काल व्रत्त लिन्नो सु मैं, गवरि प्रसाद सु पुज्ज फल ।
वारज बात तुअ मोह हुअ, कहै और अबलहि अफल ॥१३५॥
प्रा० पा० १, २ पा० ।

शब्दार्थः–पुच्छि=पूछकर । निबद्ध=अबाध्य । नीति=नित, नित्य, हमेशा । पुज्जफल=फल प्राप्ति । वारज=बार, अभी । अबलहि=अबला ।

अर्थः—उस (शशिव्रता) ने माता, पिता परिवार तथा घरवालों से पूछा और कहा—मैं जब बालक थी तब गवरी पूजन का अक्षय व्रत लिया था। यह ऐसा स्थान है जहाँ देवताओं ने भी सदा से शुभ कार्य के आरभ मे व्रत लिया था। आपकी कृपा से मुझे भी व्रतेच्छा हुई है और मैंने भी उसी समय (बचपन मे) व्रत गृहण किया है। और गवरी की कृपा से फल-प्राप्ति का वर मिला है। अगर अभी आप ममत्व-वश वहाँ जाने की आज्ञा नहीं देंगे तो मुझ अबला का व्रत निष्फल कहा जायगा ।

दोहा

दुख देवल कौ छडनह, उर सिंचन-अकूर ।
दीह काल बल वीची बदि, लिय सामान[5] सँपूर ॥१३६॥
प्रा० पा० १, पा० ।

शब्दार्थः–देवल=देवालय । सिंचन-अकूर=प्रेम के अकूर पैदा होना। दीह-काल=दिवस और समय । बल=बलवान । वीचि=बीच में, हृदय में, मन मे । बदि=कहती हुई, मानती हुई । सामान=सामग्री । सँपूर=परिपूर्ण ।

अर्थ· इष्ट-स्थान देवालय को छोड़कर हृदय में प्रेम का अकूर पैदा होने से (पृथ्वीराज के साथ जाने से) स्वजनों के बिछोह का दु ख हुआ, किन्तु मन मे दिवस और समय को बलवान मानती हुई वह (शशिव्रता) सम्पूर्णतः पूजन सामग्री साथ में ले चली।

वाला वेनी छोरि करि, छुट्टै चिहुर[१] सुभाइ।
कनक थभ तें उत्तरी[२], उरग सुता दरसाइ ॥१३७॥

प्रा० पा० १, २, पा० का०।

शब्दार्थः—वेनी=चोटी। छोरिकरि=छोड़दी, खोल दी। छुट्टै=खुले हुए। चिहुर=केश। सुभाइ=शोभित हुई। उरग-सुता=नाग कन्या।

अर्थः—उस बालिका ने अपनी वेणी को खोल दी और खुले हुए केशों के कारण वह ऐसी सुशोभित हुई मानों स्वर्णिम स्तभ पर नाग-कन्यायें (नागिनियां) उतरती हुई शोभा पा रही हो।

कवित्त

तजि भूखन वर वाल, इक्क[१] आचिज्ज उपन्नौ।
लता हेम पर चंद, उभै खजन ढिग चिन्हौ॥
श्रीफल उरज विसाल, वाव वर भ्रङ्ग-सु-पत्ती।
सुक्कि सु तरग अरन्नि, करी भग्गावल-वत्ती[२] ॥
सोभंत उरग पति भुअ शरन, हंस-मुत्ति-चर वर करी।
सुध काज चढ़ै पप्पील सुत, काम-पत्तिनी दुख हरी॥ १३८॥

प्रा० पा० १, २, पा०।

शब्दार्थः—भूखन=भूषण। आचिज्ज=आश्चर्य। उपन्नौ=पैदा हुआ। लताहेम=सुवर्णलता, कनक-लता। उभै=दो। चिन्हौं=देखे गये। वाव=वापी, कुआ। भ्र ग-सु-पत्ती=श्रेष्ठ भ्र ग पक्ति। तरंग=तरगिनी, सरिता। भग्गावल=भागल, अर्गला। उरगपति=सर्प [शेषनाग]। भुअ शरन=पृथ्वी की शरण लेता हुआ, नीचे को झूमता हुआ। हस-मुत्ति-चर=मुक्ता भक्षी हंस। सुध=सीधी, ऊपर। पप्पील=पिपीलिका, चिटियां। काम-पत्तिनी=कामदेव की पत्नी, रति।

अर्थः—उस बालिका (शशिव्रता) ने जब तन मज्जन करने के लिये (स्नानार्थ) आभूषण उतारे तो एक आश्चर्य प्रद बात हुई। उस समय कनक-लता पर स्थित चन्द्रमा के पास ही दो खञ्जन (एक प्रकार की चिड़िया), श्रीफल, श्रेष्ठ वापी, भ्रग पंक्ति, सुकी, सरिता, अर्गला, नीचे को झूमता हुआ सर्प, मुक्ताभक्षी हंस, श्रेष्ठ हाथी और ऊपर को चढ़ती हुई पिपीलिका दिखाई पड़ी, जिससे कामदेव की स्त्री रति दुःख से संकुचित हो डर गई। (कवि ने इसमें रूपकातिशयोक्ति अलंकार के द्वारा केवल उपमान का वर्णन करके उपमेय का बोध कराया है। अतः कनकलता के समान शशिव्रता का गौर वर्ण, पतला शरीर, चन्द्रमा के समान मुख, खंजन के समान नेत्र, श्रीफल के समान उरोज, वापी के समान नाभि, भ्रग पक्ति की भांति भोहें, शुक के समान नासिका, सरिता की तरह त्रिवली, अर्गला के समान दोनों भोहों के बीच की आड (खींची हुई रेखा), नीचे की ओर झूमते हुए सर्प के समान वेणी (चोटी), मुक्ता हारी हंस सा शशिव्रता का प्रेम (या भूषण ध्वनि), श्रेष्ठ हाथी सी चाल और ऊपर की ओर चढ़ती हुई पिपीलिका से नाभि और उरोजों की ओर चढ़ती हुई रोम राजि समझना चाहिये)।

दोहा

ते दासी दस बाल ढिग, तिर बरने कवि चद।
तिन में बाल सु सोभियै, मनों पृथी पुर इद ॥१३९॥

शब्दार्थः—तिर=तारा (तारा मंडल)। पृथीपुर=भूमण्डल पर। इन्द=इन्दु, चन्द्रमा।

अर्थः—उस कुमारी के आस पास जो दस दासियाँ थी, उनके लिये कवि कहता है—वे तारा-मण्डल-तुल्य थी और उनमें वह (बालिका) भूमण्डल पर अवतरित चन्द्रमां के समान सुशोभित थी।

छुटि मृग-मद कैकांन छुटि, छुटिसुगध की वास।
तुग मनों दो तन दियै[२], कचन खभ प्रकास ॥१४०॥

प्रा० पा० १, पा०, भीं०, घ०।

शब्दार्थः—मृग मद=मतवाला मृग जाति का हाथी। कैकांन=घोड़ा, तुरग। छुटि=खुल पड़ा। छुटि=फैलगई। वास=आवास, निवास स्थान। तुग=उर्ज। प्रकाश=प्रकाशवान, चमचमाते।

अर्थ:—(हस्तिशाला से) मतवाला मृग जाति का हाथी या (हयशाला से तेज) अश्व खुल पड़ा हो, इस प्रकार कुमारी (देवालय को जाने को) स्वच्छन्दता पूर्वक चल पड़ी। उसकी तन-सौरभ सारे आवास में फैल गई। शरीर पर दोनों उरोज ऐसे सुशोभित थे मानों चमचमाते स्वर्णिम स्तंभ पर दो तुग (बुर्जे) रच दिये गये हों।

तिमिर बीर गवनं कुवट, त्रिगुन तेज रवि[1] त्रास।
चवनित विक्रम परि-सकी, काम-ज्वाल बल हास॥ १४१ ॥

प्रा० पा० १ भीं।

शब्दार्थ:—बीर=वीर चद। गवन=गमन किया, चल पड़ा। कुवट=राह, बे राह। रवि=रवि, (सूर्य स्वरूपी पृथ्वीराज)। चवनित=चौगुने। परी-सकी=शकित, स शकित हुआ। ह स=परिहास, ह्रास।

अर्थ:—तम-स्वरूपी वीरचद, तिगुन तेजोमय रवि-स्वरूपी (पृथ्वीराज) के डर से राह बेराह चलपड़ा और उस (पृथ्वीराज) के चौगुने पराक्रम के सामने वह सशकित हुआ। उसकी काम ज्वाला तथा बल का ह्रास हो गया।

सजि शृंगार शशिवृत्त तन, चढ़ि चौंडोल सुरग।
पूजन कु वर[1] अंबिका, आई बाल सु-अग॥ १४२ ॥

प्रा० पा० १ घ०।

शब्दार्थ:—चढ़ि=सवार हुई। चौंडोल=चौडोल, पालकी। सुरंग=सुन्दर। अंबिका=देवी। सु-अंग=श्रेष्ठ काय।

अर्थ:—राज कुमारी शशिव्रता शृंगार करके सुन्दरपालकी पर सावार हुई, और वह देवी का पूजन करने के लिये चली (रवाना हो गई)।

सज्जि सेन जद्दव-न्रपति, दसत तीन चौंडोल।
लकरि लाल से-पच अग, दस-दिसि दिक्खन[1] लोल॥ १४३ ॥

प्रा० पा० १ पा० का०।

शब्दार्थ:—जद्दव-नृपति=यादव राजा। दसत तीन=दस और तीन, तेरह, या तीस। लकरि=छड़ी। से-पच=पांचमों। दस-दिसि=दसों दिशाओं में, चारों ओर। दिक्खन=देखते थे। लोल=चपल।

अर्थः—यादव-राजा ने भी कुमारी के जुलूस के लिये सेना सजाकर साथ में कर दी। उसके साथ तेरह (या तीस) पालकियाँ, पाच सौ लाल रग की छड़ी लिये हुए पुरुष, पालकियों के आसपास चलते हुए चारों ओर चपल दृष्टि से इधर उधर देख रहे थे।

अरुनोदय उग्गमह, सथ्थ[1] लिन्नै सु बंध भर।
उभय सहस वाजित्त, ढोल त्रँवक्कि मत्त गुर॥
अद्ध सहस नफ्फेरी, सहस सहनाइ सुरंगी।
सुबर वीर पूजा प्रमान, बाल[2] किन्नी[3] मति चंगी॥
बिनु[4] पुज संग सेना सकल, अकल अपूरब बत्त बर।
चर सकल विकल अलि कुलन कौ, सुचित मित्त इकइ सुथिर॥ १४४॥

प्रा० पा० १ से ४, पा०।

शब्दार्थः—उग्गमह=उगने पर, होने पर। बंध=बंधु। भर=भट, सामंत। वाजित्त=वाजित्र। त्रँवक्कि=तासे। मत्त-गुर=मस्ताने स्वर से बजने वाले। अद्ध-सहस=अर्ध सहस्र। नफ्फेरि=नफेरि, वाद्य विशेष। सहनाइ=शहनाई, वाद्य विशेष। प्रमान=मानकर, सोचकर। चंगी=श्रेष्ठ, उमंग पूर्ण। बिनु=बिना, अतिरिक्त। पुज=शशिव्रता के पिता पुंजराज। अकल=अज्ञात। बत्त=बात, घटना। चर=दूत। अलि कुलिन=शत्रु वंशज शत्रु। सुचित=सूचित करने वाला। मित्त=मित्र, सूर्य। इक्कइ=एकमात्र। सुथिर=सुस्थिर, डटा हुआ।

अर्थः—अरुणोदय होने पर भ्राताओं और सामन्तों को साथ में लिया। तदुपरान्त साथ में दो सहस्त्र बडे २ ढोल, (वाद्य विशेष) तासे आदि बाजे मस्ताने स्वर से बज रहे थे। अर्ध सहस्त्र नफेरियाँ एक सहस्त्र सुन्दर शहनाइयाँ, (वाद्य विशेष) बज रही थीं। देवी-पूजा के बहाने वीर पूजा (पृथ्वीराज की पूजा, स्वागत) करने की मन में सोचकर उस बालिका (कुमारी शशिव्रता) ने अपनी मति को उमंग पूर्ण और स्वस्थ करली, केवल कुमारी के पिता पुंजराज के अतिरिक्त सब सेना उसके साथ मे थी। उसे देखने से ज्ञात होता था कि कोई अज्ञात और अपूर्व घटना घटने वाली है। सब दूतों और व्याकुल हुए शत्रुओं को (इस घटना से, अरुण-वर्ण उदय होकर) एक मात्र नभ पर प्रकाशित सूर्य ही इस (युद्ध छिड़ने विषयक) बात से सूचित कर रहा था।

कवित्त

दहति-तीन चौंडोल, मध्य चौंडोल बालभय।
भमर टोल झंकार, दासि विंटिय सु पंच सय ॥
सित्त पंच असवार, पंति मंढ़िय चावद्दिसि।
अद्ध लक्ख पाइल प्रचंड[1], सथ्थ आयो सु अंगकसि ॥
मगल विवेक विधि उच्चरे, बधी बंदनमार करि।
उत्तरी बाल देवल सु ढिग, लगि पाइ परदक्खि फिरि[2] ॥१४५॥

म्रा० पा० १, २, दे०।

शब्दार्थ—दहति-तीन=दस और तीन, तेरह। भय=हुआ, थी। भमर-टोल=भ्रमर समूह, भ्रंग समूह विंटिय=घेरे हुए थी। पच-सय=पांचसौ। सित्त-पंच=पांचसौ। पंति=पंक्ति। चावद्दिसि= चारों ओर, आसपास। अध्ध-लक्ख=अर्धलक्ष। पाइल=पैदल। सथ्थ=साथ, समूह। विवेक=ज्ञानी, बुद्धिमान द्विज। बदनमार=वन्दन माला। उत्तरी=उतरी। देवल=देवालय। लगि-पाइ=पॉव लगी, वन्दना की। परदक्खिफिरि=प्रदक्षिणा देकर।

अर्थः—तेरह पालकियों (सहेलियों आदि के बीच में कुमारी शशिव्रता की पालकी थी। कुमारी की पालकी के आस पास पाचसौ दासियाँ शोभित थी। जिनके अंग-वास के कारण उनपर भ्र ग समूह मँडराते हुए गुंजार कर रहे थे। उस पालकी के आस पास पक्ति वद्ध होकर पाचसौ सवार चल रहे थे, और अर्धलक्ष प्रचंड पैदलों का समूह भी आ उपस्थित हुआ था। बुद्धिमान द्विज विधि पूर्वक मङ्गल पाठ पढ़ रहे थे। और देवालय के द्वार पर वदन माला बाँधी गई थी। इस प्रकार वह कुमारी जुलूस के साथ देवालय के समीप आकर पालकी से उतरी और प्रदक्षिणा देकर (शिव पार्वती से) वदना की।

गाथा

उतरि बाल चौडोल तें, प्रीति हेत प्रथिराज।
जिन देवत्त जु मपज्यौ, सो मडन. प्रथिराज ॥ १४६ ॥

शब्दार्थः—प्रीति-हेत=प्रीति के कारण, प्रीति के वश में। देवत्त=हे देव। मपज्यौ=पैदा किया मडन पृथि=पृथ्वी का मडन स्वरूपी। राज=राजा।

अर्थः—पृथ्वीराज के प्रेम को हृदय मे बपा कर बालिका पालकी से उतरी और कहने लगी, हे देव ! जिस राजा को तुमने मेरे लिये पैदा किया है ? वह (पृथ्वीराज) तो पृथ्वी का मंडन स्वरूपी है ।

मडन रन छडन कलह, दल दैवत्त सु जुद्ध ।
बर वज्जे वाजित्र घन[1], भै सामन्त विरुद्ध ॥ १४७ ॥

प्रा० पा० १ पा० घ० ।

शब्दार्थः—छडन-कलह=कलह से छुड़ाने वाले, आपत्ति को मिटाने वाले । दल=सेना । दैवत=देवताओं तुल्य । घन=विशेष, जोर से, उच्च स्वर से । भै=हो गये ।

अर्थः—युद्ध का मंडन (करने) वाले, अपने स्वामी (पृथ्वीराज) की आपत्ति को मिटाने वाले और सेना में देवताओं के समान युद्धकर्ता सामत शत्रुओं से विरुद्ध होकर श्रेष्ठ रण-वाद्यों को उच्च स्वर से बजवाने लगे ।

विरुध जुद्ध बधन-सुदल, स्वामि ध्रम्म चित पान ।
दुतिय ध्रम जानै नहीं, धनि सामत बखान ॥ १४८ ॥

शब्दार्थ—बधन-सुदल=सेना को पक्ति बद्ध करने वाले । चितपान=जिनका चित्त अपने हाथ में है । ध्रंम=धर्म । थनि=धन्य है । बखान=बाखान, प्रशसा ।

अर्थः—युद्ध में शत्रुओं के विरुद्ध रहने वाले, सेना को श्रेष्ठ ढग से पक्ति बद्ध करने वाले, स्वामी धर्म को निभाने वाले और चित्त जिनका अपने हाथ मे है एव जो दूसरों के धर्म को नहीं मानते हैं, ऐसे उन सामतों के यश को धन्य है ।

गाथा

बद्धे-दल समूर, लख्ख सैनाय अवृत बलय ।
ते जग्गे रस बीर, जानिज्जे जोग जग्गाय[1] ॥ १४९ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थ—बद्धे दल=दल को बढ़ाया । समूर=सम्पूर्ण । लक्ख-सेनाय=लाखों की सख्या वाली सेना । अवृत बलय=लगातार बल प्रदर्शित करते हुए । जानिज्जे=मानों । जोग-जग्गाय=योगमाया जागृत हुई हो ।

अर्थः—उस समय सारी सेना आगे बढ़ी और लाखों सैनिक शक्ति के साथ भिड़ गये, (बारबार अपना बल बताने लगे) जिससे वीर-रस की इस प्रकार जागृति हुई मानो योग माया जागी हो।

दोहा

भयौ बीर बीरह तिगुन, नच्यौ रुद्र वहु-भेद।
सौ दिख्यौ दिख्यौ नहे, सो देखन गुन छेद॥ १५० ॥

शब्दार्थः—भयो=हुआ, फैल गया। वहु-भेद=विविध भाँति, भाँति भाँति। छेद=छिदना, क्षत विक्षत होना।

अर्थः—उन वीरों के कारण वीर रस त्रिगुण रूप में फैल गया। और भांति २ से शिव-नृत्य करने लगे। ऐसा दृश्य देखा गया जैसा पहले कभी नहीं देखाथा। ऐसे दृश्य को देखने के लिये क्षत विक्षत होने के गुण होने चाहिये (युद्ध में सम्मिलित होने की शक्ति होनी चाहिये)।

नह तारक्क[1] सु जुद्ध वर, नह देवा सुर मान।
सो दिख्यौ कमधज्ज सौं[2], चाहुआन बलवान॥ ॥ १५१ ॥

प्रा० पा० १ पा०। २ घ०।

शब्दार्थः—तारक्क=तारकासुर।

अर्थः—कमधज (वीरचंद) के साथ बलवान चाहुवान (पृथ्वीराज) का जैसा युद्ध हुआ वैसा न तो तारकासुर का, न देवासुर का ही युद्ध श्रेष्ठ कहा जा सकता है।

चाहुआन कमधज्ज वर, वेर खटक्क सु वद।
देवग्गिरि उग्गाहिये, करि भारथ्थ सनद्ध[1]॥ १५२ ॥

प्रा० पा० १ घ०।

शब्दार्थः—सु वद=श्रेष्ठ वाद। उग्गाहिये=गाहे, कुचले। सनद्ध=सनद, सिद्ध, स प्रमाण।

अर्थः—चाहुआन और कमधज दोनों मे एक दूसरे के प्रति वैर भाव खटक रहा था और इसीलिये देवगिरी में युद्ध छिडा। जिसमें एक दूसरे को कुचलने का प्रयत्न करते हुए महाभारतयुद्ध के दृश्य को प्रमाणित कर दिया।

चढ्यौ पुंज नव साज बर, अरुभर लिन्ने सथ्थ ॥
शमु थान पूजन मिसह, चलि बर आयौ तथ्थ ॥१५३॥

शब्दार्थः—बर=वर, दुलहा, वीर चन्द । तथ्थ=तहाँ, वहाँ ।

अर्थः—यादव पुंज (शशिव्रता के पिता) ने सुना कि पूजा के बहाने शिवालय में दुल्हा (वीरचद) गया है तो (युद्ध की संभावना से) वह भी अपने योद्धाओं को साथ मे ले नूतन-युद्ध-साज सजाकर वहाँ पहुँचा ।

कवित्त

सहस सत्त कप्परिय, भेख क्यनौ[1] तिन वारं ।
कपट कध कावरि समूह[2], धसिय देवी दरबार ॥
सर्वे शस्त्र आरंभि[3], हस्त प्रारभि[4] सु रीसल ।
धसिय भीर सम्मूह, जूह पाइक्क मडिगल ॥
दल प्रबल उद्धि ज्यों मथन कजि[5], भूज सु किस्न चहुआन किय ।
शशिवृत्ता बाल रभह समह, मिलिय गंठि बंधन सुहिय ॥१५४॥

ग्रा० पा० १, से ४, दे० । ५, घ० ।

शब्दार्थः—कप्परिय=कपाली, कापालिक । तिनवार=उसी समय । कावरि=डोली । रीसल=क्रोध पूर्वक । पाइक=पैदल, सेना । मडिगल=मडन किया । कजि=लिये । किस्न=कृष्ण, विराट रूपधारी ।

अर्थः—उसी समय पृथ्वीराज के सात सहस्र साथियों ने कापालिक (शिवभक्त) साधुओं का वेश बनाया और छल पूर्वक कधे पर डोलियाँ ले-समूह के अन्दर मिल गये और देवी के मदिर मे प्रवेश कर गये। क्रोध पूर्वक सबने हाथ चला कर शस्त्राघात शुरु किया। उसी प्रकार पैदल सैनिकों का समूह भी भीड मे मिल गया और वह भी सुन्दर ढग से युद्ध करने लगा। इधर चाहुवान राजा (पृथ्वीराज) ने भी विपक्षियों की समुद्र तुल्य सेना का नाश करने के लिये, विराट रूप धारी कृष्ण की भुजा तुल्य अपनी भुजाओं को बनालिया। उसी के फल स्वरूपी रभा तुल्य कुमारी शशिवृता उसे प्राप्त हुई और दोनों के हृदय का उसी समय गठ-बधन होगया।

दिठ्ठ दिठ्ठ लग्गी समूह, जूह[1] उतकठ सु भग्गिय।
नियं[2] लज्जानिय नयन, मयन माया रस पग्गिय॥
छल बल कल चहुआन, बाल कुअरीपन[3] भज्यौ[4]।
दोष त्रीय म्यटयौ[5], उभय भारी मन रज्यौ[6]॥
चौहान हथ्थ बाला गहिय, सो ओपम कविचद कहि।
मानो कि लता कचन लहरि, मत्त बीर गजराज गहि॥ १५५॥

प्रा० पा० १, २, सर्वं०। ३ पा० घ०। ४ से ६, दे०।

शब्दार्थः—लग्गी=मिली। समूह=सामने। जूह-उतकठ=अभिलाषा के विविध विचार। म्यंटयौ= मिट गया। भग्गिय=दूर हुए। निय=निकट। भज्यौ=दूर किया, मिटा दिया। लहरि=लहराती हुई।

अर्थः—सामना होने पर एक दूसरे (पृथ्वीराज और कुमारी शशिव्रता) की नजर मिली और अभिलाषा (प्रतीक्षा) के विविध विचार दूर हो गये। उस समय पृथ्वीराज को निकट देखकर कुमारी के नैत्र सलज्ज हो गये और प्रेम मे पडे हुए दम्पति पर कामदेव की माया का जाल छा गया। उस सुन्दर चाहुवान (पृथ्वीराज) ने छल और बल द्वारा कुमारी के कौमार्य को अपहरण द्वारा मिटा दिया और वह कुमारी सत्य प्रेम के कारण निर्दोष सिद्ध हो गई। दम्पति एक दूसरे को देखने पर विशेष प्रसन्न हो गये। उसी समय चाहुवान (पृथ्वीराज) ने उस बालिका का हाथ पकड लिया। उसकी तुलना कविचन्द करता है कि मानों मतवाले हाथी ने लहलहाती हुई स्वर्णवल्ली को पकड़ लिया हो।

गाथा

मृग मदकस यति चित्तो, मित्तं पुनरोपि चित्तय वसयं।
अजहूँ कन्ह वियोगे, कालिंदी कंन्हयौ नीरं॥ १५६॥

शब्दार्थः—मृग मदकम यति=मृग मद जिसमें है ऐसा कस्तूरी हिरण। कन्ह=कृष्ण। कन्हयो-नीर = कृष्णमय नीर, कालिन्दी का जल।

अर्थः—जिस (कुमारी) के चित्त की दशा कस्तूरी वाले हिरण के समान थी (नाभि में कस्तूरी होते हुए भी हिरण सुगन्धी की खोज में भटकता है। उसी प्रकार उसका प्रियतम पृथ्वीराज हृदय में बसा था फिर भी वह दूर मानती थी), किन्तु वही प्रिय

समक्ष होते ही (सब भ्रम दूर हो गया) पुन' चित्त में बस गया। सत्य है-प्रिय विछोह रहते प्रेयसी की दशा शोचनीय [एव ज्ञान शून्य] होती है। कृष्ण विछोहसे आज भी कालिन्दी का नीर कृष्णमय दीख पड़ता है [प्रिय-प्रेयसी ऐक्य रूप होते हैं। विछोह होने पर ज्ञान शक्ति दूर होते हुए भी एक दूसरे में तन्मय दीखते हैं]।

गद्दियं गद्द-गद्द-कंठो, बचनं सजनाइ निट्ठयो कहिय।
जानिज्जै सतपत्र, वंधे सद्दाइ भवरय करिय[१] ॥ १५७ ॥

प्रा० पा० १ घ०।

शब्दार्थ:—गद्द-गद्द-कठो=गदगद कठ। सजनाइ=सज्जन से, प्यारे मे। सतपत्र=शतपत्र, कमल। बंधे=बधा हुआ, रुद्ध। सद्दाइ=शब्द, गु जार।

अर्थ:—पृथ्वीराज के द्वारा हाथ पकड़ते ही कुमारी का कठ गद २ हो गया। वह प्रियतम से इस प्रकार मुश्किल से बोल सकी, जैसे कमल-रुद्ध-भ्रमर गु जार करता है।

तपत दिल मे रहिय, अग तपताइ उप्पर होई।
जानिज्जै स कुलाल,[१] घटनो अग इकयौ[२] सरिसौ ॥ १५८ ॥

प्रा० पा० १, २, पा०।

शब्दार्थ:—तपत=तप्त, ताप। उप्पर=बाह्य। कुलाल=कुलाल, कुमकार।

अर्थ:—शारीरिक ताप बाह्य चीज है, किन्तु दिल का ताप दिल में ही बना रहता है जैसे कुलाल-घट ताप सहकर भी वैसा ही बना रहता है जैसा उसका पूर्व स्वरूप होता है (यही दशा कुमारी की थी। उसके दिल का विरह-ताप दिल मे ही रह गया और प्रियतम के मिलने पर वह स्वस्थ सी दिखाई दी)।

अप मगल अल बाले, नेन-नक्खाइ नक्ख किं लसयो[१]।
जानिज्जै घन कृपन, सपनतरो दत्त य धनय ॥ १५९ ॥

प्रा० पा० १, पा०।

शब्दार्थ:—अप मगल=अपने मगल समय। अल=अलि, सखि। नेनं-नक्खाइ=नैत्रों के समीप (समक्ष) आने पर। नक्ख=नखरा। किं-लसयो=क्यों करती। सपनतरो दत्तय=स्वप्न तुल्य देना।

अर्थः—दृष्टा सखी कहने लगी—हे बाले (शशिव्रता) अपने मगल-समय प्यारे के नैत्रों के समक्ष होते ही यह नखरे वाजी इस प्रकार क्यों करती है ? जैसे महान कृपण, धन होते हुए भी उसका देना स्वप्न तुल्य है, इच्छा होते हुए भी बनावटी अनिच्छा प्रकट करना कृपण तुल्य है)।

गहि शशिवृत्त नरिंद सिढ़ि[1] लघत ढहि-थोरी ।
काम लता कल्ल्हरी, पेम मारुत झक झोरी ॥
वर लीनी करि साहि, चपि उर पुट्ठि लगाई ।
मन सुरग सोई वत्त, वत लगि कान सुनाई ॥
नृप भयौ रुद्र करुना सुत्रिय, वीर भोग वर सुभर गति ।
सगपन सु हास बीभच्छ रिन, भय भयान कम धज्ज दुति ॥१६०॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—लंघत=लांघते, चढ़ते । ढहि-थोरी=जरा लुढकी, जरा सी खिसकी । कल्ल्हरी=कामल । पेम=प्रेम । करि-साहि=हाथ पकड़ कर । पुट्ठि लगाई=पीठ से लगाई, घोड़े के पीठ पर चढ़ाली । सगपन=सम्बन्धियों में । हास=हास्य । बीभच्छ=बीभत्स । रिन=रण । भयभयान=भयानक हुआ ।

अर्थः—राजा पृथ्वीराज ने देवालय की सीढ़ियाँ चढ़ते ही शशिव्रता का ज्योंही हाथ पकड़ा त्योंही कुमारी कुछ इस प्रकार झिझकी (कपित हुई) जिस प्रकार कोमल काम-लतिका प्रेम-पवन के लगने से झकझोर दी गई हो। उस दुल्हे (पृथ्वीराज) ने हाथ पकड़ कर कुमारी को हृदय से लगा घोड़े की पीठ पर चढा लिया। उसी समय पवित्र मन ने प्यारे के कानों में अपनी बात कह दी। उस समय पृथ्वीराज में रौद्र, कुमारी में करुणा, सामन्तों में वीर, सम्बन्धियों में हास्य, युद्ध में वीभत्स और कमधज वीरचन्द मे भयानक रस दिखाई दिया।

दोहा

वीर गत्ति सधिय सुमित, वृत्त अवृत्त न-जाइ ।
घरी एक आवृत्त रखि, सुत्तर वाल-अनु-राइ ॥ १६१ ॥

शब्दार्थः—वीर=पृथ्वीराज । वृत्त=मत । अवृत=अड़ने का । न-जाइ=नहीं हटा । आवृत रखि= घेरे रक्खा । सुत्तर=उस समय । वाल-अनु-राइ=बालिका और राजा को, बालिका सहित राजा को ।

अर्थः—श्रेष्ठ मतिवाले वीर (पृथ्वीराज) ने वीर मति का साधन किया। उसने युद्ध करने का व्रत गृहणकिया था, इसीलिये वह वहा से नहीं हटा। उस समय शत्रू-वीरों ने भी एक घड़ी तक कुमारी सहित राजा पृथ्वीराज को घेरे रक्खा।

वाल-सुवैर स वैर-त्रिय, भान विरुद्ध न कीन।
सकल सेन साधन घरी, कलहक्कृत गति चीन॥ १६२ ॥

शब्दार्थः—वाल-सुवैर=वालिका का श्रेष्ठ समय, कुमारी का मांगलिक अवसर। वैर-त्रिय=स्त्री का बदला, बालिका के अपहरण की शत्रुता। गति=हालत, मार्ग। चीन=चिन्ह, सोचा, अनुसरण किया।

अर्थः—बालिका (शशिवृता) के श्रेष्ठ मागलिक अवसर को सोच कर बाला के अपहरण का वैर (बदला) होते हुए भी यादव राजा भान ने उस (पृथ्वीराज) के विरुद्ध छेड छाड़ नहीं की, किन्तु शस्त्र-परीक्षा की घडी सोचकर अन्य वीरों ने स्वत कलहप्रद-मार्ग का अनुसरण किया।

घरिय पच दिन रह्यौ, मत जद्दव प्रारभिय।
मिलि कमधज्ज नरिंद, सकट व्यूह[1] आरभिय॥
अर्द्ध सथ्थ अप्पनौ, चरन मडिय वाम[2] दिसि।
व्यूह चक्र विय पाइ, सथ्थ उभ्भौ नरिंद कसि॥
उद्धवन भार अगत सकट, सबर पुंज अप्पन सजिय।
रघुनाथ साथ वलिय विहसि, हकि सुलष्षिमन तहँ रजिय॥१६३॥

प्रा० पा० १, पा० घ०। २, घ०।

शब्दार्थः—मत=मत्रणा। चरन=पैर, पैया। विय=दूसरा। पाइ=पैया। नरिन्द=कमधज राज, वीरचद। उद्धवन-भार=भार उठाने (ढोने)। अगत=अग, स्थान। लष्षिमन=लक्ष्मण।

अर्थः—जब पाच घड़ी दिन शेष रहा तब यादवो ने युद्ध करने का निश्चय किया और कमधज नरेश वीरचद ने भी यादवों से मिल कर शकट व्यूह की रचना की। अपनी अर्ध सेना को वाम पैंये के स्थान पर कर दाहिने पैये के स्थान पर स्वयम वीरचद डट गया। भार ढोने के स्थान पर (ऊपर का ढाचा या धरू डे की जगह) की ओर स्वयम पुंज (शशिव्रता का पिता) बढा और जिस प्रकार रामचन्द्र की सहायता पर बलवान लक्ष्मण थे उसी प्रकार प्रसन्नता पूर्वक पुंज का साथ देने के लिय यादव-कुमार लक्ष्मण युद्ध भूमि मे सुशोभित हुआ।

सुनि वज्जी घरियार[1], लाग नीसानन वज्जिय[2] ।
इक दिन दोऊ सेंन, चपि चावहिसि सज्जिय[3] ।।
महन रंभ सा-जग्य, मध्य मोहन शशिवृत्तं ।
असुर सु सुर मिलि मथहि, सूर वसी रजपूतं ।।
आरंभ पत्र मंड्यौ कपट, कपट मुक्कि कढ्ढिय लपट ।
दुहूं बीच जहाँ कुंआरि, उभय सिंह सारह झपट ।। १६४ ।।

प्रा० पा० १, पा० घ० । २, ३, पा० ।

शब्दार्थः—घरियार=घंट । महन रभ=महार्णव, समुद्र । सा-जग्य=वह जगह, वह स्थान, युद्ध-भूमि । मोहन=मोहिनी स्वरूप । सूर-वंसी=सूर्य वंशी [चाहुआन और कमधज] । सारह=सार, लोहा, शतस्त्रास्त्र ।

अर्थः— घंट-निनाद के साथ २ नक्कारे बजने लगे, और एक ही दिन में दोनों सेनायें सुसज्जित होकर एक दूसरे को दबाने लगी । वह युद्ध-भूमि, समुद्र स्वरूप होगई । उस स्थान पर शशिव्रता ही मोहिनी स्वरूपा कही जाने लगी । देव दानव तुल्य दोनों सूर्य वशी (चाहुआन और कमधज) क्षत्रिय उस युद्ध-वारिधि का मथन करने लगे । शशिव्रता द्वारा भेजे गये पत्र की ही यह सब कपट लीला थी । वह वहाँ प्रकट होकर दोनों ओर से वाड़वाग्नि की ज्वाला तुल्य क्रोधाग्नि की ज्वाला फैलने लगी । चाहुआंन (पृथ्वीराज) और कमधज (वीरचद) के वीच में यादव-कुमारी को प्राप्त करने का प्रश्न था और उन दोनों सिंहों (पृथ्वीराज और वीरचद) में शस्त्रास्त्र को झपट थी (लड़ाई थी) ।

दोहा

चाहुआन कमधज्ज वर, मिले लोह जल छोह ।
भर-भर टट्टर वज्जही, वसह लग्गिय कोह ।। १६५ ।।

शब्दार्थः—जल-छोह=नूर के उत्साह में । भर-भर=एक दूसरे के । टट्टर=अंग । वंसह=बाँसों में । कोह=लो, खे, आग ।

अर्थः—श्रेष्ठ चाहुवान और कमधज वीरों ने तेज बनाये रखने के लिये उत्साह से अपने २ लोहों (शस्त्रों) को मिलाया । वह एक दूसरे के अंगों पर पड़कर इस प्रकार बजने लगा, मानों बाँसों के घर्षण से अग्नी प्रज्वलित होगई हो ।

गाथा

उच्चरियं अरि भाय, सायक कस्सेत्र आप अप्पाय ।
कढ्ढे लोह करारं, मार मार[1] जपि जीहाय ॥ १६६ ॥

ग्रा० पा० १ पा० का० भीं० ।

शब्दार्थः—उच्चरियं=उचारे, कहे, प्रगट किये । मायं=माव । कस्सेत्र=ऐंचे । जपि=कहे । जीहायं=जिह्वा से ।

अर्थः—शत्रुओं पर अपने २ भाव प्रगट करते हुए वीरों ने धनुष को ऐंचे और करारे शस्त्र निकालकर मार २ शब्दोच्चारण किया ।

अवृत-घाइ घट-भग-कौ, करन मतहु बरबीर ।
मनहु काल कपि दल निरति, लेन लक मति धीर ॥१६७॥

शब्दार्थः—अवृत-घाइ=लगातार आघात । घट-भंग-कौ=शरीर नाश के लिये । मतहु=मता, विचार । निरति=निरत, लीन ।

अर्थः—श्रेष्ठ वीर सामन्तों ने शरीर-नाश के विचार से लगातार आघात किया, मानों काल स्वरूपी कपि-सेना लका-विजय के लिये निरत हो गई हो (युद्ध मे लीन हो)।

धन धीरत्तन बीर बर, करिय न पग प्रवाह ।
चच्चर सीचव रग गति, वधि[1] वधन रिन चाह ॥१६८॥

ग्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—धन=धन्य है । धीरत्तन=धैर्यधारी । पग=पगु, (कमधजी सेना) । प्रवाह=परवाह । चच्चर=चाचरे, माल । सीचव=सींच दिये । रग-गति=रग दिये हो उस तरह । वधि=बढकर ।

अर्थः—धन्य है उन धैर्यधारी श्रेष्ठ वीरों को जिन्होंने पगु (कमधजी) सेना की कुछ भी परवाह न की और उन्होंने युद्ध में उत्साह-वृद्धि करने के लिये अपने भाल-स्थल को शोणित से रजित कर दिया (रग दिये)।

गाथा

मानिक्क प्रति ताज, हेम हेमेल विद्ध साधरिय ।
जानिज्जै निसि मद्ध, निरमल तारक सोभिय गैन ॥ १६६ ॥

शब्दार्थः—मानिक्क=माणिक-या, मणि। प्रति=प्रत्येक। ताज=ताज, मुकुट। हेम=हेर्म्य, स्वर्णिम। हेमेल=हिमाचल। विद्ध=विधि, तरह, तुल्य। तारक्क=तारे। गैन=नभ में।

अर्थः—हिमाचल-तुल्य उन वीरों के मस्तक पर मणि जटित स्वर्णिम मुकुट थे, जिससे ऐसा आभास होता था, मानों रात्रि में निर्मल तारे नभ पर जग मगा रहे हों।

मुच्छी उच्चस वक्री, बाल चंद सुभ्भिय नभ्भ।
गत गुर[1] घन नीसानं, रीसानं खग खलयाई॥ १७०॥

प्रा० पा० १ पा० का० घ०।

शब्दार्थः—मुच्छी=मूछें। गत-गुर=जोर से आहत होने पर, जोर से बजने पर। रीसान=क्रोधित हो उठे। खग=नाशकर्ता। खलयाई=दुष्टों के, शत्रुओं के।

अर्थः—नभ-स्थित अर्ध चन्द्र की आकृति लिये हुए जिनकी उठी हुई वक्र मूंछे थीं, ऐसे वीर जो शत्रुओं के नाश कर्ता थे, वे विशेष जोर से नक्कारे बजने पर क्रोधित हो उठे।

कवित्त

सवर वीर कमधज्ज, अरघ अप्पिय खग मग्ग।
इखु[1] अच्छित उच्छरहि, जानि परिमान नमग्गं॥
सार धार पुंखियै, वीर मंगल उच्चारै।
मनै साथ वंदियहि, सकल पूजा संभारै॥
वर मुक्कि बरन बरनी सुघर, इह अपुव्व पिख्यौ नयन।
उप्पनौ वीर सिंगार सँग, रुद्र वीर चौरी सयन[1]॥१७१॥

प्रा० पा० १, सर्वप्रति।

शब्दार्थ:—सवर=उस समय। अप्पिय=दिया। खग-मग्ग=खड्गमार्ग से, खड्ग द्वारा। इखु=इक्षु, बाण। अच्छित=अक्षत। उच्छरहि=उछाले गये। नमग्ग=निमग, निगम, अगम, अपार। पुंखिये=पक्षी। मुक्कि=छोड़ दिया बरनि=दुलहन। अपुव्व=अपूर्व। चौरी=मंडप। सयन=सेना।

अर्थः—उस समय वीरचद कमधज्ज ने खड्ग द्वारा रक्त का अर्घ्य देना प्रारंभ किया। वहाँ बाणों को ही विभिन्न अक्षत विधि से रक्त उछाला गया। शस्त्राघात और गिद्धनियाँ आदि पक्षियों की ध्वनि ही वीरों का मंगल गान बन गया।

वदना मे सब साथियों ने भाग लिया। वही वहाँ पूजा मानी गई। दुल्हे बने हुए वीरचन्द ने दुलहन को वरण करने की इच्छा छोड दी। उस समय वह अपूर्व वीर दिखाई पडा। उसके साज बाज शृंगार-रसकी छटा छाने वाले थे, किन्तु स्वरूप वीर और रौद्र रस पूर्ण था। सेना-स्थल ही उसके लिये मडप बना हुआ था।

दोहा

सिर सोहत बर सेहरौ, टोप ओप अति अग।
बगतर बागे केसरें, रुधि भिज्जत[१] विषमग ॥ १७२ ॥

प्रा० पा० १ का०।

शब्दार्थः—ओप=उपमा, तुलना, शोभा। बगतर=बख्तर, कवच। केसरें=केशरियां। रुधि भिज्जत= रुधिर से भींजा हुआ, रक्त रजित। विषमंग=विषम।

अथः—सिर पर बँधा हुआ सेहरा शिरस्त्राण की भांति विशेष शोभा युक्त था और रक्त रंजित केसरियां बागा कठिन कवच की छटा दिखा रहा था।

सकट भग्ग लइ वग्ग बर, कमधज वीर विसेज।
मिले वीर वीरत[१] बर, दोऊ दैवत तेज ॥ १७३ ॥

प्रा० पा० १ घ०।

शब्दार्थः—सकट=शकट, व्यूह। भग्ग=तोड़कर। लइ=ली, उठाई। बग्ग=रास। विसेज=वैसे में, उस समय।

अर्थः—अपनी और यादवी सेना को शकट व्यूहाकार रूप दे रक्खा था। कमधज (वीरचद) ने उस क्रम को उस समय तोड दिया, जब वह अपने घोडे की रास उठाकर वीर श्रेष्ट पृथ्वीराज से जा भिडा। उस समय दोनों [पृथ्वीराज और वीरचद] का तेज देव तुल्य दिखाई दिया।

गाथा

देव ते-ज दैवत्त गुन, अवृत मत्ति गुन कति।
शशिवृत्ता चहुआन सौं, सुवृत मत गुनयति[१] ॥ १७४ ॥

प्रा० पा० १, पा०।

शब्दार्थ—ते ज=वे। अवृत मत्ति=अड़ने की मस्ती, भिड़ने की मस्ती। कति=कांति। सुवृत-मत= व्रत का मतवाला। गुनयति=गुनागया, माना गया।

अर्थः—वे दोनों [पृथ्वीराज और वीरचंद] स्वयम् देव-तुल्य थे, वैसे ही उनमें गुण, वैसी ही उनमें शक्ति और कांति थी, किन्तु उस समय चाहुआन (पृथ्वीराज) ही शशिव्रता के वृत का मतवाला अधिक वीर माना गया।

सांइ सूर सांई सु गति, दल दुंदुभि दैवत्त।
विध रंकर वीरह करह, सु बर बीर मारुत्त ॥ १७५ ॥

शब्दार्थ,—सांइ=स्वामी। विध=विधि, विधाता। रंकर=रंक। वीरह=वीरचंद को। करह=कर दिया। मारुत्त=मारुतीय हनुमान।

अर्थः—स्वामी पृथ्वीराज के समान ही उसके सामंत बहादुर थे। वैसी ही उनकी युद्ध में गति थी, वैसी ही सेना थी, वैसी ही दुंदुभि थी और वैसे ही वे भी देव तुल्य थे, उन मारुती (हनुमान) तुल्य वीरों के द्वारा विधाता ने वीरचद को रंक बना दिया। [सेना रहित कर दिया]।

काल कूट कीनौ विषम, कोलाहल घन कीन।
अवृत वृत्त अंतह भखै, सो भारत्थ प्रवीन ॥१७६॥

शब्दार्थः—कालकूट=जहर, हलाहल। कीनौ=किया, फैलाया। अवृत-वृत्त=भिड़ने की प्रतिज्ञा। अतह=अन्त में। भखै=नाश किये। भारथ्थ=युद्ध में।

अर्थः—जो भयानक हलाहल फैलाते हैं और जो विशेष शोरगुल मचाते हैं वे वीर नहीं होते। युद्ध प्रवीण तो वे वीर माने गये हैं। जो लड़ने की प्रतिज्ञा करके अन्त में शत्रुओं का नाश कर देते हों।

भारथ-दिख्खिय तत्त मति, अवृत चिंत बल छीन।
जिन गुन प्रगटित पिंड-किय, सो भारथ्थ प्रवीन ॥१७७॥

शब्दार्थः—भारथ-दिख्खिय=युद्धारम में देखे गये। तत्त=तत्व। अवृत=भिड़ने पर। चिंत=चिंतन किये गये, सोचे गये, देखे गये। छीन=क्षीण। प्रगटित=प्रकठ करते, प्रकाश में लाते हुए पिंड-किय=पिंड स्वरूप बन गये अन्तिम पिंड दान करा गये।

अर्थः—युद्धारंभ में जिनकी बुद्धि तत्वमय दिखाई देती है, किन्तु लड़ने पर जो क्षीण-बल मालुम होते हैं वे वीर नहीं कहे जा सकते। रण-दक्ष योद्धा वही है जो युद्ध में अपने वीर-गुणों को प्रकाश मे लाकर पिण्ड स्वरूप बन जाते हैं।

कंठ-कील कीलह[1]-सुवृत, वृतत जुद्ध सम पाइ ।
सुबर बीर भारथ्थ गुन, उठे बीर विरुझाइ ॥ १७८ ॥

प्रा० पा० १ घ० ।

शब्दार्थः—कंठ-कील=कंठों को कील दिये, बोलना बंद कर दिया, कंठों को रुद्ध कर दिये। कीलह-सुवृ त=वृत पालने में बाधक हो गये। वृतत=बरतते, करते। गुन=गुने गये, माने गये।

अर्थः—शत्रुओं के युद्ध को समान देखकर उनके कंठों को रुद्ध कर दिया (बोलना बंद कर दिया)। और उनके वृत पालन मे बाधक होगये। (पृथ्वीराज के) वे वीर सामंत झगड़ते (बत्थ गुत्थ होते) हुए ऐसे दिखाई दिये मानों महाभारत-युद्ध-समय के श्रेष्ठ वीर हों।

खल सकुल अकुल-प्रकृति[1], चतुर चित्त विरुझाइ ।
मनु बडवानल मध्य तें, समुद सत्त गुन भाइ ॥ १७९ ॥

प्रा० पा० १ स० ।

शब्दार्थः—खल=शत्रु। सकुल=एकत्रित हो गये। अकुल-प्रकृति=आकल वृषभ की प्रकृति वाले, [आका हुआ वृषभ सूर्य का सांड कहलाता है वह न तो नाथा जाता न जोता जाता वह स्वच्छन्द विचरण करता है]। समुद=समुद्र। सतगुन=सौगुना। भाइ=भाया, सुशोभित हुआ।

अर्थः—उन स्वच्छन्द वृषभ तुल्य चतुर चित्त वाले वीरों को उलझा हुआ देखकर शत्रु भयातुर हो एकत्रित हो गये। उस समय वह, विपत्तियों का समुद्र तुल्य समूह, (पृथ्वीराज के) वाड़वाग्नि तुल्य सामन्तों के कारण सौगुना सुशोभित हो पाया।

वीर थान विभ्रम भइय, नयन रत्त सम सार ।
मानहु बर धरि अद्ध में, नाकपत्ति गिरि झार ॥१८०॥

शब्दार्थः—वीर=वीरचंद। विभ्रम=भ्रमित। भइय=हुआ। रत्त=अरुणवर्ण। सार=लोहा, शस्त्र। बर-धरि=बल ग्रहण करता हुआ। अद्ध में=नीचे को, पृथ्वीपर। नाकपत्ति=स्वर्ग का स्वामी, इन्द्र। झार=झाड़ रहा हो-पटक रहा हो, टहा रहा हो।

अर्थः—जिस (पृथ्वीराज) के नेत्र और शस्त्रों को समान ही अरुणवर्ण देख कर वीरचन्द अपने स्थान (युद्ध भूमि) से भ्रमित होगया। उस समय पृथ्वीराज आघात करता हुआ ऐसा दिखाई दिया मानों बल प्राप्त करता हुआ इन्द्र, पृथ्वीपर पर्वतों को गिरा रहा हो।

कवित्त

नाक-पत्ति संभरिय, उभै काया अधिकारिय ।
वह जित्यौ बलि राइ, यहन दुज्जन सम सारिय ।।
छित्ति पत्ति अति अभ्भ, दुहुन आभा पति बुद्धं ।।
इह गोरी सुरतान, उहति दानवह[1] विरुद्ध ।।
खग खुलै दुहुन पुज्जैन को, दोऊ वाउ वर बीर रन ।
लै चल्यौ हरिव शशिवृत्त को, पहुपंजलि पुज्जे तरुन[2] ।।१८१।।

प्रा० पा० १, २, पा० ।

शब्दार्थः—नाक-पत्ति=स्वर्ग का स्वामी, इन्द्र । समरिय=चाहुवान राजा । उभै=दोनों । काया=शरीरधारियों का । यहन=यह । दुज्जन=शत्रु । सम-सारिय=लोहा चलाने में समानता रखता है । छिति-पत्ति=पृथ्वी का स्वामी । अति-अम्भ=सघन बादलों (मेघों) युक्त, विशेष नूर । आभा-पति-बुद्ध=मेघों का तथा विबुधों का स्वामी, नूर धारियों और पंडितों का स्वामी । खग-खुलै=खह (नभ) मार्ग पर चलने वालों को प्रसन्न करने वाला, नंगी खड्ग वाला है । पुज्जे=पूजे । वाऊ=वायु, पवन । रन=रण, अरण्य, युद्ध । तरुन=तरुणाई ।

अर्थः—इन्द्र और पृथ्वीराज दोनों शरीर धारियों के (एक देवरूप दूसरा राजा रूप में) स्वामी हैं । एक राजा बलिको, दूसरा शत्रुओं को जीतने वाला है । एक विशेष मेघों (बादलों) के कारण, दूसरा विशेष प्रताप के कारण पृथ्वीपति माना गया है । एक मेघों का स्वामी दूसरा तेज-धारियों का स्वामी है । दोनों विबुध (देवता और पंडितों के) पति हैं । एक दानवों के दूसरा गोरीशाह के विरुद्ध है । एक नभ-मार्ग पर विचरण करने वालों (देवताओं) को प्रसन्न करने वाला है, और दूसरा सदा खड्ग निकाले हुए रहता है । दोनों को कौन नहीं पूजता ? दोनों में से एक पवन के सहारे रण (अरण्य) में विचरण (मेघ द्वारा वर्षा) करता है, दूसरा श्रेष्ठ वीरों को साथ में लिये रण में सुशोभित होता है । इस प्रकार इन्द्र की समानता रखने वाला धीर पृथ्वीराज शशिव्रता को लेकर चल पड़ा । यह देख कर स्वयम् तरुणाई ने उसको पुष्पाञ्जलि समर्पित कर पूजा की ।

दोहा

तरुन तेज तम हरन वर, बाल वहिक्रम उन्भि ।
मानों रति आरुढ करि, वर बारधि मति लन्भि ।। १८२ ।।

शब्दार्थ—तरुन=युवक, पृथ्वीराज। तम-हरन=तम हर, सूर्य। बहिक्रम=वयक्रम, आयु। उच्छि= अच्छी। रति-आरूढ-करि=प्रेम को हृदय में बसाकर। वारधि=वारिधि, समुद्र। लच्छि=लक्ष्मी।

अर्थः—उस युवक [पृथ्वीराज] का तेज श्रेष्ठ तमहर (सूर्य) के समान था, उसी के योग्य बालिका की आयु भी अच्छी थी, वह प्रेम को हृदय मे बसाये हुए (शशिव्रता) लक्ष्मी तुल्य समुद्र के समान गहरी मति लिये हुए थी।

लच्छि सु मत्थि[1] रु लिन्न[2] हरि, इह लीनी सम्राम।
घटि बढि मत्रह समन बरि, दोऊ बीर बढि वाम॥ १८३॥

म्रा० पा० १ का०। २ सर्वप्रति।

शब्दार्थ—मत्थि=समुद्र मथन करके। लिन्न=ली, प्राप्त की। इह=इसने, पृथ्वीराज ने। घटि बढि= घटा बढी, कम ज्यादा। मत्रह=सम्मति से, सोचने पर। समन=समान नहीं। बाम=बामायें, लक्ष्मी और शशिव्रता।

अर्थ—लक्ष्मी को विष्णु ने समुद्र मथन करके और पृथ्वीराज ने शशिव्रता को युद्ध करके प्राप्त किया। इस प्रकार सोचने पर एक (विष्णु) कम और दूसरा (पृथ्वीराज) उससे बढकर प्रतीत होता है, किन्तु दोनों वामाङ्गनायें [लक्ष्मी और शशिव्रता] उन दोनों वरों से बढ़ गई। वे दोनों समान गुणों को लिये हुए थी। [किसी मे कोई कमी नहीं दिखाई देती थी]।

गाथा

चावद्दिसि नृप बिंम्यौ, पुज सेनाय[1] सेनयौ बीरं।
धर धरनी आधार, सा धार डुल्लिय शीश॥ १८४॥

म्रा० पा० १, मों०, घ०।

शब्दार्थः—चावद्दिसि=चारों ओर। बिंम्यौ=घेर लिया। धर=धड, रुड। सा=उनके। धार=तलवार की धारा। डुल्लिय=डोल रहे थे।

अर्थः—उसी समय चारों ओर से यादव पुज और वीरचद की सेना ने पृथ्वीराज को घेर लिया। उस समय वीरों के रुड पृथ्वी पर खडे थे। किन्तु उनके मुड तलवार की धारों पर इधर से उधर उछाले जा रहे थे।

दोहा

कोपि वीर कायर धरकि, परखि पयंपन जोग ।
यह गति छंडे वीर बर, परै परत्तर भोग ।। १८५ ।।

शब्दार्थः—धरकि=धड़कने लगे, कपायमान हुए । परखि=देखकर । पयपन=प्रयाण । जोग=योग । परै=प्राप्त करता, उपभोग करता । परत्तर=परस्त्र, स्वर्ग । भोग=विलास, सुख ।

अर्थः—युद्ध भूमि मे अंतिम प्रयाण के समय योग को देखकर वीर पुरुष क्रोधयुक्त और कायर कम्पायमान होगये । कवि कहता है'— शरीर छोड़ कर ऐसी गति को प्राप्त करता है, वही स्वर्ग के सुख का उपभोग कर पाता है ।

कवित्त

वान पथ्थ वल भीम, सत्त सिवरं अधिकारी ।
गभीरा-गुर सिंघ, नेह करनह क्रत भारी ।।
वल सु जग्य सक्रह विसाल, वलह [1]पुरषारथ सारी ।
सुर सिधि वुद्धि गनेश, क्रम्मत धुग्र धू [2]अधिकारी ।।
सामन्त सूर सूरह विरुध, वीर वीर पारस फिरिय ।
वर सिंघ-सिंघ रक्खै मरन, वर को विद को विद डरिय ।।१८६।।

प्रा० पा० १, पा० । २ घ० ।

शब्दार्थः—पथ्य=पार्थ । सिवर=शिवि । गम्भीरा-गुर=गहरी गजना । क्रतमारी=भारी कार्य करने वाला । वल=वली । अग्य=यज्ञ । सक्रह=इन्द्र । विसाल=वड़प्पन, वड़ाई । वलह=वलराम । सारी=श्रेष्ठ । धू=निश्चय । पारस-फिरिय=चारों ओर फिर गये, घेर लिये । सिंघ-सिंघ=सिंहों में श्रेष्ठ । रक्खै-मरन=मृत्यु को बमाया । वर-को-विद=श्रेष्ठ किस प्रकार । को-विद=बुरी तरह से ।

अर्थः—वाण चलाने में अर्जुन, वल में भीम, सत्यव्रत पालन में शिवि, गहरी गर्जना करने में सिंह, विशेप प्रेम निभाने में कर्ण, यज्ञ करने मे वली, वड़प्पन में इन्द्र, पुरुपार्थ से वलराम, सिद्धि में देव, वुद्धि में गणेश और निश्चित किये हुए रास्ते पर चलने वाला ऐसा पृथ्वीराज और उसके सामन्त ध्रुव-तुल्य थे । उनके वीरचन्द और उसके योद्धा उनके विरुद्ध होकर उन्हें घेर लिये, किन्तु उन श्रेष्ठ सिंह तुल्य वीरों ने मृत्यु को वसा लिया । उनके समस्त विरोधियों को किस प्रकार श्रेष्ठ कहा जाय, जो मृत्यु से बुरी तरह डर गये ।

दोहा

सु रिधि बुद्धि बुध्यंत-रन[1], भिरन[2] सूर दुति राज ।
चाहुआन प्रथिराज कल, मडि बीर सिर ताज ॥ १८७ ॥

प्रा० पा० १, २ पा० भीं० घ० ।

शब्दार्थः—सु रिधि=देव तुल्य । बुध्यंत-रन=रण में जब बढा । सूर-दुति=सूर्य सा तेज । कल=सुन्दर । मडि=मडन ।

अर्थः—देवतुल्य बुद्धि वाला, सुन्दर चाहुवान राजा (पृथ्वीराज) युद्ध मे बढा और लडने लगा, तब उसका तेज सूर्य के समान दिखाई दिया और उस समय वह वीरों के ताज के समान (शोभा बढाने जैसा) भासित हुआ ।

चाहुआन कमधज्ज वर, मिले लोह-छुटि छोह ।
धार मुरै मुख ना मुरै, मरट मुच्छ-क्रत जोह ॥ १८८ ॥

शब्दार्थः—मिले=सामने होगये । लोह-छुटि=शस्त्र बरसाते हुए, चलाते हुए । छोह=उत्साह पूर्वक । धार-मुर्है=शस्त्र धारा मुड़गई । मरट=ऐंट । मुच्छ-क्रत=मूँछों पर देते हुए । जोह=जो ।

अर्थः—चाहुवान [पृथ्वीराज] और कमधज (वीरचद) दोनों श्रेष्ठ वीर थे वे मूछों पर बल देकर एक दूसरे पर लोहा बरसाते हुए उत्साह पूर्वक सामने होगये । उनके आघात से शस्त्रों को धारें मुड़ गई, किन्तु उनके मुख युद्ध से नहीं मुडे ।

चाहुआन कमधज्ज दुति, रति नाइक प्रति धीर ।
मारगी सारग बल, इह लग्गी अति बीर ॥ १८९ ॥

शब्दार्थः—रति नाइक=कामदेव । प्रति=प्रत्येक । सारगी=धनुष धारी । सारग-बल=धनुष के बल पर । इह=वे । लग्गी अति=लग गये, भिड़ गये ।

अर्थः—चाहुआन (पृथ्वीराज) और कमधज (वीरचद) दोनों विशेष धीरवीर थे । और उनकी कान्ति रति-नायक (कामदेव) सी थी । वे धनुषधारी अपने २ धनुष के बल पर एक दूसरे से भिड़ गये ।

कहा पच पचौ बसत, कहा प्रकृति प्रति अग ।
कहा हस हंसह बसै, कौन करै रन जग ॥ १९० ॥

शब्दार्थः-कहां=कहां है। नहीं सा है। पच=पंच तत्व मय शरीर। हम=प्राण पखेरु, आत्मा।

अर्थः—पंच तत्व, प्रकृति और आत्मा अमिट होती हुई भी पंच तत्वों से बने शरीर मे आत्मा नहीं दीख पड़ती है। उसी तरह युद्ध करने वाला कौन है। यह भी स्पष्ट नहीं कहा जा सकता। [अर्थात् शरीर प्रकृति और आत्मा का युद्ध से सम्बन्ध नहीं। कर्म ही सब कुछ करता कराता रहता है और कर्मानुसार करना चाहिये यह ईश्वरीय वाक्य माना गया है]।

इह कहि कढ्ढिय सार कर, खोलि खग्ग दोउ पानि।
मानहु मत्त अनग द्वै, धृत छुट्टे जम जानि ॥ १६१ ॥

शब्दार्थः-इह=ऐसा सार=लोहा, शस्त्र। खोलि=कसा खोलते हुए। धृत=धृति, पृथ्वी छुट्टै=छूट पड़े, टूट पड़े, जुट पड़े। जम=यम।

अर्थः—ऐसा कहकर पृथ्वीराज और वीरचन्द ने हाथों से तलवारों के कसे खोल शस्त्र गृहण किये। उस समय ऐसा दिखाई दिया मानों अनग शरीर धारी दो मतवाले योद्धा यय-स्वरूप हो पृथ्वी पर भूमने लगे हों।

विषम जग्य आरभ, वेद प्रारंभ शस्त्र वल।
है गै नर होमियै, शीश आहुत्ति सुस्ति[1] कल ॥
क्रोध कुड विस्तरिय, कित्ति मडप करि मडिय।
गिद्धि सिद्धि वेताल, पेखि पल साकृत छंडिय ॥
तुंवर सु नाग क्यनर[2] सुत्रर[3], अच्छरि अच्छ-सु-गावहीं।
मिलि दान असस अप्पन जुगति, भुगति मुगति तत पावहीं ॥ १६२ ॥
मा० पा० १, २ दे०। ३, पा० घ०।

शब्दार्थः—है=घोड़े। गै=हाथी। सुस्ति=स्वस्ति वाचन। गिद्धि=गिद्धिनि। सिद्धि=सिद्धनि, योगिनी। पल=मास। साकृत=शाकल्य, हविर्द्रव्य। छडिय=छोड़ा। क्यंनर=किन्नर। अच्छरि=अप्सरा। अच्छ-सु गावहीं=अच्छा गान, मगल पाठ। असस=असु, प्राण। अप्पन=अर्पण, देना। भुगति=भक्ति। मुगति=मुक्ति। तत=तत्काल।

अर्थः—उस समय कठिन यज्ञ आरम्भ हुआ। शस्त्र द्वारा वल-प्रदर्शन ही वहां वेद-विधान था। हाथी, घोड़े और मनुष्य ही वहाँ होमे जारहे थे, सिर की आहुति के साथ

ही स्वस्ति वाचन होरहा था। क्रोध का ही वहाँ विस्तृत अग्नि कुंड था। कीर्ति का ही मण्डप तना हुआ था। गिद्धनि सिद्धनी (योगिनी) और वैताल वीर द्वारा आमिष फेंका जाना ही वहाँ पर शाकल्य (हविर्द्रव्य) था। तुम्बर, नाग, किन्नर और अप्सराओं का गान ही मंगल पाठ था, और वहाँ एकत्रित हुए वीर, मोक्ष-प्राप्ति के लिये अपने प्राणों का ही दान कर रहे थे, जिसके द्वारा भक्ति और मुक्ति को वे तत्काल प्राप्त करते थे।

दोहा

करि सुचार आचार सब, समद किति फल दीन।
गुरुजन मिसि करुना करिय, कायर हा हर कीन ॥ १६३ ॥

शब्दार्थ:—सुचार=सदाचार। आचार=आचरण, व्यवहार। समद=समुद, प्रसन्नता पूर्वक। किति=कीर्ति लता की फल स्वरूपा [शशिवृता]। दीन=दिया, ले जाने दी, रोक न की। मिसि=मिस।

अर्थ:—जो कायर थे, वे गुरुजन होने का बहाना करके सदाचार को व्यवहार में लाते और दया बतलाते हुए हा शिव! हा शिव!! कहकर प्रसन्नता पूर्वक कीर्ति-लता की फल स्वरूपा शशिव्रता को पृथ्वीराज द्वारा ले जाने में रोक नहीं की [वे युद्ध से हट गये]।

कवित्त

मिलि जद्दव कमधज्ज अहिय[1]-व्यूह आरंभिय।
पुन्छ सु लखि मनि बवि[2], पाइ गुज्जर पारंभिय ॥
सुधर माड वर बीर, पग-बंधह रचि गड्ढे।
फन अप्पन भय पुंज, जीभ कूरंभ सु ठड्ढे ॥
हथनारि गोर[3]-जंबूर घन, दसन द्रड्ढ द्रग मुक्ख करि।
मनि भयौ मेर मारूफवा, चच्चर सी चौरंग परि ॥ १६४ ॥

प्रा० पा० १ ध०। २ पा०। ३ पा० ध०।

शब्दार्थ:—अहिय-व्यूह=सर्प व्यूह। लखिमनि=लक्ष्मण। बवि=हुआ। सुधर=श्रेष्ठ धड़। पग-बंधह=पगुराज का भाई, कन्नौजेश्वर जयचंद का भाई। गड्ढे=दृढ़। ठड्ढे=खड़ा। हथनारि-गोर-जंबूर=तुपके और छोटी तोपें आदि। चच्चर=कपाल। सी=उन्होंने, या उस समय। चौरंग=चारों ओर से।

अर्थ —यादव और कमधजों ने मिलकर पुन अपनी सेना को सर्प-व्यूहाकार रचा, पूँछ के स्थान पर यादवराज कुमार लक्ष्मण हुआ, उदर के स्थान पर गुर्जरी वीर हुए, धड़ के स्थान पर वीरचंद दृढ़ता पूर्वक डट गया, फन के स्थान पर यादव पुंज हुआ, जिह्वा के स्थान पर यादवों और कमधजों का पक्षपाती कोई कूरम्भ वीर होगया, आग्नेयास्त्र और जबूरे आदि चलाने वाले दृढ़ रद-पंक्ति हुए, दृग और मुख के स्थान पर नियुक्त हुए और मेरु तुल्य उन्नत मणि के स्थान पर मारुफत्रां हो गया। उस समय वीरों के कपाल पर चारों ओर से शस्त्र वर्षा होने लगी।

गाथा

सर्प[१] व्यूह आरंभो[२], प्रारभो वीर भद्रायं।
जानिज्जे चवरग, चतुरग[३] इक्क घंटायं॥ १६५ ॥

प्रा० पा० १ पा० भीं०। २, ३ पा० घ०।

शब्दार्थः-सर्प्प व्यूह=सर्प व्यूह। चवरग=चौरंगी, हाथ पैर कटा हुआ मानव। चतुरंग=चतुरंगिनी सेना। इक्क घटाय=एक घड़ीतक।

अर्थः—सर्प-व्यूह की रचना क्या हुई मानों वीर भद्रगण द्वारा युद्धारंभ हुआ हो। उस समय एक घड़ी तक चतुरंगिनी सेना में अंग भंग के समान दृश्य उपस्थित हो गया।

दोहा

घटिय-घट्ट अघटन घटिय, पटिय[१] सार दुअ सैन।
पंगराइ वंध्यौ सु व्रत, किये रत्त वर नैन॥ १६६ ॥

प्रा० पा० १ सं०।

शब्दार्थः-घटिय-घट्ट=नर शरीरों की संख्या में कमी होगई। अघटन=कुघटना। पटिय=पट गई। सार=लोहास्त्र। पंगराइ=कमधज, वीर चन्द (वंश सूचक शैली के अनुसार वीर चन्द को भी पंगुराय लिखा)। वंध्यौ=बांधा, गृहण किया। व्रत=प्रण, प्रतिज्ञा। रत्त-वर=रतंवर, अरुण वर्ण।

अर्थः—ऐसी कुघटना घटी कि नर-शरीरों की संख्या में कमी हो गई और शस्त्रों द्वारा दोनों सेनायें पट गई। उस समय कमधज वीर चंद ने अरुण वर्ण नेत्र करके शत्रु नाश की दृढ़ प्रतिज्ञा करली।

रत्तो नैन विखम्म गति, दावानल प्रथिराज ।
बीरचद घन उन्नयौ, सार सु वुठ्ठन आज ॥१६६॥

शब्दार्थः—विखम्म=विषम । घन=बादल । उन्नयो=उमड़ा । वुठ्ठन=बरसाने को ।

अर्थः—उसी प्रकार दावानल-स्वरूपी पृथ्वीराज के भी अरुण वर्ण नैत्र थे, और भयकर गति थी, किन्तु वीरचन्द सार-वृष्टि करने वाले बादल की तरह उसकी ओर झपट पड़ा ।

कवित्त

मोर व्यूह पृथिराज, सथ्थ सज अप्पन कीनौ ।
चचु-केश मडली, कन्ह चहुआन सु दीनौ ॥
पाइ पिंड-विधि-पध, गरुअ गहिलोत वीर सजि ।
पुंच्छ राज रघुवश, चरन पुडिर चद रजि ॥
दुहु लोह कढ्ढि परियार तें, सारधार भे¹ अब्ब² भर ॥
पल पच तरगनि रुक्कि जल, जानि कमोदनि नचि सर ॥१६८॥

ग्रा० पा० १, सं० । २, पा० का० घ० ।

शब्दार्थः—मोर=मयूर । चचु-केश मडली=चोंच और उसके समीप के केश गुच्छ (कलगी) । दीनौ=रूप दिया नियुक्त किया । पाइ=पाया, देखा गया । पिंड-विधि-पख=शरीर और पख की तरह । परियार=प्रहार । सारधार=रक्त रजित । भे=हुए । अब्ब=सब । तरगिनि=नदी । नचि=नाचते हों, तैरते हों । सर=सिर, मस्तक ।

अर्थः—यह देख कर पृथ्वीराज ने भी अपने सब साथियों के साथ मयूरव्यूह की रचना की, जिसमें चोंच और कलगी के स्थान पर कन्ह चाहुवान नियुक्त किया गया । शरीर और पक्ष के स्थान पर भारी वीर गुहिलोत, पूछ के स्थान पर रघुवशी राय (रामराय बड गुज्जर), और चरण के स्थान पर चद पुडीर सुशोभित हुआ । इस प्रकार स्थित होकर दोनों सेनाओं ने शस्त्र उठाकर प्रहार करना शुरु किया जिससे वीर रक्त रजित हो गये । पांच पल तक रक्त की प्रवाहित नदी ने मृत शवों के कारण रुक कर तालाब का रूप धारण कर लिया । जिसमे तैरते हुए मुड प्रफुल्लित कुमोदिनी से दिखाई दिये ।

दिखि वर लखिवन फव्वज, चपि चतुरग रिंगावहु ।
अरि सयन्न सभार, धीर भजै मग पावहु ॥

वहु गरिष्ट ता-रिष्ट, हक्कि अप्पन पर धावहिं ।
सु वर सिंघ आलसैं, स्याल सूधौ करि ध्यावहिं ॥
उट्ठैं न वीर वीरह उठत, सुवर मत फुनि फुनि करै ।
वर सै न अव सर मेघ कौ, जो न समर सरवर भरै ॥१६६॥

शब्दार्थः—दिखि=देख कर । लख्खिन=लक्ष्मण । फवज=फौज, सेना । रिंगाहु=चला दो, हटा दो । अरि=अड़ कर । सयन्न=सेना । धीर=धैर्यवान । मजे=नष्ट करने पर । गरिष्ट=कठोर । ता-रिष्ट=उनकी रीठ, उनके आघात । हक्कि=बढकर । आलसैं=आलस्य युक्त होने पर । स्याल=सियाल, गीदड़ । सूधो=सरल । करि=मान कर । ध्यावहि=धाते, बढते । उट्ठैं न=नहीं उठते, नहीं बढते । उठत=उठने पर, बढने पर । फुनि फुनि=पुनः २, वार २ । अव=जल । सर=बाण ।

अर्थः—इस प्रकार सेना को व्यूह-बद्ध देख कर यादव कुमार लक्ष्मण बोला, यदि आगे बढना है तो शत्रु सेना को दबा कर हटा दो और अड़ कर अपनी सेना को सभालते हुए धैर्यवान शत्रुओं को मार दो तब ही रास्ता पा सकोगे। विपक्षियों के आघात अति कठोर हैं जिनके द्वारा वे अपनी ओर इस प्रकार बढ़ते ही आते हैं जैसे आलस्य युक्त सिंह को सरल मान कर गीदड़ बढ़ते ही जाते हैं। इस प्रकार वीरों के बढ़ने पर भी जो वीर नहीं बढता और बार २ मंत्रणा करता है, वह वीर मेघ तुल्य कैसे कहा जा सकेगा, जो जल वृष्टि तुल्य बाण वृष्टि कर युद्ध रूपी सरोवर का परिपूर्ण नहीं करता है।

गाथा

समर सु मत्थ्यौ सेन, तार झकार वीर भद्रायं ।
केवल गति कल-रूप, भूप[1] वीर जुद्धयो समर ॥ २०० ॥

प्रा० पा० १ सर्वप्रति ।

शब्दार्थः—समर=युद्ध में । मत्थ्यौ=मंथन हुआ । केवल गति=कैवल्य गति । कल-रूप=सुन्दर रूप से । भूप=राजा [पृथ्वीराज] । वीर=वीर चन्द । जुद्धयो=युद्ध छेड़ा, जुटे । समर=युद्ध में ।

अर्थः—युद्ध में सेना का विनाश होने लगा, वीरभद्र की तन्त्री के तार झकृत होने लगे, जिस समय राजा पृथ्वीराज और वीर चन्द युद्ध भूमि में जुटे उस समय वीरों को सुन्दर रूप से कैवल्य गति प्राप्त होने लगी।

दोहा

समर-जुद्ध मन्चिय समर, हालाहल बर मत्ति ।
कोलाहल पंखिनि कियौ, कामरूपबर जत्ति[1]॥ २०१ ॥

प्रा० पा० १ सं० ।

शब्दार्थः—समर जुद्ध=युद्ध में जुटने पर । मच्चिय=छा गई । समर=समरांगण में । मत्ति=मस्ती । पंखिनि=गिद्धनियें या डाइनी । कामरूप=काम देव स्वरूप, या कामरु देवी । वर जत्ति=वरजने लगी, निषेध करने लगी ।

अर्थः—उनके युद्ध में भूझने पर समरांगण में हलाहल और मस्ती छागई । गिद्ध-नियाँ शोर गुल मचाती हुई कामदेव स्वरूपी वीरों (पृथ्वीराज और वीरचन्द) को युद्ध करने से इन्कार करने लगी (कहने लगी कि ऐसी सुन्दर काया को इस प्रकार काट मारकर के नष्ट मत करो या कामरूप "कामरु प्रदेश की डाइनियाँ वहाँ जितनी थी वे सब युद्ध की भयानक स्थिति को देखती हुई कोलाहल करने लगी) ।

गाथा

उठ्ठहि एक प्रमानों, धावताय पचयौ सयन ।
वाहत वर लोहं, सा-दून[1] दिख्खए[2] वीर ॥ २०२ ॥

प्रा० पा० १, का० भीं० । २, पा० ।

शब्दार्थः—उठ्ठहि=खडे होते । धावताय=बढते हुए । सयन=सेना में । सा-दून=उससे दूने, दस ।

अर्थः—उस समय युद्धार्थ खड़ा वीर एक, बढते समय पाच और शस्त्र चलाता हुआ उससे द्विगुण [दस] दिखाई देता था ।

रुधिर-पत्रत सतयौ, दो मझ्झ काय हक्कयौ सिरय ।
अति गति दुष्ट प्रकार, अगिनत होंइ बीर सम सेन ॥ २०३ ॥

शब्दार्थः—रुधिर-पत्रत=रक्तपात होने पर । सतयौ=शत, सौ । दो-मझ्झ=दोनों सेनाओं में । काय=वीर काय । हक्कयो-सिरय=उपर वढे । अगिनत=अगणित ।

अर्थः—दोनों सेनाओं में रक्तपात होने से वही एक २ वीर सौ वीरों के समान होकर इस प्रकार आगे बढता था जैसे दुष्ट दूसरों को कष्ट पहुँचाने के लिये अनेक रूप धारण करता है । इस वातावरण से सेना मे अनेकों वीर ही वीर दिखाई देने लगे ।

अगनित गने न जानं, इक्को इक्कोपि रुद्धयो सहस ।
वर वीरा रसु भट्ट, दावानल पगयो वीरं ॥ २०४ ॥

शब्दार्थः—गने न जान=पार नहीं पा सकते । इक्को इक्कोपि=एक एक । पंगयो-वीर=कमधज वीरचन्द ।

अर्थः— जिनका पार नहीं पा सकते ऐसे वे एक २ वीर सहस्त्रों शत्रुओं को रोंधने के लिये अगणित वीरों तुल्य थे. जो श्रेष्ठ वीररस से ओत-प्रोत थे, उनका शोषण करने के लिये कमधज वीरचद उस समय दावानल-तुल्य दिखाई दिया ।

दोहा

तव चहुआन सु कंन्ह वर, ठढ्ढौ करि गुरुराज ।
हुकम नृपति छुट्टौति इम, जनु तीतर पर वाज ॥ २०५ ॥

शब्दार्थः—तव=तव । ठढ्ढौकरि=खड़ा किया । गुरुराज=राजाओं का गुरु-तुल्य पृथ्वीराज । हुकम=हुक्म, आज्ञा । छुट्टौति=टूट पड़ा ।

अर्थः— तव श्रेष्ठ कन्ह चाहुवान को राजगुरु (राजाओं के गुरु तुल्य पृथ्वीराज) ने युद्धार्थ खड़ा किया, राजा (पृथ्वीराज की आज्ञा पाते ही वह कंन्ह) विपक्षियों पर इस प्रकार टूट पड़ा, जिस प्रकार तीतर पर वाज पक्षी झपटता है ।

कवित्त

मुख छुट्टत नृप वैन, नैन दिट्ठो धावंतो ।
क्रम वध वल मोह, छोह वध्यौ सु वरत्तौ ॥
सुवर सेन चहुआन, सिंग जद्दू न नवाई ।
जनु मदिर वियवार, ढक्कि[1]इकवार वनाई ॥
तकसीर करन दोउ अंस वर, क्रित्ति मग्ग करतव्य कर ।
अयवत रविह आदित्य दिन, अगनि सार चुट्टिय[2]कहर ॥ २०६ ॥

मा० पा० १ घ० । २ का० पा० भीं ।

शब्दार्थः—धावंतो=बढता हुआ । क्रम वध=क्रम बद्ध । वल=सैन्य शक्ति । छोह=उत्साह । वरतौ=वलता, जलता, प्रज्ज्वलित । सिंग=शृंग, सिर । जद्दून=यादवों के । मदिर=मंदिराचल । सुवर सेन=सेना में सवल योद्धा । जद्दू=यादव । न-नवाई=नहीं नमाया ।

बिय सार=उस समय । ढकिक=ढकेलाता हुआ, धकेलता हुआ । इक=एक दूसरे को । बार=बारु, बाल्हू रेत, धूलि । बनाई=बनाते, बनाना चाहते । तकसीर=अपराध, दूषित कर्म । कित्ति=कीर्ति । अथवत=अस्त होने पर । अगिनि सार=लोहाग्नी । बुठ्ठिय=बरसादी । विघ्नप्रद, भयानक ।

अर्थ:—राजा के मुख से आज्ञा प्राप्त करते ही वह आगे बढ़ता हुआ दिखाई दिया और सैन्य-शक्ति को व्यवस्थित (क्रम बद्ध) किया । उत्साह और उमंग में भर कर वह शत्रुओं पर क्रुद्ध हो उठा । जैसा चहुआन कन्ह सेना मे सबल योद्धा था वैसा ही लड़ाका यादव (लखमण या पुंज) था । दोनों ने परस्पर किसी के सामने सिर नही झुकाया । वे दोनों उस समय मंदराचल पर्वत के समान उन्नत दिखाई देते थे । एक दूसरे को धक्का देकर वे धूल में मिलाना चाहते थे । इस प्रकार दोनों वीर दूषित वृत्ति लिये हुए श्रेष्ठ अस्त्र धारी थे । वे केवल अपने कर्तव्य का पालन करने के लिये कीर्ति-मार्ग पर चलकर आदित्यवार के दिन सूर्यास्त के समय विघ्न प्रद शस्त्राग्नि बरसाने लगे (प्रहार करने लगे) ।

गाथा

मुख छुट्टा नृप बैन, कै दिठ्ठाय धावता नैन ।
बज्जी-बाहु सु वार, धार ढारि मत्तयौ धरयं ॥ २०७ ॥

शब्दार्थ:—कै=उसी समय । बज्जी-बाहु=वज्र तुल्य भुजा वाला । वार=वार, प्रहार । धार=धारा, खड्ग । मत्तयौ=मतवाले हाथी ।

अर्थ:—राजा के मुख से आज्ञा होते ही कन्ह झपटता हुआ दिखाई दिया और उसके वज्र-बाहु के खड्गाघात से कितने ही मतवाले हाथी जमीन पर लुढ़कने लगे ।

दोहा

मत्त ढरहि समुख भिरहि, स्वामि-सनाह स-सूर ।
आज मुख्य चहुआन कन्ह, सिंधु सत्त कौ नूर ॥ २०८ ॥

शब्दार्थ:—ढरहि=लुढ़कते । स्वामि-सनाह=स्वामी का कवच [तनत्रान] स्वरूपी । स-सूर=वह वीर । सिन्धु-सत्त=सातों सिंधु [सप्तसिंधु से परिवेष्टित पृथ्वी] । नूर=तेज ।

अर्थ:—वह स्वामी का तनत्रान स्वरूपी वीर (कन्ह) जब शत्रुओं का सामना करके लड़ने लगा तब मतवाले हाथी लुढ़कने लगे । और सब यही कहने लगे कि

आज के समय में प्रमुख वीर कन्ह चाहुआन ही सातों समुद्रों से परिवेष्ठित पृथ्वी का वास्तव में नूर (तेज) स्वरूपी है।

गाथा

सत्तं सिंधुन[1] नूर, कारूरं करनयो नथ्थी।
एको अंग सुरंगो, दिक्खेवा बीरयं वीर ॥२०९॥

प्रा० पा० १, घ० पा०।

शब्दार्थः—कारूरं=करूर, क्रूर, भयानक। करनयो=करण। नथ्थी=नहीं। सुरंगों=सुन्दर। दिक्खेवा=देखा गया। बीरयं वीरं=श्रेष्ठ वीर।

अर्थः—कन्ह सातों समुद्रों से परिवेष्टित पृथ्वी का तेज स्वरूपी था। उसके समान क्रूर (भयानक) योद्धा कर्ण भी नहीं कहा जा सकता। वह एक ही श्रेष्ठ वीर था, जो सब में सुन्दर दीखता था।

धनय लच्छि-नरिंदं, तिहि-सज्जीय[1] सायरो नथ्थी।
कलहंतं बल विषम, जुखमं-देहीय लज्जनौ[2] सूरं ॥२१०॥

प्रा० पा० १, भीं। २, सर्वप्रति।

शब्दार्थ—धनय=धन्य है। लच्छि–नरिंद=यादव वीर लक्ष्मण। तिहि-सज्जीय=उसकी सजाई, (उफान)। सायरो=समुद्र। नथ्थी=नहीं। कलहंत=कलहान्त, युद्धान्तर। जुखम–देहीय=यक्ष शरीर धारी। लज्जनौ=लज्जित होते। सूर=वीर।

अर्थः— किन्तु धन्य है लक्ष्मण यादव को उसकी सज्जाई (उफान) की तुलना समुद्र भी नहीं कर पाता। युद्ध में उसका बल विषम था, जिसके समक्ष यक्ष देह-धारी वीर भी लज्जित होते थे।

कट्ठे लोह दुहथ्थ, सत्तं घरियाय वज्जयौ अग।
चावदिसि चतुरंगी, अनुरंगी सेन सव्वाई ॥ २११ ॥

प्रा० पा० १, सर्वप्रति।

शब्दार्थः—दुहत्थ=दोनों हाथों से। सत्तं घरियाय=सात घड़ी बजने पर। वज्जयौ-अग=वज्रांगी, समस्त।

अर्थ:—उस बज्रांग धारी वीर (लक्ष्मण) ने जब सायकाल की सात घडी बजी, तब अपने दोनों हाथों से लोहा (खड्ग) निकाला, यह देखकर चारों ओर समस्त चतुरंगिनी सेना प्रसन्न होगई।

दोहा

अनुरगी सेना सकल, सद्द सुरद्ध विरुद्ध।
अबुध बुद्ध भारथ्थ में, दान मान सु प्रवुद्ध[1] ॥ २१२ ॥

[1] मा० पा० १ पा०।

शब्दार्थ—सद्द=शब्द। सुरद्ध=सूर वीर, सारद्ध, शस्त्रधारी। अबुद्ध=जड़, मूढ। भारथ्थ में=युद्ध में। प्रवुद्ध=प्रवुद्ध, दक्ष।

अर्थ:—सब सेना प्रसन्न दिखाई दी और एक वीर दूसरे वीर के विरुद्ध शब्द कहने लगा जिससे वे वीर दान और सम्मान में दक्ष और विवेकी होते हुए भी उस समय युद्ध मे जडवत (ज्ञान रहित) दिखाई देते थे।

गाथा

वर अथवत सु दीह, झुभझ विन जोतय-कलय।
घरि घट अघट नरिंद्र, सा बुद्धं वीर भद्राय ॥ २१३ ॥

शब्दार्थ—झुभझं=जूझे, लडे। विन=वे। जोतय-कलय=सुन्दर ज्योति धारी। घरि=घडे, शस्त्राघात करके। घट=शरीर। अघट=बुरा ढग दे दिया, अस्त व्यस्त कर दिये। बुद्धं=बुद्ध, दक्ष, (रण दक्ष)।

अर्थ:—सायंकाल होने पर सुन्दर ज्योति (तेज) धारी योद्धा लडने लगे, उनमे से जिन राजवंशियों ने विपक्षियों के शरीर को शस्त्राघात द्वारा अस्त व्यस्त कर दिया, वे ही रण दक्ष योद्धा वीरभद्र गण के समान कहे गये।

को दिठ्ठौ समवीर, सा मत स्वामयो कृतय।
इक्क करन प्रमान, अगद कामेय रावनो भिरय ॥ २१४ ॥

शब्दार्थ—को=कौन। समवीर=समान वीर। सा मत=वैसे मतवाले। स्वामयो=स्वामी के। कृतय=कार्य के लिए। करन=कर्ण। अगद-कामेय=अगद तुल्य कार्य करने वाला। रावनो=रावण से।

अर्थः—उन (लक्ष्मण यादव और कन्ह चाहुवान के समान स्वामी के कार्य के लिये लड़ने वाले कोन मतवाले योद्धा हो सकते हैं ? उन दोनों में से एक (यादव लक्ष्मण) कर्ण और दूसरा (कन्ह चाहुवान) रावण से लड़ने वाला अंगद के तुल्य था।

कवित्त

वर अथवंत सु दीह, झुम्मिझ लक्खिन[1] जद्दव भर।
लोह धार लगि विषम, ईस लीनौं जु शीश कर ॥
रह्यौ न तन-दमझन सु, मस पलचर नन खाइय।
अस्त्र[2] शस्त्र पक्खर पलान, टूक[3] ढुढँत नन पाइय ॥
वरि लियन वीर अंतर मिल्यौ, अच्छर-सुच्छर ना लियौ।
मिलि गय सु भान सुत भान कौ, दिव दुदभि वज्जत वियौ ॥ २१५ ॥

प्रा० पा० १, ३, का० घ०। २ पा० का० घ०।

शब्दार्थः—अथवत=अस्त होते। लक्खिन=लक्ष्मण। तन-दमझन=दाध संस्कार के लिये। नन=नहीं। पलान=जीन। टूक=टुकड़े। अंतर=अंतरात्मा, आत्मा रूप में। अच्छर-सुच्छर=अप्सरा-वप्सरा [मुहावरे के रूप में]। भान=सूर्य मण्डल में। वियौ=वह।

अर्थः—दिन अस्त होने पर वीर लक्ष्मण यादव जूझ पड़ा। उसके शरीर पर भयंकर रूप से शस्त्र-धारें पड़ी जिससे उसके सिर को शिव ने हाथ में उठा लिया। उसका शरीर इस प्रकार टुकडे २ होगया कि दग्ध संस्कार के लिये और मांस भक्षी जानवरों के लिये आमिष का एक भी टुकड़ा नहीं मिला। उसके शस्त्रास्त्र और घोड़े की जीन पाखर के टुकडे खोजने पर भी नहीं मिले। उसे वरण करने के लिये आई हुई अप्सराओं को भी वह वीर, आत्मा रूप में ही दिखाई दिया। भानराय यादव का वह पुत्र स्वर्ग में दुंदुभि वजवाता हुआ सूर्य मण्डल में जा मिला।

अगनि झार धर—धार, सार—वज्जी प्रहार अरि[1]।
कक दिष्ट सिघा सु रारि, जानि[2] भग्गौन लग भरि ॥
शस्त्र घात आघात, वथ्थ अनवथ्थ सु लग्गा।
सुरतु-राति रति सेज[3], मिले-दूती मन भग्गा ॥
सिरदार सैन नृप द्वै करिय, दोउ घाव घन घुम्मि घट।
उवर्‌यौ कन्ह प्रथिराज क्रम, झुम्मिझ पुंज वंध्यौ सुभट ॥२१६॥

ग्रा० पा० १ स० । २ पा० का० भीं० । ३ का० घ० ।

शब्दार्थः—धर-धार=खड्ग को धारण कर । सार-वज्जी=वज्रास्त्र । अरि=अड़ कर । कक=युद्ध । दिट्ठ=देखे गये । रारि=झगड़ा । भग्गोन=भगर खेल, बनावटी मारकाट बताया जाने वाला इन्द्रजालिक खेल, भाग दौड़ का खेल । लग मरि=रचकर भिड़ने लगे हों । बथ्थ=बाहुपाश में पकड़ना । अन बत्थ= छूट जाना । सुरतु-राति=सुरति की रात्रि । सेज=शैया । मिले-दूती=नायक के दूती से मिलने पर, दूती से नायक का संयोग होता देखकर । मन-भग्गा=मनो मालिन्य होगया । सिरदार सैन=सेना नायक । करिय=करि, हाथी । उब्बर्यौ=बचगया । क्रम=भाग्य ।

अर्थ —वीरों ने डटकर अग्नि-ज्वाला के तुल्य खड्ग धारणकर वज्रास्त्र के तुल्य प्रहार किया । उस समय युद्ध में झगडते हुए वीर, सिंह के समान दिखाई दे रहे थे, या उन्होंने भग्गल खेल [इन्द्रजालिक या भाग दौड के खेल] की रचना की हो, ऐसा आभास होता था । शस्त्राघात करते हुए वे वीर इस प्रकार एक दूसरे को पकडते और छूट जाते थे । मानो दूतो से नायक का सयोग होता देखकर नायिका सु-रति की रात्रि में मनो मालिन्य कर बैठी हो । उस युद्ध मे दोनों सेनाओं के सेना नायक [कन्ह चाहुवान और पु जराज यादव] करि-स्वरूप थे । उन दोनों के शरीर गहरे घावों के लगने से भूमने लग गये थे । उनमे से पृथ्वीराज के भाग्य से कन्ह बच-गया लेकिन युद्ध करके सामन्तों ने पु जराज यादव को पकडकर बाध लिया ।

कवित्त

जीति लियौ जैपत्त[1], चारु चतुरग स मोरी ।
बर बध्यौ त्रप पु ज, ढाल-जद्दव ढढोरी ॥
बर लन्छिन परि खेत, कन्ह चहुआन उपारिय ।
खेत ढ ढि प्रथिराज, सुभ्रत भोरी करि डारिय ॥
इतने सु भान अस्तमित भये, दऊ सेन वर उत्तरिय ।
मुक्की न बग्ग क्रम धज्ज की, रोम-राह विस रन भरिय ॥ २१७ ॥

ग्रा० पा० १ का० पा० भीं० ।

शब्दार्थः—जै पत्त=जय-पत्र । मोरी=मरोड़दी, पीछे हटा दी । ढाल-जद्दव=यादवों के ढाल स्वरूपी वीर, या ढतैत वीर । ढढोरी=ढढोल लिये परख लिये । लच्छिन=लक्ष्मण । खेत=रण क्षेत्र । उपारिय=उठाया गया । ढ ढि=खोज करके । सभ्रत=श्रेष्ठ सेवक, योद्धा । भोरी=भोली ।

डारिय=उठाये। मान=भानु, सूर्य। अस्तमित भये=अस्तहुआ। उत्तरिय=उतरपड़ी। मुक्की-न-वग=मस्ती नहीं छोड़ी, मस्ती नहीं मिटी। रोस-राह=क्रोध के कारण। त्रिस-रन=युद्ध विष, कलह-विष। भरिय=भरगया, छा गया।

अर्थः—उत्तम चतुरंगिनी सेना को पीछे हटा और विजय प्राप्त कर चाहुवान राजा ने (यादवों से) जय-पत्र प्राप्त किया और श्रेष्ठ पुंजराज को बांध लिया, तथा यादवों के ढाल-स्वरूपी वीरों को जांच (परख) लिया। इस युद्ध में यादव-कुमार लक्ष्मण रण क्षेत्र में धराशाई हुआ और कन्ह चाहुवान घायल अवस्था में उठाया गया। रण क्षेत्र में खोज कर अन्य घायल योद्धाओं को भी झोली मे डालकर उठाया गया। इतने में सूर्यास्त होगया, फिरभी दोनों सेनायें (चाहुवान और कमधज की) उतर पड़ी, कारण कि कमधज वीरचन्द की मस्ती नहीं मिटी थी, उसमें क्रोध के कारण कलह-विष छाया हुआ था।

वजी संझ घरियार, सार वज्ज्यौ तन झञ्झर।
जनु कि वज्जि झननंक, ठनकि घन टोप सउ-व्वर[1]॥
अनिल अग्गि सम जग्गि, जेन धज वधि सुलग्गा।
मनु द्रप्पन सें वैठि, नेत वडवानल जग्गा॥
घन स्यांम सेत[2] रत रग वर, त्रिविध वीर गुन वर भरिय।
हर हार गठि रुट्ठी उमा, किम उतारि पच्छो धरिय॥ २१८॥

मा० पा० १, टि० १, । २, सं०।

शब्दार्थ—सझ=सांझ, सायकाल। झञ्झर=जर्जरित, अस्त व्यस्त। सउ-व्वर=वह श्रेष्ठ। अनिल=पवन। अग्गि=अग्नि। जेन=जिम प्रकार। धज=ध्वजा। वंधि=वृद्धि बढ़ने, फैलने। लग्गा=लगी। मनु=मन। द्रप्पन=दर्प। वैठि=गर्क होकर। नेत=नेता, प्रमुख वीर। घन=विशेष। सेत=श्वेत। रत=रक्तवर्ण, अरुण। हर-हार=शिव के लिये हार, [मुण्डमाला]। गठि=जोड़कर, गूंथकर, पिरोकर। रुट्ठी=रूठ गई, रुष्ट होगई। पच्छो=पीछा पुनः।

अर्थः—ज्योंही सायकाल की घड़ी वजी, त्योंही लोहा वजने लगा और वीरों के शरीर अस्त व्यस्त होगये। श्रेष्ठ शिर-स्त्राण इस प्रकार विशेष ठन ठनाने (वजने) लगे मानों वज्रपात की झनझनाहट हुई हो। पवन के संसर्ग से प्रज्ज्वलित अग्नि-ज्वाला के

समान ध्वजाये फहरने लगी। वीरों के मन दर्प मे गर्क हो गये, जिससे वीर वाड़वाग्नि तुल्य जागृत हो उठे। उस समय वीरचद कम धज (ईर्षा के कारण) विशेप काला पड गया तथा क्षण में वह [दु ख के कारण] श्वेत और क्षण मे [क्रोध के कारण] अरुण वर्ण दिखाई दिया। जिससे वह त्रिगुण (कालापन तमोगुण, श्वेतपन सत्वगुण, और अरुण रजोगुण) से भरा हुआ भासित हुआ। उसी समय पार्वती द्वारा शिव के लिये जो मु डहार (मु डमाला) गु फित था, उसे शिव ने पुन. [युद्ध छिड़ने से नूतन मु डमाला की आशा में] उतार दिया। जिससे पार्वती रुष्ट हो गई [अपने द्वारा गु फित मु डमाला को उतार देने से अपना अपमान समझा]।

दोहा

परि पथ्थर सथ्थर सु रन, गनक गनें नहिं जाइ।
हत्थ तीन लुत्थह चढी, मुरवी मद्ध न माइ॥ २१६॥

शब्दार्थ:—पथ्थर=प्रस्तर, फेलकर। सथ्थर=उस स्थल पर। गनक=गणिक। गनें नहिं जाइ=गिनती नहीं हो सकती। लुत्यह=लोथें। चढी=उपर तले हो गई। मुरवी=पुरवी, पृथ्वी। माइ=समा सकी।

अर्थ:—उस युद्ध स्थल मे मृत-शव प्रस्तर (फैल) कर पड़ गये, जिनकी गिनती गणिक से नहीं हो सकती। वे मृत-शव इतने थे कि तीन २ हाथ उपर लोथे लग गई जो उस रण भूमि मे नहीं समा सकी।

सझ सपत्तो न्रपति वर, नव-नव-रस 'अरपत।
वर पृथिराज नरिंद दुति, सो ओपम कवि कत॥ २२०॥

शब्दार्थ:—सपत्ते=हुँपचा। नव नव-रस=नव ही रस, नूतन प्रेम। अरपत=अर्पित करता, छाता। दुति=प्रतिमा। कत=कांता।

अर्थ—साझ पडने पर श्रेष्ठ राजा पृथ्वीराज नवरस (नूतन प्रेम या भिन्न २ मे नवों रस) अर्पित करता हुआ (छाता हुआ) कान्ता (शशिव्रता) के समीप (वितानमे) पहुँचा। उस समय उसकी प्रतिभा को सोचकर वह (नव रस दायक होने से) कान्ता के समीप कवि स्वरूप था।

कवित्त

घरिय तीन निसि गइय, वार वर-सुक्र सु आगम।
पति परी अरि जूह, वीर विरुझौ अरि जागम॥

कोट खलन सोभै विसाल, साम-सामंत[1] सूर थँभ ।
जस देवल उप्पनौ, वीय-गय गिरी सेत रँभ ॥
प्रथिराज देव—दानव—दलन, लच्छि रूप जद्दव कुँअरि ।
नव रस विलास पूजा करहि, वर-अच्छरि भइ पहुप-सरि ॥ २२१ ॥

आ० पा० १ भीं० पा० का० ।

शब्दार्थः—वार=समय । वर सुक=श्रेष्ठ गृह शुक्र, मीन राशि का (उच्च) शुक्र । पंति=पक्ति । अरि-जूह=शत्रु समूह । वीर-विंथ्यौ-अरि=भिड़ने पर वीरों द्वारा घेरा गया । जागम=जगह स्थल । कोट=दिवाल । खलन=शत्रु । साम-सामत=स्वामी धर्म के धारण कर्ता सामंत । सूर=बहादुर । थँभ=स्तम । जस=यश । देवल=देवालय । उप्पनौ=उत्पन्न हुआ, बना । वीय-गय=दो हाथी । सेत=श्वेत । रँभ=रमा, अप्सरा । देव-दानव-दलन=दानवारि (विष्णु) । वर-अच्छरि=वर कर अप्सरायें, मृत वीरों को वरण की हुई अप्सरायें । पहुप-सरि=पुष्पों की लड़ी, पुष्प माला ।

अर्थः—तीन घड़ी रात्रि जाने के वाद पृथ्वीराज के उच्च शुक्र ग्रह का आगमन हुआ (या श्रेष्ठ शुक्रवार के आगमन की तीन घड़ी रात्रि जा चुकी थी)। इसी समय अरि समूह धराशायी हुआ, फिर भी वीरों द्वारा घेरा जाना पुन' (युद्ध) स्थल बन गया। वहाँ शेष शत्रु ही बुलद दिवाल, स्वामि-धर्म के धारण कर्ता बहादुर सामत ही स्तभ, यश ही दो श्वेत वर्ण (पाषाणके) हाथी, गिरि और अप्सराओं की प्रतिमाओं से युक्त देवालय पृथ्वीराज ही दानवारि देव (विष्णु), यादव कुमारी ही लक्ष्मी और मृत वीरों को वरण कर अप्सरायें ही वहाँ पुष्प मालायें बनगई एवं नव रस ही वहाँ पर सविलास पूजा करने लगा।

भान कुँअरि शशिवृत्त नैन श्रृंगार सु राज ।
वीर रूप सामत, रुद्र प्रथिराज विराजै ॥
चंद अदभ्भुत जानि, भए कातर करुना मय ।
विभछ अरिन समूह, सात[1] उप्पनौ मरन भय ॥
उप्पज्यौ हास अपच्छरि, अमर, भौ भयान भाखी विगति ।
कमधज्ज[2] राव प्रथिराज वर, लरन लोह[1] चितेति[3] रति[4] ॥ २२२ ॥

प्रा० पा० १, ३, ४, पा० भीं० । २ संशोधित ।

शब्दार्थः—रुद्र=रौद्र। चन्द=कविचंद। अदभुत=अद्‌भुत। कातर=कायर। बिभत्र=बीभत्स। उप्पनौ=उत्पन्न हुआ। मरन मय=जिनकी मृत्यु हो गई उनमें। हास=हास्य। अपछरि=अप्सरायें। अमर=देवता। भो=भया, हुआ। भयान=भयानक। भावी-विगति=भविष्य को सोचने पर। कमधज्जराय=वीरचंद कमधज्ज। लरन-लोह=लड़ने को लोहा। चिंते=चिंतन किया चाहा। रति=रात्रि।

अर्थः—जब वीरचंद कमधज्ज और श्रेष्ठ वीर पृथ्वीराज ने रात्रि मे भी लोहा लेना चाहा, तब भानुराय (भानुराय के छोटे भाई पु ज) की कुमारी शशिव्रता के नेत्रों में शृ गार, सामतों मे (वीर रस) शौर्य, पृथ्वीराज मे रौद्र, कविचद मे अद्‌भुत, कायरों में करुणा, शत्रु समूह मे बीभत्स, मृत-वीरों मे शांत, अप्सराओं मे हास्य, और (हिन्दुओं के) भविष्य को सोचते हुए देवताओं मे भयानक रस छागया।

कहै राम रघुवस, सुनौ सामत सूर तुम।
अमर नर न वछहि सु, जुद्ध किन कथ्थ नरिंद भ्रम॥
धार तिथ्थ वर आदि, तिथ्थ काशी सम भज्जै।
असि वरुना तिन मध्य, लोह तेज सम गज्जै॥
सिव सिद्ध जोग सज्जै सकल, अकल अपूरव वत्त इह।
लभ्भ्यौ न वीर जिन ब्रह्म पद, छिनक मद्धि गति लभ्भि इह॥ २२३॥

शब्दार्थः—वछहि=समझना। किन=किसने। धार-तिथ्थ=धार तीर्थ। भज्जै=कहा जाता। असि-वरुना=गगा का असिघाट। लोह-तेज=तेज लोहा, तेज तलवार। गज्जै=गाई जाती कही जाती। सिव=शिव, कल्याण। सिद्ध=सिद्धी, अर्थ। जोग=योग, योग्य। सज्जै=साधन करते, सजाई करते। अकल=अज्ञात। लभ्भ्यो=प्राप्त किया इह=यहाँ।

अर्थः—उस समय रघुवशी रामराय कहने लगा—हे बहादुर सामतो! सुनो, मानव शरीर को अमर नहीं समझना चाहिये। कोई २ भ्रम मे पडा हुआ वीर-क्रीडा को युद्ध कहता है। वास्तव मे धारा-तीर्थ (खड्ग धार द्वारा कट पडना) आदि-तीर्थ-काशी तुल्य कहा गया है। यहाँ पर तेज (पानीदार) तलवार ही सजल-असि-घाट है, वहाँ शिव से सिद्धि प्राप्ति के लिये योगी योग साधन करते है, तो यहाँ कल्याणार्थ (मोक्ष प्राप्ति के लिये) सब योग्य वीर रण के लिए सजाई करते है किन्तु दोनों के अतर मे एक अज्ञात और अपूर्व बात यह है कि काशी मे बस कर जो वीर ब्रह्मपद को प्राप्त न कर सका वह इस धारा तीर्थ द्वारा क्षणमात्र मे मोक्ष प्राप्ति कर लेता है।

पढि सु मंत्र गुरराम, विष्णु-पजर सनाह दिय ।
केस—कंस—मरदन्न, नद नदन लिलाट किय ॥
भोंह भुअद्धर धरि समूह, नैन निज्जिय नाराइन ।
वदन दिद्ध श्री कृष्ण, हृदय थप्पौ मथुराइन ॥
कटि जघ गुविंद रत्ता करन, चरन थप्पि असरन सरन ।
गुर इष्ट समरि प्रथिराज कौ, इह सुदिद्ध रत्ता करन ॥ २२४ ॥

शब्दार्थः—गुरराम=गुरुराम पुरोहित। विष्णु-पजर=एक स्तोत्र जिसके पढने से रत्ता की समावना है। सनाह=उस स्तोत्र स्वरूपी कवच । दिय=दिया, दीक्षित किया। भुअद्धर=पृथ्वीको धारण कर्ता, शेषनाग। समूह=सामने। निज्जिय=निज, अपने। वदन=मुख। दिद्ध=दिया, बताया। थप्पौ= स्थापित किया। मथुराइन=मथुरेश। गुविंद=गोविन्द। गुर=गुरु। समरि=स्मरण करके।

अर्थः—उसी समय पुरोहित गुरुराम ने विष्णु पजर (मंत्रित) कवच से राजा को सुशोभित किया। जिसमें केश-रत्तक कंसारि, ललाट रत्तक नद नंदन, भोहों का रत्तक शेषनाग, नैत्रों का रत्तक नारायण, मुख का रत्तक श्री कृष्ण, हृदय का रत्तक मथुरेश, कटि और जंघाओं का रत्तक गोविन्द और चरणों का रत्तक अशरणों का शरण दाता (प्रभू) को वताता हुआ, इष्ट का स्मरण कर गुरु ने पृथ्वीराज को उसकी रत्तार्थ विष्णु पजर मत्र से दीक्षित किया।

दोहा

सा पजर दिय राजवर, सस्त्र लगै नहिं चाइ ।
कोटि अग घावह घने, भुज प्रमान सो पाइ ॥ २२५ ॥

शब्दार्थः—सा=वह। पजर=विष्णु पजर। चाइ=चाह, इच्छा करके। कोटि=करोड़ों [शत्रु]। घावह=आघात। पाइ=पाया, माना गया।

अर्थः—श्रेष्ठ राजा (पृथ्वीराज) को ऐसे विष्णु पजर मत्र से दीक्षित किया, जिसके कारण इच्छा करके (खूब लक्ष करके) चलाया हुआ शस्त्र भी उसको नहीं छू पाता। करोड़ों शत्रु अग पर विशेष आघात करें, उसी समय वह पंजर भुजाओं के समान रत्ता करने वाला था।

कवित्त

देव दसमि दिन दीन, दीह पद्धरौ नरिंदं ।
गुरु पचम रवि नमो, सुवर ग्यारमो सु चंद्र ॥
त्रतिय थान वर भोम, सुक्र सप्तम वर कीनौ ।
नृप सुपनतर आइ, ईस जीवन वर दीनौ ॥
चौसट्ठि पुट्ठि वि-पुट्ठियन, अरिन सेन सम्मुह परे ।
त्रिघोष सद्द बज्जैत सब, सुवर लोह कड्ढे करे ॥ २२५ ॥

शब्दार्थः—दीन=दिया, दीक्षित किया । दीह=दिन । पद्धरौ=अच्छा । गुरु=बृहस्पति । भौम=मगल । बर-कीनो=बलकीनो । ईस=शिव । जीवन=जीतने का, विजय होने का । चौसट्ठि=चौसठ ही योगिनियें । पुट्ठि=पीठ पर, पक्ष पर । वि-पुट्ठिय-न=अन्य के पीठ पर न रही, विपक्षियों के पक्ष पर न रही । त्रिघोष=जोर से । सद्द=आवाज । बज्जैत=बाजे, बजे । सुवर=उस समय । लोह=लोहा । कड्ढे=निकाला, पकड़ा । करे=कड़े, विषैले ।

अर्थः—विष्णु पजर मन्त्र से राजा को गुरुराम ने देव दशमी के दिन दीक्षित किया, वह दिन राजा के लिये सब प्रकार से अच्छा था । उस दिन राजा पृथ्वीराज को बृहस्पति पाचवा, रवि नवमॉ, चन्द्रमा ग्यारहवॉ, मगम नीसरा और शुक्र सातवॉ (स्थान पर) था । उसी रात्रि को स्वप्न में शिव ने आकर राजा पृथ्वीराज को इस युद्ध मे विजय होने का वर दिया और चौसठ ही योगिनियॉ विपक्षियों को पीठ (पक्ष) पर न रह कर राजा की पीठ (पक्ष) पर हो गई । वे सब शत्रु सेना के सामने होने को तत्पर हुई । उसी समय रण वाद्यों की जोर से ध्वनि होने लगी,और सब ने विषैले शस्त्र पकडे ।

दोहा—(सोरठी)[1]

रिन मते सामत, घाइल[2] अगत जे घने[3] ।
मनो मत्त मयमत, बिना महावत रारि मिलि ॥२२६॥

प्रा० पा० १, पा० । २, घ० । ३ म० ।

शब्दार्थः—रिन=रण । मते=मतवाले । अगत=अपनाया, डटे रहे । मत्त=मस्त । मयमत=हाथी । रारि-मिलि=भिड़े ।

अर्थः—पृथ्वीराज के रण-मतवाले सामन्तों ने विशेष घायल होकर भी युद्ध को इस प्रकार अपनाया (छेड़ा) मानो बिना महावत के मतवाले हाथी भिड गये हों ।

देवप्पति देवह सु दुति, मति सामंत सधंत ।
जिन अच्छरि-सच्छरि कहीं, सो जस बढि वर कत ॥२२८॥

शब्दार्थः–देवप्पति=देव तुल्य है जिनका स्वामी । सधंत=भिडे, युद्ध छेड़ा । जिन=जिनकी । अच्छरि–सच्छरि=अप्सरायें सहचरी हो गई । जस=यश । बढि=बढाया । कंत=स्वामी ।

अर्थः—जिनका स्वामी देव तुल्य है, जिनकी कांति और मति भी देव तुल्य हैं, ऐसे उन सामतों ने युद्ध छेड़ा, किन्तु उनमें से जिन्होंने अप्सराओं को सहचरी बना लिया था (उनसे विवाह कर लिया) उन्हीं, सामंतों के कारण स्वामी (पृथ्वीराज) के यश में वृद्धि हो पाई ।

गाथा

जस–धवली वर वढ्यं, त्रय लोक साधयौ तरयं ।
जानिज्जै परिमानं, सत्तं समुद सींचयौ नीरं ॥ २२९ ॥

शब्दार्थः–जस-धवली=धवल यश, उज्ज्वल यश । सत्त-समुद=सप्त सिंधु । सींचयौ=सींच दिया, परिपूर्ण कर दिया । नीरं=नीर से, नूर से, कांति से ।

अर्थः—जो त्रैलोक्य का साधन करके तर (मुक्त हो) गये, उन्हीं ने राजा के धवल यश मे इस प्रकार वृद्धि की, मानों उन्होंने सप्त-सिन्धु (युद्धवारिधि) को स्वकाति रूपी जल से परिपूर्ण कर दिया हो ।

दोहा

फेरि पंति पारस सुवृत, अगति करी नहिं गत्ति ।
जिन साई साधन[1] कला वनि सामति सुमत्ति ॥२३०॥

मा० पा० १, का० पा० भी० ।

शब्दार्थः-फेरि=फिरसे । पति=पक्ति पारस=घेरा । सुवृत=श्रेष्ठ वृतधारी । अगति=मोक्ष-विमुख । गत्ति=मोक्ष विचार । वनि=बने रहे । सामति=सामत ।

अर्थः—शत्रु–पंक्ति के द्वारा घिर जाने पर भी उन श्रेष्ठ वृतधारी सामतों ने अपनी युद्ध गति को मन्द नहीं किया (मोक्ष से विमुख नहीं हुए, कलंकित नहीं हुए) जो सामत अपने स्वामी की कीर्ति–कला के साधन स्वरूप थे । वे उस समय (घिर जाने पर) भी सुमति पर चलते रहे (दृढता को नहीं छोडा) ।

तिन कुल दग्ग न लग्ग वर, जिन कुल बल चावड ।
दोष रहित अच्छरि- अमी, किए खंड पाखड ॥२३१ ॥

शब्दार्थ:–दग्ग=दाग । अच्छरि–अमी=अमिय मने अक्षर, मधुर वर्ण । खंड=खण्डन, नाश । पाखड=प्रपंच, आडम्बर ।

अर्थ:—जिस वंश को श्रेष्ठ वीर चामडराय का बल है। उन वीरो के कुलको दाग नहीं लग सकता । वह (चामु डराय) शत्रुओ के आडम्बर को इस प्रकार नाश कर देता था जैसे सरस–वर्ण काव्य दोष का अपहरण कर लेता है।

नथ्थह पुव्वी वीर वर, वल वक्रम घट घाइ ।
घरी एक आचिज्ज भौ जोति मग्ग विरुझाइ ॥२३२॥

शब्दार्थ:–नथ्थह=नहीं । पुव्वी=पुरवी, पृथ्वी । बल–वक्रम=बांकावीर । घट–घाइ=शरीरों को नष्ट किये । आचिज्ज=आश्चर्य । भौ=हुआ । जोति–मग्ग=ज्योति मार्ग, ज्योति स्वरूप के रास्ते पर । विरुझाइ=उलझ पड़े, झगड़ने लगे ।

अर्थ:—चामुण्डराय जैसा श्रेष्ठ वीर पृथ्वी पर अन्य नहीं माना गया उस बांके वीर ने बहुत से शत्रु–शरीरों का नाश कर दिया जिससे उनको मृत–आत्मायें ज्योतिमार्ग पर जाती हुई एक दूसरे से उलझ पडी [इतने वीर मारे गये जिनकी आत्माओं का ज्योतिमार्ग पर विचरण करना कठिन होगया] । जिससे एक घडी तक सब आश्चर्यान्वित होगये ।

भारथ्थह नथ्थी सुवृत, अवृत वृत्त गति देव ।
जिन साईं दुज्जन हत्यौ, सो साईं प्रति सेव ॥२३३॥

शब्दार्थ:–नथ्थी=नहीं । सुवृत=श्रेष्ठ वृतधारी । अवृत=आथडते समय, भिड़ते समय ।

अर्थ:— चामडराय जैसा श्रेष्ठ वृतधारी वीर महाभारत युद्ध मे भी नहीं देखा गया, जिसकी प्रतिज्ञा और गति लडते समय देव तुल्य थी । ऐसे उस वीर ने शत्रु का नाश करके अपने स्वामी की सेवा की ।

सेव–देव देवन सुवल, रुवत गिद्ध सु मस ।
मोह-पान माया-सुकृत, उउत मुक्ति तिन हस ॥ २३४ ॥

शब्दार्थ:—सेव-देव=देवता की सेवा करने वाला, देव तुल्य स्वामी की सेवा करने वाला। रुंधत= रोंध दिये, उलझा दिये। मस=मांस, आमिष। मोह-पान=हाथों ने मोह लिये, हाथों पर मोहित हो गये। माया-सुकृत=माया कृत्य, माया कौतुक, माया जाल। मुक्कि=छोड़कर (शरीर छोड़कर)। हंस= आत्मा, प्राण पखेरू।

अर्थ:—चामडराय, देव-तुल्य-स्वामी की सेवा करने वाला था। उसका बल भी देव-तुल्य था। उसने शत्रु-शवों की ढेरी लगादी। जिससे उनके आमिष में गिद्ध समूह उलझ गया और उनके प्राण पखेरु शरीर छोड़कर उड़ गये। उनको, उसके हाथों ने माया-जाली कौतुक के समान मोह लिया (उस के द्वारा मारे गये वीर भी उसके कर-प्रहार पर मुग्ध हो गये)।

हस न हंसिय हस वर, मुगति सरोवर बीय।
तमु छड्यौ उह मंडिकै, निसा भ्रम्म नह नीय॥ २३५॥

शब्दार्थ—हस=प्राणी। न-हसिय=नाश किये, छुड़ा दिये, छुटकारा दे दिया। हस=सूर्य। बीय= दो। उह-मंडिकै=उसमे भिड़कर। नह-नीय=उनके नजदीक न रहो, उससे छुटकारा पागये।

अर्थ:—उस हस (सूर्य) स्वरूपी वीर (चावड) ने मोक्ष-सरोवर मे भेजने के लिये उससे भिडने वाले प्राणियों के, शरीर और सासारिक घोर निशा (अज्ञानता) इन दो से छुटकारा दे दिया।

हूँसाई पर—हथ्थरें, परम तत पद पाइ।
देवग्गिरी भजन मता, रा चामड विरुझाइ॥ २३६॥

शब्दार्थ:—हूँसाई=हूँस करने वाले, इच्छा करने वाले। पर—हथ्थरें=हाथो पड़कर। देवग्गिरी—भजन= देवगिरि (देवास) के उस युद्ध में शत्रुओं का नाश करने। मता=मन्त्रणा इच्छा।

अर्थ:—युद्धेच्छा करके जो विपक्षी वीर बढ़े थे वे उसके हाथों में पड़कर परम तत्त्व को प्राप्त कर गये। इस प्रकार वह वीर चामुण्डराय देवगिरि (देवास) के उस युद्ध में शत्रुओं का नाश करने के लिये इच्छापूर्वक उल पड़ा।

कवित्त

रा चामड जैतसी, रामवड़ गुज्जर वुल्लिय।
वलियभद्र वलिराम, सार धारह मति खुल्लिय॥

कलह किति्ति विस्तरै, राइ निड्डुर सम मारं।
दुहू बोल दुअ सरन[1], मरन किति्ति अवधार[2] ॥
वैकुंठ लेन लिन्नै सु खग, विहँग मग्ग पखी सु गति।
नरसिंह सिंह छडै नहै, सार धार मारह दिपति ॥ २३७ ॥
प्रा० पा० १, २ पा० घ०।

शब्दार्थः—बलिराम=बलराय (नाम विशेष)। मति-खुल्लिय=विचार विकास पाते, प्रसन्न होते। किति=कीर्ति। सम-सार=शस्त्र द्वारा। दुहूँ-बोल=दोनों बातें। दुअ-चरन=दो पक्ति में, दो ढग से। अवधारं=धारण करना चाहिये, पालन करना चाहिये। लेन=लेने को, प्राप्त करने को। लिन्ने=ली, गृहण की। सुगति=तरह। छडै नहै=नहीं छोडते, मुह नहीं मोड़ते। दिपति=दीप्ति, काति।

अर्थः—चामडराय, जैत्रप्रमार, रामराय वडगुज्जर, वलिभद्र, बलराय, और निड्डुराय कहने लगे - शस्त्र-धार से ही हमें प्रसन्नता है और उसी के द्वारा हमें कलह-कीर्ति का विस्तार करना चाहिये। हमारे लिये या तो मरना या कीर्ति को प्राप्त करना इन दो ही बातों का पालन करना है। उपर्युक्त दोनों बातों को सोचते हुए ही हमने वैकुण्ठ-प्राप्ति के लिये दो दो खड्ग इस प्रकार पकडे है, जैसे पक्षियों के उडने के लिये दो पख होते है। अत नर शरीर-धारी सिंह और सिंह शस्त्र की मार से मुँह नहीं मोडता, इसीसे वह तेजस्वी होता है।

गाथा

सार धार दिपत्तो[1], रुधिर छडेव सूरयौ मग्ग[2]।
जानिज्जै मधु मास, मा फूलेव खस्खरो बनय ॥२३८॥
प्रा० पा० १ सर्वप्रति। २ पा०।

शब्दार्थः—दिपत्तो=दिपत्ती, दीप्ति मान होना। रुधिर-छडेव=रक्त उछालकर। सूरयौ-मग्ग=सूर्य के मार्ग पर सूर्य मण्डल के मार्ग पर, सूर्य मण्डल को जाते हुए। मधु मास=चैत्र मास में। मा=वह। फूलेव=फूल, खिल पडे। खस्खरो=खाखरे, पलाश, द्रुम।

अर्थः— शस्त्र से ही बहादुर दीप्तिमान होते है। सूर्य-मण्डल की ओर जाते हुए उनके रक्त रंजित शरीर ऐसे दिखाई देते थे मानो चैत्र मास मे पलाश-खिल पडे हो।

काल दड खडन करै, भिरै बीर आरब्भ।
सुबर बीर मामत गति दे दुवाह पारब्भ ॥२३९॥

शब्दार्थ:—मारथ्थ=युद्ध । सुवर=सवल । दे-दुवाह=दोनों हाय प्रसार कर मिलाना, हाथ मिलाना । पारथ्थ=पार्थ, अर्जुन ।

अर्थ:—सवल वीर (पृथ्वीराज) के उन सामन्तों की युद्ध में ऐसी गति थी कि वे काल-दण्ड का खण्डन करते हुए युद्ध में जुट पड़ते थे और अर्जुन के समान योद्धा से भी हाथ मिलाने की सामर्थ्य रखते थे ।

पारथ पा रत्थिय सुवृत्त, सारथ्थिय चहुआन ।
मानहु वीर समुद्र गति, तिरन मते ध्रम पान ॥२४०॥

शब्दार्थ:—पारथ=पार्थ । पा=पाकर । रत्थिय=रथी । सुवृत=व्रतधारी । मते=मन्त्रणा । ध्रम-पान=धर्म के वल पर ।

अर्थ:—वे व्रतधारी वीर अर्जुन के समान ही रथी थे । उन्होंने कृष्ण तुल्य चाहुवान (पृथ्वीराज) को सारथी पाकर अपने धर्म के वल पर वीरता के समुद्र को तैरने की दृढ़ मन्त्रणा मन में करली ।

ध्रम-पार सामत वर, उदै अस्त भौ भान ।
वहुरि पग पारस फिरिय, वल न घट्यौ चहुआन ॥२४१॥

शब्दार्थ:—धर्म-पार=धर्म की पाज, धर्म के पालन कर्ता । भान=भानु, सूर्य । वहुरि=फिर से, या-लौटकर । पग=पगु सेना, कमधज्जी सेना । पारस-फिरिय=आस पास होगई, घेर लिया ।

अर्थ:—सूर्य उदय होकर अस्त भी हो गया, किन्तु युद्ध वंद न हुआ, पंगुराज (कमधज्ज) की सेना ने फिर घेर लिया, किन्तु श्रेष्ठ सामत जो धर्म की पाज-स्वरूप थे उनके कारण चाहुवान राजा की शक्ति कम न हो पाई ।

कवित्त

वल छंड्यौ नवि राज, सूर उभ्भै दुअ पासं ।
जंघारौ रा-भीम, स्वामि सन्नाह सुभासं ॥
दुहु वांहां सामंत, दून दह दहुँ अधिकारिय ।
अमर बंध खावास, खग्ग खोल्यौ खिम्भि सारिय ।

जंघार राव जोगिन्द बर, भुगति मुगति अप्पन अनिय।
तामस न बुमयौ दोउ सेन कौ, बजि निसान आभा धुनिय ॥२४२॥

शब्दार्थ:—नवि=नहीं। सन्नाह=कवच। दुहुँ-बाहां=दोनों ओर, दोनों पार्श्व में। दून-दह=दुवन दह, दुर्जनों को दग्ध करने वाले, शत्रुओं को दग्ध करने वाले। दहुँ=दोनों (शत्रुओं को दग्ध करने और स्वामी की रक्षा करने)। अधिकारिय=अधिकारी, योग्य। बध=बंधु। खावास=खवास, अग रक्षक। खिजि=क्रोध में आकर। सारिय=सारधारी, लोहधारी। अप्पन=अर्पण करने, देने। अनिय=अनी, शत्रु सेना। निसान=नक्कारे। आभा=बादल, नभ। धुनिय=प्रतिध्वनित कर दिया, या थर्रा दिया।

अर्थ:—चाहुवान राजा की शक्ति कम नहीं हुई, उसके बहादुर सामंत दोनों ओर खड़े होकर शत्रुओं से लोहा लेने के लिये अड़ गये। अड़े हुए सामंतों में से जंघारा भीम स्वामी के लिये कवच तुल्य था वह और अन्य भी राजा के दोनों पार्श्व मे डटे हुए वीर शत्रुओं को दग्ध करने और स्वामी की रक्षा करने के अधिकारी (योग्य) थे। उसी समय कमधज वीरचन्द के अग रक्षक का भाई लोहधारी अमर ने क्रोध में आकर खड्ग के कसों को खोला। इधर से श्रेष्ठ योगी-स्वरूपी जंघारा भीम ने शत्रु सेना की भक्ति-मुक्ति अर्पण करनी शुरु की (काटमार शुरु की)। रात दिन लड़ने पर भी दोनों ओर की सेनाओं का क्रोध शान्त न हुआ। और उन्होंने नक्कारे बजाकर नभ-मण्डल का प्रतिध्वनित कर दिया (थर्रा दिया)।

गाथा

आभा सुनिय सु देवो, वज्जे साराइ मु दरे बज्जे।
नीसान-निसि सार, साहार पारखा होई ॥ २४३ ॥

शब्दार्थ:—वज्जे=बाजे, वाद्य। साराइ=मार, लोहा। मुदरे=मद मद, मधुर। नीसान-निसि=रात्रि के नक्कारे। सार-साहार=लोहे द्वारा मारे जाकर। पारखा-होई=परीक्षा हुई, परीक्षा में उत्तीर्ण हुए।

अर्थ:—नभ-स्थित देवताओं ने रण वाद्यों के साथ २ शस्त्रों की मधुर ध्वनि को सुनी, रात्रि मे बजने वाले उन नक्कारों की ध्वनि के साथ २ खड्ग द्वारा मारे जाकर वीर परीक्षा मे उत्तीर्ण होने लगे।

दोहा

पर-परखरत पवित्र गति, रा निड्डुर राठौर।
वधु दोप जान्यो नहैं, स्वामि ध्रम पति मौर ॥ २४४ ॥

शब्दार्थ—पर-पख्खरत=पाखरें पड़ने पर। बधु-दोष=भाई से लड़ने का दोष। जान्यो नहै=नहीं आना, ध्यान नहीं दिया, परवाह न की। पति=लज्जा। मौर=मेरी।

अर्थः—घोड़ों पर पाखरें पड़ने पर पवित्र गति वाले निडडुरराय ने अपने भाई के साथ भिड़ पड़ने के दोष की ओर ध्यान नहीं दिया, (वीरचन्द और निड्डुरराय दोनों कमधज थे; किन्तु उसने पृथ्वीराज का साथ न छोड़ा) और उसने कहा, मेरी लज्जा तो स्वामी-धर्म के धारण करने सें ही है।

गाथा

जग्गिय स्वामित काम, भ्रमिय बीर वीर विस्तार।
तिम तिम तामस तेज, सेन सज्जि मुक्ति सा-धीर॥ २४५॥

शब्दार्थः—जग्गिय=जागृत हुए। स्वामित=स्वामी के कार्य के लिये। भ्रमिय=भ्रमित करते हुए। वीर विस्तारं=वीर रस को विस्तृत कर दिया। तिम-तिम=जैसे २, तैसे २। तामस=तमोगुण, क्रोध। सेन-सज्जि=सेना में प्रचार कर दिया, सेना में सज दिया। मुक्ति=मोक्ष। सा-धीर=उन धीर वीरों ने।

अर्थः—इस प्रकार वे धीर-वीर सामन्त स्वामी के कार्य के लिये उत्तेजित हो गये। विपक्षी-वीरों को भ्रम में डालकर उन्होंने वीर-रस को फैला दिया। जैसे २ उन धीर-वीरों में तमोगुण बढता गया, वैसे ही सेना में उन्होंने मोक्ष का प्रचार बढा दिया (तेजी से मारने लगे)।

मुक्ती धारन धीरं, पंजर-सज्जेव मथ्थनो-परय।
वर ससिवृत्त सु व्याहं, दाहं देहाइ दुख्खनो तजय॥ २४६॥

शब्दार्थः—पजर-सज्जेव=शरीर से सुसज्जित हुए। मथ्थनो-परय=विपक्षियों का मथन करने लगे। दाह देहाइ=शारिरिक दाह, सासारिक जलन। दुख्खनो=दुःख। तजय=छोड़ दिया।

अर्थः—मोक्ष-प्राप्ति के लिये वे वीर अपने शरीर से सुसज्जित होकर विपक्षियों का नाश (मंथन) करने लगे और पवित्र शशिव्रता कुमारी के विवाह के बहाने उन्होंने शारिरिक दाह (सांसारिक जलन) के दुःख को छोड दिया।

देह दुख्ख कट्टिय[1] सुक्रम, रन जित्तय स्रुग-पान।
पंच ढ्ढून पंचो परिग, सुनिय वीर रस पान॥ २४७॥

[1] पा० १ पा०।

शब्दार्थः—कट्टिय=काट दिये, दूर किये। सुक्रम=श्रेष्ठ कर्मों द्वारा, या भली प्रकार से बढकर। सुग-पान=स्वर्ग को प्राप्त किया। पच-दून-पचों=पांच, दो और पांच, कुल बारह (या पंच दून [१०] और पचौ [५] कुल पन्द्रह)।

अर्थः—अपने श्रेष्ठ कर्मों द्वारा (या भली प्रकार से बढ़कर) दैहिक दुखों को दूर कर दिया और युद्ध में विजयी होते हुए उन्होंने वीर रस का पान कर स्वर्ग प्राप्त किया। ऐसे-वीरों की कुल संख्या द्वादश (या-पन्द्रह) सुनी गई।

गाथा

परियं बीर ति नाम, सुर-ति त्री-दूहन दह घट्टी।
सजले सूर सुधारो, भारी भरनेव भारथ-भिरय ॥ २४८ ॥

शब्दार्थः—ति=उनके। सूर-ति=वे बहादुर। त्री दूहन=तीन दूने, छ। दह घट्टी=दस घड़ी। सजले=सजल, पानी युक्त, नूर युक्त। भरनेव=भिड़ पड़ने वाले। भारथ-भिरय=युद्ध में जुट पड़े।

अर्थः—जो बहादुर घायल होकर दस घडी तक पृथ्वीपर सोये रहे, उनकी संख्या छ है, वे तेजस्वी वीर भयकर युद्ध करने वाले थे। जो युद्ध मे जूझ पडे (जिनके नाम निम्न हैं) वे ये थे.—

कवित्त

परत देव-वर-क न, सरन-रख्खन साई वर।
परि मुख-रन पुण्डीर, सार सारग देवधर॥
पर्‌यौ वीर वलिभद्र, जैत[1] पॉवार पवित[2]।
धार-धनी चढि धार, सलख लख्खन दुति मत[3]॥
लाखन्न सिंह भुज पाइ वर, अरिन पाइ उट्ठाइ लिय।
धनि-धन्नि सूर सामत वर, जुग जीरन जीरन सु जिय॥ २४६ ॥

प्रा० पा० १ से ३ स०।

शब्दार्थः—देव-वर-कन=श्रेष्ठ देव कर्ण। सरन-रख्खन=रक्षा करने वाला। साई=स्वामी। मुख-रन=युद्ध के समक्ष, युद्ध मे सामने रहके। सार=लोहा। धर=धारी। पॉवार=प्रमार। धारधनी=धारराज वंशज। चढि-धार=खड्ग धारा का आघात सहता हुआ। पवित=पवित्रता। सलख लक्खन=सलखानी लक्खन। दुति मत=कान्ति युक्त, नूर युक्त। भुज पाइ वर=जिसकी भुजायें श्रेष्ठ पाई जाती थीं। पाइ-

उठ्ठाइ-लिय=पैर उखाड़ दिये, मगा दिये । धनि-धन्नि=धन्य है । जुग=युग, कल्प । जीरन=जीर्ण, पुराना, अंतिम अवस्था युक्त, अंत । जिय=जीव ।

अर्थ:—स्वामी की रक्षा करने वाला देव कर्ण,युद्ध मे सामना करने वाला लोह-धारी सारगदेव पुडीर,वीर वलभद्र,वीर जैत्र प्रमार,खड्ग का आघात सहने वाला तेजस्वी धार-राजवंशज सलखानी लक्खन, और श्रेष्ठ भुजाओं वाला लाखनसिंह नाम के छः सामत घायल होकर धराशायी हुए। कल्प एवं जीवन का अत संभव है किन्तु धन्य है ऐसे सामंतों को जिन्होंने ऐसी अवस्था में भी शत्रुओं के पैर उखाड़ दिये (भगा दिये, अपनी ख्याति को अमर कर दिया)।

दोहा

जुग जीरन जीरन सु वर, चरन किन्ति सा किद्ध ।
सुवर वीर सामन्त वर, गत्ति न पुज्जै सिद्ध ॥२५०॥

शब्दार्थ:—सुवर=श्रेष्ठ पुरुष । चरन=चलती फिरती, विचरण करती हुई, फैलती हुई । किद्ध=की । सुवर=सवल । पुज्जै=पहुँचते ।

अर्थ — कल्प का और श्रेष्ठ-पुरुषों का अन्त निश्चय है, किन्तु जिन्होंने स्व-कीर्ति को ससार में फैला दिया, ऐसे सबल और श्रेष्ठ, वीर-सामन्तों की गति को सिद्ध भी नहीं पहुँच सके।

सिद्ध न पूजै गत्ति तिन, छाया मोहन-माय ।
इन छाया-मडी तह, ध्रम-छांह-रहि छाइ ॥२५१॥

शब्दार्थ:—पूजै=पहुच सकते । छाया=छागये, बसे हुए । मोहन-माय=मोहनेवाली माया । छाया-मडी=छागये, वसेरा लिया । ध्रम-छाह=धर्म की छाया ।

अर्थ:—मोहने वाली माया की छाया में वसे हुए सिद्ध, उन वीरों की गति को नहीं पहुँच सकते; क्योंकि उन्होंने जहा पर धर्म की छाया छाई हुई थी उसी के नीचे वसेरा लिया (वे माया से विरक्त और स्वधर्म के अनुरक्त थे)।

ध्रम छांह रहि छाइ वर, करिय सूर सामत ।
सो करनी करिहै न को, करिय वीर गुन मंत ॥२५२॥

अर्थः—उस समय श्रेष्ठ सामंतों की मति एक मात्र खड्गाघात में रत होगई। तमोगुण से प्रेम रखने वाले वीरों की नाशकारी खड्ग उठते ही प्रहार होना शुरु हुआ।

दोहा

अकुरि बीर शरीर गति, सुभट-सु-थट्ट सुभट्ट।
अघट-घट्ट नईं-कियुँ परै, परे बीर दहपट्ट॥ २५८॥

शब्दार्थः—गति=मोक्ष। सुभट-सु-थट्ट=वीर समूह। सुभट्ट=सामंत। अघट-घट्ट=क्रूर ढंग, भयानक स्वरूप। नईं-कियुँ-परै=नहीं कह सकते, अकथनीय। दहपट्ट=द्रह बाट, नाश।

अर्थः—वीरों के शरीर में मोक्ष-प्राप्ति की इच्छा अंकुरित होगई जिससे सामंत और उनके वीर-समूह का अकथनीय भयानक स्वरूप होगया। उनके द्वारा शत्रु-वीर नष्ट होकर धराशायी होने लगे।

कवित्त

हाइ हाइ आरिष्ट, दिष्ट अवरिय सूर बर।
मुकि करवल चामड, करहु गोलक उप्पर धर॥
गोलक तु वा भग्ग, वध भग्गे चहुआन।
श्वेत छत्र दिखि सीस, पर्यौ कमधज्ज निधान॥
घरि इक्क इक्क विभ्रम भयौ, सार सार प्राहार वर।
जानैकि मत्ति दतिन कला, कूट-मंत्र धारह सुवर॥२६६॥

प्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थः—आरिष्ट=अरिष्ट। दिष्ट=द्रष्टि। अवरिय=उठी। मुकि=छोड़ी, चलाई, प्रहार किया। करवल=करवाल, खड्ग। गोलक=गोल सेना, अग्र रक्षक सेना। तु वा=गोलाकृति घेरा। भग्ग=टूट गया। वध-भग्गे=बंधन टूट-गया, घेरा टूट गया, मुक्त हो गया। पर्यौ=उमड़ पड़ा। कमधज्ज=वीरचन्द। निधान=निधन करने को, नाश करने को। जानैकि=मानो। मत्ति-दतिन=मतवाले हाथियों का। कला=कौतुक। कूट मंत्र=कूटनीति। धारह=खड्ग ने।

अर्थः—उसी समय श्रेष्ठ वीर चामडराय की दृष्टि शत्रुओं की ओर उठी जिससे हाय अरिष्ट? हाय अरिष्ट?? ऐसा शोर गुल मच गया। उसने अपनी खड्ग का प्रहार

कमधज वीरचंद की गोल (अग रक्षक) सेना पर किया, जिससे उसका घेरा टूट गया, और चाहुवान नरेश उस घेरे से मुक्त हो गया। पृथ्वीराज के सिर पर श्वेत छत्र सुशोभित हुआ, यह देख कर वीरचन्द कमधज्ज नाश करने के लिये उसी ओर बढ़ चला और एक दूसरे पर शस्त्र प्रहार होने लगे, जिससे एक घड़ी तक युद्ध-भूमि मे भ्राति छागई उससमय वीरों की खड्ग ने कूट नीति को अपनाया जिससे ऐसा ज्ञात हुआ मानो मतवाले हाथियों का कौतुक छिड़ा हो।

दोहा

धाराहर वित्त्यौ सुधर, चर-चरिष्ट चवुरग।
रा निडडुर रट्ठौर बर, रुप्यौ खेत भ्रत भंग ॥ २६१ ॥

शब्दार्थः—धाराहर=खड्गाघात। वित्त्यौ=बीता, हुआ। चर-चरिष्ट=चल चली, चलायमान हो गई। चवुरंग=चतुरग, चतुरगिनी सेना। रट्ठौर=राष्ट्रवर। रुप्यौ-खेत=रण क्षेत्र में डट गया। भ्रत-भग=भाई के नाश के हेतु।

अर्थः—इस प्रकार खड्गाघात हुआ। जिससे चतुरंगिनी सेना चलायमान हो गई। यह देखकर अपने सगोत्रीय बधु (वीरचन्द) के नाश के हेतू श्रेष्ठ वीर राष्ट्रवर निडडुरराय रणक्षेत्र में आ डटा।

गाथा

पंगुर पाइ-सु धारं, पगुर-भयौ चित्त तिन वीर।
नह पगुर कर नैन, पगुर नां सूरयौ वैन ॥ २६२ ॥

शब्दार्थः—पगुर=पंगु वशज, राष्ट्र वर वीर निड्डुर और वीरचन्द। पाइ-सु धारं=पैर जमाया। पंगुर-भयौ=चंचल हो गये। पगुर=शिथिल। सूरयौ=बहादुरों के।

अर्थः—उन पंगु-वशजों [निडडुरराय और वीरचन्द] ने युद्ध-स्थल में दृढतापूर्वक पैर जमाये उस समय एक बधु दूसरे बंधु को देखकर क्षणमात्र के लिये दोनों वीरों के चित्त चचल हो गये, किन्तु युद्ध करते हुए उनके हाथ, नैत्र और वचनों में पंगु-पन [शिथिलता] नहीं आ पाया [अर्थात् कर-प्रहार होता रहा, क्रूर दृष्टि एक दूसरे की ओर उठती रही, और मुख से मार २ शब्द उच्चारण होता रहा]।

दोहा

बयन सूर चचल भइय, निहचल पग सिर नाग ।
अदग दग्ग-भजै सकल, करत अदग्गन-दाग ।। २६३ ।।

शब्दार्थः—बयन=वियन, दोनों । सिर-नाग=शेषनाग के सिर पर, पृथ्वी पर । अदग=निष्कलंक । दग्ग-भजे=कालिमा को मिटाकर । अदग्गन दाग=निष्कलक वीरों को कलक्ति कर दिया ।

अर्थः— शेषनाग के सिर [पृथ्वी] पर दृडता पूर्वक पैर देते हुए दोनों वीर [निड्डुर राय और वीरचद] [युद्धार्थ] चंचल (आतुर) हो गये और स्वयं निष्कलक हो, वश की कालिमां को मिटाते हुए उन्होंने निष्कलक वीरों को कलकित कर दिया ।

अदग दग्ग मग्गिय-सुकुत, बरबीरा-रस पान ।
छित्ति छित्ति स्वा-मित्त गति,मुकति सु अप्पन वान ।।२६४।।

शब्दार्थ-मग्गिय-सुकृत=सुकृत मार्ग, मोक्ष मार्ग । बीरा-रस-पान=वीर रस के बल पर । छित्ति=छत्री, क्षत्री । स्वा-मित्त-गति=स्वगति मित्त, स्वगति मन्द । मुकति=मुक्ति, मोक्ष । अप्पन=अर्पण । वान=वानि, प्रतिज्ञा ।

अर्थः—उन वीरों ने वीर रस के बल पर मोक्ष समर्पण की प्रतिज्ञा का पालन किया और पृथ्वी पर जिन क्षत्रियों की स्वगति (मोक्षगति) मन्द है, उन निष्कलक वश-वाले वीरों को कलकित कर उन्हें सुकृत मार्ग (मोक्ष) की प्राप्ति करा दी ।

कवित्त

घरी इक्क इक रंग रग सव-रथ्थ विछोरिय ।
पगी जानि पारक्ख, जेम दरिया हिल्लोरिय ।।
यों खग धपि दोउ सेन, सूर सामत विलोकिय ।
मनों मत्त उठि दृष्टि, पीय वीयोग वि-सोकिय ।।
भुम्मयौ धार धारह धनां, सुनिय कित्ति मित्तह पनौ ।
सामन्त सूर सामत गुन, सु वर चीर मत्ताह[1] सुनौ ।। २६५ ।।

१-मा० पा० १ का० ।

शब्दार्थः—इक रगा=एक रग, स्थिर विचार वाला । रग=विनोद । सव रथ्थ=समस्त रथियों के । विछोरिय=छुड़ा दिये, मिटा दिये । पगी=थाह लेने वाला । पारक्ख=पारख, दक्ष (तेज) । जेम=

जैसे। दरिया=दरियाव, समुद्र। खग-धपि=खड्ग को तृप्त करके। वि-सोकिय=दो सौकें, दो सवतियें। धार=खड्ग धारा (द्वारा)। धारह धनी=धार राज वंशज [जैत्र प्रमार या कोई अन्य प्रमार वीर]। मिचह-पनो=कमी।

अर्थ:—एक घड़ी तक उस समय वीरों ने एक रंग [स्थिर विचार वाले] होकर समस्त विपक्षी वीरों के युद्ध-विनोद को मिटा दिया। सैन्य-समुद्र का इस प्रकार उन्होंने मंथन (नाश) कर दिया, जैसे थाह लेने वाला दक्ष तैराक समुद्र को हिलोरे देता है। दोनों सेना के वहादुर सामंत अपनी २ खड्ग को तृप्त कर इस प्रकार विपक्षियों की ओर देखने लगे, मानों पति वियोग को स्मरण कर दो मस्त सवतियों (सोतों) की दृष्टि एक दूसरी पर पडी हो। उसी समय स्व-पक्ष की कीर्ति में कमी होती देख धार-राज वंशज (जैत्र प्रमार) खड्ग की धार को सहन करता हुआ भूमने लगा। वह श्रेष्ठ वीर सामतों के समान ही वहादुर, गुणज्ञ और मस्ताना सुना गया।

दोहा

फनि मनि लुट्टन काज गुर, भौ गुरहत गुर-देव।
सार सूर सम्हौ भिरिय, वरन पथ्थ मुख सेव ॥२६६॥

शब्दार्थ:—फनि-मनि=शेषनाग के सिर-स्थित (पृथ्वी के) मणि तुल्य वीरों को। लुट्टन= लूटने, कोसने। गुर=भारी, वड़े। भौ-गुरहत=गुरुत्वयुक्त हुआ। गुर-देव=भारी वीर देवक[?]। वरन=वर्णन किया गया, कहा गया। पथ्थ=पार्थ, अर्जुन। सेव=सो, वह।

अर्थ:—उसी समय शेष नाग के सिर पर (पृथ्वीपर) स्थित मणि तुल्य वडे २ वीरों को कोसने के लिये भारी वीर देवकर्ण प्रमार ने गुरुत्व धारण किया, और लोह-धारी-वीर शत्रुओं से सामना करता हुआ वह अर्जुन के तुल्य कहा गया।

गाथा

लग्गिय त्रासन सूर, वीर सुभटाइ मत्तयो-दत्ती।
जानिज्जै परिमान, भारथ्थ वीरयो-कत्ती ॥२६७॥

शब्दार्थ:—मत्तयो-दती=मतवाले हाथी। जानिज्जे=जाना गया, माना गया। परिमानं=प्रमाण, समान। भारथ्य=महाभारत युद्ध समय का। वीरयो-कति=कांति धारी वीर, नूर धारी वीर।

अर्थः—वह वीर, विपक्षी वीर योद्धाओं और मतवाले हाथियों को त्रस्त करने लगा, उस समय वह ऐसा माना गया मानों महाभारत युद्ध-समय का तेजस्वी वीर हो।

दोहा

हल-देवत विछुरत्त बर, परखिय जपहि जोग।
सुबर सूर सामत गुन, श्रुग्ग मत्त मति भोग॥ २६८॥

शब्दार्थः—हल-देवत=हलदेव, हलधर, बलराम। विछुरत्त=विछुड़ते, दूर होते, विरुद्ध होते, विमुख होते। जंपहि=कहते हुए, बोलते हुए, उपदेश देते समय। जोग=जोगी, योगी। श्रुग्ग=स्वर्ग।

अर्थः—विमुख होते समय वह हलधर (बलराम) सा, और बोलता (उपदेश वाक्य कहता) हुआ योगी सा दिखाई देता था। एव स्वर्ग-सुख को भोगने केलिये उस मतवाले की मति, बलवान बहादुर सामत सी कही जाती थी।

भोग जोग दुअ विद्धि-विध, दान भुगति सगाइ।
त्रीय कहै नट्ठे सु त्रिय, त्रियन-गती मुह पाइ॥ २६६॥

शब्दार्थः—विद्धि=विधि। विध=विधि। भुगति=भक्ति। सगाइ=सग, साथ। त्रीय-कहै=त्रय वेद के कथन किये जाते। नट्ठे-सु-त्रिय=त्रयताप का नाश होता। त्रियन-गती=त्रय गति, स्वर्ग प्राप्ति, सूर्य मण्डल की प्राप्ति और सूर्य मण्डल से परे ब्रह्मपद प्राप्ति।

अर्थः—उसके पास भोग, योग, दान और भक्ति साथ २ सुशोभित थी, उसके समीप तीनों वेदों का कथन किया जाता जिससे त्रिताप का नाश होता एव उसके समक्ष होने वाले (पास रहने वाले, सामना करने वाले) त्रिगति (स्वर्ग, सूर्य मण्डल एव सूर्य मण्डल से परे ब्रह्मपद) को प्राप्त करते थे।

त्रिय न गत्ति पावहि पुरुष, धरन—धरत्तिय ताम।
सूर धीर सुरह भिरत, वर विश्राम तजि जाम[1]॥ २७०॥

[1] मा० पा० १ पा० का० भीं० घ०।

शब्दार्थः—धरन-धरत्तिय=पृथ्वी को धारण कर्ता, पृथ्वीपर अधिकार रख सकना। ताम=तहाँ तक। विश्राम=शान्ति, सुख। जाम=जहाँ तक।

अर्थः—कवि कहता है जहाँ तक सुख पूर्वक रहना छोड़कर धैर्यवान योद्धा, योद्धाओं से नहीं भिड़ पड़ता, वहाँ तक वह न तो त्रय गति (स्वर्ग, सूर्य मण्डल

और उससे परे की गति) को प्राप्त कर सकता है और न पृथ्वी को ही धारण कर पाता है (पृथ्वीपर अधिकार नहीं रख सकता)।

भुमि विभॅग किन्निय[1] सुव्रत, देवत्तह-प्रति देव ।
महन रंभ मच्च्यौ सुभर, गुन-श्रमंन ग्रभ-भेव ॥ २७१ ॥

प्रा० पा० १, पा० घ० ।

शब्दार्थ:—भूमि विभॅग=भूमि नाश का। किन्निय=किया। सुव्रत=श्रेष्ठ व्रत, प्रतिज्ञा। देवत्तह-प्रति=देवताओं के प्रति, देवताओं के समक्ष, देवताओं को साक्षी करते हुए। महनरम=महान आरंभ, महान युद्ध। मच्च्यौ=ठाना। गुन-श्रमन=गुण श्रवण करने पर। ग्रम-भेव=गर्व होता।

अर्थ:—उस देव प्रमार ने देवताओं के प्रति शत्रु के भूभाग का नाश करने की प्रतिज्ञा की और महान युद्ध ठाना, जिसके गुणों को श्रवण करने पर प्रत्येक को गर्व हो आता है।

मरन सीस मुक्क्यौ सु न्रसु, रस-पारायन देव ।
दुतिय-मुतिय दुति वैर तिनु, भ्रम भग्गा जुग-भेव ॥ २७२ ॥

शब्दार्थ—मुक्क्यौ=छोड़ा, दिया। रस-पारायन=वीर रस का पारायण किया, युद्ध किया। दुतिय-मुतिय=दो वार मुक्ति, इस युद्ध में घायल हो मृत-तुल्य होकर एक वार और वाद में जीवित रह अन्त समय दूसरी वार मुक्ति का अनुभव किया। भ्रम भग्गा=भ्रांति को दूर की। जुग-भेव=दोनों के भेद की, दोनों के अन्तर की, स्वर्ग और पृथ्वी के अन्तर की।

अर्थ:—वह इतना घायल हुआ कि मृत तुल्य हो गया। फिर भी (शिव को) शीश समर्पित नहीं कर पाया [जीवित रहा], उसने रस [वीर रस] का पुनः आस्वादन [फिर से युद्ध] किया। वह मृत-तुल्य हो मोक्ष स्थान पर पहुँच पुनः सावधान हो गया और जीवित रह कर वाद में मोक्ष प्राप्त कर पृथ्वी और स्वर्ग के अन्तर को जीवित ही जान सका। और मन से उसने भ्रांति को दूर किया।

अवृत-वृत्त विभ्रम भइग, हय गय दल[1] चतुरग ।
चाहुआन कमधज्ज सों, भय वीरा रस भॅग ॥२७३॥

प्रा० पा० १ पा०, का० भीं० घ० ।

शब्दार्थः—अवृत-वृत्त=भिड़ते समय, भिड़ने की प्रतिज्ञा करने पर। भइग=हो गये। भो=हुआ। बीर-रस-भग=वीर रस का अन्त, वीर रस की इति श्री।

अर्थः—जब स्वयं चाहुवान (पृथ्वीराज) और कमधज (वीरचन्द) भिडे, तब वहाँपर हाथी, घोड़े और चतुरंगिनी सेना भ्रमित हो गई और वीर रस की इतिश्री होगई।

गाथा

भौ बीरा रस भंग, जगं जुगतीय बीर सुभटाई।
सद्धिर सुद्धिर सु घ ं, सा-ठट्टई घट्टयौ भगं ॥२७४॥

शब्दार्थः—जुगतीय=जागृत होने पर, उत्तेजित होने पर। सद्धिर=सधीर, धीर वीर। सुद्धिर सुघट= सुन्दर शरीर धारी। सा-ठट्टई=वे करने लगे, उनका होने लगा। घट्टयौ-भग=शरीर नाश।

अर्थः—वीर योद्धाओं के युद्धार्थ सावधान होने पर वीर-रस की इति श्री हो गई और उस समय सुन्दर शरीर-धारी वीर वीरों के सुन्दर शरीरों का नाश हो गया।

अस्तमितं वर भानु, पायानौ परम संतोष।
जानिज्जै जस बधुअ[1], नव चदन तिलकयौ दीय॥ २७५॥

प्रा० पा० १ सर्वप्रति।

शब्दार्थ—अस्तमित=अस्तहुआ। भानु=भानू, सूर्य। पायानौ=पयान, प्रयाण, लौटना। वधुअ=विधु, चन्द्रमा, या वधु। नव=नवेली, नव वधु, या नूतन।

अर्थः—सूर्यास्त होने के बाद वीरों को युद्ध स्थल से लौटने पर परम संतोष हुआ। उस समय स-चन्द्र-निशा से ऐसा भासित हुआ मानों नववधु ने भाल पर चन्दन का तिलक किया हो।

दोहा

निसि-गत वञ्छे भान वर, भँवर चक्कि अरु सूर।
मतह मत्त पयान-गति, वर भारथ्थ-अँकूर॥ २७६॥

शब्दार्थः—निसि-गत=रात्रि की समाप्ति। वञ्छे=चाहते। भान-वर=श्रेष्ठ सूर्य श्रेष्ठ सूर्योदय। भवर=भ्रमर। चक्कि=चकवाक। सूर=बहादुर। मतह-मत्त=मतवाली मन्त्रणा, उन्मत्तता युक्त मन्त्रणा। पयान गति=लौट जाने की हालत में भी, या रवाना होने के विषय में। भारथ्थ अँकुर=युद्धेच्छा प्रवृत्ति।

अर्थः—रात्रि की समाप्ति और श्रेष्ठ सूर्योदय का होना भ्रमर, चक्रवाक और बहादुर ये तीनों सदा चाहते हैं। अतः रात्रि होने पर युद्ध-स्थल से लौट जाने पर भी वीरों में उन्मत्तता युक्त मत्रणा और युद्धेच्छा होती रही।

कवित्त

कुमुद उघरि मूंदिय सु, बधि सतपत्र प्रकारय।
चकिय चक्क बिच्छुरहि,चक्कि शशिवृत्त निहारय॥
जुवती-जन चढ़ि काम, जाहि कोतर तर पखी।
अवृत्त वृत्त सुंदरिय, काम वढ्ढिय वर अंखी॥
नव नित्त हंस-हसह मिलै, विमल चंद उग्गयौ सु नभ।
सामत सूर न्रप रक्खि कै, करहि वीर विश्राम सभ॥२८७॥

शब्दार्थः—प्रकारय=प्राकार। चक्कि=चकित। जुवती-जन=युवास्त्रियों के पतियों में। चढ़ि-काम=काम जागृत हुआ। जाहि=जाने लगे। कोतर-तर=कोटरों में। पंखी=पक्षी। अवृत=आवृत्त, लगातार। वृत्त सुंदरिय=सुन्दरियों का समूह। अंखी=आखों में, नैत्रों में। नव-नित्त=हमेंशा नूतन बने रहने वाले प्रेमी-प्रेमिका। हस-हंसह=हँस हँस कर। न्रप-रक्खिकै=राजा को बचाने का उपाय सोचकर। सम=सब।

अर्थः—कुमोदिनी खिल पड़ी, कमल ने प्राकाराकृति मूँदकर (भ्रमरों को) बधन में कर लिया। चक्रवाक दम्पति बिछुड़ गये, शशिवृत्ता की चेष्टा चकित सी दिखाई दी, युवा स्त्रियों के पतियों में ,काम जागृत हो गया। पक्षी कोटरों में जा बसे। सुन्दरी-समूह के नैत्रों से लगातार काम वृद्धि का अनुभव होने लगा, सदा नूतन बने रहने वाले प्रेमी, प्रेमिकायें (छेला और छबीली स्त्रियें) एक दूसरे से हँस २ कर मिलने लगे, और आकाश पर निर्मल चन्द्रमा उदय हुआ। उसी समय बहादुर सामंतों ने राजा (पृथ्वीराज) की रक्षा के विषय मे मंत्रणा की और निश्चय किया कि राजा को सकुशल रवाना करके ही हम सब विश्राम करेंगे।

गाथा

जै-जै घर चहुआन[१], एक होइ सभ्थयौ सूर।
को रक्खे[२] परमान, अरि रक्खैं कढ़्यौ-मच्छी॥ २७८॥

मा॰ पा॰ १ का॰ भों॰ घ॰। २ का॰ घ॰।

शब्दार्थ:—जै-जै=जाइये, जाइये। एक-होइ=एक होकर। को=कौन। रक्खे-परिमान=रक्षा कर सकता है। रक्खे=रहेंगे। कड्ढयौ-मच्छी=मस्ती को उतार कर।

अर्थ—हे चाहुवान नरेश (पृथ्वीराज)! आप घर लौट जाइये। उसके बाद हम सब बहादुर सामत एक होकर युद्ध करेंगे। फिर देखे, शत्रु की कौन रक्षा कर सकता है? हम उसकी मस्ती को उतार कर ही रहेंगे।

दोहा

गोव्यद[1] प्रति व्याह, सनमान सूरयो वृत्ती।
अप-रक्खै अरि जुद्ध, रक्खै स्वामि मरनयौ अप्पं ॥ २७९ ॥

ग्रा० पा० १ घ०

शब्दार्थ:—गोव्यदं=गोविन्द, कृष्ण। प्रति=के साथ। सूरयो-वृत्ती=सूर वृत्ती, वीर वृत्ती, वृतधारी वीर। अप रक्खै=आप धरा रक्खें। अरि-जुद्ध=शत्रु के साथ युद्ध। मरनयौ=मृत्यु। अप्प=आप।

अर्थ:—हे वृतधारी वीर (पृथ्वीराज)! आपका यह विवाह रुक्मणी के साथ कृष्ण का हुआ था उसी प्रकार हुआ है और वैसा ही आपका सम्मान रहा है। इसलिये आप शत्रु के साथ युद्ध को रहने दीजिये, यदि आप युद्ध मे बने रहेंगे तो यह समझ लीजिये कि युद्ध-भूमि मे आपने मृत्यु को बसा रक्खा है।

आप वृत्त इह सूर किय, सूर वृत्त चहुआन।
स्वामि रहै लज्जै जलिनि, भौ वृत-वृत्तिय पान ॥ २८० ॥

शब्दार्थ:—रहै=रह पॉय, धराशाई हों। जलनि=जननी। वृत-वृतिय=एक वृत धारी का वृत दूसरे व्रत धारी के। पाणि, हार्थों में।

अर्थ:—हे चाहुवान नरेश! आपकी प्रतिज्ञा का पालन हम सामन्तों ने किया है उसी प्रकार हमारी प्रतिज्ञा का पालन आपको करना चाहिये। एक दूसरे का व्रतपालन एक दूसरे के हार्थों मे है। हे स्वामी! यदि आप युद्ध-स्थल मे रहते है [धराशायी हों] तो हमारी जननी लज्जित होती है (हमको नीचा देखना पडता है)।

गाथा

कालिन्दी तन-स्याम, लग्गे-नश्थि अगनत स्याम।
भय-अत्रि वृत्तिय ताम, अन्य-जानि तत्तयो-सार ॥ २८१ ॥

शब्दार्थः—तन-स्यामं=श्याम वर्ण सलिल। लग्गे नथ्थि=नहीं लगता। अगनतं=अगणित, विशेष। स्यामं=कालिख, कलुषित। भय-भवि=भय आगया, डर गये, डर कर हट गये। वृत्तिय=व्रतधारी। तामं=तैसे, उसी प्रकार। अन्य-जानि=अन्य सब जानते हैं। ततयो-धारं=तेज लोहा।

अर्थः—कालिन्दी का शरीर श्याम वर्ण का है किन्तु उसे विशेष कलुषित नहीं कहा जा सकता। उसी प्रकार हे व्रतधारी वीर (पृथ्वीराज)! आपके ऊपर डर कर हटने का कोई दोष नहीं लगा सकते, क्योंकि अन्य सभी आपके तेज-लोहास्त्र को जान गये हैं (आपकी शस्त्रख्याति संसार प्रसिद्ध है)।

कवित्त

दुक्ख मानि सो रत्त, सुनहु[1] सामन्त सूर वर।
चन्द उडग्गन काम, सर्‌यौ कहुँ दिक्खि सूर भर[2]॥
भान काम नन सरे, अरुन जो होइ तेज वर।
काम राम नन सरै, हनू कुद्यौति लंक धर॥
नन सरै काम मंगल सु विधि, लो मगल-आकृत्त तप।
सामंत सूर इम उच्चरें, मोहि कट्ठि झुमभझुति अप॥२८२॥
ग्रा० पा० १, ध०। २ पा०।

शब्दार्थः—सो-रत्त=उस रात्रि को। उडग्गन=उडगन, तारे। सर्‌यौ=बन पड़ा, सधा। दिक्खि=देखा गया। भान=भानु, सूर्य। नन=नहीं। सरै=बनता। हनू=हनूमान। कुद्यौति=कूदा। विधि=तरह। मगल-आकृत=मगलाकृति, अरुण वर्ण। इम=ऐसे। कट्ठि-मोहि=मुझे रवाना करके, चले जाने पर। झुम्भझुति=जूझोगे, युद्ध करोगे। अप=आप, तुम।

अर्थः—उस रात्रि मे सामतों के इस प्रकार कहने पर दुःखी हो पृथ्वीराज कहने लगा—हे बहादुर सामंतों सुनो क्या चंद्रमा का कार्य तारागण से हुआ है, सूर्य का काम क्या विशेष अरुणिमा कर सकती है, क्या रामचन्द्र का कार्य केवल हनुमान के लंका में कूद जाने से ही सधा है और क्या मगल ग्रह का कार्य मगलाकृत अरुणिमा से ही बन पड़ा है? उसी प्रकार तुम्हारा यह कथन है, क्या मेरे चले जाने पर तुम युद्ध कर पाओगे?

दोहा

मुहि कड्डिरु तुम रह्यौ वर, जियत जांहि उन थान।
ऐसी रीति अरीत वर, पट्ठी नहँ चहुआन॥ २८३॥

शब्दार्थः—मुहि=मुझे। कढ्ढिरु=विदा करके। उन-थान=अपने स्थान, घर, ढिल्ली। पढ्ढी=पढा।

अर्थ—मुझे युद्ध भूमि से विदाकर के हे सामतो! तुम युद्ध-स्थल मे रहना चाहते हो। किन्तु तुम जानते हो कि युद्ध से हटकर जीवित घर जाने जैसी कुरीति का पाठ इस चाहुवान (पृथ्वीराज) ने कभी नहीं पढा।

गाथा

जम्मन मभिझ सुरगं, सो जपेव सूर तुम तत्त।
दिन भौ रवि[1] सग्राम, सम्मान दारेति एव गस्स ॥ २८४ ॥

प्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थ—जम्मन=जमुना, यमुना। मभझ=में। सुरग=श्रेष्ठरग। जपेव=कहा। तत्त=तत्व युक्त। दिन-भौ-रवि=दिवस और सूर्योदय होने पर। सम्मान-दारेति=सम्मान प्राप्तकर्ता। एव=यह। गस्स=ग्रसेगा।

अर्थः—हे वहादुरों! यमुना के रग के समान तुमने मेरे लिये तत्व युक्त दृष्टात कहा है, किन्तु दिन के साथ २ सूर्योदय होने पर देखोगे कि यह सम्मान प्राप्तकर्ता (पृथ्वीराज) किस प्रकार शत्रुओं को ग्रसता है?

विप लग्गा नृप वैन, हालाहलयौ तप्पयो सूर।
उत्तर दिय नहँ राज, गामनि सभा वुद्धि जन वत्त ॥२८५॥

शब्दार्थः—हालाहलयौ=भयानक। तप्पयो=तेज प्रसारित किया। सूर=सूर्य। गामनि-सभा=ग्रामीणों की सभा। वुद्धिजनवत्त=बुद्धिमानों की वात, बुद्धिमानों का ढग, बुद्धिमानों का मौन गृहण करना।

अर्थः—सूर्य के समान प्रखर तेज प्रसारित करते हुए राजा (पृथ्वीराज) ने जो वचन कहे वे सामतों को विष तुल्य लगे, किन्तु उन्होंने इस प्रकार राजा को उत्तर नहीं दिया जिस प्रकार ग्राम्य सभा (देहातियों की पचायत) मे बुद्धिमान मौन गृहण कर लेता है।

कवित्त

वार [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] न [illegible]-मन।
[illegible] [illegible] [illegible], चलै प्रथिराज हारि-गन ॥

मो भज्जै अरि गज्ज, मोहि गज्जे अरि भज्जै ।
ता छत्री कुल लज्ज, छत्रधरि सिर-हति लज्ज्जै ॥
जं होइ प्रात दिक्खौ सकल, महन रंभ इत्तौ करौं ।
चहुआन चिंत चिंतह सुगति[1], बर भारत गुन विस्तरौं ॥२८६॥

[1] पा० १, का० प० ।

शब्दार्थः—तत्त-मत=तत्व युक्त बुद्धिवाला, या-तत्व युक्त मत्रणा । हारि-गत=पराजय की तरह । मो-भज्जै=मेरे भाग जाने पर । गज्ज=गर्जना करेंगे, दर्प वाक्य कहेंगे । मोहि-गज्जै=मेरे गर्जना करने पर । भज्जै=भाग जाते । ता-छत्री=उस क्षत्रिय का । सिर-हति=शिरपर । ज=जैसा । महन रंभ= महान आरम्भ, भयानक युद्ध । इत्तौ=इतना, ऐसा । चिंत=चिन्तन करने पर ।

अर्थः—फिर भी सामतों ने विदा होने के लिये बार २ कहा, किन्तु तत्व-युक्त बुद्धि-वाले राजा (पृथ्वीराज) ने उनकी बात नहीं मानी और उसने कहा वीरचन्द के सामने से पृथ्वीराज, पराजित व्यक्ति की तरह चला जाय तो जो शत्रु मेरी गर्जना मात्र से भाग जाते हैं वे ही गर्जना करने लगेंगे (दर्प वाक्य कहेंगे) इस प्रकार भाग जाने वाले क्षत्रिय का वंश और उसका छत्र धारण करना लज्जास्पद है, अतः जैसा भी होगा, प्रातः देखा जायगा कि मैं कैसा भयानक युद्ध करता हूँ । मैं चाहुवान, श्रेष्ठ महाभारत के युद्ध-समय के वीरों के समान गुण-विस्तार कर सकूंगा और मेरा चिंतन करने मात्र से शत्रु मोक्ष का चिंतन करने लगेंगे ।

गाथा

विस्तरि गुनयो प्रात, रत्तं रत्त सूर वीराय ।
चावद्दिसि वर वीर, सा धीरं मत्तयो वीर ॥ २८७ ॥

शब्दार्थः—रत्त=अरुणवर्ण । सूर=सूर्य । वीराय=वीर । चावद्दिसि=चारों ओर । सा=वही । धीरं=धैर्य धारण कर्ता । मत्तयो=मतवाला । वीर=वीर ।

अर्थः—जब प्रातः काल सूर्य और वीर दोनों अरुणिमा युक्त होंगे तब मैं अपने वीर गुण का विस्तार करूँगा, क्योंकि चारों ओर से श्रेष्ठ वीरों द्वारा घेरेजाने पर भी जो धैर्य को धारण करता है वही वीर मतवाला कहाजाता है ।

मत्ति-वीर संमुह भिरन, कठिन शस्त्र अति पान ।
भान पयानह दीह सुन, लोह पयान पयान ॥ २८८ ॥

शब्दार्थ:—मारा-वीर=मतवाला वीर। कठिन=दृढ। पान=पाणि, हाथ। मान=भानु, सूर्य। पयानह=चलपड़ा। लोह=लोहा।

अर्थ:—उस मतवाले वीर (पृथ्वीराज) ने शत्रुओं के साथ भिड़ने के लिये शस्त्र को हाथ में दृढ़ता से पकड़ लिया, उधर नभ मण्डल पर उदय होकर सूर्य और इधर युद्धस्थल में उसका लोहा साथ २ ही चला पडे।

गाथा

अकुर बीर सु भट्टं, अघट-घट्टाइ कोधयो कलहं।
हय-मुक्क्या-चलि बघी, निड्डुर[1] सथ्थैव[2] सट्ठयो[3] बीर॥ २८६॥

प्रा० पा० १, २, पा०। ३ घ० का०।

शब्दार्थ:—अघट-घट्टाइ—अघटित घटना घटी। हय-मुक्क्या=घोडे बढाये। वलि-बघी=चाल बांधकर, पंक्तिबद्ध होकर। सथ्थैव=साथ में। सट्ठयो=साठ।

शब्दार्थ:—उसी समय सामतों मे वीर रस अकुरित हो गया और क्रोधकारी कलह (युद्ध) की अघटित घटना घटने लगी। निड्डुरराय ने सेना को पंक्तिबद्ध करके अपने घोडे को बढाया, यह देखकर उसकी सहायतार्थ साठ सामत साथ मे हो गये।

दोहा

वीर-बीर बीराधि वर, कढे लोह तजि छोह।
सूर वीर सामत गति, नहिं माया नहिं मोह॥ २६०॥

शब्दार्थ:—वीर-बीर=वीर बीरचद कमधज्ज। तजि-छोह=उमग रहित होकर, निरुत्साही होकर।

अर्थ:—उधर से वीरवर वीरचन्द कमधज्ज और उसके श्रेष्ठ वीरों ने भी शस्त्र उठाये, किन्तु वे निरुत्साही थे, परन्तु पृथ्वीराज के धैर्यवान सामतों में न तो सामारिक मोह था, न वे माया मे ही लिप्त थे (वे प्राणों पर खेल कर युद्ध करते थे)।

कवित्त

हनो हक्क[1] वज्जिय[2] प्रहार, सार-बज्जै-नि[3] बीर वर।
सुवुधि वुद्ध-आवुद्ध, मत्त लग्गै अभि वर भर॥
इकन रुद्ध आरुद्ध, नद नारद अविकारिय।

रंभ सिंभ आरभ, सिद्ध बुद्ध दै तारिय ॥
धनि-धन्नि[४] सूर दिन धनित बल, छल छत्रिय अंकूर रजि ।
कलहंत काल कालह विषम, सुवर वीर वीरत्त रजि ॥२६१॥
आ० पा० १, ३, ४ पा० । २ भीं० घ० ।

शब्दार्थः—हको हक्क=हाक पर हाक, हुँकार पर हुँकार । वज्जिय प्रकार=वज्र तुल्य । सार-वज्जै-ति= उन्होंने लोहा बजाया, उन्होंने लोहा भाड़ा । सु बुद्धि=सु बुद्ध, बुद्धिमान । बुद्ध-आबुद्ध=बुद्धि, अबुद्धि, सुध बुध रहित । मत्त=मस्ती, मतवाले । भर=भड़ी । ईकत=एक । रुद्ध=रोंधे जाते । आरुद्ध=अरुद्ध घेरे नहीं जाते, घेरे से बाहर हो जाते । नद्द=नाद । अधिकारिय=दक्ष । रभ=रभा । सिंभ=शम्भू, शिव । आरम्भ=आना शुरू हुआ, आ पहुंचे । धनि-धन्नि=धन्य है । धन्य है ।। । धनित=धन्य हो । बल=बल प्रदर्शन ।

अर्थः—हुंकार पर हुंकार करते हुए श्रेष्ठ वीर वज्र सदृश लोहा बरसाने लगे । बुद्धिमान होते हुए भी वे मस्ती में सुध बुध भूल कर खड्ग प्रहार कर रहे थे । एक रोंधा जाता था तो दूसरा घेरे से वाहर निकल जाता था । उस समय नारद भी सगीत के अधिकारी (दक्ष) बनकर वीणा वादन कर रहे थे । रंभा और शिव भी युद्ध भूमि में आ पहुँचे एव बुद्धिमान सिद्ध (या सिद्ध और विबुध देवता भी तालियां बजाने लगे) । धन्य है, उन बहादुरों को जिन्होंने उस दिन बल प्रदर्शन कर क्षत्रियत्व को अंकुरित कर दिया था, उस कलह समय में वे विषम काल के समान दिखाई पडते थे । उस श्रेष्ठ वीरों मे,वीरत्व शोभा पा रहा था ।

वीर-रज्जि वीराधि-भर, वलिय वीर-गन सज्जि ।
सुवर सूर सामंत के, मत कलह-तुटि वज्जि ॥ २६२ ॥

शब्दार्थः—वीर-रज्जि=वीरचंद सुशोभित था । वीराधि-भर=श्रेष्ठ योद्धा । वीर-गन=वीर समूह । सज्जि=सजे, तत्पर हुए । सुवर-सूर=सबल-वीर । मत=मंत,मतवाले । कलह-तुटि=युद्ध में टूट पड़े । वज्जि=वज्र तुल्य ।

अर्थः—श्रेष्ठ वीर चंद कमधज्ज युद्ध-स्थल मे सुशोभित था और उसका बल-वान वीर-समूह भी युद्ध में सजग था और इधर से भी सबलवीर (पृथ्वीराज) के मतवाले सामंत युद्ध में वज्र तुल्य हो कर टूट पडे ।

मत कलह बज्जिय-तुटहि, घटहि अघट तुटि-मंस ।
सुबर सूर सामत कौ, बर उड्डै तन अस ।। २६३ ।।

शब्दार्थः—मत कलह=युद्ध के मतवाले । बज्जिय-तुटहि=वज्र तुल्य टूट पड़ने से । घटहि-अघटित घटना घटने लगी । तुटि-मस=मास टूटने लगा । उड्डै=उड़ने लगी । तन-अंस=शरीर से अश स्वरूपी आत्मा ।

अर्थः—युद्ध के उन मतवालों के वज्र तुल्य टूट पडने से अघटित घटना घटने लगी और मांस के टुकडे टूट २ कर गिरने लगे । बलवान वीर सामतों की देह से अश-स्वरूपी आत्मा उड २ कर जाने लगी ।

हसति उड्डहि अस-दै, कसत के सिय मान[१] ।।
बर पखिय पावै न जन, बर छुट्टै करिवान ।।२६४।।

प्रा० पा० १, पा० ।

शब्दार्थः—हसति=हंस, प्राण पखेरु । अस-दे=दैविक अश । कसत=कंस । केसि=केशव, कृष्ण । मान=तुल्य । पखिय=पक्षी । पावै-न-जन=नहीं जा पाते, विचरण नहीं कर सकते । करि=हाथों से । वान=बाण ।

अर्थः—दैविक अंश-स्वरूपी प्राण-पखेरु इस प्रकार उडने लगे जैसे केशव (कृष्ण) ने कंस के प्राण पखेरु को उडाया था । वीरों के हाथों से इतने बाण छूट रहे थे कि उनके कारण नभ मे पक्षी इधर उधर विचरण नहीं कर सकते थे ।

कवित्त

सूर सधि विधि करहि, क्रम्म सधी जम[१] तोरहि ।
इक्क लक्ख आहुटहि, एक लक्ख रन-मोरहि ।।
सुबर वीर मिथ्था विवाद, भार[२] भारथ्थह खडै ।
विच्चि वीर गजराज, वाद अकुम को मडै ।।
कलहत केलि काली विषम, जुद्ध देह देही सु गति ।
सामत सूर भीखम बलह, स्वामि काज लग्गेति मति ।।२६५।।

प्रा० पा० १,२, सर्वप्रति ।

शब्दार्थः—सधि=साधक, साधन । विधि-करहि=तरीका अपनाते हुए । क्रम्म=कर्म । सधी=

साधन, तरीके। जम=यम। तोरहि=तोड़ देते। इक्क=एक ही वीर। लख्ख=लाखों से। आहुटहि=अड़ते, भिड़ते। एक=एक ही वीर। लख्ख=लाखों को। रन-मोरहि=युद्ध से मोड़ देते। सुबर=श्रेष्ठ। वीर=वीरचंद। मिथ्था=मिथ्या,वृथा। मार मारथ्थह=युद्ध के मार स्वरूपी। खडै=नाश कराना। विध्चि=बेचकर। घाद=वाद विवाद, हठ, अभिमान वाक्य। मंडे=करता। कलहत-केलि=कलह क्रीड़ा। जुद्ध देह=युद्ध में देते। देही=देहधारियों को। भीखम=भीष्म। लग्गे=लगा रक्खी।.

अर्थ:—वे वीर युद्ध साधन के तरीके को अपनाकर कर्म द्वारा यमबंधन के तरीकों को तोड़ देते थे। एक २ वीर लाखों से भिड़ता था और लाखों को युद्ध भूमि से मोड़ देता (भगा देता) था। श्रेष्ठ वीरचन्द का वह युद्ध-विवाद और युद्ध में भार-स्वरूपी अपने वीरों का नाश कराना इस प्रकार वृथा था। जैसे हाथी को बेचकर केवल अंकुश पर गर्व करना हो (शशिवृत्ता का अपहरण हो जाने पर वृथा काट मार करना) पृथ्वीराज के वीर सामतों की कलह-क्रीडा कालिका की भयानक युद्ध-क्रीड़ा तुल्य थी। जिसके द्वारा वे सामत शत्रु काया को मोत्त देते हुए भीष्म तुल्य बल प्रदर्शित करने लगे और स्वामी के कार्य-साधन में अपनी मति लगादी।

दोहा

स्वामि काज लग्गे सुमति, खडि खडि[१] धर धार।
हार हार मडे हियें, गुथ्थि हार हर हार ॥ २६६ ॥

मा० पा० १ पा० का०।

शब्दार्थ:—सुमति=श्रेष्ठ मतिवाले, बुद्धिमान। धर=धड़, रुंड। धार=धारा, खड्ग। हार हार=अनेक हारों से, अनेक मुंडमालाओं से। मडे हियें=हृदय का मडन किया। गुथ्थि-हार=हार को गूंथते हुए, मुंडमाला का पिरोते हुए। हर-हार=शिव हार गये, शिव थक गये, शिव श्रमित हो गये।

अर्थ:—वीर-रुंडों को खड्ग द्वारा खड २ करते हुए वे बुद्धिमान सामंत स्वामी के कार्य में लग रहे थे और शिव, मुण्डमालाओं को पिरोते हुए श्रमित हो गये थे एवं अनेकों मुण्डमालाओं से उन्होंने अपने वक्षस्थल को मंडित कर लिया था।

गाथा

सिर तुट्टै खुर तार, तार तुट्टि वीरयो सिरय।
धर तुट्टै आहार, सा वज्जै तारय तार ॥ २६७ ॥

शब्दार्थ:–खुर तारं=घोड़ों की पैर की नालें। लारं=लार, मुह के झाग, फेन। तुट्टि=पड़ते। धर=धड़, रुंड। प्राहारं=प्रहार। सा=वह। बज्जै=बजरहे थे, झकार कर रहे थे। तारयं-तार= तत्री के तारों के समान।

अर्थ:—घोड़ों की नालों के प्रहार से शत्रुओं के सिर टूट रहे थे और उडते हुए घोडों के मुंह के झाग वीरों के सिरपर पडते थे एव शस्त्र, तत्री के तार के झकार के तुल्य बजते थे और उनके प्रहार से रुड कट कटकर गिर रहे थे।

तार तार प्रहार, देवल द्वाराय[1] झल्लरी बज्जं।
बज्जते सिर सार, प्राहार पच घटि काई ॥ २६८ ॥

प्रा० पा० १ घ०।

शब्दार्थ:–देवल=देवालय। द्वाराय=द्वार पर। झल्लरी=झालरें। बज्जते=बजते हुए। घटिकाई= घड़ी।

अर्थ:—प्रहार के साथ शस्त्र, तत्री के समान इस प्रकार झकृत हो रहे थे, मानों देवालय के द्वार पर झालरें बजती हों। उसी प्रकार सिर पर लोह-प्रहार होते हुए (होते हुए) पाच घडी हो गई।

कवित्त

घटिय पच दिन घट्यो, उमरि आरब्ब पुज खरि।
इक[1] दिना दोउ सेन, मोह छड्यौ क्रम्मीनि करि ॥
वान गग पत्तयौ, बीर ग्यारसि दिन सोम।
सूर धीर सामत, सूर उड्डे रन रोम ॥
क्रत काम काज-साई विभ्रम, दल दतिय पतिय गमै ॥
सामंत सूर साई विभ्रम, रोम रोम रज्जी[2] भ्रमै ॥ २६९ ॥

प्रा० पा० १ पा०। २ घ०।

शब्दार्थ:–घट्यो=घट गया, व्यतीत हो गया। उमरि=उमड़कर। आरब्ब-पुंज=अरबी घोड़ों के समूह। खरि=खड़ा, बढाया। इक्क दिना=उस दिन। क्रम्मनि-करि=स्वधर्म का पालन करके। पत्तयौ=पहुचा। बीर=वीर पृथ्वीराज। उड्डे=उड़ा दिये, काटकर फेंक दिये। रोम=रोम २, प्रत्येक

कतकाम=कृत्य काम, कार्य सफल, कार्य कुशल। काज-साई=स्वामी के कार्य के लिये। विभ्रम=भ्रांति पैदा करदी। दल-दतिय=गज सेना। पतिय=पंक्ति। गमैं=खो दी, नष्ट करदी। रोम-रोम=प्रत्येक-अग। रज्जी-भ्रमैं=रजोगुण भ्रमता, रजोगुण बसता, रजोगुण भासित होता।

अर्थः—उस दिन की घड़ियों मे से पांच घड़ी व्यतीत हो जाने पर वीरों ने झपटकर अरबी घोड़ों के समूह को बढ़ाया और उस दिन दोनों सेनाओं ने स्व कर्म का पालन करते हुए प्राणों के मोह को छोड़ दिया। वीर पृथ्वीराज युद्ध करता हुआ एकादशी सोमवार को बाण गगा के तट तक पहुँच गया, धैर्य धारी वीर सामतों ने भी विपक्षी-वीरों के प्रत्येक अग को काट दिया। उन्होंने कार्य कुशल स्वामी के कार्य के लिये गज-सेना की पक्ति को खत्म करते हुए भ्रांति पैदा करदी। उस समय सामतों और स्वामी के प्रत्येक अग में रजोगुण मालूम होता था तथा सबको उनके कारण भ्रम हो जाता था।

दोहा

रोम राज रज्जी भ्रमहि, थोर थनी ढुँठि[१] बाल।
उतकठा उतकंठ की, ते पुज्जी प्रतिपाल ॥ ३०० ॥

प्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थः—रोम राज=राजा के रोम २ में, राजा के प्रत्येक अङ्ग में। रज्जी=रजोगुण। थोर थनी=छोटे २ कुचोंवाली, शशिव्रता। ढुँठि=ठिठक गई। उतकंठा=उत्कंठा, अभिलाषा, इच्छा। उतकठ=अभिलाषा रखने वाली। पुज्जी=पूर्ण की।

अर्थः—जिस राजा (पृथ्वीराज) के प्रत्येक अङ्ग में रजोगुण भासित होता था, उसकी ओर छोटे स्तनों वाली (शशिव्रता) ठिठक कर देखने लगतीथी। उस (कुमारी) की इच्छा को राजा ने प्रेम का पालन कर पूर्ण करदी। (उसके प्रेम ने उसे युद्ध भूमि छोड़ने को बाध्य कर दिया)।

साटक

सोता[१] से उतकंठ रभति गुना, रभा अरंभा वरं।
सध विद्धि सु सुद्ध-कारन-मिते, देवगना सुंदरी ॥
जा वंदै मिनि चद कारन मिते, निर्भासितं भासितं।
पाखडं तजि लीन सूरति वरं, आरभ पारभन ॥३०१॥

प्रा० पा० १, पा०।

शब्दार्थः—सोता=श्रोता। से=सहित, समान। उतकठ=अभिलाषा। रभति-गुना=रभा के समान गुणों वाली। अरमा=युद्धारम द्वारा। वरं=वरण की। संध-विद्धि=विधि पूर्वक साध दिया। सुद्ध-कारन-मिते=मित्र (प्यारे) के प्रति शुद्ध हेतु। जा=जिसे। वदे=वदना करता, नत मस्तक होता। मिति=थोड़ा, तुच्छ। कारन-मिते=मित्र (प्यारे) प्राप्ति का हेतु। निर्भासित=अप्रगट। भासित=प्रगट। पाखड=पाखड, शृंगारी विडम्बना। लीन=लिया प्राप्त किया। सूरति=सूरत, स्वरूप। बरं=बर, (प्यारे) को। आरभ=युद्ध के प्रारम्भ में, युद्ध की शुरुआत में। पा-रभ-न=उस रभा स्वरूपी कुमारी ने प्राप्त कर लिया था।

अर्थः—अभिलाषा की स्रोत, रभा के समान गुणों वाली उस कुमारी का वरण महान युद्धारंभ कर पृथ्वीराज ने किया, उस देवाङ्गना तुल्य सुन्दरी का अपने मित्र (प्यारे पृथ्वीराज) के प्रति जो शुद्ध हेतु था उसे विधि पूर्वक उसने साध दिया [पूर्ण किया], जिसकी प्रभा को देखकर चन्द्रमां भी उसके समक्ष नत मस्तक था। उसका मित्र (प्यारे) प्राप्ति का हेतु, अप्रगट और प्रगट रूप मे था (काम और लज्जा उसमें समान थी)। वह शृंगार की विडम्बना से रहित, श्रेष्ठ स्वरूप को प्राप्त किये हुए थी, और अपने इच्छित वर (प्यारे पृथ्वीराज) को युद्धारभ के द्वारा उस रभा स्वरूपी (कुमारी शशिव्रत्ता) ने प्राप्त कर लिया था।

गाथा

आरम्भा[१] प्रारम्भौ, उतकठा किनयौ वृतय।
साधा धरी सु धरिय, रन छुट्टै तीनयौ पनय ॥३०२॥

प्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थः—आरम्भा-आरम्भौ=युद्धारम्भ से पूर्व। किनयौ=किया। वृतय=वृत। साधा=साध दिया, पूर्ण कर दिया। धरी सु धरिय=अर्द्धाङ्ग में धर ली, अर्धाङ्ग में स्थान देकर ही रहा। रन-छुट्टै=युद्ध से हटा। तीनयौ=उसी के। पनय=प्रण के कारण।

अर्थः—युद्धारम्भ से पूर्व ही अभिलापा और वृत, कुमारी शशिवृता ने ग्रहण किया था। उसे राजा (पृथ्वीराज) ने पूर्ण किया और अर्धाङ्ग मे उसे स्थान दिया और उसी की प्रेम-प्रतिज्ञा को निभाने के लिये राजा ने युद्ध से हटने की इच्छा की।

दोहा

वालगन जुवपनह गनि, कथतिय पन-हति काज।
भर-रहै त्रप-राज गुन, नह चल्लै प्रथिराज ॥३०३

शब्दार्थ—बालप्पन=बाला (शशिव्रता) का प्रण । जुवपनह=युवापन, यौवन । कथतिय=कहा जाता । पन-हति=प्रण भंग, प्रतिज्ञा भग । मर-कढ्ढै=सामन्त युद्ध से हटाना चाहते थे । न्रप-राज=राजाओं का राजा (पृथ्वीराज) । गुन=सोच कर । नह-चल्ले=नहीं हटा ।

अर्थः—बाला (शशिवृता) की प्रेम-प्रतिज्ञा और पृथ्वीराज का यौवन ही उसके युद्ध से नहीं हटने की प्रतिज्ञा-भग का कारण कहा जाता है । सामन्त-गण यद्यपि राजा को युद्ध भूमि से हटाने का बहुत प्रयत्न कर चुके थे लेकिन राजाओं का राजा (पृथ्वीराज) वीर-प्रतिज्ञा को सोचकर नहीं हटता था ।

नह चल्लै पृथिराज रिन, लज्ज लपट्टिय पाइ ।
वय जोरै कर हथ्थ दो, चलि संभरिवै राइ ॥३०४॥

शब्दार्थः—रिन=रण से, युद्ध से । लज्ज=लज्जा । लपट्टिय=पाइ=पैरों से लिपट गई, पैर जकड़ दिये । वय=उम्र, तरुणावस्था । हथ्थ=हाथ । चलि=चलिये, घर को चलिये । संभरिवै-राइ=समरेश्वर ।

अर्थः—क्षत्रियत्व की लज्जा से पैर जकड़े हुए थे । इसी लिये पृथ्वीराज युद्ध से नहीं हटा । यह देखकर उसकी तरुणावस्था ने हाथ जोड़ कर उसे निवेदन (बाध्य) किया कि हे सभरेश्वर ! आप मेरा कथन स्वीकृत करके घर को चलिये ।

लज्ज परव्वत ह्वै रही, वै न तजै नृप पास ।
दूहू वीर मतन सुबुधि, अति-गत्तिय रति त्रास ॥ ३०५ ॥

प्रा० पा० १ का० पा० ।

शब्दार्थः—परव्वत=पर्वत । ह्वै रही=हो रही थी । न्रप-पास=राजा के समीप, राजा के समक्ष । दूहूँ=दोनों की । मतन=मत्रणा । अति-गत्तिय=अधिकतर (विशेष विचारणीय) । रति=प्रेम । त्रास=डर ।

अर्थ—युद्ध से हटने मे पर्वत के समान लज्जा बाधक थी । इधर तरुणावस्था का प्रश्न भी राजा के समक्ष था । उस बुद्धिमान वीर (पृथ्वीराज) के लिये दोनों की मत्रणा विचारणीय थी । एक (वय) की मंत्रणा में प्रेम और दूसरी (लज्जा) की मंत्रणा अस्वीकृत करने में निर्भयता का ह्रास था ।

फिरि बुल्ली लज्जी सुनहि, हों भडन तन बीर ।
सो त्रिन इक्कै काज न्रप, बुद्धि न आवै तीर ॥ ३०६ ॥

शब्दार्थ:—फिरि=फिर। बुल्ली=बोली, कहा। लज्जी=लज्जा। हौं=मैं। इक्के=एक भी, कोई भी। तीर=समीप।

अर्थ:— फिर लज्जा ने वय से कहा—मैं वीरों के शरीर की मडन (शोभा) स्वरूप हूँ। मेरे बिना राजाओं का कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता और मेरे बिना बुद्धि भी उनके समीप नहीं ठहरती।

तू वै एकह-पन रहै, रंग कसूभ प्रमान।
हौं नन छंड़ौं पास तुश्र, तीनों पनह समान ॥ ३०७ ॥

शब्दार्थ:—एकह-पन=एक ही रग में। कसूभ=कुसुमे। प्रमान=समान। हौं-नन=मैं नहीं। छंडौं=छोडती। पास-तुश्र=तेरे समीप रहते हुए भी। तीनों-पनह=तीन बातें (दान, खड्ग और स्वरूप)।

अर्थ:—हे वय! तू एकमात्र कुसुंभे के रग की तरह अच्छी बनी रहती है, किन्तु मैं तेरे समीप रहती हुई भी तीन बातों (दान, खड्ग, और स्वरूप) को नहीं छोडती।

तू लज्जी मो सथ्थ है, दान खग्ग अरु रूप।
मों-चल्लै तीनों चलै, सची चवै न भूप[1] ॥ ३०८ ॥

प्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थ:—मौं-चल्लै=मेरे चले जाने पर, वृद्ध होने पर। तीनों=तृष्णा के कारण उदारता, निर्बलता के कारण खड्ग धारण, और वृद्धत्व के कारण सौंदर्य। चलैं=चले जाते, नहीं रहते। सची=सांच, सत्य। चवै=कहती। भूप=राजा को।

अर्थ:—वय ने कहा — हे लज्जा! तू दान, खड्ग और स्वरूप को लिये हुए मेरे साथ है, किन्तु जब मैं तरुणत्व से परे होती हूँ (वृद्धत्व को पा लेती हूँ) तब तीनों (दान, खड्ग और स्वरूप) मे बाधक हो जाती हूँ यह सच्ची बात तू राजा को क्यों नहीं कहती?

सुन रे वै लज्जी चवै, तू मडन नरलोइ।
मो बिन श्राप न लभ्भि[1] है, नर-त्रिभास न होइ ॥ ३०९ ॥

प्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थ:—नरलोइ=नरलोक। श्राप=आपा, शक्ति। लभ्भि है=प्राप्तकर सकता। नर त्रिभास=मनुष्यत्व का आभास, प्रसिद्धी।

अर्थः—तब लज्जा ने कहाः— हे वय ! सुन, मैं नर-लोक की मंडन स्वरूपा हूँ। मेरे विना मनुष्य शक्ति नहीं पा सकते और न मनुष्यत्व का आभास ही हो पाता है (मनुष्य प्रसिद्धी को नहीं पा सकता)।

वै बुल्ली लज्जी कलह, क्रत कै काम सुनंत।
इक्कैं—पल—पल मंडनौ, हौं[१] रज्जन रज कंत ॥ ३१० ॥

प्रा० पा० १ भीं० घ०।

शब्दार्थः—वै=वय, उम्र। क्रत=कृत्य। कै=करने वाली। इक्कैं-पल-पल=एक पल मात्र में। मंडनौ=मडन करने वाली। रज्जन=राजाओं में। रज-कंत=राजसी काति, राजसी तेज।

अर्थः—वय ने कहा— हे लज्जा ! तेरा काम कलह-कृत्य करना सुना गया है; किन्तु मैं ही ऐसी हूँ जो राजाओं के शरीर में राजसी तेज का पल पल में मण्डन करती रहती हूँ।

तो[१] लज्जी सच्ची चवै, तत लगि ध्रम प्रकार[२]।
आवृत्तह गुन भ्रत्त किय, जोग सुहृदा चार ॥ ३११ ॥

प्रा० पा० १, पा०। २, सर्वप्रति।

शब्दार्थः—तत=तत्व। लगि=लगा हुआ, सम्बन्धित। ध्रम=धर्म से। आवृत्तह=अड़ते हुए, युद्ध समय। भ्रत्त-किय=सेवकों ने किया, सामतों ने किया। जोग=योगियों सी। सुहृदा=इनकी। चार=चलन, गति।

अर्थः—हे लज्जा ! फिर भी तेरा कहना सत्य है, जिस प्रकार धर्म से तत्व का सबध है उसी प्रकार युद्ध-समय मे राजा के सामंत (राजा के प्रेम में बँधे हुए) वैसा ही कृत्य करते है, इनकी गति योगियों सी है। (ये मोक्ष प्रिय हैं)।

अग्गि-पान सामत वल, ध्रत-धीरत्तन जोध।
शस्त्र लग्गि लग्गै-नमन, तउन पत्त[१] पति जोध ॥ ३१२ ॥

प्रा० पा० १, स०।

शब्दार्थ—अग्गि-पान=आगे पाये गये, अग्र भाग में देखे गये। वल=वलि, वलवान। ध्रत-धीरत्तन=धैर्यधारी। जोध=योद्धा, वीर। शस्त्र लग्गि=शस्त्र लगने पर। लग्गै-नमन=नमने लगे, झुकने लगे, धराशाई होने लगे। तउन=फिर भी नहीं। पत्त=रवाना हुआ। पति-जोध=वीर स्वामी, पृथ्वीराज।

अर्थः—बलवान वीर सामत जो धैर्य धारी थे। वे युद्ध में राजा के अग्र भाग मे [लड़ते हुए] देखे गये और शस्त्र लगने पर वे धराशायी होने लगे, फिर भी उनका वीर स्वामी (पृथ्वीराज) युद्ध स्थल से नहीं हटा।

त्रिपति घाइ[1] सूरन भए, त्रिपति उमापति मुंड।
उमा त्रिपति[2] रुधिरं भई, धनि सूरन भुज दड ॥ ३१३ ॥

ग्रा० पा० १, पा० घ०। २, पा०।

शब्दार्थ.–त्रिपति=तृप्त। घाइ=घाव। उमा=पार्वती, शक्ति, देवी। धनि=धन्य है।

अर्थः—धन्य है! बहादुर सामतों के भुज दडों को जिनके बल पर वीर घावों से शिव मुण्ड संग्रह कर, और देवी रुधिर पी-पीकर तृप्त हो गई।

सूर सु धनि भुज दड बल, बल विक्रम ज्यों पाय।
बल किन्नौ छल छंडयौ, बर वीरा-रस चाइ ॥३१४॥

शब्दार्थ:–ज्यों=जैसा, जैसे ही। छड्यौ=छोड़कर। वीरा-रस=वीर रस। चाइ=चाहकर, इच्छाकरके।

अर्थः—धन्य है, उन वीरों को और उनकी भुजाओं को जो पराक्रम प्राप्त करके (या विक्रम नरेश तुल्य बल प्राप्त करके) वीर रस के इच्छुक हो छल को छोड केवल बल को ही अपनाया।

कवित्त

वीर घाइ-आघाइ, वीर विरुझाइ सेन बर।
लक्ख लक्ख इक मद्धि, लक्खऊ भिरे[1] लक्ख झर ॥
दल-दतिन विच्छुरैं, घाइ हैवर किननकहि[2]।
इक्क[3] लक्ख रुधियैं, खग्ग खग्गनि झननकहि ॥
ठननकि घट घटिय परहि, कज्जल कूट विवान भ्रम।
सामन्त सूर सामन्त-हय, करहि चन्द अस्तुति-सु-क्रम ॥३१५॥

ग्रा० पा० १ का०। २ सर्व प्रति। ३ पा०।

शब्दार्थ:–घाइ-आघाइ=घावों से छक गये। विरुझाय=उलझ पडे, जुट पड़े। लक्ख-झर=लाखों झड़ी की, लाखों प्रहार किये। दल-दतिन=गजारोही सेना। विच्छुरैं=बिछुड़ गई, दूर हो गई, हट गई। घाइ=घायल होकर, कटकर। हैवर=घोड़े। किननकहि=कराहने लगे, मिसकने लगे।

रु घिय=रौंधे गये। विग्रान=त्रिहुव्यात्राहन, या वे वारुण; हाथी। भ्रम=भ्रांति। सामत-सूर=बहादुर सामत। सामंत-हथ=विपत्ती वीरों को मारकर। अस्तुति सु-क्रम=स्तुत्य कर्म।

अर्थ—वीर योद्धा सेना से जूझ कर घावों से छक गये। एक २ वीर लाखों की सख्या वाली सेना में प्रवेश कर लाखों से भिड़े और लाखों वार किये। गजारोही सेना युद्ध-भूमि से हट गई और घोड़े कट २ कर सिसक ने लगे। एक ही वीर लाखों को रोंधता हुआ तलवार से तलवार टकरा कर झनझनाने लगा। गज-घटा और घटिकायें ठनठनाने लगे। लुढकते हुए हाथियों से कज्जल गिरि शिखरों के ढहने की सी भ्राति होने लगी। कवि (चन्द) कहता है, बहादुर सामन्त विपत्ती वीरों को मार २ कर स्तुत्य-कर्म करने लगे।

गाथा

रत[1]-घन-तन विश्राम, संग्राम[2] इक्क घरियाई[3] ॥
दावानल चहुआनं, सा वीर वीर-वीराधी[4] ॥३१६॥

प्रा० पा० १ का० । २, पा० घ का० । ३, का० भीं० घ०। ४, पा०।

शब्दार्थ:—रत-घन-तन=बहुत से वीरों के शरीर रक्त रंजित होने पर, विशेष रक्तपात होने पर। विश्राम=विश्राम लिया, रुका, बंद रहा। इक्क-घरियाई=एक घड़ी तक। सा=वह। वीर=वीरचन्द। वीर-वीराधी=श्रेष्ठ वीर।

अर्थ—उस समय विशेष रक्तपात हो जाने से एक घड़ी तक युद्ध वंद रहा। फिर भी वह श्रेष्ठ वीर चाहुआन (पृथ्वीराज) वीरचन्द के लिये दावानल बना हुआ था।

बीराध वर-बरयौ, सा भंज्जै आवन गवन।
मोह सलाक भजो, ना-सज्ज पजरो दीवो[1] ॥३१७॥

प्रा० पा० १, का०।

शब्दार्थ:—बीराध=श्रेष्ठ वीरों से। वर-बरयो=श्रेष्ठ। सा=वह। भञ्जै=तोड़ देने वाला। आवन-गवन=आवागमन। मोहं-सलाक=मोह शलाका, प्रेम की शलाका। भजो=बिंधगया। ना-सज्ज=नहीं सजा, पथिक न बनाया। पजरो=तन, पजर। दीवो=दिवि का, स्वर्ग का।

अर्थ:—वह श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ वीर (पृथ्वीराज) विपत्तियों के आवागमन को तोड़ देने (मिटादेने) वाला था, किन्तु (शशिव्रता के) प्रेम की शलाका से

वह बिंधा हुआ था (उसे वह तोड नहीं सका) और इसीलिये उसने अपने तन-पिंजर को स्वर्गागमन का पथिक नहीं बनाया (युद्ध से विदा ली)।

गाथा

हम बहुल बे-सतय, बधे-तेग मुक्कि त्रप-जाई[१] ।
जीवत सुनि कमधज्जं, ना-मुक्कै लख्खयौ-बलय ॥ ३१८ ॥

प्रा० पा० १ भीं० ।

शब्दार्थः—बहुल=बहुत हैं, काफी हैं। बे-सतय=दो सौ। बधे-तेग=तलवारें कसेंगे,तलवार पकड़ेंगे। मुक्कि=युद्ध छोड़कर। नृप-जाई=हे नरेश्वर आप जाइये। ना-मुक्कै=नहीं छोड़ेंगे। लक्खयौ-बलय=लाखों का बल होते हुए भी, लाखों साथी होते हुए भी।

अर्थः—राजा को विदा कर सामंतों ने कहा, आप युद्ध छोड़कर घर को जाइये हम आपके दो सौ सामंत ही इन विपत्तियों के लिये काफी हैं। हम पीछे से तलवार पकड़ेंगे। इसके साथ लाखों वीरों का बल होते हुए भी, देखें, यह कमधज्ज (वीरचन्द) जीवित कैसे घर को लौट सकता है ?

यों रज्जे नृप भरयौ, सरन-सूर सूर-गत्ताई[१] ।
उग्गतो रवि मान, यो रत्ताइ रत्तायो-मुखय ॥ ३१९ ॥

प्रा० पा० १ घ० पा० का० ।

शब्दार्थः—सरन-सूर=सूर्य स्वरूपी राजा के आश्रित। सूर-गत्ताई=उस सूर्य स्वरूपी राजा के चले जाने पर भी। उग्गतो=उदय होते हुए। मान=मान, समान। रत्ताइ=अरुणिमा। रत्तयो मुखय=अरुण-वर्ण मुख।

अर्थः—उस सूर्य-स्वरूपी राजा (पृथ्वीराज) के विदा हो जाने पर भी उसके आश्रित सामंत इस प्रकार मुख पर अरुणिमा लिए हुए सुशोभित हुए जिस प्रकार अप्रत्यक्ष उदय होते हुए सूर्य की अरुणिमा छाई रहती है।

दोहा

सत्य सु तुझ कह्यौ सु सत्र, सुभट भट्ट बड-भृत्य ।
क्यौं न जाइ जीवन घरह, कहा करौगे मृत्य ॥ ३२० ॥

शब्दार्थः—सत्य=साथी। बड भृत्य=बड़े २ योद्धा। मृत्य=मरना।

अर्थः—उसी समय निड्डुरराय ने वीरचन्द कमधज्ज को सावधान करते हुए कहा कि तेरे साथी बहादुर सामत और बड़े २ योद्धा जो थे वे सब कट गये हैं। अब भी तूं जिन्दा घर को क्यों नहीं जाता ? वृथा मारे जाने से क्या हाथ लगेगा ?

दोहा

परे सुभर दोऊ दलन[1], निढ्ढुर देख्यौ वध।
कौन भुजा बल जुध करै, सुनि कमधज्जअ मुंद्ध ॥३२१॥

प्रा. पा. १ सर्वप्रति।

शब्दार्थः—परे=धराशाई हुए, मारे गये। निढ्ढुर=निड्डुरराय। वंध=बधु, भाई। मुद्ध=मूढ, अयाने।

अर्थः—भाई (वीरचन्द) की ओर देखकर निड्डुरराय ने पुनः कहाः- दोनों सेनाओं के बहुत से सामंत मारे गये हैं। हे वीर कमधज! अब तू किस भुजा के बल पर युद्ध कर रहा है ?

बाला लै पृथिराज गय, गहिय-वग्ग कमधज्ज।
रोस-रीस विरसोज भय, रह बाजे अन बज्ज ॥३२२॥

शब्दार्थः—बाला=शशिव्रता। गय=गया, चल पड़ा। गहिय-वग्ग=वाग पकड़ी रास उठाई। रोस-रीस=क्रोध के आवेश में। विरसोज=विरसता, निरमता। भय=हुई छा गई, छा दी। रह=रास्ते पर। अन=आकर। बज्ज=बजने लगे।

अर्थः—जब कमधज्ज (वीरचन्द) को ज्ञात हुआ कि बाला (शशिव्रता) को लेकर पृथ्वीराज युद्ध से चला गया है तब उसने अपने घोडे की रास उठाई और क्रोधावेश के कारण युद्ध-स्थल मे नीरसता छा दी और जिस रास्ते से पृथ्वीराज विदा हुआ उस रास्ते पर रण वाद्य बजने लगे।

कवित्त

अद्ध-कोस नृप अग्ग, वीर ठट्ठौ[१] करि बट्ठौ[२]।
मद समूह गजराज, छड्डि पट्टै बल गट्ठौ ॥
लाज वधि सकरिय, वीर बध्यौ सु अष्ट क्रमि।
अरि न ठौर[3] छंडै न, कन्न मंडै दिल्लिय द्रिमि ॥
मनमत्थ महावत वद्धिअति, मन मत्तौ उन को धरै।
घन—घाइ रुधिर छुट्टै परे, अमर पुहप पूजा करै ॥ ३२३ ॥

प्रा० पा० १, २ पा० का० । ३ भीं ।

शब्दार्थ:—अद्ध-कोस=आधा कोस । अग्ग=आगे जाकर । ठढ्ढौ=ठाड़ा हो गया, डट गया । करि=हाथी । वढ्ढौ=बढा हो, आक्रमण किया हो । सम्मुह=सामने । छडि=छोड़ता हुआ, प्रवाहित करता हुआ । पट्टै=पट्टा, हाथी के सूड में पकड़ाई जाने वाली तलवार । गढ्ढौ=गाढा, दृढ । संकरिय=श्रृंखला, जंजीर । बीर=वीरचन्द । बध्यौ=बांधा, काबू में किया । अष्ट=हाथी के आक्रमण करने वाले आठ अंग (दो दाँत, तुंड, सूड, चारों पैर । उसी प्रकार राजा के आठ कर्म दुष्टों को दंड देना, योग्य का सम्मान, प्रजा पालन 'यज्ञादि द्वारा देवताओं को प्रसन्न करना, न्याय पूर्वक धन संग्रह, राजाओं को अधीन रखना, शत्रुओं को दबाना) । अरिव=अड़ गया, अड़कर । ठोर=स्थान, युद्ध स्थल । छडैंन=छोड़ता । कन्न=कान । मंडे=लगा रक्खे । बढ्ढिअति=बढा रहा था । मत्तौ=मतवाला । उन=उसे । को =कौन । धरै=पकड़ सकता, रोक सकता । घन घाइ=विशेष घावों से छकगये । छुट्टै-परे=छूट पड़ा, बहगया । अमर=देवता । पुहप=पुष्प ।

अर्थ:—युद्ध-स्थल से विदाहोकर आधे कोस जाकर वह वीर नरेश्वर (पृथ्वीराज) फिर शत्रुओं से इस प्रकार लडने को उद्यत हो गया मानों मतवाला हाथी आक्रमण कर रहा हो । गजराज तुल्य वह राजा मद प्रवाहित करता हुआ शत्रु के सामने अपने पट्टे (तलवार) के बलपर दृढ बनारहा । उस समय वह लज्जा की दृढ श्रृंखला से बँधा हुआ था, किन्तु हाथी के आक्रमणकारी अष्टांग (दो दाँत, तुंड, सूड और चारों पैर) के तुल्य राजाओं के अष्ट कर्म (दुष्ट-दंडन, योग्य का सम्मान, प्रजापालन, यज्ञादि से देवताओं को प्रसन्न करना, न्याय पूर्वक धन संग्रह, राजाओं को अधीन रखना और शत्रुओं को दबाना) का पालन करने वाले इस राजा ने कर्मों के बलपर शत्रु वीरचन्द को कसकर दबा दिया, अड कर वह अपने स्थान को नहीं छोड रहा था । वह (मस्ती में) चौकन्ना होकर दिल्ली की तरफ अपने कान (ध्यान) लगाये हुए था । उस अडियल हाथी को कामदेव-रूपी महावत (दिल्ली की ओर) बढा रहा था ऐसे मतवाले मन के हाथी को कौन पकड (रोक) सकता है ? उसका सामना करने वाले बहुत से घाव' से छक गये और रक्त बहने लगा– यह देखकर देवता भी उस (मतवाले पृथ्वीराज) पर पुष्प वर्षा कर पूजा करने लगे ।

गय राज प्रथिराज, गय जैचंद बंध बर ।
गय सूर सामंत, गय नृप सेन पग नर ॥

खूब सेन ढढोरि, खूव झोरी-करि-डारिय ।
खूव खेत विधि-गाम, वान गंगा पथ झारिय ॥
आसेर आस छड्डिय नृपति, विपति सपत्ती जानि भर¹ ।
सुठिहार राज पृथिराज कौ, धरे सवह चौंडोल घर ॥३२४॥

प्रा० पा० १, भौं, घ० ।

शब्दार्थ:—खूब=धन्य है । वध=वंधु । पग=पगु, कन्नौजेश्वर । ढढोरि=टटोल लिया, परख लिया । खूव=वहुतों को । झोरी-करि-डारिय=झोली में उठवाये । खेत=क्षेत्र । विधि-गाम=ब्रह्मगांव, (स्थान विशेष) । झारिय=मारकाट की, शस्त्र झड़ी की । आसेर=दुर्ग (दिल्ली) । आस=आशा । छंडिय=छोड़ दी । भर=भट, सामतों ने । सुठिहार=सुँठालिया (मध्य प्रान्तान्तर्गत) । धरे=उठाया । चौं डोल=डोली ।

अर्थ:—धन्य है ! राजा पृथ्वीराज को, कन्नौजेश्वर, जयचन्द के भाई वीरचन्द को, पृथ्वीराज के बहादुर सामंतों को और पगुराज (कन्नौजेश्वर) की श्रेष्ठ सेना को, जिन्होंने लडकर एक दूसरे के सैन्य-वल को परख लिया, और बहुत से वीरों को झोली में उठाने योग्य (घायल) कर दिया । उस ब्रह्म-गांव-क्षेत्र को और वाण गगा को भी धन्य है जिसके रास्ते पर मारकाट (शस्त्र झड़ी) हुई । वहां पर ऐसा भयानक युद्ध हुआ कि स्वयम् पृथ्वीराज ने भी अपने दिल्ली दुर्ग पर सकुशल पहुँचने की आशा छोड़ दी, फिर भी सामतों ने उस आपत्ति को सुखद माना ।

युद्ध के अन्त में सुठिहार (मध्य प्रान्तान्तर्गत सुंठालिया) के राजा ने पृथ्वीराज और उसके सब घायल सामन्तों को उठाकर अपने यहाँ रक्खा (उपचार किया) ।

दोहा

डोला ग्यारह-दून-दस, एकादस तिन मद्धि ।
मद्धि अमोलिक सुन्दरी, काम विरामन सधि ॥ ३२५ ॥

शब्दार्थ:—डोला=डोलियें । ग्यारह-दून दस=ग्यारह और दसदून (बीस) कुल इक्तीस । अमोलिक=अमूल्य । काम-विरामन=कामदेव ने जिनमें विश्राम कर लिया है, जो काम की विश्राम स्थली सी थी । सधि=जिनकी अवस्था शैशवत्व और युवत्व की सधि को लिये हुए थी ।

अर्थ:—कुल इकतीस डोलियाँ थी उनमे से ग्यारह डोलियों में शैशवत्व और युवत्व

की सधि स्वरूपा कुमारी शशिवृत्ता और उसकी सहेलियां आदि जो काम की विश्राम स्थली के सदृश थीं, बैठी थीं।

डोला घाइन बढ्ढि नृप, बजि निसान त्रिघोष ।
सब सामत समत[1] चढि, विच सुन्दरी अदोष[2] ॥ ३२६ ॥

ग्रा० पा० १ घ० । २ पा० ।

शब्दार्थः—बढ्ढि=बढाई । बजि=बजे । निसान=नक्कारे । त्रिघोष=जोरों से । समत=मतवाले । अदोष=दोष रहित,विधि पूर्वक न गई, न व्याही गई ।

अर्थः—राजा की आज्ञा से विजय के नक्कारे जोरों से बजवाकर आगे पीछे घायलों की डोलियाँ बढ़ाई गई और अपने मतवाले सामतों सहित अश्वादि पर चढकर बीच में विधि पूर्वक नहीं व्याही गई (निर्दोष) कुमारी (शशिवृत्ता) की डोली को लेकर सब रवाना हुए ।

गाथा

विच सुन्दरी अदोख[1], दोखं-नैव बालयो मद्धि ।
तेरसि गुन अधिकारी, सपत्ते राजयो ग्रेह ॥ ३२७ ॥

ग्रा० पा० १ सर्वप्रति ।

शब्दार्थ—अदोख=अदोष, विधि पूर्वक न व्याही गई । दोख-नैव=निर्दोष, अविवाहित । बालयो=बालायें, शशिवृत्ता को सहेलियां । मद्धि=मध्य, बीच में । तेरसि=त्रयोदशी । गुन-अधिकारी=प्रवेश योग्य समझकर, बिना मूहुर्त भी अच्छा वासर समझकर । सपत्ते=पहुँचा । राजयो=राजा पृथ्वीराज । ग्रेह=घर को, दिल्ली को ।

अर्थ—बीच मे विधि पूर्वक नहीं व्याही गई सुन्दरी शशिव्रता और उसकी अविवाहित सहेलियो को लेकर बिना मुहूत के भी शुभवासर त्रयोदशी के दिन पृथ्वीराज दिल्ली पहुँचा ।

दोहा

इन-परत पत्तो सुग्रह, सुबर-राज प्रथिराज ।
हय गय दल बल मथत वर, रभ सजीवन काज ॥३२८॥

शब्दार्थः—इन-परत=इसके उपरात, इसके बाद । सुबर-राज=मनन राजा । मथन=मथन करके । रभ सजीवन=रभा स्वरूपी शशिवृत्ता के जीवन के । काज=लिये ।

अर्थः—रंभा स्वरूपी कुमारी शशिवृत्ता के जीवन के लिये, श्रेष्ठ-अश्वारोही और गजारोही सैन्य के बल का भंजनकर सबल राजा पृथ्वीराज ने राज-महलों में प्रवेश किया।

सह जद्दों चामंड बर, बर-बर जुद्ध-विरुद्ध।
सिद्ध[१] करै सामंत की, बर धीरज्ज सु बुद्ध ॥ ३२९ ॥

भा० पा० १ संशोधित।

शब्दार्थः सह=सब। जद्दों=यादवों। चामंड=चामुंडराय। बर-बर=बार२। जुद्ध-विरुद्ध=विरुद्ध होकर युद्ध किया। धीरज्ज=धैर्य। बुद्ध=बुद्धि।

अर्थः—(पृथ्वीराज के चले जाने के बाद पीछे से) यादवों और चामुंडराय ने मिल कर कमधजी (वीरचंद की) सेना के विरुद्ध बार २ युद्धकर सामतों के धैर्य और बुद्धि को सिद्ध कर दिया।

चाहुआन चतुरंग जिति, निगमबोध रहि राज।
बर शशिवृत्ता जित्तिगौ, धाम-सु-ढिल्ली साज ॥ ३३० ॥

शब्दार्थः—जिति=जीतकर, विजय प्राप्त करके। रहि=रहा, ठहरा, मुकाम किया। राज=राजा, पृथ्वीराज। जित्तिगौ=जीतकर ले गया, अपहरण करके ले गया। धाम-सु-ढिल्ली=दिल्ली के प्रत्येक गृह। सरज=सजाये गये।

अर्थः—इस प्रकार चाहुवान नरेश (पृथ्वीराज) ने (वीरचन्द की) चतुरंगिनी सेना पर विजय प्राप्त कर शशिव्रता का अपहरण किया और दिल्ली पहुँचकर पहले निगमबोध स्थान पर डेरा किया उसकी बधाई सुनकर दिल्ली नगर सजाया गया।

गाथा

तपय सु नरपति ढिल्ली, दीह - दीह पद्धरे - राज।
जै - मगै क्रत - काम, सा देव सोइय देही ॥३३१॥

शब्दार्थः—तपय=तपता था शासन करता था। ढिल्ली=ढिल्ली। दीह-दीह=प्रत्येक दिन। पद्धरे-राज=अच्छे थे। जे मगै=जो भी मांगते। क्रत-काम=अच्छे काम करने वाले, या कार्य करके। सा=वह। देव=देव तुल्य राजा। सोइय=वही। देही=देता।

अर्थः—चाहुवान राजा पृथ्वीराज की प्रभुता मे (उसके शासन में) दिल्ली के प्रत्येक

दिन अच्छे थे, जितने अच्छे कार्य करने वाले थे वे, जो भी उससे मांगते उसे वह देव तुल्य राजा दे देता था।

दीहं पासा रूव, सारूवं भूपयो सव्वं।
जे-नक्खे ते मग्गे[1], देवानं - देवयो दीही[2] ॥३३२॥

ग्रा. पा. १, घ.। २ भीं.।

शब्दार्थः—दीह=दिन। पासा=पासे। रूव=रूप। सारूव=सारें। सव्व=सब (आश्रित)। जे-नक्खे=जैसा पासा पड़ता (राजाज्ञा होती)। ते मग्गे=उसी रास्ते पर। देवान देवयो=इन्द्र और देव तुल्य राजा के आश्रित। दीही=देते, कदम देते, चलते।

अर्थः—दिल्ली के वे दिन अच्छे थे। वहां का राजा पृथ्वीराज पासे के रूप मे और सब सामंतादि सारों के रूप में थे, जिस रूप में पासा पडता (राजाज्ञा होती) उसी रास्ते पर स्वय इन्द्र तुल्य राजा और उसके देव तुल्य आश्रित पैर देते थे।

दोहा

सारिन चल्लैं[1] पस[2] बर, सारि पस बर भोग।
सुबर सूर सामंत लैं, करि ढिल्ली प्रति जोग ॥३३३॥

ग्रा. पा. १, पा। २, पा का. भीं।

शब्दार्थः—सारिन=सार। चल्लैं=चलती। पस=पासे। बर=बल। सारि=सारें। भोग=भोगते, प्रयोग होता। सुबर-सूर=सबल वीर राजा पृथ्वीराज। करि=कर रक्खा। ढिल्ली-प्रति=दिल्ली मे। जोग=योग, सयोग, सपर्क।

अर्थः—जिस प्रकार पासे के बल पर सारें चलती हैं और सारों के अच्छे दाव पर पासे की चाल का प्रयोग होता है, उसी प्रकार सबल वीर, पृथ्वीराज और दिल्ली राज्य मे सपर्क था (स्वामी और सामत एवं प्रजा एक मत हो चलते थे)।

जै जै जस लद्धौ सुबर, बैर नृपति सुरतान।
सुबर बैर बर बढ्ढयौ, सुबर जित्ति चहुआन ॥ ३३४ ॥

शब्दार्थः—सुबर=उस समय। सुरतान=सुलतान गोरी। सुबर=सबल (कन्नौजेश्वर)। बैर=शत्रुता। बढ्ढयौ=बढाई, ठानी। जित्ति=जीता, विजय की।

अर्थः—राजा पृथ्वीराज और सुलतान गोरी में जब २ शत्रुता पैदा हुई तब उस युद्ध मे भी राजा (पृथ्वीराज) ने जय कीर्ति प्राप्त की। उसी प्रकार सबलवीर जयचन्द से (वीरचन्द के कारण) शत्रुता कर युद्ध में भी बलवान चाहुवान नरेश ने विजय प्राप्त की।

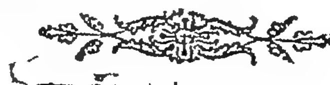
कवित्त

भई जीति चाहुआन, अरिय भंजे अभंग-भर।
जै जै सूर बखान, देव नखैं सुमन्न घर॥
लै शशिवृत्ता राज, अप्प दिल्लीय सँपत्तौ।
अति तोरन-आनँद, चित्त रत्तौ रस[1] मत्तौ॥
अरि अवनि को न मंडै नमन[2], खग्ग दाग अरि खडइय।
कविचद दंद-दारुन कपहि[3], इक अडंड करि दंडइय॥ ३२५॥

प्रा० पा० १ भीं। २ घ०। ३ सर्वप्रति।

शब्दार्थः—अभग-भर=अभग योद्धा। सूर=बहादुर, सामंत। बखान=कहा। नखैं=डाले, बर्षाये। सुमन्न=सुमन, पुष्प। लै=लेकर। राज=राजा। अप्प=आप, स्वयं। सँपत्तौ=पहुचा। अति=विशेष। तोरन-आनद=तोरणोत्सव मनाया। चित्त-रत्तौ=चित्त अनुरक्त हो गया। रस-मत्तौ=प्रेम का मतवाला। को=कौन। न-मडै-नमन=नमन नहीं करता, सिर नहीं नमाता। दाग=दग्घ कर देता। दंद-दारुन=भयानक युद्ध। कपहि=काँपते, थर्राते। इक=एक को, किसी को। अडंड-करि=अदंडित करता। दडइय=दडित करता।

अर्थः—चाहुवान नरेश पृथ्वीराज, विपक्षी अभंग योद्धाओं को नष्ट कर इस प्रकार विजयी हुआ और सामंतों ने जिस प्रकार जय २ कार किया उसपर देवताओं ने श्रेष्ठ पुष्प-वृष्टि की। शशिवृत्ता को लेकर वह दिल्ली पहुँचा और विशेष रूप से तोरणोत्सव मनाया गया (शशिवृत्ता के साथ विधि पूर्वक विवाह किया)। उसके बाद उस प्रेम के मतवाले का चित्त नव दुलहन से अनुरक्त हो गया। ऐसे वीर नरेश्वर के समक्ष ऐसा कौन शत्रु है जो उसे सिर नहीं नवांता? वह शत्रुओं का खंड २ कर अपनी तलवार द्वारा दग्ध कर देता था। कविचद कहता है, उसके भयानक युद्ध को देखकर शत्रु थर्रा जाते थे और वह किसी को अदडित और किसी को दंडित कर छोड़ देता था।



देवगिरि

(समय २४)

दोहा

ना चल्लै कमधज्ज गृह, गढ़ घेर्‌यौ फिरि भान ।
मानहु चंद सरद जिम, गिर नछित्र परिमान ॥ १ ॥

शब्दार्थः—कमधज्ज=वीरचद । गिर=गिरि, देवास, देवगिरि । नछित्र=नक्षत्र । परिमान=प्रमाण, समान ।

अर्थः—पराजित होकर वीर चन्द कमधज्ज घर नहीं लौटा और भानुराय यादव के दुर्ग पर पुन हमला कर दिया । उस समय गिरि (देवगिरि, देवास) शरद चन्द्र के समान और घेरने वाले शत्रु-सैनिक तारागण के समान दिखाई पडने लगे ।

इन कग्गद चहुआन पैं, उन मुक्कलि कनवज्ज ।
दुहौं वीर कविचद इह, कै वज्जै कै वज्ज ॥ २ ॥

शब्दार्थः—मुक्कलि=भेजा । दुहौं=दोनों । के वज्जै=कैसा समय बीता, कैसा युद्ध हुआ । कै वज्ज= कैसा बीतेगा, कैसा युद्ध होगा ।

अर्थः—यादव नरेश ने तब चाहुवान (वीर पृथ्वीराज) को और वीरचन्द कमधज्ज ने कन्नौज (जयचन्द) को पत्र लिखा, कवि (चन्द) कहता है दोनों (यादव और कमधज्ज या चाहुवान और कमधज्ज) वीर हैं । पहले कैसा युद्ध हुआ और देखें, आगे कैसा युद्ध होता है ?

कवित्त

सुबर वीर कग्गदह, पग करि अप्पि सु जपिय ।
बहु दुचित्त सजुत्त, लज्ज आजुत्त प्रकपिय ॥
सुर सुकीय कर पग, नैंन नीचे नृप दिट्ठौ ।
तब पहुपग नरिंद, कुशल जानीन गरिट्ठौ ॥
पुच्छि सु बात दह करि यतम, जानि मोक कह उप्पनिय ।
सग्राम तेज भजन भिरन, मरन कहौ मारन पुनिय ॥ ३ ॥

शब्दार्थ:—वीर=वीरचद। कगदह=पत्र। पग=पगुराज। करि=कर, हाथ। अप्पि=देता हुआ, समर्पण करता हुआ। जपिय=कहा। लज्ज=लज्जा। श्राजुत्त=सहित। सुर=आवाज। सुकीय=तोते जैसी। दिट्ठौ=देखा। गरिट्ठौ=गहरी। करीयतम=की जैसी, वीती जैसी। उप्पनीय=उत्पन्न होगा, पैदा होगा। मरन कहौ=मरण (आत्म हत्या) कहा जाय। मारन पुनिय=या शत्रु द्वारा मार दिये कहा जाय।

अर्थ:—उधर दूत कन्नौज पहुँचा और पंगुराज (जयचन्द) को सम्बोधित कर कहा-यह वीरचन्द का पत्र है, फिर उसने वह पत्र दिया। उस समय दूत की अवस्था अस्वस्थ, लज्जित और कम्पित सी थी। यह सुन जयचन्द ने तोते के समान टीं टीं कर (क्या है २ झुंझला कर पूछते हुए) उस दूत की ओर देखा। उसकी नजर जमीन की ओर थी। दूत की ऐसी अवस्था से कन्नौजपति अन्दर की बात को भांप गया कि हमारे पक्ष की कुशल नहीं दीख पड़ती है, पश्चात दूत से युद्ध विषयक बात की जानकारी ली, तब उसने जो बात वीती, वह कहते हुए कहा कि उसे सुन कर आपको शोक होगा। आप इसी से समझ लीजिये कि युद्ध-स्थल में शत्रु के तेज को नाश करने वाले से भिड़ने पर स्वयम् का मरण (आत्म-घात) या शत्रु द्वारा मार दिया कहा जाय।

दोहा

दुज्जन दवने पीरके, वज्जै-पर वर-केक।
भर भीरी रहि अंक के, मरन सरन के केक॥ ४॥

शब्दार्थ:—दवने=दमन कर्ता। पीरके=पीड़ा पहुचाने वाले। वज्जैपर=बजने पर, (शस्त्र-या-रण वाद्य बजने पर) वर-केक=कितनी ही बार। भर-भीरी=शत्रु पक्ष के वीर। अक के=स्त्री की अक में।

अर्थ:—दुर्जनों का दमन करने वाले और पीड़ा पहुँचाने वालों के शस्त्र (या-रण वाद्य) बजने पर देखा गया है कि कितने ही श्रेष्ठ विपक्षी-वीर भागकर घर पहुँच स्त्री की अक मे या मृत्यु की शरण मे ही रह पाते हैं।

देवगिरि गढ़ घेरि फिरि, हौं मुक्क्यौ नृपकाज।
मतौ मंडि रा-पंग पै, वे पुक्करि पृथिराज॥ ५॥

शब्दार्थ:—देवगिरि=देवास दुर्ग। हौं=मुझे। मुक्कयौ=भेजा। नृपकाज=आपके लिये। रा-पंग=राय पग, पगुराज। वे=वो, यादव। पुक्करि=पुकार की, सूचना दी।

अर्थः—हे राजन्! देवास के दुर्ग को पुन घेरने के बाद अपने पक्ष वालों ने मुझे आपके पास भेजा है और उधर यादवों ने इसकी सूचना पृथ्वीराज को दी है।

कवित्त

क्रोध भरिय कमधज्ज, काक बर बोल उचारै।
जो भज्जै ग्रह अपन, कौन अप्पनौ विचारै॥
अरे सुनहु भर सुभर, जुज्झ भग्गो पति छड्डै।
बेचि बीर गजराज, बाद अंकुस कौ मड्डै॥
चहुआन सेन कित्तीक है, एक मीर वदा वधै।
लभ्भयौ राज अप अप्पुनह, लोहधार मो सम सधै॥ ६॥

ग्रा० पा० १ भीं० पा०।

शब्दार्थ—काक=कौआ। भज्जै=भाग गया। अप्पनौ=अपना साथी। विचारै=सोचे, माने। जुज्झ=युद्ध। पति=लज्जा। बेचि=बेचकर। बाद=चर्चा। कित्तीक=कितनीक। वधै=खत्म कर सकता है। लभ्भयौ=सोच लिया। अप्पु-नह=अर्पण करना। लोहधार=शस्त्र धारा। मो=मेरे। सम=से। सधै=अपनाना चाहता।

अर्थः—दूत की बात सुन कमधज नरेश क्रुद्ध हो कहने लगा—क्या कभी कौआ भी अच्छी वोली बोल सकता है। जो पृथ्वीराज युद्ध छोडकर भाग गया है, उसे कोई भी वीर अपना साथी कैसे बना सकता है? हे वीर यौद्धाओं सुनिये! लज्जा को छोडकर जो भाग गया है, वह ऐसा है, जो हाथी को वेचकर अंकुश की चर्चा छेडता हो (हाथी को खोकर केवल अंकुश के ही बल पर गजारोही कहलाना चाहता हो); चहुआन की सेना कितनीक है? उसे तो मेरा एक मीर बन्दा ही समाप्त कर सकता है। उस चहुआन शत्रु ने तो अपने राज्य को समर्पित कर देने का ही विचार कर लिया है, इसीलिये मेरे साथ लोहे की धार को टकराना चाहता है।

चढत पग हय राजि, सज्जि गजराज मज्जि नर।
यों जानी सुर असुर, करै कमधज्ज वियापुर॥
वजि त्रिघोष विय सहस, मीर वदा दस लक्खिय।
तीस लक्ख पाइक्क, सुवर पारक वि अक्खिय॥

जूसन विराग वलवीर सजि, दल सज्यौ गजन अरिन ।
पहु पंगवीर परतख्खि लै, किरन सु सम सज्जी किरन ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—वियापुर=नवीन नगर, नयी सृष्टि । त्रिय=दो । त्रिघोष=ऊँची आवाज । दस-लक्खिय=दश लक्ष । पाइक्क=पैदल सेना । पारक=पाड़नेवाले, मार गिराने वाले । वी=वह । अक्खिय=इक्षुधारी, बाणधारी, कहे गये । जूसन=जोश में भरे हुए । विराग=वैरागी, नागों की फौज । गजन=नष्ट करने को । परतक्खि=प्रत्यक्ष । किरन=सूर्य किरण । सज्जी किरन=किरणी, एक प्रकार का राज चिन्ह ।

अर्थः—पगुराज के इस प्रकार आवेश में आने पर चढ़ाई करने के लिये हाथी घोडे और सैनिक सुसज्जित हो गये । उस समय देवता और दानवों को ऐसा ज्ञात होने लगा, मानो कमधज राजा (विश्वामित्र के समान ही) आज नवीन सृष्टि का निर्माण करके ही रहेगा । ऊँची आवाज से उस समय दो सहस्र रण-वाद्य वजने लगे । दसलक्ष मोर-बन्दे सुसज्जित हुए । तीस लक्ष श्रेष्ठ बांके पैदल सैनिक, जो शत्रुओं को बाणों द्वारा मार गिराने वाले थे । अनेक जोश मे भरे हुए बलवान वैरागी वीर (नागों की फोज) और अन्य सेना शत्रुओं को नष्ट करने के लिये तैयार होगई, उसी समय पगुराज प्रत्यक्ष रूपसे सूर्य किरणों के समान प्रकाशमान किरणी (एक प्रकार का राज चिन्ह) धारण कर सुशोभित हुआ ।

दोहा

इह प्रतग पहुपग लिय, बधि जद्दव चहुआन ।
जग्य अरभ जु मडिहौं, ता पच्छै परवान ॥ ८ ॥

शब्दार्थः—प्रतंग=प्रतिज्ञा । बधि=वधकर, नाश करके । जग्य=यज्ञ । अरभ=आरम्भ । परवान=प्रमाण, निश्चय ।

अर्थः—पगुराज ने यह प्रतिज्ञा की कि यादव और चाहुवान का नाश करने के बाद ही यज्ञारभ करू गा, यह निश्चय है ।

कवित्त

चढत पग मिलि सेन, पूर जिम नदिय मिलत त्रिन ।
वज्जि-वीर वातूल, जत्थ-कत्थह उड्डे खिन ॥

इकट्ठां फुनि जम्म, तुट्टि जूजू फल लद्धौ।
दैव क्रम्म करि जोग, आइ एकट्ठ अरुद्धौ॥
बधेत काल डोरी तनै, छुट्टि धार घन मिलहि तिम।
आवृत्त क्रम्म लिक्खै[1] बिना, मिलै न पंचौ पच जिम॥ ६॥

प्रा० पा० १ सं०।

शब्दार्थः—त्रिन=तिन, त्रिवेणी। बज्जि वीर=वज्र काय वीर। जत्थ कत्थ=यत्र तत्र। तुट्टि=तुष्ट। जम्म=जन्म। जूजू=भिन्न २। लद्धौ=प्राप्त किये हों। दैव क्रम्म=देवयोग। करिजोग=योगकर्ता। अरुद्धौ=उलझा, जुटा। बधेत=बांधने के लिये। काल=यम। डोरी=पाश। तनै=फैले हो। घन=बादल। आवृत्त=परिवर्तन। क्रम्म=कर्म, भाग्य। लिक्खै=देखे। मिलै न=नहीं मिलेंगे। पचौं—पच-तत्वमय शरीर। पच=पचतत्व।

अर्थः—चढाई करने के लिये पंगुराज जयचन्द की सेना इस प्रकार एकत्रित हुई जिस प्रकार परिपूर्ण त्रिवेणी का सगम हुआ हो या वज्रकाय-वीर तूफान की भांति शत्रुओं को क्षण भर में यत्र तत्र करने वाले हों अथवा पूर्व जन्म के अनेकों फल एक साथ प्रसन्न हुए हों। देवयोग की साधना करने वालों का समूह एक ही स्थान पर आकर एकत्रित हो गया हो या यम की पाश के तन्तु, बधन में लेने के लिये फैले हों अथवा जल की धारा बरसाते हुए बादल आपस मे मिले हों। एकत्रित हुए वे वीर अपने भाग्य-परिवर्तन को बिना देखे ही मन मे अनुभव कर रहे थे कि क्या उनके पच भौतिक शरीर पचतत्वा मे नहीं मिल जायेगे ? (वे मृत्यु को भूले हुए थे)।

दोहा

वान पग पहु पग परि, मिली क्रन की कान।
इह अपुव्व वर भान सजि, दै कग्गद चहुआन॥१०॥

शब्दार्थः—वान=आवाज। मिली=समागई। क्रन-की-कान=कितने ही के कानो में, कानों कानों मे। अपुव्व=अपूर्व।

अर्थः—पगुराज आगया! आगया! की आवाज प्रत्येक के कानो मे समा गई और यादव श्रेष्ठ वीर भानुराय पृथ्वीराज के लिये पत्र देकर अपूर्व ढग से पगुराज का सामना करने के लिये सुसज्जित होगया।

रति-पति पत आलुभिभ्क घन, तिहि कग्गद मुकि दूत ।
तजि सिंगार भौ वीर रस, जिमि आयौ वरधूत ॥११॥

शब्दार्थः—रतिपति=कामदेव । पत=प्रवेश करके । आलुभिभ्क=उलझा रक्खा । घन=विशेष रूप से । तिहि=उसको । मुकि=दिया । वरधूत=वृद्धिपर ।

अर्थः—जिसके शरीर में कामदेव ने प्रवेश कर विशेष रूप से उलझा रक्खा था उस चाहुआन राजा पृथ्वीराज को यादव नरेश के भेजे हुए दूत ने जाकर पत्र दिया, जिससे उसके शरीर से शृंगार रस विदा होकर वीर रस ने वृद्धि पाई, ऐसा दिखाई पड़ा ।

बाल कमोदनि पीय ढ़िग, ससि समान रस पान ।
वर बिलौकि जो,देखिये, तौ चहुआनैं भान ॥१२॥

शब्दार्थः—वर=बल, शक्ति । चहुआनै=चहुआन नरेश ही । भान=भानु, सूर्य।

अर्थः—बाला कुमोदनी के समीप पृथ्वीराज, सुधारस पान कराने वाले शशि के समान दिखाई पड़ता था । किन्तु यदि हम उसकी शक्ति की ओर देखें तो वह चाहुआन नरेश साक्षात् सूर्य के समान दिखाई पडता है ।

कवित्त

लाज सरस चहुआन, जोग उज्जै - जुध मुत्तम ।
त्रियन पाइ दिखि काम, वेर दिक्खे जु वीर सम ॥
घरि इक पग नरिंद, कलँक ऊननि करि देखै ।
इत्त सु जद्दवराइ, सज्जन अप्पनौ सु लेखै ॥
सुरतत स्वामि अभिलाप रिन, ग्रव्व राजमद्दह नृपति ।
मार सु नरिंद संकर भयौ, अति निकलंकह चित दिपति ॥१३॥

शब्दार्थः—जोग=योगी । उज्जै-जुध=ऊये-जुध, युद्ध छिड़ने पर । मुत्तम=उत्तम । वेर=शत्रु को । वीर-सम=वीर रस रूप । ऊननि=उदास होकर । इत्त=इधर । सजन=सज्जन । लेखै=समझता था । स्वामी=पृथ्वीराज । सुरतत=सुरति सुख के बाद । रिन=रण, युद्ध । ग्रव्व=गर्व । मार=काम स्वरुप । संकर=रुद्र-रूप । निकलकह=उज्वल । दिपति=दीप्तिमान, बिना धब्बे के ।

अर्थः—चाहुआन नरेश मे जैसी सरस लज्जा थी वैसा ही वह युद्ध समय मे उत्तम योगी के रूप मे (मोह रहित) दिखाई पड़ता था। स्त्रियों के लिये वह कामदेव रूप था, शत्रुओं को मूर्तिमान वीर रस के रूप मे दिखता था। घड़ी भर के लिये पगुराज उदास होकर उसे कलंक रूप में देखता था। किन्तु उधर यादवराज उसे अपना सज्जन समझता था। सुरतिसुख के बाद राजा पृथ्वीराज, जिसे राज-मद का गर्व था युद्ध के लिये इच्छुक हुआ और वह काम-रूप से रुद्र-रूप मे परिणित हो गया। उसका चित्त परम उज्वल था, उसमे किसी प्रकार का भद्दा नहीं था।

दोहा

घरी एक बधी सुनी, पै सुफलि प्रथिराज।
बीयसोम अप्पन चढन, लैदीनी रस पाज ॥ १४ ॥

शब्दार्थः—बधी=बांधीगई, चित्त वृत्ति बंध गई। सुफलि= छोड़दी। बीय सोम=द्वितीय सोमेश्वर। अप्पन चढन=स्वयं चढाई करने को। लैदीनी=लगादी, बांधदी। रस=वीर रस। पाज=बांध।

अर्थः—पृथ्वीराज को चित्त वृत्ति एक घड़ी के लिये शृङ्गार रस के बंधन मे जकड़ी हुई सुनी गई। किन्तु उस द्वितीय सोमेश्वर ने चढाई करते समय शृङ्गार रस की त्याग करने को वीर रस की पाज बांध दी।

चढत राज पृथिराज को, वढि आवाज सुरतान।
समर-सिंघ-रावर लिशा, दै कग्गद चहुआन ॥ १५ ॥

शब्दार्थः—वढि=बढा। आवाज= आवाज।

अर्थ—जिस समय पृथ्वीराज चढाई करने लगा उसी समय उसको सुलतान के चढ़ कर आने की सूचना मिली। तब चाहुआन नरेश्वर ने रावल समर-केशरी को पत्र लिखा।

कवित्त

दिल्लीधर गोरी नरिंद, न र पलन अपचो।
पा-हुसैन [illegible] [illegible], अनंगपाल सु मिलचो ॥
तिर भर जल गंभीर, [illegible]सम दै गै कमगज्जी।
देवगिरि दिसि मान, वीर पावस जिम सज्जी ॥
घर लई मज्ज सा[illegible] जरत, मान न अप्पर सुर [illegible]ही।
चित्रंगरा[illegible] रावर [illegible]मार, [illegible] अवसान न चुक्कही ॥ १६ ॥

शब्दार्थः—वध पल्हन=पल्हन कछुवाहे का भाई। पपत्तो=पहुंचा, डटा। मिलत्तो=मिला, मिलाकर। तिर=तैरकर। जल गभीर=गहराजल, समुद्ररूपी वीर समूह। हसम=सेना। वीर=वीरचद। साहिव=शहाबुद्दीन। छुरत=जुटकर। मान=भानु, सूर्य। उप्पर मुक्कहि=ऊपर करता, सहायता करता। अवसान=मौका। चुक्कही=विसारना।

अर्थः—पत्र मे लिखा कि हुस्सेन को शरण में रखा उसके बदले में गोरीशाह ने अनगपाल को मिला कर दिल्ली के भूभाग मे प्रवेश किया है। उसका सामना करने के लिये पल्हन कछवाहे का भाई डटा हुआ है। उधर भानुराय पर वीरचन्द के अनुरोध से आक्रमण करने के लिये अश्वारोहियों और गजारोहियों से सजी हुई कम घजी सेना, समुद्र तुल्य योद्धा-समूह को पार करती हुई पावस के रूप में सजी है। शाहबुद्दीन ने भी आकर दिल्ली के विशेष भूभाग पर कब्जा कर लिया है। इस समय सूर्य भी हमारे ऊपर नहीं के समान है, ऐसा लगता है; उसने भी हमें छोड़ दिया है। इसलिये हे चितौडपति रावल समर-विक्रम! ऐसे अवसर को आप नहीं भूलें।

वंचिय कग्गद समर, समर साहस उच्चारिय।
तव सुमत वर नृपति, मंत जानै न विचारिय॥
हम सुमत जो करै राज दिल्ली मति छडौ।
गहि गौरी सुरतान, अनंगपालह फिर मंडौ॥
सामंत देहु हम संग वर, रन रूंधै पहुपंग नर।
आरंभ महन रंभह मतौ, इह सुमत कुसलत्त घर॥ १७॥

शब्दार्थः—समर=युद्ध का। समरसाहस=रावल समर-विक्रम। तव=तेरे। सुमत=श्रेष्ठ मंत्री। मंत=मंत्रणा। मडौ=सिंहासन पर सुशोभित कर। रन=युवराज रणसिंह (रावल समर-विक्रम के पुत्र)। पहुपग=पंगुराज जयचंद। महन रंमह=महान-युद्धारम। कुसलत=कुशल।

अर्थः—आये हुए उस युद्ध-सम्बन्धी पत्र को पढकर रावल-समर-विक्रम ने कहलाया, हे श्रेष्ठ नृपति पृथ्वीराज! तेरे मंत्री श्रेष्ट मंत्रणा करना नहीं जानते। हमारी यही उत्तम सम्मति है कि आप दिल्ली को न छोड़िये। और यदि अनगपाल चाहे तो उन्हें गौरीशाह को पकड़ कर फिर से सिंहासन पर सुशोभित करिये। आप अपने श्रेष्ठ सामंत हमारे साथ कर दीजिये ताकि राजकुमार रणसिंह (रावल समर विक्रम

के युवराज) पगुराज और उसके सामतों को रोके। इस महान युद्धारभ मे भाग लेना चाहते हों तो इसी सुमत्रणा से आपकी गृह-कुशल है।

दोहा

अमरसिंघ बधव समर, समरसु मोकलि दीन।
ते सामतन संग लै, देवग्गिरि मग लीन ॥ १८ ॥

शब्दार्थ:—समरसु=रावल समर-विक्रम। मोकलिदीन=भेज दिया।

अर्थ:—यह कहकर रावल समर-विक्रम ने अपने भाई अमरसिंह को चाहुआन की सहायतार्थ रवाना किया। वह दिल्ली पहुँचा और सामतो को साथ लेकर देवास की ओर रवाना हुआ।

हमसु राज चहुआन ने, राखै घेरी राइ।
पग औट बर कोट है, देवग्गिरि गढ जाइ ॥ १९ ॥

शब्दार्थ:—हमसु=सेना। राखे-घेरी=घेर लिया। कौट=दीवार।

अर्थ:—चाहुआन-राज की सेना ने पगुराज के साथी राजाओ को घेर लिया और देवास के दुर्ग पर पहुँचकर पगुराज के रास्ते मे आड करने के लिये श्रेष्ठ दीवार के रूप में हो गई।

कवित्त

देवग्गिरि गढ़ घेरि, ढोह मड्यौ बर पग।
रन निग्घोष प्रमान वीर बाजे रन जग ॥
चिहु दिसान डंड चक्क, उनै झोझ झर लग्गा।
द्वादस दिन रन मडि, राव चामड भिरि भग्गा ॥
सामत पग घिरो नृपति, छल छज्जै वलहारिया।
दाहिम्म राव दाहिर तनय, रत्तीवाह पिचारिया ॥ २० ॥

शब्दार्थ:—ढोह मड्यौ=ढाहने की चेष्टा की, ढाहना शुरू किया। रन निग्घोष=कुमार रणसिंह की उच्च घोषणा। प्रमान=मानते हुए सुनते हुए। उनै=उमड़ कर। झोझ=झझावात। झर लग्गा=झड़ी लग गई। भग्गा=नष्ट कर दिये। भिरे=समाप्त हुए। छज्जै=किया। वलहारिया=बलहरे, राष्ट्रकूट क्षत्रिय। रत्तीवाह=धावा, रात्रि में शत्रु पर आक्रमण करना।

अर्थः—उधर वीर-श्रेष्ठ पंगुराज ने देवास दुर्ग को घेर कर गिराने की चेष्टा की। तब कुमार रणसिंह की युद्ध घोषणा को सुन कर उसके साथी वीरों ने युद्ध के लिये रण वाद्य बजवाये। उस समय चारों ओर से चक्र चलने लगे और ऐसा दृश्य दीख पड़ा मानों झंझावात के साथ उमड़ कर वर्षा की झड़ी लग रही हो। इस प्रकार बारह दिवस तक युद्ध होता रहा। अग्रगण्य चावंडराय ने भिड़ कर कितने ही विपक्षी योद्धाओं को नष्ट कर दिया अपने सामंतों को इस प्रकार समाप्त होते देख राजा-जयचंद और उसके सगोत्रीय वलहरे-वीरों (राष्ट्रवर क्षत्रियों) ने छद्म-युद्ध करना प्रारभ किया तब दाहिर-पुत्र दाहिमा नरेश चावंडराय ने भी छापा मारने का निश्चय किया।

मिलि जद्दव चामड, रत्तिवाहं सपन्नौ।
जोइव्जै सथ टारि, साथ टारिजै अपन्नौ॥
अतमाथ सो साथ, और सव साथ सुपन्नौ।
कै भर तरकस ंध, थान मन्न आकन्नौ॥
जीवंत दान भोगह समर, मरन तित्थ रँभ भिरन गति।
ए करै वात उभ्भैत नर, तास राज मडल मिलति॥ २१॥

शब्दार्थः—जोइव्जे=देख लेना चाहिये, पहचान लेना चाहिये। सथ=विपक्षियों के साथियों में। टारि=अलग। टारिजै=बचा लेना। अतसाथ=अंत तक साथ देने वाला। सो साथ=वही सच्चा साथी है। साथ=साथी। सुपन्नो=स्वप्न तुल्य। कै=कितने ही। तरकस बंध=भाथा बांधने वाले। थान=घर की ओर। मन्न=मन को। आकन्नौ=अकित कर देते हैं, लगा देते हैं। तित्थ=तीर्थ। गति=मोक्ष। ए=यह। उभ्भैत=दो, दोनों। तास=तिस।

अर्थः—यादव और चामडराय ने मिल कर छापा मारने को तय्यारी की और आपस में कहने लगे :— कि रात्रि के हमले में खूब सावधानी से विपक्षियों का ध्यान रखकर अपने साथियों को बचा लेना चाहिये। वास्तव मे अन्त तक साथ देने वाला ही साथी होता है। अन्य साथी स्वप्न-तुल्य है (वे केवल नाम मात्र के है) कितने ही यौद्धा ऐसे भी होते हैं जिनका मन युद्ध के लिये भाथा बॉध कर भी घर की लगा ओर रहता है किन्तु जो मनुष्य मुॅह से निम्न दो वातों की चर्चा करते रहते हैं:- (१) युद्ध में जीवित रहने पर दान और मासरिक सुख का उपभोग मिलता है और

(२) रण मे लड़ कर मरने से या तो रभा मिलती है या मोक्ष प्राप्त होता है। ऐसे वीर, राज-वशों में ही मिलते है।

हत्थ हत्थ सुभझैन, मेघ डमरि मॅडि रज्जी।
निशि निशीथ अतरी, भान उत्तरि सथ सज्जी॥
वज्ज वीर झलकत पवन, पच्छिम दिशि वज्जै।
मोर सोर पप्पीह, अवनि सक्रित घन गज्जै॥
बधी जु सिलह निशि सत्त मिलि, घसिय पग दरवार दिसि।
चामडराइ दाहर तनौ, लरन लोह कड्ढेति रिसि॥ २२॥

ग्रा० पा १ स०।

शब्दार्थ—मेघ डमरि=मेघाकृति। मडि=छागई। रज्जी=धूली। निशीथ=अर्ध रात्री। अतरी=में। मान=भानुराय। उत्तरी=उतरा। बिज्ज=बिजली। झलकत=दमकते, झलकते। पप्पीह=पपीहा। संक्रित=सक्र के, इन्द्र के। घन गज्जै=बादल गरज ने लगे। बढ्ढी=बढे। सिलह=सिलह रूपी सेना, सहायक सेना [या शस्त्र बढाये]। सत्त=सात। घसिय=घुस पड़े, बढे। दरबार दिसि=खास खेमे की ओर। तनौ= तनय पुत्र। लोह कड्ढेति=शस्त्र निकाले शस्त्र उठाये। रिसि=क्रोध में आकर।

अर्थः—मेघाकृति अश्वारोहियों के चलने से इतनी धूलि छागई कि हाथ से हाथ नहीं सूझता था। अर्ध रात्रि के समय भानुराय भी सुसज्जित हो अपने साथियों सहित दुर्ग से उतर कर सहायता के लिये आ मिला। उस समय आकाश में बिजली चमकने लगी और वीरों में वीर रस झलकने लगा, पश्चिम दिशा का पवन चलने लगा तथा नभ से बादल पृथ्वी की ओर आ आकर गर्जने लगे। जिमसे मयूर और पपीहे शोर-गुल करने लगे। ऐसी उस अँधेरी रात्रि की सात घडी बीतने पर यादव और चाहुआनी वीरों ने कवच मे सजकर पगुराज के खास खेमे की ओर कूच किया और दाहर-पुत्र चावडराय ने क्रोध मे आकर लडने के लिये शस्त्र उठाये।

घसि नरिंद चामड, कूह वज्जी रन जंग।
भर भग्गी चौकी समूह, जूह लग्गा रन जग॥
रन नरिंद वाहन कुँआर, सार धारह हसि झिल्ले।
पग टटी चौद्धार, जिते भज्जे तित मिल्ले॥

आरिष्ट काल बज्झत घरी, उथरि मेह घन सार जल ।
जग्गयो जोध कमधज्ज अब, मनौं सिंघ जुम्यौ सुछ्ल ।। २३ ।।

शब्दार्थः—धसि=घुसते ही, प्रवेश करते ही । कूह=किलकारी, ललकार । पज्जी=की । रन=रावल समर-विक्रम के कुमार रणसिंह । जंग=युद्ध में । चोकी समूह=प्रहरी वीरों का समूह । जूह=जुटने । लग्गा=लगा । रन=रणकुमार । जगं=युद्ध में । रन=युद्ध में । नरिंद वाहन=राजाओं को विचलित कर देने वाला । झिल्लै=झेला । टटी=दीवार (वीरों की दीवार) । बौछार=झड़ी । जिते=जितने । तित मिल्ले=उधर ही जाकर मिलता, पीछा करता । आरिष्ट=अरिष्ट । बज्झत=बजने पर । उथरि=उघड़ गये, मिट गये । मेह=मेघ । घन=विशेष । सार=लोहा । जोध=योद्धा, वीर । सुछ्ल=स्वच्छन्द ।

अर्थ—पंगुराज के खास खेमें में चावंडराय के प्रवेश करते ही कुमार रणसिंह (रावल समर विक्रम के पुत्र) ने युद्ध की ललकार की, जिससे प्रहरी वीरों का समूह भागने लगा । उसी समय रण-कुमार भी युद्ध-रत हो गया । राजाओं को युद्ध से विमुख करने वाले (भगा देने वाले, विचलित करने वाले) युवराज ने हँसकर लौहा पकड़ा और पंगुराज के दीवार स्वरूपी वीरों पर हमला किया; जिससे पंगुराज के जितने यौद्धा थे, वे सब भागने लगे किन्तु उसने उनका पीछा नहीं छोड़ा । इस-प्रकार अरिष्टकारी काल की घडी वजही रही थी कि आकाश में छाये हुए मेघ हट गये किन्तु जल वर्षा के समान सस्त्र वर्षा होती रही । इतने में श्रेष्ठ योद्धा कमधज नरेश जयचंद इस प्रकार जाग उठा, जिस प्रकार स्वच्छंद सिंह जूझने को उद्यत हुआ हो ।

तब रावत उच्चरे, राज जोरी वर पगं ।
जिन चपे बल पुछ्, रोस जग्यौ नृप दग ।।
नाग पत्ति कोपत्ति, उप्प वर कन्ह जगायौ ।
राह सुमनि बित्तए, जम्म जुग राज झुकायो ।।
उच्चरै वीर कुटवार रिन, रन रुंध्या अप डिंभरू ।
सभरै वीर कमधज्ज कौं, भये रोम गति बिब्भरू ।। २४ ।।

शब्दार्थः—पुछ=पूँछ, दुम । चपै=दवाई । दगं=युद्धार्थ । नागपति=नागों का स्वामी, काली नाग । कोपत्ति=क्रोधित । अप्प=अपने । वर=बलपर । राह=रास्ता । सुमनि=श्रेष्ठ माना

हुआ। वित्तए=विता दिया, छोड़ दिया। जम्म=यम। जुग=दो, द्वितीय। झुकाया=उतर पड़ा। कुटवार=कोतवाल, नगर रक्षक। रिन=रिनराय। रन=रणसिंह। रुंध्या=रूंधलिया, रोंधलिया। अप=आपको। डिंमरु=बालक ने। समरै=सुनते ही। रोम=रोएँ। विम्मरु=खड़े हो गये।

अर्थः—तब नगर-रक्षक वीर रिनराय रावत ने पंगुराज से कहा—आज आपकी श्रेष्ट जोडी मिली है। क्रोध मे आकर जिसने आपकी दुम को दबाया है—और युद्ध के लिये आपको इस प्रकार जगाया है, जिस प्रकार कृष्ण ने अपने बल पर भरोसा कर क्रोधित काली नाग को जगाया था, हे राजन्! श्रेष्ट माने हुए युद्ध-मार्ग को छोड़ कर वह आपकी ओर द्वितीय काल के समान हो झपट पड़ा है। बच्चा होकर भी रणसिंह ने रणमें आपको रौंध लिया है। यह सुनते ही वीर श्रेष्ट कमधज-नरेश के रोएँ खडे हो गये।

अमर सिंह आहुट्ठ, नाग मुक्खी वर कड्ढी,
शीश शोभि गजराज, नाग मुख नागिनि चड्ढी,
हाड हटक्की हथ्थि, वीर खच्यौ कर सद्दे।
कै हथनापुर "चन्द", वीर खचे बलि भद्दे॥
दती सुभग्गि धरपर पर्‌यौ, इल खुच्यौ दँत अद्धकवि।
सिंघइ ति भूमि वर सुब्भई, मिलत भूमि हथ्थह ति रवि॥२५॥

शब्दार्थः—आहुट्ठ=आहड़ा क्षत्रिय। नाग मुक्खी=एक प्रकार का शस्त्र। नाग=सर्प और हाथी। हाड=हड्डियों में। हटक्की=उलझगई। खच्यौ=ऐंचा। सद्दे=शीघ्रता पूर्वक। कै=मानों, अथवा। हथनापुर=हस्तिनापुर। चन्द=रविचद। बलिभद्दे=बलराम। दती=हाथी। इल-खुच्यो=जमीन में घुस पड़ा। दँत=दांत। अद्धकवि=अह अर्ध सा। सिंघइ=मांग, लोहे की नर्धा। सुब्भई=शोभित हुई। हथ्थह=कर, किरण।

अर्थः—आहडे अमरसिंह ने नागमुखी नामक शस्त्र को निकाल कर एक हाथी के सिर पर वार किया, वह शस्त्र नाग (हाथी) के मुख पर ऐसा सुशोभित हुआ मानो नाग (सर्प) के मुँह से नागिनी जा लगी हो। वार करने पर हाथी की हड्डियों में वह शस्त्र उलझ गया, जिसको उस वीर ने जल्दी मे खींचा कवि (चंद) कहता है—जिससे साथ २ हाथी भी खींचकर इस प्रकार आने लगा मानों वीर बलराम ने हल के द्वारा हस्तिनापुर को खींचा हो। आखिर हाथी नष्ट होकर जमीन पर पड

जिससे उसका आधा दाँत जमीन में घुस गया और वह नाश कर्ता शस्त्र (सांग) भूमि से लगा हुआ इस प्रकार सुशोभित हुआ, मानों सूर्य-किरण भूमि से लगी हुई हो।

हस्तिकाल जम जाल, काल रुध्यौ चामडह।
सुनत पंग रसभग, सीस लग्यौ ब्रह्मण्डह ॥
रन रुध्यौ वच्छरु, मीन गत्ति नीर प्रमान।
जग्गि वीर पहु पग, तोन पारथ्थ प्रमान ॥
जग लोह कोह कड्ढिय सु असि, भिरत न अपु अरि तक्कए।
रहि जाम एक निसि पच्छली चढिवि सूर हय नक्खए ॥२६॥

शब्दार्थ:—हस्तिकाल=हाथियों का काल। जम जाल=यमपाश। काल=समय। रुध्यौ=रुँधा। रसभंग=क्रोध में आगया। रन=रणसिंह। वच्छरु=बालक। तोन=त्रोण, माथा। पारथ्थ=पार्थ, अर्जुन। प्रमान=समान। कोह=क्रोध, आवेश। अपु=अपने। अरि=शत्रु, पराये। तक्कए=दीख सकते थे, पहचाने जाते थे। जाम=याम, प्रहर। पच्छली=पिछली। चढिवि=चढ़कर। नक्खए=बढाया।

अर्थ:—हाथियों के काल और यम-पाश रूपी होकर चामडराय ने भी उस समय पंगुराज को रौंधा, यह सुनकर पंगुराज क्रोधित हुआ और उसका सर ब्रह्मांड से जा लगा। बालक रणसिंह के द्वारा वह इस प्रकार रौंधा गया था, जैसे मच्छी जल से घिरी रहती है। वह वीर कमधज्ज-राज जाग कर शस्त्रास्त्र बांधता हुआ पार्थ के समान दिखाई पड़ा। उसने आवेश में आकर शस्त्र और तलवार को उठाया; किन्तु रात्रि के (अँधेरे के) कारण अपने और पराए को नहीं पहचान पाने से जब पिछली रात हुई तब उस बहादुर ने घोड़े को बढाया।

वज्जि कूह संमूह, अमर उट्ठै समर भिरि।
खड मुक्ख भौ कोट, समर वंधं सुद्धे जुरि ॥
रा चावड जैतसी, राव बड़ गुज्जर धाए।
आहुट्ठे कमधज्ज. सार वज्जे सुरझाए ॥
वर अग जंग भज्जी सहर, लुथ्थि लुथ्थि आंलुथ्यि परि।
चहुने अरिय सग्राम भिरि, खट्ठ सहस सेना गिरी ॥ २७ ॥

शब्दार्थ—बज्जि=की। कूह=किलकारी, ललकारा। संमूह=सामने। कोट=दीवार। सुद्धे=शोध-लिये, टटोल लिये। छुटि=छूटकर। सार बज्जै=लोहा बजा। भज्जी=टूट गये, नष्ट हो गये। सहर=सिहर, सिर। लुथ्थि=शव। आलुथ्थि परि=लग गई। चढ्ढने=सजने पर, चढाई करने पर।

अर्थः—उस समय ललकार करता हुआ समर-विक्रम का भाई अमरसिंह शत्रुओं से युद्ध करता हुआ, उन्हें जांचने लगा। जिससे पगुराज के वीरों की दीवार खड-खड हो गई। चावडराय, जैत्र प्रमार और रामराय बड गुज्जर भी उस समय बढ़कर उसके साथ हो गये। आहड़े और कमधज वीरों ने लड़कर उस उलझे हुए युद्ध को सुलझा दिया (समाप्त कर दिया)। शस्त्रों के प्रहार से वीरों के सिर आदि अग टूट रहे थे और शवों पर शव बिछ गये थे। इस युद्ध में दोनों ओर की छ सहस्त्र सेना धराशायी हुई।

दोहा

कोन हीन को नीर बिन, को तप-भान नरिंद।
सह धन धर मुक्की मिलै, लज्ज एह जयचद्द ॥ २८ ॥

शब्दार्थः—नीर=नूर, कांति। तप भांन=नष्ट तेज। मुक्की=छोड़ने पर, तिलांजलि देने पर। एह=यह।

अर्थः—कवि कहता है—कौन राजा हीन, तेज रहित और अप्रभावशाली कहा जाता है? (जिसकी लज्जा चली गई है) हे राजा जयचंद! सब धन और पृथ्वी को तिलांजलि दे देने पर भी यदि लज्जा रह जाय तो श्रेष्ट है। कवि ताना देता है— सब प्रकार से सम्पन्न) होते हुए भी इस समय जयचन्द की लज्जा न रही.।

दे' यस तिलक सु भान को, जोगिन पुत्तर चिन्ह।
मोकलिजे आहुट्टपति, पग्ग पग करि हिंन ॥२९॥

प्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थः—जोगिन=दिल्ली। पुत्तर=प्रशस्ती। मोकलिजै=लौटाया। आहुट्ठपति=आहड़ों के मुखिया, युवराज रणसिंह और आहड़ा अमरसिंह। पग्ग=पैर।

अर्थः—भानुराय के भाल पर यश का तिलक किया गया। वह दिल्लीश्वर के जय

की प्रशस्ति के तुल्य बन गया। यह कार्य आहुड़ों के मुखियों का ही हो सकता है जो पगुराज जैसे बलवान के पैर तोड़ कर लौटा सके।

गयौ पंग कनवज्ज दिसि; घन रक्खै धनमास।
नव नवमी नव सरद निसि, तिन मुक्की अरित्रास ॥३०॥

शब्दार्थः—घन=बहुत से योद्धाओं सहित। धन-मास=लक्ष्मी का महिना, कार्तिक मास।

अर्थः—धन्य है उन वीरों को जिन्होंने पगुराज को अगणित योद्धाओं सहित कातिक मास तक रक्खा (युद्ध करते रहे), इसके बाद पगुराज कन्नौज लौट गया। वह नवमी शरद की और वह नवीन रात्रि यादव और उनके पक्ष वालों के लिये नूतन दिवस (त्यौहार) के समान थी। इस दिन शत्रु पगुराज का भय उनके हृदय से दूर हुआ।

०*०*৪*०*०

रेवा तट

(समय २५)

दोहा

देवगिरि जित्ते[1] सुभट, आयौ चावॅडराय ।
जय जय नृप कीरति सकल, कहि कब्बिजन आय ॥ १ ॥

प्रा० पा० १, पा० घ० ।

शब्दार्थः—जिते=विजय प्राप्त की । सकल=सब । कब्बिजन=कवियों ने ।

अर्थः—देवगिरि के युद्ध में विजय प्राप्त करके चामुंडराय सामन्तादि सहित दिल्ली को आया । इस विजय के उपलक्ष मे समस्त कवियों ने राजा पृथ्वीराज के कीर्ति-गान के साथ २ उसकी जय २ कार की ।

मिलत राज पृथिराज सौं, कही राव चावड ।
रेवा तट जो मन करौ, (तो) वन अपुब्ब गज झुंड ॥ २ ॥

शब्दार्थः—अपुब्ब=अपूर्व ।

अर्थः—इसके पश्चात् राजा से मिलकर चामुंडराय ने कहा-हे नरेश्वर ! यदि रेवातट पर जाने की इच्छा की जाय तो वहाँ वन मे हाथियों के अपूर्व झुण्ड मिल सकते हैं ।

कवित्त

सुनहु[1] राज पृथिराज, विपिन रवनीक[2] करी[3] जुथ ।
रेवातट सुन्दर-समूह, वीर[4] गज-हत[5] चवन-रथ ॥
आखेटक-आचभ, पथ पावर रुकि पिल्लौ ।
सिंध वट्ट दिल्ली-समूह, राज खिल्लत दुअ चल्लौ ॥
जल जूह-कूह कस्तूरि मृग, पह्व पखी[7] अरु प्रबल तहँ[8] ।
चहुँवान वने[9] दिखे[10] नृपति, कहिन वनत दखिन[11] सुरह ॥ ३ ॥

प्रा. पा १ से ३, का पा घ । ४ सर्वप्रति । ५,७,८, का । ६ १०, पा घ । ९,११ पा ।

शब्दार्थ—रवनीक=रमणीक, रमणीय । करी-जुथ=करियुथ्थ हाथियों का समूह । सुन्दर-समूह-वीर=श्रेष्ठ वीर समूह । गज-हत=हाथियों को मारने । चवन-रथ=के लिए कहता है (निवेदन करता है) ।

आखेटक-आचम=अद्भूत आखेट। पात्र=पामर, शत्रू। रुकि=रोकते हुए।। पिल्लौ=प्रयान करो, पहुँचो,चलो,बढ़ो। सिंघ-वट्ट=सिंहल के रास्ते (सिंघपुर कोई स्थान विशेष या सिंध के रास्ते)। दिल्ली-समूह=दिल्ली का वीर समूह। राज=राजा। खिल्लत=खेलते हुए, (शिकार करते हुए)। दुअ=दोनों। जूह-कूह=अमावस्या की तम राशि तुल्य, तम समूह। पह=पास, समीप। प्व्वतहैं=पर्वत। बने-दिख्खे=देखते ही बनता, देखने योग्य। कहि न बने=कहते नहीं बनता, अकथनीय। दक्खिन-सु-रह=दक्षिण दिशा के या दक्षिण के रास्ते पर (दिल्ली से दक्षिण की ओर के रास्ते पर)।

अर्थः—हे चाहुवान नरेश्वर पृथ्वीराज! सुनिये-रेवातट का वन जंगली-गज-समूह के कारण विशेष रमणीय है। आपका श्रेष्ठ वीर-समूह वहाँ जाकर हाथियों को मारने (शिकार करने) के लिये आपसे निवेदन करता है, अत. इस अद्भुत आखेट के बहाने रास्ते में रहने वाले दुष्ट शत्रुओं को रोकते हुए आगे बढ़िये। आप दोनों राजा (पृथ्वीराज और रावल समर-विक्रम के पुत्र युवराज रणसिंह या स्वयं रावर समर-विक्रम) दिल्ली के वीर समूह सहित सिंहल (या सिंधु) के रास्ते पर शिकार करते हुए चलिये। वहाँ पर सजल भूमि, वृक्षों की सघनता के कारण घना अंधकार, कस्तूरी मृग और पर्वत के पास ही विविध प्रकार के पक्षी रहते हैं। दिल्ली से यह स्थान दक्षिण दिशा के रास्ते पर है, जो देखने योग्य है और जिसकी प्रशंसा नहीं की जा सकती।

दोहा

रग[1] एक पहु-पग कौ, अरु रवनीक सु[2] थान।
चावँड राव वचन्न सुनि, चढि चल्ल्यौ[3] चहुवान ॥ ४ ॥

प्रा० पा० १, घ० का०। २ पा०। ३, सर्वप्रति।

शब्दार्थः—रग=प्रसन्नता, रग में रगा जाना।

अर्थः—देवगिरि (देवास) में पगुराज (जयचद) पर विजय प्राप्त करने के रंग में रगा हुआ चाहुवान नरेश्वर (पृथ्वीराज) चामुडराय के कहने पर उस रमणीय स्थान को देखने की इच्छा से घोडे पर चढ़ कर चल पड़ा।

कवित्त

चढत राज पृथिराज, वीर अगिनेव दिसा कसि।
सव्व भूमि नर[1] नृपति, चरन चहुआन लगियसि[2] ॥

मिल्यौ भांन विस्तरी, मिल्यौ खट्टूल गढी नृप ।
मिल्यौ नदिपुर राउ[3], मिल्यौ रेवा नरिंद अप ॥
बन जूथ मृग्ग सिंघह रु गज, नृप आखेटक खिल्लई ।
लाहौर थान सुरतान तप, वर कग्गद लिखी मिल्लई[4] ॥ ५ ॥

ग्रा० पा० १, ३, भीं । २ स० । ४ सर्वप्रति ।

शब्दार्थ.—अगिनेव=आग्नेय । कसि=कसकर, तैयार होकर । भूमि नर=भोमिया या जनता । लग्गियसि=लगे,छुये । विस्तरी=वेत्तरी,वेत्र वती नदी के तट का । खट्टूल गढी=खट गढी या कोई स्थान विशेष । रेवा=रीवा । अप=आप, स्वयम् । खिल्लई=खेलने लगा । तप=ताप, डर । लिखि=लिखा । मिल्लई=मिल. ।

अर्थः—पृथ्वीराज का शिकार के लिये चढाई करने पर, उसके साथी सामत भी तैयार होकर उसी के साथ दिल्ली से आग्नेय दिशा की ओर चल पडे । यह सुनकर अनेक भूमिपति और राजागण आ आकर चौहान (पृथ्वीराज) के चरण छूने लगे । वेत्रवती नदी का भानु नामक राजा (या वैत्रनदी तट के राजाओं का सूर्य, मुखिया) खट्टूल गढी का राजा, नन्दीपुर का राजा और स्वय रेवा नरेश आकर पृथ्वीराज से मिले । वहा राजा मृग, सिंह और हाथियों की शिकार खेलने लगा । उसी समय लाहौर पर गौरीशाह के आक्रमण की सूचना का पत्र (चन्द पुण्डीर द्वारा लिखा-गया) राजा को मिला ।

दोहा

खाँ तत्तार मारुफ खाँ, लिये पान कर साहि ।
धर चहुआनी उप्परै, वज्जा-वज्जन-वाहि ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—पान=बीडा, युद्ध का ताम्बूल । साहि=ग्रहण किया, पकडा । वज्जा-वज्जन-वाहि= बजने लगे है, बजेंग ।

अर्थः—उसमें लिखा था-ततार खा और मारुफ खा ने हाथ मे (युद्ध का) बीडा गृहण किया है । अत हे चाहुवान नरेश्वर ! अब आपके भू-भाग पर रण वाद्य बजेंगे यह निश्चय है ।

साटक

ओत भूपय गोरिय वर भर, वज्जाइ मज्जाइने ।
सा सेना चतुरग वधि उलल, तत्तार मारुफय ॥

तुमझी सार स उप्पराव सरसी, पल्लानय खानयं।
एकं जीव साहाव साहिनि-हय[1], वीरं सय[2] सेनय ॥ ७ ॥

आ० पा० १ का० । २ पा० ।

शब्दार्थ—श्रोतं=सुनिये। मरं=मट्ट, योद्धा। उछ्लं=उछल पड़े, उछल पड़े, उमड पड़े। तुम्झी=तू मी। सार=लोह, तलवार। उप्पराव=ऊपर, उठा। सरसी=सरस, सुन्दर। पल्लानय=पलाने हैं, सजे हैं, । खानयं=खान, मुसलमान। साहाव=शहाबुद्दीन । साहिनी-हयं=अश्वारोही सैनिक। वीरसय=वीरता के अंश से युक्त।

अर्थः—हे राजा पृथ्वीराज ! सुनिये, गौरीशाह के श्रेष्ठ योद्धा रण-वाद्य बजाकर युद्धार्थ सजे हैं तथा चतुरंगिनी सेना को पंक्ति बद्ध करके तत्तार खां और मारुफ खां मुखिया बनकर उमड़ पड़े हैं। अतः आपभी अपनी श्रेष्ठ तलवार को ऊपर उठाइये, क्योंकि मुसलमानों ने अपने घोड़े सजालिये हैं। उन अश्वारोही सैनिकों, सेना और शहाबुद्दीन का एक जीव है और वे सब वीरता के अंश से युक्त हैं।

दोहा

अहिवेली फल हथ्थ लै, तो ऊपर तत्तार।
मेच्छ मसूरति सत्ति कैं, बंचि[1] कुरानी वार ॥ ८ ॥

ग्रा. पा. १ पा.।

शब्दार्थः—अहिवेली फल=नागर-वेल, युद्ध का बीड़ा। सत्ति कैं=सत्य कही । कुरानी वार=कुरानी इबारत, कुरान की आयतें।

अर्थः—मुसलमान मसुरत्तिखाँ ने कुरान की आयातों को पढ़कर उनकी सत्यता बताई, इसीलिये तत्तारखाँ ने तुमसे युद्ध करने का बीड़ा (ताम्बूल) उठाया है।

खटमुर कोस मुकाम करि, चढि चल्ल्यौ चौहान।
चँद वीर पुंडीर कौ, कग्गद करि परिवान ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—खट मुर=खट्टूल गढी मे। कोस=एक कोस पर। परिवांन=परिमान, प्रमाण स्वरूप।

अर्थः—वीर चदपुंडीर के इस पत्र को प्रामाणिक समझ कर पृथ्वीराज ने जहाँ पर वह शिकार खेल रहा था, वहाँ से चल कर खट्टूल गढ़ी से एक कोस पर विश्राम किया और फिर वहाँ से चढकर (शाही सेना की ओर) चल पडा।

कवित्त

मिले सब्ब सामत, मंत[1] मण्ड्यौ सु नरेसर[2] ।
दहगुंना वल साहि, सज्जि चतुरंग सु उप्पर[3] ॥
मवनमंत चुक्कौ न, सोइ वर मत विचारौ ।
वल घट्ट्यौ अप्पनौ सोच पच्छिलौ निहारौ ॥
तन सट्टै[4] लिज्जै[5] मुगति, जुगति वँध गौरी दलह ॥
संग्राम भीर प्रथिराज वल, अप्पु ःमत्ति किज्जै कलह ॥१४॥

प्रा० पा० १, २, पा० घ० । ३, ४, पा० का० घ० । ५, का० ।

शब्दार्थ.—मवनमत=मस्ती युक्त, मतवाले । सोच=चिन्ता । पच्छिलौ=पीछे का । सट्टै=बदले में । लिज्जे=प्राप्त करना । भीर=आपत्ति । अप्पु मत्ति=अपनी बुद्धि ।

अर्थः—इधर पृथ्वीराज ने सब सामतों से मिलकर मन्त्रणा की और कहा–हे मतवाले वीरों ! हमें दशगुना वल ग्रहण करके अपनी चतुरगिनी सेना को सजाना और श्रेष्ठ मन्त्रणा का चिंतन करके उससे नहीं हटना चाहिए, क्योंकि इस समय हमारा बल कम हो गया है (हमारे साथ सामंतों की सख्या बहुत कम है) और हमें आगे का भी ध्यान रखना आवश्यक है । अब हमारे लिए शरीर धारण करने की अपेक्षा युद्ध करके मोक्ष–प्राप्ति करना हो श्रेष्ठ है, क्योंकि गौरीशाह द्वारा छल पूर्वक सेना सजाकर आजाने से ही हम पर युद्ध की आपत्ति आगई है । अतः हमें अपने बल को देखते हुए बुद्धि से सोचकर (मन्त्रणा करके) युद्ध करना चाहिए ।

सुनिय वत्त पज्जून, राव परसंग मुसक्यौ ।
देवराव वग्गरी, सैन दै पाव कसक्यौ ॥
तन सट्टै सहि-मुकति, वोल भारत्थी वुल्लै[1] ।
लोह अंच उट्ठंत, पत्त तरवर जिमि डुल्लै[2] ॥
सुरतान चम्पि मुक्खा लग्यौ, दिल्ली नृप दल वानिवौ ।
भर भीर धीर सामन्त पुन, अवै पटन्तर जानिवौ ॥ १५ ॥

प्रा० पा० १, २ पा० ।

शब्दार्थः—मुसक्यौ=मुस्काया । सैनदै=सकेत करता हुआ । कसक्यौ=कसा, दवाया । सहि-मुकति=सच्ची मुक्ति, सत्य मोक्ष । वुल्लै=कहा । भारत्थी=भारतीय संस्कृति का । अंच=तप्त ज्वाला ।

उडन्त=उठने पर, फैलने पर। पत=गिरते हुए। डुल्लै=डोलने लगेंगे, झूमने लगेंगे। मुक्खां लग्यौ=सामना किया। दलवानि=दलने को, नष्ट करने को। वो=वह। मोर=समूह। पुन=पुन। अवै=अब। पटन्तर=परीक्षा काल।

अर्थ —पृथ्वीराज की यह बात सुनकर पज्जूनराय और प्रसंगराय (यह सोचकर कि राजा को युद्ध द्वारा शशिवृता से विवाह करने के पूर्व यह सोचना चाहिए था कि इस प्रेमबन्धन के कारण मेरी सैन्य शक्ति की क्या दशा होगी) मुस्कराये, देवराय बग्गरी ने भी इसी विषय का सकेत करके पॉव को कुछ दबाया और बोला-भारतीय सस्कृति का यह आदर्श वाक्य है कि शरीर धारण किये रखने की अपेक्षा मुक्ति अच्छी है। हमारी तलवारों की ज्वाला के फैलने पर शत्रु मूल से कटे हुए वृक्ष के समान झूमते हुए गिरने लगेंगे। सुलतान ने दिल्लीश्वर को दबाने के लिए उसका सामना किया है। अत. हम धीर-वीर सामतो को, इसे हमारा परीक्षा काल ही समझना चाहिये।

कहै राव पज्जून, तार कढ्यौ तत्तारिय।
मैं दिक्खनवै[1] देस, भीर यद्दव परिहारिय[2]॥
मैं बध्यौ जगलू राव चामड सु सत्थै।
बभन वास विरास, वीर बडगुज्जर तथ्थैं॥
भर विभर सैन चहुवान दल, गौरी दल कित्तक गिनौ।
जानै कि भीम कोरौं[3] सुबर जर समूह-तरवर किनौ॥ १६॥

प्रा० पा० १ दे०। २ का०। ३ प्र० टि० (५)।

शब्दार्थ:—तार=ताड़ना देकर। दिक्खनवै देस=दक्ष देश, मालव प्रदेश। भीर=आपत्ति। परिहारिय=नष्ट कर दी, दूर की। जगलू=लड़ाकू (गोरीशाह)। बभन=ब्रह्म क्षत्रिय। विरास=विलास (रण) क्रीड़ा। विभर=बिफरते हुए, उन्मत्त। सैन=सेना में। कित्तक=कितनाक, क्या। कोरौं=कौरव। सुबर=सबल। किनौ=किये गये, कहे गये, माने गये।

अर्थ:—तब पज्जूनराय बोला-मैंने तलवार के प्रहारों से तत्तारी को निकाला, दक्ष देश (मालव) के यादव निवासियों पर आईहुई आपत्ति को मिटाया। चामडराय सहित भिडकर लडाकू (गोरीशाह) को बाधा और वीर बडगुजर के बल पर ब्रह्म-क्षत्रिय चालुक्यों की भूमि पर रण क्रीडा की। अत उन्मत्त हुए दुर्जन—कर्ता

चौहान के सामन्तों की सेना के सामने गौरीशाह का दल क्या है ? मेरे समस्त विपक्षी दल उसी प्रकार हैं, जिस प्रकार भीम के समक्ष सबल कौरव दल जड़वत् वृक्ष समूह के समान थे।

कही जैत पवार, सुनहु प्रथिराज-राज मत।
जुद्ध साहि गोरी-नरिंद[1], गहै लाहौर-कोट गत ॥
सवै सैन अप्पनौ, राज एकट्ठ सु किज्जै।
इष्ट भ्रत्य सगपन सु हित्त वीर[2] कग्गद[3] लिखि दिज्जै॥
सामंत सामि इहि, मंत है, अरु यु मंत चित्तै नृपति।
धन रहै ध्रम्म जसु जोग ह्वैं, दिपति दीप त्रिलोक पति ॥१ ॥

प्रा० पा० १, २, मों० ध० पा० । ३, ध० ।

शब्दार्थः—पवार=प्रमार। मत=मन्त्रणा। लाहोर-कोट=लाहोर दुर्ग। गत=गया हुआ, या चलकर। एकट्ठ=एकत्रित। इष्ट=इष्ट मित्र। सगपन=सम्बन्धी सु-हित=इसके लिये, इस विषय में। कग्गद=कागज, पत्र। इहि=यह, हम। मत=मतवाले। चित्तै=चिंतना। जसु=यश के योग्य। ह्वैं=होवें, कहलावें।

अर्थः—जैत्र प्रमार बोला-हे नरेश्वर पृथ्वीराज! मेरी मन्त्रणा सुनिये। गौरीशाह हमसे युद्ध करना चाहता है, इसलिये हमे जाकर लाहौर दुर्ग को अधिकार में कर-लेना चाहिए। अत आप सेना को एकत्रित कीजिये और इष्टमित्रों, सेवकों तथा सम्बन्धियों को इस विषय में पत्र लिख दीजिये। हम (सब सामत) और आप (हमारे स्वामी) दोनों युद्ध-मतवाले हैं। अत. हमें ऐसी मन्त्रणा का चिन्तन करना चाहिये, जिससे हमारे धन और धर्म दोनों बने रहें और हम यश के योग्य कहलावें तथा आपकी दीप्ति इन्द्र के समान देदिप्यमान होजावे।

वह वह कहि रघुवश, राम हक्कारि सु उठ्यौ।
सुनौ सव्व सामंत, साहि आए वल-छुट्यौ ॥
गज रु सिंघ सापुरिख, जहाँ[1] रुधै तहा झुमम्मै[2]।
असम समौ जानहि न, लज्ज पकै आलुमम्मै ॥

सामंत मंत जानैं नहीं, मत्त गहैं इक मरन कौ।
सुरतान सेन पहिले बँध्यौ, फिर बंधौ तो करन कौ ॥१८॥

मा पा. १ भीं । २ भी. घ पा ।

शब्दार्थः—वह वह कहि=वाह वाह कहकर । हक्कारि=हुकार कर । बल-छुट्यौ=शक्ति का पलायन हो रहा है। सापुरिष=सत्य पुरुष, वीर पुरुष । जुभभै=लड़ते हैं, सामना करते हैं। असम समौ=कठिन समय । लज्ज=लाज । पंकै=पक में । आलुभभै=उलभ कर, फँस कर ।

अर्थः—वाह वाह कहता हुआ रघुवशी रामराय बडगुज्जर हुँकार करके बोल उठा, सब सामत गण सुनिये। शाह के आने मात्र से ही हमारी शक्ति का पलायन हो रहा है, यह कहना ठीक नहीं है। गजराज, सिंह और सत पुरुषों (वीर पुरुषों) के मार्ग मे,जहाँ बाधा पड़ जाती है वहीं पर वे भिड जाते हैं। वे विषम समय को जानते हुए भी लज्जा के पंक में फँस कर नहीं हटते। यौद्धा गण अन्य मत्रणा तो जानते ही नहीं, वे तो केवल मरने की ही मत्रणा ग्रहण करते है। जिस प्रकार पहले मैंने सुलतान को सेना के बीच में बाध लिया था, उसी प्रकार पुन. उसे बाध लूँ तभी मुझे कर्ण का सच्चा पुत्र कहना।

कवित्त

रे गुज्जर गँवार, राज लै मत न होई।
अप्प मरै[1] छिज्जै नृपत्ति, कौन कारज गृह[2] जोई ॥
सत्र सेवक चहुआन,' देश भग्गै धर खिल्लै।
पच्छि काम कह करै, स्वामि सग्राम इकल्लै ॥
पडित भट्ट, कबि, गाइना, नृप सौदागिर वार हुअ।
गजराज शीश शोभा भँवर[3], कन उडाइ वह शोभ लअ[4] ॥ १६ ॥

मा० पा० १, का० भीं० घ०। २, ३, का० पा० घ०।

शब्दार्थः—राज लै=राजाओं के लिये। अप्प मरै= अपन मर जाये। देश भग्गै=देश का सौभाग्य, भलाई। धर=धारकर, ध्यान में रखते हुए। खिल्लै=खेले [युद्ध का खेल खेले]। पच्छि=पीछे रहने वाले। कह=कहा, कौन। भट्ट-कवि=बदीजन। गाइना=गायक। सौदागिर=सौदागर। वार-हुअ= बाड़ स्वरूप हो जाना, घेरे रहते। भँवर=भ्रम। कन=कर्ण, कान। लअ=लेता, पाता।

अर्थः—तब जैत्र प्रमार बोला,-हे गँवार गुर्जर। राजाओं को मंत्रणा देना ठीक नहीं। हमारे व्यर्थ ही मारे जाने पर राजा को कष्ट हो; इससे कौनसा गृहकार्य सिद्ध हो सकता है। अत. हम सब (सामतों और चाहुवान नरेश्वर) को देश के सौभाग्य (भलाई) को ध्यान मे रखते हुए युद्ध-खेल खेलना चाहिये। बिना सोचे समझे ही हमारे मारे जाने पर, सग्राम मे हमारे स्वामी अकेले रहकर कौन से कार्य में सफलता प्राप्त कर सकेंगे ? (ऐसा करने पर तो सब तरह से चौपट होने की सभावना ही है) क्योंकि पीछे रहने वाले पडित, भट्ट-कवि, (वंदीजन,) गायक और सौदागर ये तो केवल राजाओं को उसी प्रकार घेरे रहने वाले (शोभा स्वरूपा) होते हैं। जिस प्रकार हाथी के सिर की शोभा के लिये उसपर मँडराते हुए भ्रमर होते है और जिनको वह अपने कानों द्वारा शनै २ उड़ाता हुआ शोभा पाता रहता है।

दोहा

परिखो रत्तन-दग-मम, अग्ग जुद्ध सुरतान।
अब इह मत विचारिये, लरन मरन परवान ॥२०॥

शब्दार्थः—परिखो=परीक्षा कर लेना। रत्तन-दग=युद्ध में लीन होने की। मम=मेरी। परवान=निश्चय।

अर्थः—रामराय वड़गुज्जर बोला, सुलतान के साथ युद्ध होने ही वाला है। अत तुम मेरे युद्ध में लीन होने की परीक्षा कर लेना। अब हमें यह मंत्रणा स्थिर करनी चाहिए कि हमारे लिए लडना मरना ही निश्चित है।

गजन संग[१] प्रथिराज कै, है दिक्खिय पर-वान।
वज्जी पक्खर खग्गरैं, चाहुआन-सुरतान ॥२१॥
प्रा०पा०१, भीं०का०।

शब्दार्थः—गजन=गर्जना करने पर। सग=साथी। है=घोडे। पर-वान=पक्ष युक्त। पक्खर=पाखरों। खडरैं=खांडे, खड्ग। चाहुआन-सुरतान=चाहुआन सम्राट।

अर्थः—इस प्रकार पृथ्वीराज के साथियों के गर्जना करते ही चौहान सम्राट के अश्वों के पख लगगये हों, ऐसा दिखाई दिया। उसी समय घोड़ों की पाखरों की कड़ियों के साथ २ खडग की खनखनाहट भी होने लगी।

बॅचि[1] कग्गद[2] चहुवान ने, फिरिन चद सहथांन ।
मनो वीर तन अकुरे, मुगति-भोगवनि-प्रान ॥२२॥

प्रा०पा०१, सर्वप्रति । २, भीं०पा० ।

शब्दार्थ:—बँचि=बाचा, पढा । कग्गद=कागज, पत्र । फिरिन=मुड़गया । सहथान=सहुथान, उस स्थानको । चद=चद पुण्डीर । तनु=शरीर । मुगति-भोगवनि=मोक्षभोगी । प्रान=प्राणी ।

अर्थ:—पृथ्वीराज ने चन्दपुण्डीर के पत्र को पढकर उसकी ओर प्रस्थान किया, उस समय ऐसा प्रतीत हुआ मानों मोक्षभोगी प्राणियों के शरीर मे वीर रस अकुरित हो गया हो ।

मची कूह दल हिंदु के, कसे सनाह-सनाह ।
वर चिराक दस सहस भइ, वजि निसांन अरिदाह ॥२३॥

शब्दार्थ:—कूह=हल्ला, शोरगुल । सनाह=कवच । चिराक=दीपक । निसांन=नक्कारे ।

अर्थ—हिन्दू-दल में शोरगुल मच गया । उसी समय वीर गण कवच कसकर सुसज्जित हो गये । वे दश सहस्र योद्धा नक्कारे बजवाकर शत्रु समूह रूपी पतगों को जलाने के लिये दीपकों के समान प्रज्वलित होगये ।

वाव-सूर[1] कोय न भयौ[2], दूत आय तिहिं वार ।
सजी सैन गोरी सुवर, उत्तरए नद पार ॥२४॥

प्रा० पा० १, स० । २, का० पा० ।

शब्दार्थ:—वावसूर=सरया पवन, दक्षिण का पवन, बादलों को मिटा देने वाला पवन ।

अर्थ:—उधर दूतों ने गौरीशाह के पास जाकर पृथ्वीराज का आखेट मे जाना और चन्दपुण्डीर का पत्र प्राप्त होने पर युद्धार्थ तत्पर होना सूचित किया । यह सुनकर भी उसके योद्धाओं में से कोई भी पृथ्वीराज के (बादलों के समान) दल-समूह को नष्ट करने के लिए दक्षिण पवन के समान नहीं हुआ । फिर भी गौरीशाह ने सेना सजाकर नदी को पार किया ।

पचासज गौरो पति, चव उतरि नदि[1] पार ।
चद वीर पुण्डीर ने, थटि मुक्यौ दर-वार ॥२५॥

प्रा० पा० १, सर्वप्रति ।

शब्दार्थ:—पंचासज=पंजाब पर चढ़ाई। वंध=बाँध, या बन्धुओं सहित, तथा घट, नाव आदि बांध-कर, अथवा सेना को पंक्ति बद्ध करके। थटि=थट्ट, समूह। मुक्के=छोड़े, बढ़ाये, नियुक्त किया। दर-वार=वारि के द्वार पर, तट पर, दर्रे पर।

अर्थ:—इस प्रकार गौरीशाह ने पंजाब पर चढ़ाई की और नदी के बाँध को पार किया। यह सुनकर चंद पुण्डीर ने अपने वीर समूह को नदी के तट पर नियुक्त कर दिया।

कवित्त

खां - मारुफ तत्तार, खान खिलची वर गड्ढे।
चामर छत्र मुजक्क, गोल सेना रचि गड्ढे॥
नारि गोर[1] जम्बूर, सुवर कीना गज-सारं।
नूरी खां हुज्जाव, नूर महमद सिर भारं॥
वज्जीर खान गोरी सुभर, खान खान हजरत्तिखा।
बिय सज्जि सेन हरवल करिय, तहँ उभ्भौ सजरत्तिखां॥ २६॥

1. पा. १ का. घ.।

शब्दार्थ:—मुजक्क=मुयज्जूदीन (या-मयूदीन अथवा मोजदीन)। गोल सेना=अंग रक्षक सेना। गड्ढे=दृढ़ता पूर्वक। नारि=तुपकें। गोर=गोले। जंबूर=छोटी तोपें। सुवर=उस समय। गज सार=हाथियों को सजाये। बिय=दोनों ने। हरवल=हरावल, अग्रभाग की सेना। उभ्भौ=खड़ा हुआ।

अर्थ:—चंदपुंडीर को युद्धार्थ तत्पर देख कर मारुफखां, तत्तारखां तथा श्रेष्ठ खिलजी-खां (या खिलजी खानदान के) भी दृढ़ता पूर्वक डट गये। मुयज्जूदीन (मयूदीन या मोजदीन) ने छत्र और चामर धारण करके शाह की अंग रक्षक सेना को दृढ़ता पूर्वक पंक्ति बद्ध किया। उसी समय आग्नेयास्त्र धारी (तुपक, गोले, जंबूर चलाने वाले) श्रेष्ठ वीरों और हाथियों को सज्जित किया गया, जिनका भार नूरखां, हुज्जावखां और नूरमुहम्मद पर छोड़ा गया। गौर (या गौर वंशज) के गौर कुल के श्रेष्ठ वीर वजीरखा और हजरतखा ने हरावली (अग्रभाग की) सेना को सजायी। उस सेना का भार गृहण करके सजरतखां खड़ा हुआ।

रचि हरवल सुरतान, साहि-जादा-सुरतान।
खापैदा महमूद, वीर बंध्यौ सुविहानं॥

खां-मँगोल लल्लरी, बीस टंकी बर खचै ।
चौतेगी सहबाज, बान अरि प्रान सु अंचै ॥
जँहगीरखान जगी रवद[१], खा हिन्दू बरबर त्रिहर ।
पच्छिमी खान पट्ठान सह, रचि उभ्भै हरवल गहर ॥ २७ ॥

म्रा० पा० १ भीं० ।

शब्दार्थः—साहिजादा-सुरतान=शाहजादे और शाह । खोंपंदा महमूद=गजनी के सगोत्रीय । बध्यौ=बदना की, स्थापित किया, नियुक्त किया । सुविहान=मुसलमानों का खुदा, स्वय शाह । बीसटंकी=तोल की, या—बीस टकार करने वाली कमान । चौतेगी=चार २ तलवारें बाधने वाला । अचं=ऐंचने वाला । जगी=मुसलमानों में बड़ा । खा-हिन्दू=मुसलमान और हिन्दू । बर २=बार २ । त्रिहर=विहर जाते, चल पड़ते, भाग जाते । पच्छिमी=पश्चिम दिशा के ।

अर्थः—सुल्तान ने सेना के अग्रभाग (हरावल) में महमूद गोरी के सगोत्रीय शाही खानदान के शाहों और शाहजादों को नियुक्त किया, जिन्होंने शाह की वन्दना की। (वीस टक तोल की या बीस बार टकार करने वाली) कमान खींचने वाले मगोलखॉ और लल्लरी खॉ, चार तलवारें बॉधकर बाणों द्वारा शत्रुओं के प्राणों को खींच लेने वाला शाहबाजखा एव मुसलमानों मे श्रेष्ठ और सामना होने पर मुलसमानों और हिन्दुओं को खदेड़ देने वाला जहॉगीरखॉं, हरावल की रचना कर युद्धार्थ खडे हो गये ।

रचि हर वल पट्ठान, खान इसमान रु गक्खर ।
केलीखा कुजरी, साह सारी दल पक्खर ॥
खाभट्टी[१] महनग, खान खुरसानी बब्बर ।
हबसखान हबसी हुजाब,[२]ग्रब्ब आलम्म जास बर ॥
तिन अग्ग अट्ठ गजराज बर, मद सरक्क पट्टैतिना ।
पच-विन-पिंड जो ऊपजे, जुद्ध होइ लज्जी विना ॥ २८ ॥
प्रा०पा०१, भीं० । २, पा०घ० ।

शब्दार्थः—खाभट्टी=चापधारी, खड्गधारी । महनग=महान अग, महाकाय । ग्रब्ब=गर्व । आलम्म=शाह या समार । सरक्क=झरते हुए । पट्टैतिना=पट्टाधारी । पच विन-पड=पच तत्व मे जिनका शरीर बना हो । ऊपजे=पैदा हुए । लज्जीविना=निशङ्का के, नि शक ।

अर्थः—पठानों द्वारा रची हुई हरावल सेना में इस्मानखां, गक्खरखां, केलीखां, कुंजरीखां और शाह की सजाई हुई अश्वारोही सेना थी। जिस सेना के नायक खड्गधारी महाकाय खुरासानी वब्बरखांन, हबसी हसवखांन और श्रेष्ठ वीर हुजाब खांन थे। उनके बल पर शाह को (या ससार को) गर्व था। उन सेनाध्यक्षों के आगे पट्टा चलाने वाले आठ श्रेष्ठ मदोन्मत्त हाथी थे। उन हाथियों से वे ही वीर लड़ सकते थे, जिनका शरीर पचतत्वों से नहीं बनकर स्वयं (स्वयभू) रूप से निर्मित हुआ हो या जो निःशंक हों।

करित माय चौ साहि, तीस तहँ रखिव फिरस्ते।
आलमखां आलम गुमान[1], खान उजवक्क निरस्ते॥
लहु मारूफ गुमस्त, खान उस्तम[2] वजरगी।
हिन्दु सेन उप्परें, साहि ,वज्जै रन जगी॥
सह सेन-टारि सोरा-रच्यौ, साहि चिन्हाव सु उत्तर्‌यौ॥
सभले सूर सामत नृप, रोस वीर वीर ढुर्‌यौ॥२६॥

प्रा० पा० १, भीं०, पा० । २, स० ।

शब्दार्थः—करित=करके। माय=माया। निरस्ते=बेरास्ते, ,उटपटांग चलने वाला। लहु=लघु। गुमस्त=गुस्ताख, घूमने वाला, मस्ताना। उप्परें=ऊपर। साहि=शाह। सेन-टारि=सेना का चुनाव करके। सोरा-रच्यौ=सोरा किया, सोया आराम किया। चिन्हाव=चुनाव नदी। संभले=सुनकर, सूचनापाकर। ढुर्‌यौ=ढलका, झलका, छलका।

अर्थः—इस प्रकार शाह ने चारों ओर व्यूह रचना की माया फैलादी, जिसमें तीस वीर खुदा के फरिश्ते (दूत) के समान थे। जिस पर बादशाह (या ससार) को गर्व था, ऐसा आलम खां, ऊबड़ खाबड़ (जटिल) मार्ग पर विचरण करने वाला उजवकखां, अशिष्ट व्यवहार करने वाला छोटा मारुफखां और वज्र काय रुस्तमखां को नियुक्त कर, शाह ने हिन्दू सेना से युद्ध करने के लिए रणवाद्य बजवाये। सैन्य-चुनाव के बाद कुछ समय विश्राम करके बादशाह चिनाव नदी की ओर गया-यह सूचना पाकर सामन्त और राजा पृथ्वीराज के शरीर से क्रोध प्रदर्शित होने लगा।

तमसि-तमसि सामत सब, रोस भरिग पृथिराज ।
तब[1] लगि रुपि पुडीर ने, रुक्यौ[2] गोरी साज ॥ ३० ॥

प्रा० पा० १, पा० का० घ० । २, पा० ।

शब्दार्थः—तमसि-तमसि=तमोगुण में आकर । रुपि=रुपा, दृढ पैर जमाये । रुक्यौ=रोका ।

अर्थः—सामन्तों के हृदय मे तमोगुण एव राजा के मन मे क्रोध व्याप्त होने लगा । उसी समय चन्दपुडीर ने सज्जित होकर पांवों को दृढ जमाते हुए आगे बढकर गौरी शाह को रोका ।

कवित्त

उतरि साह[1] चिन्हाव, घाय पुंडीर लुथ्थि पर ।
उप्पार्‍यौ बर चद, पच बधव सु पथ्थ धर ॥
दिक्खि दूत बर चरित, पास आयौ चहुआन ।
उप्पर गोरी नरिंद, हास बढ्ढौ सुरतान ॥
वर मीर धीर मारूफ ढुरि, पच अनी एकठ जुरी ।
मुर पच कोस लाहौर तें, मेच्छ मिलानह सो करी ॥ ३१ ॥

प्रा० पा० १ का० पा० ।

शब्दार्थः—सु पथ्थ धर=श्रेष्ठ पथ (स्वर्ग) को ग्रहण किया । हास-हिस्सेदार, सगोत्रीय । बढ्ढौ=बढाये । ढुरि=गिरा, धराशायी हुआ । पच=पजाब । एकठ जुरी=एकत्रित हो गई । अनी=सेना । मुर=रुककर । मेच्छ=मुस्लिम शाह मिलानह=विश्राम, मुकाम ।

अर्थः—जब शाह ने चिनाव को पार किया, उस समय चदपुडीर युद्ध करने लगा और उसके घायल होकर गिर पडने पर उसे उठाया गया । उसी समय उनके पाचों भाई भी श्रेष्ठ पथ के (स्वर्ग के) पथिक बन गये उन वीरो की श्रेष्ठ युद्ध-लीला देख कर दूत चाहुवान के पास पहुँचा और कहा, आप पर गौर प्रदेश के स्वामि [शहा-बुद्दीन]ने अपने सगोत्रीय वीरो को बढाया है । आपकी ओर से चदपुडीर और उधर से श्रेष्ठ धैर्यवान मीर मारूफ घायल होकर धराशायी हुए हैं [illegible] । सेना पजाब मे आ एकत्रित हो रही है और उसने लाहौर से पाच कोस की दूरी पर ही मुकाम [illegible] है ।

दोहा

वीर रोस वर वैर वर, झुकि लग्गौ[1] असमान ।
तौ नदन सोमेस कौ, फिरि बधौं सुरतान ॥ ३२ ॥

१ मा पा. १ पा घ. भौं ।

शब्दार्थः—रोस=क्रोध । वर=उस समय । झुकि=टेढ़ा हो ।

अर्थः—यह सुनते ही वीर पृथ्वीराज क्रोधित होकर बदला लेने के लिये टेढ़ा होकर आसमान से जा लगा और बोला :— मैं उसी समय सोमेश्वर का पुत्र कहा जा सकता हूँ, जब कि सुलतान को फिर से बंधन में ले लूँ ।

चन्द्र व्यूह नृप बंधि दल, धनि प्रथिराज नरिंद ।
साह-बंध सुरतांन सौं, सेना बिनवि धकंद[1] ॥ ३३ ॥

१ मा. पा. १, पा ।

शब्दार्थः—साह-बंध=बादशाह के सगोत्रीय भाई । बिनवि=इष्ट वंदना करके । धकंद=धकाई, बढाई ।

अर्थः—पृथ्वीराज को धन्य है, जिसने इष्ट वन्दना करके, अपनी सेना को चन्द्र-व्यूहाकृति का रूप देकर सुलतान और उसके सगोत्रीय बंधुओं की ओर बढाया (या सेना का सम्मान करके बढ़ाया)।

कवित्त

वर मंगल पंचमि स जुद्ध,[2] दिन सु दिनौ प्रथीराज ।
राह केत जय दीन, दुष्ट-टारै सुभ काज ॥
अष्टचक्र जोगनी, भोग भरनी सुधि रारी ।
गुर पंचम रवि पंच, अष्ट मंगल नृप भारी ॥
कैइंद्र बुद्ध भारथ्थ-भल, कर-त्रिसूल-चक्रावलिय ।
सुभ घरिय राज-वर लीन-वर, चढ्यौ उदै-क्रूरह[3] बलिय ॥ ३४ ॥

२ मा०पा०१, का०पा०घ० । २, भौं०घ० ।

शब्दार्थः—राह=राहु । केत=केतु । दुष्ट-टारै=दुष्ट ग्रह टालने वाले । अष्ट-चक्र-जोगनी=अष्ट भुजा योगिनी चक्रयुक्त थी । भोग-भरनी=विनोद दाता, विनोद में वृद्धि करने वाली । सुधि-रारी=युद्ध की

सुधि पाकर । कैइन्द=कैंद्र स्थान पर । मारथ्थ-मल=युद्ध के लिये अच्छा । कर-त्रिसूल-चक्का=शूल पाणि और चक्रपाणि । वलिय=बलवान । राज-वर= श्रेष्ठ राजा । लीन वर=शक्ति को गृहण करता हुआ । उदै-कूरह=क्रूर सूर्य, ग्रीष्म कालीन सूर्य । वलिय=बलवान ।

अर्थः—पृथ्वीराज ने पचमी, मगलवार का दिन श्रेष्ठ मानकर शत्रु को युद्ध की सूचना दी। उस दिन पृथ्वीराज के लिये राहू-केतु जय दायक, दुष्ट गृहों को टालने वाले एवं शुभ कार्य के कर्ता थे। अष्ट भुजा युक्त योगिनी भी युद्ध की सुधि पाकर पृथ्वीराज के पक्ष में होकर, अपने हाथों में चक्र ग्रहण करके युद्ध-विनोद में वृद्धि कर रही थी। उस दिन पृथ्वीराज के बृहस्पति और सूर्य पांचवे, मगल आठवे तथा बुध केन्द्र स्थान मे था, जो कि युद्ध के लिये शुभ माना गया है। उसी समय वशिष्ट शूलपाणि और चक्र-पाणि दोनों भी पृथ्वीराज के सहायक थे। उस शुभ घड़ी में शक्ति को ग्रहण करते हुए पृथ्वीराज ने तेजस्वी सूर्य के समान होकर शत्रुओं पर चढाई की

दोहा

सो रचि अद्ध[1]-अ अद्ध[2]-उध[3], उग्गिम हँव-विधि कद ।
बरनि खेद नृप वदयौ, कौन-भाइ[4] कवि चद ॥ ३५ ॥

प्रा० पा० १, २, स० । ३, पा० । ४, भीं ।

शब्दार्थः—अद्ध-अ अद्ध-उध=प्रात उठता हुआ, मध्यान्ह होने पर, अस्त समय (उदयास्त, आदि से अत तक) । उग्गिम=उदय हुआ । हव-विधि=हवन की तरह, हवि कुड तुल्य । कद= नाशक, शत्रु नाशक। बरनि=वर्णन करके, रूप देकर। कौन-भाइ=किस भाव से, किन मनो-द्गारों से ।

अर्थः—तेजस्वी सूर्य स्वरूपी पृथ्वीराज आदि से अन्त तक प्रज्ज्वलित हवि कुण्ड के समान होकर शत्रु नाशक होता हुआ उदय हुआ। कवि कहता है खेद है कि ऐसे सुन्दर स्वरूप धारी राजा को मैंने क्रूर रूप दिया। फिर भी वह मेरे द्वारा वदनीय है और यही मेरा गुप्त मनोद्गार भी है।

कवित्त

प्रात-सूर वड्ढई, चक्क चक्किय रवि वड्ढै ।
प्रा सूर वड्ढई, सुरद-वुधि बल सो इड्ढै ॥

प्रात सूर वञ्छई, प्रात बर वञ्छि वियोगी ।
प्रात सूर वञ्छई, ज्यौं सु वञ्छै वर रोगी ॥
वंछ्यौ प्रात ज्यौं त्यौं उनन, वंछै रक करन्न बर ।
वंछ्यौ प्रात पृथीराजनै, सती सत्त वछेति उर ॥

शब्दार्थ:—प्रात-सूर=प्रात और सूर्योदय, सूर्योदय वेला । वञ्छई=इच्छा करते । बुद्धि-बल=बुद्धिमान । इंछै=चाहते । वर=वर, प्रियतम को । वियोगी=वियोगिनी स्त्री । रक=दीन । करन्न वर=कर्ण की वेला, कर्ण के दान देने का समय, प्रात काल ।

अर्थ—पृथ्वीराज ने रात्रि मे प्रात काल होने की कामना उसी प्रकार की, जिस प्रकार चक्रवाक दम्पति, बुद्धि बल से देवताओं के सापेक्ष्य कर्ता ऋषि मुनि (द्विजादि), वियोगिनी, रोगी, दीन एव सती हृदय से सूर्योदय होने की अपेक्षा करती है । (चक्रवाक दम्पत्ति का सम्पर्क दिन में होता है, ऋषि मुनि द्विजादि भी प्रात काल ब्रह्म मुहूर्त में नित्य कर्मादि करते हैं, वियोगिनी सती स्त्री तथा रोगी को रात्रि दुरुह लगती है, दीन भी दान लेने की इच्छा रखते हुए प्रात कालीन वेला चाहते हैं और रात्रि में मरे हुए पुरुष की सती स्त्री साथ में जलने के लिए सूर्योदय की अपेक्षा करती है) ।

दोहा

क्रम गाह इक मुगति की, क्यौं करिजै वाखान ।
मन अनंख सा मतनै, कच करवति पाखान ॥ ३७ ॥

प्रा० पा० १, का० पा० ।

शब्दार्थ:—क्रम गाह=कर्मगाथा । वाखान=प्रशसा । मन-अनख=मन से अनखने वाले, क्रोध करने वाले । सा=वह । मतनै=मतवाले । करवति=करौति ।

अर्थ:—वीरों की कर्म गाथा ही एक मात्र मोक्ष गाथा है-उसकी क्या प्रशंसा की जाय ? शत्रुओं पर मन से क्रोध करने वाले वे मतवाले वीर केश, करौती और पाषाण तुल्य थे । (केशों के समान कट-कटकर भी बढ़ते रहते थे, करौति के समान शत्रुओं के अगों पर चलते थे, और युद्ध में उनके वक्षस्थल शिला स्वरूपी दिखाई पड़ते थे) ।

वाइ[1] विषम[2] धुंधरि परी[3], बद्दर छाए भान ।
कुन घर मंगल बज्ज ही, के चढि मगल आन ॥ ३८ ॥

ग्रा० पा० १, का० पा० घ० । २ पा० घ० । ३ का० ।

शब्दार्थः—वाइ=वायु । धु धरि=धुंधलाहट । कें चढि=किसके सिर पर चढता है । मगलआन=मगल गृह आकर ।

अर्थः—विषम वायु (तुल्य सेना के बढ़ने) के कारण आकाश मे रज (धूंधल) छा गई, जिससे ऐसा ज्ञात हुआ मानों सूर्य पर बादल छागये हों। कवि कहता है–देखें, किसके घर पर मागलिक वाद्य बजते हैं और किसके सिर पर मगल गृह (क्रूरगृह) आकर उतरता है।

दिष्ट दिख्खि[1] सुरतान दल, लोहा चक्कत बान ।
खहकि फेरि उडगन चले, निसि आगम फिरि जान ॥ ३९ ॥

शब्दार्थः—दिष्ट दिख्खि=दृष्टिगोचर होते ही । लोहा=लोह धारी । चक्कत=चक्राकृति । खहकि=आकाश मार्ग पर । फिरी=फिर से ।

अर्थः—शाह की सेना के दृष्टिगोचर होते ही लोहधारियों के बाण चक्राकृति के रूप में इस तरह चलपडे मानों पुन रात्रि का आगमन देखकर आकाश मार्ग पर नक्षत्र चलपडे हों। (नक्षत्र टूट पडे हों)।

धजा वाइ बकुरि[1] उडति, छबि कविंद इह आइ ।
उडगन चद नरिंद बिय, लग्गि[2] मांनअइ[3] पाइ ॥ ४० ॥

ग्रा. पा १, का पा । २, ३. पा ।

शब्दार्थः—धजा=ध्वजा । वाइ=वायु के कारण । बकुरि=बाकी हो हो कर टेढी हो हो कर, झुक झुक कर । बिय=दोनों । मानअइ=मानी जाती, मानों । पाइ=पाव ।

अर्थः—वायु के कारण (सतारक जरीन) ध्वजायें टेढी हो हो कर (झुक २ कर) इस प्रकार उड़ने लगी, मानों तारागण सहित चँद्रमा दोनों राजाओं (गौरीशाह और पृथ्वीराज) के पाँव छूरहा हो (वदना कर रहा हो)।

सेसनि संकह[1] वज्जतह[2], वाजै कुहक सुरंग।
मिट्टै[3] सद्द निसान के, सुनेन श्रवन ति अंग ॥४१॥

प्रा पा. १, २, ३, पा।

शब्दार्थः—सेसनि=सहस्रों। सकह=शख। सद्द=शब्द, ध्वनि। ति अंग=उसे, वह।

अर्थः—सहस्रों शखों की ध्वनि के साथ साथ सुन्दर कुहक ध्वनि (बाणों की सन-सनाहट) होने लगी। इस ध्वनि के सामने नक्कारों की ध्वनि के लुप्त हो जाने से वह कानों को नहीं सुनाई देती थी।

अनी दोउ घनघोर ज्यौ, घाइ मिले कर-थाट[1]।
चित्रंगी रावर विनां, कौन करै दहवाट ॥४२॥

प्रा. पा. १, भीं.।

शब्दार्थः—अनी=सेनायें। दोउ=दोनों। कर-थाट=समूह बनाकर, समूह बद्ध हो। चित्रगी रावर=चित्तौड़ पति रावल। दहवाट=तितर वितर।

अर्थः—परस्पर आघात करते हुई दोनों सेनायें भयानक बादलों के रूप मे समूह बद्ध होकर मिल जाने पर विपक्षी दल को चित्तौड़ पति रावल के बिना कौन तितर-वीतर कर सकता है ? [अर्थात् दोनों सेनाओं के मिलते ही रावल समरविक्रम ने भी घोडे की रास खींची]।

कवित्त

पवन रूप परचंड, घालि असु असिवर झारै।
मार मार सुर वज्जि, पत्त-तरु अरि सिर पारै॥
फहकि सद्द फेफरा, हड्ड कंकर उच्छारै।
कटि भसुंड परि मुंड, भिंड-कटक उप्पारै।
वज्जयौ विषम मेवार पति, रज उड़ाइ सुरतान दल।
समरथ्थ समर सम्मर मिलिय, अनी मुख्ख पिख्यो[1] सबल॥४३॥

शब्दार्थः—परचंड=प्रचंड। पवन=दीर्घकाय। घलि=प्रवेश कर, बढ़ाकर। असु=अश्व, घोड़ा,। झारै=झाड़ो, प्रहार किया।,सुर=स्वर, आवाज। वज्जि=करके। पत्त-तरु=पतित तरु, गिरते हुए वृक्ष। फहकि=फूं-फूं करने लगे। हड्ड-कंकर=कंकाल की हड्डियें, शरीर की हड्डियें। भिंड-कंकट=

भड कटक, अपवाद स्वरूपी कटक। उप्पारै=उपाड़ दिये, उठा दिये। बज्जयो-विषम=विषम-वात स्वरूप चल कर। रज=धूलि और रजोगुण। समरथ्थ समर=सामर्थ्यवान रावल समर-विक्रम। सम्मर=समर, युद्ध। अनीमुक्ख=सेना के मुखपर (अग्रभाग पर)। पिख्यौ=देखागया। सबल=वह विक्रम या बलवान।

अर्थः– दीर्घकाय, पवन वेगधारी घोडे को शत्रु-सेना मे बढ़ाकर सामर्थ्यवान रावल समर–विक्रम ने मार २ शब्दोच्चारण करते हुए अपने खडग-प्रहार द्वारा शत्रुओं के सिर को काट २ कर, कट कर गिरते हुए वृक्षों के समान कर दिया, जिससे उनके फेफडे ऊर्ध्व श्वास छोडने लगे। उसने उनके शरीर की हड्डियों को उखेड़ (तोड़) दिया तथा उसके प्रहार से हाथियों के भ्रसुड कटकट कर पड़ने लगे। इस प्रकार उसने अपवाद स्वरूपी कटकों (शत्रुओं) को उठा दिये (समाप्त कर दिये), विषम वात के समान चलकर उसने सुलतान की सेना के रजस्वरूपी रजोगुण को उड़ा दिया। दोनो सेनाओं के मुह मिलने पर (सामना होने पर) सर्व प्रथम चित्तौड़ेश्वर ही शत्रुओं से भिडता हुआ दिखाई दिया।

राषर उप्पर धाइ, पर्‌यौ पवार[1] जैत खिजि।
तिहिं उप्पर चामड, कर्‌यौ हुस्सैन खान सजि॥
धक्काई धकाइ, दोय हरबल बर मभ्भै।
पच्छ सेन आहुट्टि, अनो वधी आलुभ्भै॥
गजराज बीय सुरतान दल, दह चतुरगी बीर बर।
धनि धार धार धारह धनी, वर भट्टी उप्पारि कर॥ ४४॥

पा० पा० १ का०।

शब्दार्थ–उप्पर=सहायता पर। खिजि=क्रोध करता हुआ। कर्‌यौ=बढे। हुस्सैन=मीर नासुरुद्दीन हुसेन का पुत्र। धक्काई=बढकर। धक्काइ=धकेल दिया। पच्छ=पक्ष पर। आहुट्टि=आहड़ों की। आलुभ्भै=उलझ पड़ी। गजराज=श्रेष्ठ हाथी। बीय=दो। दह=दस। धार धार=खड्ग धारण करने वाले। धारह-धनी=धार राज्य का शासक। उप्पारि-कर=हाथ उठाये।

अर्थः—रावल समर-विक्रम की सहायतार्थ जैत्र पमार क्रोधित होता हुआ आगे बढा। उसकी सहायता करने के लिए चावडराय और हुस्सैनखां (मीर हुस्सैन का पुत्र गाजीहुसेन) सजधज कर बढे। उन दोनों ने बढकर हरावल के मध्य भाग को धकेल

दिया। उनके पक्ष पर आहड़ों की (मेवाड़ी) सेना पंक्ति बद्ध होकर शत्रुओं से उलझ पड़ी, जिससे शाह के दो हाथी और उसकी चतुरंगिनी सेना के दस श्रेष्ठ योद्धाओं का दलन हो गया। किन्तु धन्य है खड्ग धारण करने वाले धार राज वंशज (जैत्र प्रमार) और श्रेष्ठ भट्टी वीर को, जिन्होंने युद्ध में अपने हाथ उठाये (हाथों द्वारा युद्ध कौशल प्रदर्शित किया)।

छत्र मुजीक सु अप्पि, जैत दीनौ सिर छत्रं।
चन्द्रव्यूह अकुरिय, राज दुअ इहाँ इकत्रं॥
एक अग्र हुस्सैन, बीय अग्रह पुंडीरं।
मद्धि भग्ग रघुवंस, राम उभ्भौ वर वीर॥
सांखलौ सूर सारगदे, उररि खान गोरीय मुख।
हथ नारि गोर जंबूर धन, दुहूँ बांह उभ्भैति[1] रुख[2]॥ ४५॥

प्रा० पा० १, २, सर्वप्रति।

शब्दार्थः—अप्पि=अर्पित किया, उससे छीन लिया। राज,दुअ=पृथ्वीराज और रावल समर-विक्रम। इकत्रं=एकत्रित हो, मिलकर। अग्र=आगे को, हरावल में। बीय=दूसरे। उररि=उमड़कर। हथनारि-गोर-जंबूर=आग्नेयास्त्र विशेष। दुहु बांह=दोनों भुजाओं पर, दोनों पार्श्व में। उभ्भैति=खड़ी। रुख=तरफ, ओर।

अर्थः—मयुज्जुद्दीन ने अग्र रक्षक सेना का नेतृत्व ग्रहण करके जिस छत्र को धारण किया था, उसे उसने जैत्र प्रमार को अर्पित कर दिया (जैत्र ने उस छत्र को छीन लिया)। उस छत्र को जैत्र ने अपने सिरपर धारण किया। उसी समय पृथ्वीराज और रावल समर-विक्रम दोनों नरेश मिलकर सेना को चन्द्राकृति व्यूह का रूप देते हुए उस स्थान पर आ पहुँचे। एक राजा की हरावल में गाजी हुसैन (मीर हुसैन का पुत्र) और दूसरे राजा की हरावल में चद पुंडीर प्रमुख हो गया। चन्द्र व्यूह के मध्य भाग मे श्रेष्ठ वीर रघुवशी रामराय वड़गुज्जर खड़ा होगया। उसी समय वीर सारगदेव सांखले ने शाह पर यकायक आक्रमण कर दिया, जिससे आग्नेयास्त्र-धारी शाही सेना दोनों पार्श्वों पर खडी होकर देखती हा रहगई।

छुट्ट अद्ध वर घटिय, चढ्यौ मध्यान भान सिर।
सूर कथ वर-कढ्ढि, मिलै काइर कुरग वर॥

घरी अद्ध बर-अद्ध, लोह सों लोह जुरुक्के ।
मन अग्गै अरि मिले, चित्त में कक खरक्के ॥
पुंडीर भीर भजन भिरन लरन तिरच्छौ लग्गयउ[१] ।
नव वधू जेम सका सु बर, उदै[२] जानि जिम भग्गयउ[३] ॥ ४६ ॥

ग्रा० पा० १, ३, स० । २ का० पा० घ० ।

शब्दार्थः—छुट्टि=छूट पड़ने पर । बर=बल । बर-कड्ढि=ऐंठ निकल गई । बर-अद्ध=अर्ध बल, अर्ध सैन्य शक्ति । जुरुक्के=जड़ा भाड़ा । अरि-मिले=शत्रुओं से जा जुटते । कक=युद्ध खरक्के= खटकने लगा मीरभजन=समूह को नष्ट कर दिया, भगादिया । भिरन=भिड़कर बर=वर, पति । उदै-जानि=सूर्योदय हुआ जानकर । भग्गयउ=भागजाती

अर्थः—वीर सारंगदेव साखले आदि के टूट पडने पर शाह की (सैन्य) शक्ति आधी कम होगई, उस समय मध्यान्ह का सूर्य सिर पर आगया था । उसी युद्ध में विपक्षी वीरों का शौर्य नष्ट होगया और उनकी गणना कायर मृग-पंक्ति में की जाने लगी । इतना होने पर भी शाह को अर्ध-सैन्य-शक्ति आधो घडी तक शत्रुओं की तलवार से लोहे पर लोहा भाडती रही । वीरगण मन की गति से भी तीव्र होकर शत्रुओं से भिडने लगे और उनके चित्त मे वह युद्ध खटकने लगा । इतने में ही पुंडीर वीर तिरछा होकर लडने को वहा जा पहुँचा और भिडकर उस समूह को इस प्रकार भगा दिया, जिस प्रकार शयन-गृह मे रात को पति से सशंक (सभय) रहने वाली नवोढा सूर्योदय होने पर वहाँ से छुटकारा पाकर भाग जाती है ।

दोहा

तेज-छुट्टि गोरी सुबर, दिय धीरज तत्तार ।
मो उब्भे सुरतान को, भीर परी इन वार ॥ ४७ ॥

शब्दार्थः—तेज छुट्टि=हत तेज होगया । उब्भे=रहते हुए, उपस्थिति में । भीर=आपत्ति । इन वार= इस समय ।

अर्थः—यह देखकर गौरीशाह हत-तेज होगया । तब धीरज दिलाता हुआ तत्तार खा बोला-यह आश्चर्य की बात है कि मेरे उपस्थित होते हुए भो आप पर (सुलतान पर) इस समय आपत्ति आयी है ।

कवित्त

सोलंकी माधव नरिंद, खान-खिलची मुख लग्गा।
सुभर बीर रस बीर, बीर-बीरा रस पग्गा॥
दुअन बुद्ध-जुध-तेग, दूहूँ[२] हथ्थन उभ्भारिय।
तेग तुट्टि चालुक्क, बथ्थ परि कढ्ढि कटारिय॥
अग-अग्ग-रुक्क ठिल्ले बलन, अधम जुद्ध लग्गे लरन।
मारग वध घन घाव परि, गौरीवै दिन्नो मरन॥ ४८॥

आ० पा० १ सर्वप्रति। २ भों।

शब्दार्थः—खान-खिलची=खिलजी खान। मुख लग्गा=भिड़ पड़े। सुबर=सबल, बलवान! बीर-बीरा=श्रेष्ठ वीर। रस-पग्गा=युद्ध विनोद में सन गया (लीन हो गया)। बुद्ध-जुद्ध-तेग=युद्ध और तलवार चलाने में प्रबुद्ध। उभ्भारिय=उठाये। अग-अग्ग-रुक्कि=एक दूसरे के सामने डटकर। ठिल्ले-बलन=बल पूर्वक धकेलने लगे सारंग-वध=सारंगदेव चालुक्य का भाई। गोरीवैं=गौरीशाह के योद्धा द्वारा।

अर्थः—इतने मे राजपद धारी सोलकी (चालुक्य) माधव और खिलजीखाँ में युद्ध होने लगा। दोनो ही योद्धा बलवान वीररस स्वरूप और श्रेष्ठ वीर होने के कारण युद्ध विनोद में रत होगये। वे तलवार चलाने और युद्ध करने मे दक्ष थे। उन दोनों के परस्पर आघात करने के लिए हाथ उठे, चालुक्य ने आघात किया; किन्तु उसकी तलवार टूट गई। तब उसने बथगुत्थ होकर कटार निकाली। फिर वे परस्पर एक दूसरे के सामने डटकर बल पूर्वक एक दूसरे को धकेल ने लगे, किन्तु उस यवन वीर के अधम युद्ध (छल युद्ध) की शरण ले लेने पर चालुक्य वीर सारगदेव का भाई (माधव) विशेष घावों के लगने से धराशायी होकर मारा गया।

खग्ग हटक्कि जुटिक्क, जमन सेना समद गजि।
हय गय वर हिल्लोर गरुअ, गोइद दिक्खि सजि॥
अनम अठेल अभग, नीर असि मीर समाहिय।
अति दल बल आहुट्टि, पच्छ लज्जी परवाहिय॥
रज तज्ज रज्ज मुक्कि न रह्यौ, रज न लगी रज रज भयौ।
उच्छगन अच्छर सो लयौ, देव विमान न चढि गयौ॥ ४९॥

शब्दार्थ.—हटक्कि=रोकती हुई। जुटिक्क=जुटकर, भिड़कर। जमन=यमन, यवन। गजि=गर्जना करने लगी। हय गय=हाथी घोड़े। गरुअ गोइन्द=बड़ा गोविन्दराय (चाहुआन)। अनम=अनम्य। अठेल=नहीं रोक जाने वाला। नीर असि=पानीदार तलवार। पच्छ=पीछे। लज्जी=लज्जा। परवाहिय=पुरवाई हवा, मेघों को बढाने वाली हवा। रज-तज्ज=राज्य लक्ष्मी को छोड़ दिया। रज्ज मुक्किन=रजोगुण को नहीं छोड़ा। रज=कालिमा। उच्छग=उत्सग, गोद में, बाहु पाश में। अच्छर=अप्सरा।

अर्थः—माधव चालुक्य के मारे जाने पर तलवार द्वारा शत्रुओं को रोकती हुई समुद्र तुल्य यवन सेना जुटकर गर्जना करने लगी। उस समय श्रेष्ठ हाथी घोड़ों ने तरगों का स्वरूप धारण किया। यह देखकर विशेष रूप से क्रोध करता हुआ, गोयदराय (चाहुवान) युद्ध करने के लिए तत्पर होकर आगे बढा। उधर से अनम्य और नहीं रोका जा सकने वाला एक अभग-मीर अपनी तेज (पानीदार) तलवार ग्रहण करके लज्जा एव सैन्यशक्ति रुपी पुरवाई हवा (मेघों को आगे बढाने वाली) के सहारे आगे बढता हुआ चाहुआन से भिड पडा। उसने राज्य लक्ष्मी को छोड दिया, किन्तु रजोगुण को नहीं छोडा। उसने अपने शरीर पर रज (कालिमा) नहीं लगने दी, किन्तु वह रज रज (कट कट कर रज कणों के तुल्य) होगया। उसे (यवन होने के कारण) न तो अप्सरा ही बाहुपाश मे ले सकी और न उसने देव-विमान में ही स्थान पाया (फिर भी वह सीधा बहिश्त को चला गया)।

रुप्यौ बीर पुडीर, फिरी पारस सुरतानी।
शस्त्र बीर चमकत, तेज आरुहि सिर ठानी॥
टोप ओप तुटि किरच, सार सारह जरि भारे।
मिलि नछित्र रोहिनी[१], सीस ससि उडगन चारे॥
उठि परत भिरत भजत अरिन, जै जै जै सुरलोक हुअ।
उक्यौ कमध पल पच चव, कोन भाइ कप्यौ सु[२] धुअ॥ ५०॥

ग्रा० पा० १ पा०। २ मों० का०।

शब्दार्थः—रुप्यौ=टट गया। बीर पुडीर=चद पुडीर का भाई फिरी=फिर गई, होगई। सुरतानी=शाही सेना। आरुहि=बढकर। सिर ठानी=सिरपर आघात किया। ओप=उपमा। नछित्र=नक्षत्र। चारे=चलाये, न्यौछावर किये। चव=चार। भाइ=भाव, कारण। कप्यौ=कम्पित हुआ। धुअ=ध्रुव, निश्चय।

अर्थ:—उसके बाद चदपुंडीर का भाई (जयसिंह) युद्ध करने लगा। शाही सेना ने उसे चारों ओर से घेर लिया। वीरों ने चमचमाते हुए तीक्ष्ण शस्त्रों से उसके सिर-पर आघात किया जिससे उसका शिर स्त्राण इस प्रकार टूट कर खण्ड २ हो गया, (कवि उसकी तुलना करता हुआ कहता है) मानों रोहिणी नक्षत्र ने उस वीर के सिर-पर चन्द्रमा और तारों को न्यौछावर किये हों। वह वीर धराशायी होकर भी युद्ध करता हुआ शत्रुओं को नष्ट करने लगा। यह देखकर स्वर्गलोक में उसकी जय २ कार होने लगी। मस्तक कट जाने पर भी उसका कवन्ध चार पांच पल के लिये खड़ा होगया। कवि कहता है कि उसे खड़ा हुआ देखकर ध्रुव कम्पित क्यों हुआ ? (अर्थात् ध्रुव उसकी अटलता को देखकर द्वितीय ध्रुव के स्थापना की शका से शकित होकर कम्पित हो गया।)।

परि पतग जैसिंघ, पतँग अप्पुन तन दभ्भै।
नव पतंग गति-लीन, करे अरि अरि धजधज्जै ॥
तेल ठाम वातीय, अगनि एकल विरुझाइय।
पंच अप्प अरि पंच, पच अरि पंथ लगाइय ॥
आरन्नि कुँआरी बर वर्यौ, दै दाहन दुज्जन दवन।
जित्तेव असुर महि मडलह, और ताहि पुज्जै कवन ॥ ५१ ॥

मा० पा० १, पा०।

शब्दार्थ:—पतग=पतग। पतँग=सूर्य। गति-लीन=ढग गृहण किया। अरि=अड़कर। अरि= शत्रुओं को। धजधज्जै=धज्जी २। ठाम=पात्र। एकल=अकेला। पंचअप्प=पचभौतिक शरीर को छोड़ा। अरि-पंच=पाँचों से मिड़कर। पच-अरि=उन शत्रुओं के पच भौतिक शरीर को। पंथ लगाइय= (मृत्यु के) रास्ते लगा दिया। आरन्नि-कुँआरी=शत्रुओं की अविवाहित सेना, किसी से नहीं जीती गई सेना। वर्यौ=वरण की, काबू में की। दै-दाहन=जलन पैदा करदी। दुज्जन=शत्रुओं को। दवन= दमन किये, नष्ट कर दिये। जित्तेव=जीत गया, विजय प्राप्त की। असुर=मुसलमानों पर। पुज्जै= पहुँचता, समानता करता। कवन=कौन।

अर्थ — पतग के समान झपटते हुए उस वीर जयसिंह ने अपने शरीर को पतगवत ही जला तो दिया किन्तु उसने तरुण-सूर्य (ग्रीष्मकालीन सूर्य) की गति (ढंग) को प्राप्त करके (प्रखर तेज प्रसारित करता हुआ) शत्रुओं की धज्जी २ उड़ादी (काट दिये, चीर

दिये)। उस समय वह अकेला ही पतगरूपा शत्रुओं को दहन करने के लिये तैल, पात्र, बत्ती और अग्नि बन गया। उसने अपने पच तत्वों को अर्पित करते हुए (पच भौतिक शरीर को छोडते हुए) भी पाच शत्रु वीरों से भिड़कर उनके पचभौतिक शरीरों को भी मृत्यु के रास्ते पर लगा दिया (मार दिये)। उसने शाह की अवगाहित (अजय) सेना (रूपी दुलहन) का वरण कर (काबू मे कर) शत्रुओं का दमन कर दिया और उनके हृदय मे जलन पैदा करदी। इस प्रकार वह मर गया फिर भी उसने यवनों पर विजय प्राप्त करली। ऐसे उस वीर की समता इस पृथ्वी पर दूसरा कौन कर सकता है ?

दुज्जनसल्ल कूरभ, बध पल्हन हक्कारिय[1]।
सम्हौ खा-खुरसान, तेग लम्बी उम्भारिय॥
टोप तुट्टि बरकरी, सीस परि तुट्टि कमध।
मार मार उच्चार, तारत नचि कमध॥
तिहि[2] देखि रुद्र रुद्रह हस्यौ, हय-हय-हय नदि कह्यौ।
कविचद शैल पुत्री चकित, पिक्खि वीर भारथ नयौ॥ ५२॥

प्रा०पा०१, सर्वप्रति। २, घ।

शब्दार्थ:–दुज्जनसल=दुर्जनसाल, नाम विशेष। हक्कारिय=हलकारा, हुकार की। बरकरी=बड़क गई, फटगई। तारत=ताडना देता हुआ, प्रहार करता हुआ। हय-हय-हय=मारा मारा मारा। नदी=नदीगण।

अर्थ:–कूरभ पल्हन का दुर्जनसल्य नामक भाई हुंकार करता हुआ उठा। यह देखकर खुरासानखा ने अपनी लम्बी तलवार को उठाते हुए उस पर प्रहार किया, जिसके आघात से उसका शिरस्त्राण टुकडे २ होगया और उसका सिर कट पडा। इतना होने पर भी उसका कबन्ध प्रहार करता हुआ मार मार उच्चारण कर नृत्य करने लगा। उस रुद्र रूपधारी वीर को देखकर रुद्र (शिव) प्रसन्न हो गये और नन्दीगण 'मारे गये' 'मारे गये'—ऐसा कहने लगा। कविचद कहता है कि उस वीर का महाभारत के सदृश युद्ध देखकर भगवती शैल पुत्री भी चकित हो गई।

सोलंकी सारंग, खान खिलची मुख लग्गा ।
वह पगानौ भृत्त, इते चहुवान विलग्गा ॥
है कधन दिय पांइ[1], कन्ह उत्तरिविय वाजिय ।
गज गुंजार हुँकार, धरा गिर कंदर गाजिय ॥
जय जयति देव जय जय करहिं, पहु पंजलि पूजत रिनह ।
इक परयौ खेत साधे सकल, इक्क रह्यौ बंधे धुनह ॥ ५३ ॥

मा० पा० १, भीं० ।

शब्दार्थ—पगानौ भृत्त=पंगुराज (जयचन्द) का सेवक, योद्धा सारंग देव । है=घोड़े । कधन=कंधेपर । पांइ=पैर । उत्तरिविय=उतरकर कूदकर । साधे सकल=सकल साधना करता हुआ, दाव देता हुआ । वंधे धुनह=धुन में लग गया, झूमने लगा ।

अर्थ.—तब (पंगुराज का भेजा हुआ यवन सेना का सहायक) सारंगदेव सोलंकी और खिलजीखांने बढ़कर चहुआनी सेना से सामना किया । इधर से कन्ह चौहान बढ़ा । वह पंगुराज के योद्धा (सारंगदेव) को विचलित करके खिलजीखां से जा भिड़ा । उसने अपने घोड़े से कूदकर विपक्षी के घोड़े के कंधे पर पैर रख दिये, और हाथी के समान गर्जना करता हुआ हुँकार की जिससे पृथ्वी, पहाड़ और कंदरायें प्रतिध्वनित हो उठा । यह देखकर देवताओं ने पुष्पाञ्जलि देते हुए उसकी जय २ कार की । उस वीर कन्ह के वार से एक शत्रु (सारंगदेव) तो दाव देता हुआ रण क्षेत्र में धराशाई हुआ और दूसरा (खिलजीखां) घायल होकर झूमने लगा ।

करी मुक्ख आहुट्ठ, वीर गोइंद सु अक्खै[1] ।
कवित्त पील जनु कन्ह, दंत दारुन गहि नक्खै[2] ॥
सुंड-दंड भय[3] खंड, पीलवान गज्ज मुक्यौ ।
गिद्धि सिद्धि वेताल, आइ अखिन पज्ज रुक्यौ ॥
वर वीर परयौ भारथ्थ भिरी[4], लोह-लहर-लग्गत[5] झुल्यौ ।
तत्तारखांन सम्हर्यौ सु कत, सिंघ हक्कि अंबर डुल्यौ ॥ ५४ ॥

मा. पा १ २ पा । ३ पा. घ । ४ का पा. । ५ सर्व प्रति ।

शब्दार्थः—करी मुक्ख=हाथियों से सामना कर। आहुट्ठ=आहड़, गुहिलोत। अक्खै=अक्षय। कविल पील=कवलिया पीड। कन्ह=कृष्ण। नखै=पछाड़ता हो। सुड-दंड=सुडादंड, सूड। गिद्धि=गिद्धनियें। सिद्धि=सिद्धनियें, योगनियें। अखिन=यक्षिणियों। पल-रुक्यो=आमिष पर अड़ गई। लोह-लहर-लग्गत=लोह प्रहार होने से। झुल्यौ=झूलने लगा, झूमने लगा। सम्हयौ सु कत=सामना करने पर। हक्कि=हुकार, गर्जना।

अर्थः—इधर अक्षय-वीर गोविंदराय गुहिलोत हाथियों से सामना करता हुआ इस प्रकार युद्ध करने लगा मानों कृष्ण, कुवलया पीड हाथी के दारुण दाँतों को पकड़ कर उसे पछाड़ रहा हो। उसके शस्त्राघात से हाथी की सूंड के खण्ड २ हो जाने पर महावत ने हाथी को छोड दिया (उतर कर दूर होगया) उस समय गिद्धनियां, योगिनियों, वैताल वीरों और यक्षिणीयों ने आमिष (मास) पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार वह श्रेष्ठ वीर युद्ध मे भिड पड़ा और शस्त्र प्रहार से घायल होकर झूमने लगा। यह कार्य उसने तत्तारखा से सामना होने पर किया। उस समय उस सिंह स्वरुपी वीर की गर्जना से आकाश भी डग-मगाने लग गया।

खोलि खग्ग नरसिंघ, खिभिझ खल सीसह झारिय।
तुटि-धर धरनि परत, परत सभरि कट्टारिय॥
चरन अत उरझत, वीर कूरभ करारौ।
तेग घाइ चुक्कत, झरी झल लोह सँभारौ॥
चलि गयौ क्रमन क्रम नन चलै, डुल्यौ न डुलतन हथ्थ वर।
तिन परत वीर दाहर तनौ, चामडा वज्जी — लहर॥ ५५॥

शब्दार्थः—तुटि-धर=टूटने पर छोड़ दी (फेंकदी)। सभरि=सभाली, निकाली। कट्टारिय=कटारी, कटार। अत=आतें। कूरभ=कछवाह क्षत्रिय। करारौ=करारा। सभारौ=सम्हाला, उठाया। चलिगयो=चलबसा। क्रमन=क्रमकर प्रवेश कर के। क्रम-नन-चलै=कर्म से चलायमान नहीं हुआ, कर्त्तव्य से च्युत नहीं हुआ। डुलतन=डलने पर। हथ्थ=हाथ। वज्जी-लहर=खड्ग चलाया, तलवारों को तरंगित किया।

अर्थः—वीर नृसिंह-कछवाहे ने क्रोधित होते हुए तलवार निकालकर शत्रु के सिर पर प्रहार किया, किन्तु उस (प्रहार) के चूक जाने से तलवार जमीन से

टकराकर टूट गई। तब उसने तलवार फेंक कर कटार निकाल ली। उसी समय उस के चरणों में मृत-शवों की आंतें उलझ गई। इस प्रकार तलवार के वार के खाली जाने और आँतों के पैरों मे उलझ जाने पर उस वीर को शत्रुओं के शस्त्र प्रहारों को सहना पड़ा; फिर भी उसने अपने शस्त्रों को सभाला (उठाया) और शत्रु-सेना में प्रवेश करके अमरत्व को प्राप्त होगया; किन्तु वह कर्तव्य से च्युत नहीं हुआ। खड्ग प्रहार करते समय उसका हाथ डुलगया (चूक गया) परन्तु वह श्रेष्ठ वीर नहीं डुला। उसके धराशाई होने पर दाहिर-पुत्र चामण्ड राय की तीक्ष्ण तलवार की तरंगें बढ़ चलीं (भीषण युद्ध प्रारम्भ किया)।

जैत बंध ढहि पर्यौ, सुलख[1] लख्खन कौ जायौ।
तहँ झगरी महमाय, देवि हुंकारौ पायौ॥
हुंकारैं हुंकार, जूह गिद्धनि उड्डायौ।
गिद्धिन ते अपछरा, लियौ चाहत नहीं पायौ॥
अवतरन सोइ उत-पति-गयौ, देवथान विभ्रम भयौ[2]।
जमलोक न शिवपुर ब्रह्मपुर, भान थान भानैंत्रियौ॥ ५६॥

प्रा० पा० १, भौं। २, का० पा० घ०।

शब्दार्थ:—बंध=बंधु, भाई। सुलख=सलखानी। लख्खन=लक्ष्मण। जायौ=उत्पन्न हुआ, पुत्र। झगरी=झगड़ने लगी। महमाय=योगिनियें। हुंकारै-हुंकार=हुंकार के साथ ही। जूह=समूह। अवतरन=पैदा हुआ। सोइ=वह। उत-पति गयौ=वहीं पहुँच गया। विभ्रम=भ्रम। भान-थान=सूर्य मण्डल। भानैं-त्रियौ=भेद दिया।

अर्थ:—सलखानी लक्ष्मण का पुत्र (जैत्र का भाई) वहीं पर युद्ध करता हुआ धरा-शायी हुआ। योगिनियाँ उसका रक्तपान करने के लिए परस्पर झगड़ने लगीं और देवी ने हुंकार की। उस हुंकार के साथ ही गिद्धनियों का समूह उसे लेकर उड़ने की चेष्टा करने लगा पर अप्सराएँ भी उसे लेना चाहती थीं। अतः कोई भी उसे प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो सकी। वह तो जहाँ से उत्पन्न हुआ था वहीं पहुँच गया। यह देखकर देवलोक (के निवासियों) को भी भ्रम होगया। वह न तो यमलोक न शिव-लोक और न ब्रह्मलोक को ही गया, किन्तु सूर्य मंडल को भेद कर सबसे उच्च लोक को प्राप्त होगया।

तन झझरि पंवार,[1] पर्यौ धर मुच्छि घटिय बिय ।
बर अच्छर बिंटयौ सुरग[2] मुक्के सुरग-हिय ॥
तिहित काल सत बाल [3] सलख बधित्र ढिग आइय ।
लिखिय अग बिय अथ्थ, सोई बर बचि[4] दिखाइय ॥
जमन[5] मरन [6] सुह[7] दुह सुगति, नन मिटै भिटह न लुअ ।
ए-वार सुबर बट हु नहीं, बधि लेहु सुक्की बधुअ ॥ ५७ ॥

म्रा०पा०१, भीं० । २, घ० । ३, ७ पा०घ० । ४, ५, भीं०का०घ० । ६ पा० ।

शब्दार्थ:—झंझरि=जर्जरित होकर । मुच्छि=मूर्छित अवस्था में । अच्छर=अप्सरायें । सुरग=स्वर्ग । मुक्के=तजकर । सुरग-हिय=सुरग हृदयवाली, विलासी हृदय वाली । तिहित काल=उसी समय । सतबाल=सातों अप्सरायें । सलख=सलखानी को । बधित्र=वंदना । लिखिय=लिखा, देखकर । अग-बिय=अगनाओं को । अथ्थ=उहाँ, वहाँ पर । बचि=बिरची । दिखाइय=दिखाया, समझाया । जमन=जन्म । सुह=सुख । दुह=दुखों । नन=नहीं । भिटह न=नहीं छुऊँगा । ए-वार=इस समय । बट हु=बाटना (अपने हिस्से में न लेना, वरण करने की इच्छा न करना) । बधि लेहु=गाठ से बांधना । सुक्की बधुअ=स्वर्गीय बधुएँ ।

अर्थ:—तन से जर्जरित होकर वह प्रमार वीर धराशाई हो दो घड़ी तक मूर्छित अवस्था में पडा रहा । यह देखकर विलासी हृदय वाली अप्सराओं ने स्वर्ग से आकर उसे घेर लिया । वे सातों (अप्सरायें) समीप आकर सलखानी वीर से वदना करने लगीं । उन अगनाओं को वहाँ पर उपस्थित देखकर उस वीर ने श्रेष्ठ कथन करके समझाया कि हे स्वर्गीय बालाओं ! जन्म, मरण और सुख, दुख प्राणी के साथ लगे हुए हैं जो अमिट होते हैं । अत मैं तुमको स्पर्श नहीं करना चाहता और न तुम ही इस समय मुझे वर रूप में अपनाने को इच्छा करना । मैंने जो उपदेश वाक्य कहे हैं, उन्हें दृढ़ कसकर बाध लेना । (हमेशा याद रखना) ।

दोहा

राम बच बों सीस बर, ईस गह्यो कर चाइ ।
अथ्थि दरिद्री ज्यों भयौ, देखि देखि ललचाइ ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ:—ईस=शिर । अथ्थि=अर्थ, धन ।

अर्थः—शिव ने प्रसन्नता पूर्वक उस रामराय प्रमार के भाई का श्रेष्ठ सिर ग्रहण किया। उसे देख देखकर वे इस प्रकार लालायित होने लगे, मानो कोई दरिद्री (निर्धन) हस्तगत धन को बार २ देखता है।

कवित्त

जघारौ जोगी जुगिन्द, कढ्यौ कट्टारौ।
परस पानो तुंगी त्रिशूल, खप्पर[1] अधिकारौ॥
जटत वान सिंगी विभूत्त हर-वर-हर-सारौ।
सबर सद्द वह्यौ, विषम मद-गयन झारौ॥
आसन सु दिढ्ढ[2] निज पत्ति में, जिय सिर चँद अम्रित अमर।
मँडलीक राम रावन[3] भिरत, न भौ वीर इत्तौ समर॥ ५६॥

मा० पा० १, ३, घ०। २, भी० पा० घ०।

शब्दार्थः—जुगिन्द=पुराना। कट्टारौ=कटारी। परस=फरशा। तुंगी=तुंगाकृति गदा, या-कोई शस्त्र। खप्पर अधिकारौ=खप्परधारिनी शक्ति का उपासक। जटत-वान=जटावान, जटावाला। हर-वर=शिव का बल। हर-सारौ=सब तरह से शिव स्वरूप। सद्द=शब्द, आवाज, गर्जना। झारौ=जला दिया, नष्ट करदिया, काट दिया। दिढ्ढ=दृढ़। पत्ति में=पक्ति में, अपने गोत्र में, अपनी जाति में। इत्तौ=ऐसा।

अर्थः—जघारा भीम जो पुराना योगी था उसने कटार निकाल ली। उसके पास केवल फरसा, गदा, त्रिशूल, जटा और सिंगी की ही विभूति थी। वह खप्पर धारनी शक्ति का उपासक था उसे एक मात्र शिवका बल था तथा वह स्वयं शिव स्वरूप था। अपनी पक्ति में वह आसन दृढ़ कहा जाता था। जिस प्रकार शिव के भाल पर सुधा युक्त चंद्रमा स्थान पाता है उसी प्रकार उसके ललाट पर चन्द्राकृति वाला शिव तिलक शोभा पाता था। अमरत्व को प्राप्त करना ही उसके पास अमृत था। उसने गर्जना करके मदोन्मत्त विषम हाथियों का संहार कर दिया। उसने उस समय ऐसा युद्ध किया जैसा मण्डलेश्वर राम और रावण के भिड़ने पर भी नहीं हुआ था।

सिलह सज्जि सुरतान, झुक्कि वज्जै रन जंगं।
सुनै श्रवन लंगरी, वीर लग्गा अनभंगं॥

बीर धीर सत मध्य, वीर हुंकरि रन धायौ।
सामंतां सत मद्धि, मरन-दीनं भय सायौ॥
पारत धक्क हक्कंत रिन[1], पग प्रवाह खग खुल्लयौ।
विभ्भूत-चद-अंगन-तिलक, वहसि वीर हकि बुल्लयौ॥६०॥

मा पा. १, भीं.।

शब्दार्थ:—भुक्कि=भुक कर, टेढा होकर। लग्गा=लग गया, ग्रहण स्वरूप हो गया। वीर-धीर-सत-मध्य=जिसमें वीरता, धीरता और सत तीनों थे। मरन-दीन=मृत्यु दी, मृत्यु के घाट उतार दिये। सायौ=छायौ, फैला दिया। पारत-धक्क=धाक फैलाते हुए। हक्कत रिन=युद्ध में विचलित करता हुआ। पग-प्रवाह=प्रवाह में प्रविष्ट हो। खग-खुल्लयौ=खड्ग निकाला। विम्भूत-चद अगन-तिलक=अग पर विभूति, चन्द्रमा और तिलक धारण करने वाले शिव। वहसि=प्रसन्न होकर। बुल्लयौ=बोला, उच्चारण किया।

अर्थ:—बादशाह ने कवच से सुसज्जित होकर वाद्य बजवाये। उन्हें सुनकर अभंग वीर लघरीराय उसके लिये ग्रहण रूप होकर लग गया। उस वीर में धीरता, वीरता और सत तीनों विद्यमान थे। वह हुंकार करता हुआ युद्ध मे आगे बढ़ा। पृथ्वीराज के सौ सामन्तों में वह एक ही ऐसा वीर था, जिसने शत्रु के सैन्य प्रवाह मे प्रविष्ट होकर अपने खड्ग को निकाला एव विपक्षियों को मृत्यु के घाट उतार कर उनमें भय उत्पन्न कर दिया। अपनी वीरता की धाक फैलाते हुए उन्हें विचलित करता हुआ प्रसन्नता पूर्वक आगे बढ़ता ही गया। फिर उस वीर ने अग पर विभूति, चन्द्रमा और तिलक धारण करने वाले (शिव) का नामोच्चारण किया (हर हर महादेव की ध्वनि की)।

लगा लोह उचाइ, पर्‌यौ घुमर घन मभझै।
जुरत तेग सम तेग, कोर बद्दर कछु सुमझै॥
यौं लग्गौ सुरतान, अनल दावानल दग्ग।
ज्यौं लॅगूर लगायौ, अगनि अग्गे आलग्ग॥
इक मार उभ्भार अखारमल, एक उभ्भार सुभ्भारयौ।
इक वार तर्‌यौ दुस्तर रुपे, दूजे तेग उभारयौ॥६१॥

शब्दार्थः—घुमर घन=घुमड़ते हुए बादल। बद्दर=बादल। दग्ग=दागने लगी हो। लंगूर=हनुमान। आलग्ग=आलय, ऊँचे निवास स्थान। उभ्भार=भाड़दिया, फाड़ दिया। अखार मल=अक्खड़मल्ल, या मल्लस्वरूप। बारत-र्यो-दुस्तर=दुस्तर सलिल (समुद्र) को पार करदिया। दूजै=दूसरे पर।

अर्थः—जब लंगरीराय ने शस्त्र उठाकर बादलों के समान उमड़ती हुई शत्रुसेना में प्रवेश किया, तब उसकी तलवार टकराती हुई ऐसी दिखाई दी, मानों बादलों में बिजली की कुछ कुछ रेखाएँ दिखाई पड़ती हों। वह सुलतान से इस प्रकार लग-गया (भिड़ गया) मानों (जंगल में) अग्नि या दावाग्नि प्रज्वलित हो उठी हो, या हनुमान ने लंका के निवास स्थानों में आग लगा दी हो। उस अक्खड़मल्ल (या अखाडे के मल्ल) ने एक को मार कर फाड़ दिया और दूसरे को चीर-फाड़ कर पटक दिया। युद्ध भूमि में अपने चरणों को दृढ़ता से स्थापित करके उसने एक को (अपने स्वामी को) युद्ध रूपी दुस्तर समुद्र से पार कर दिया और दूसरे (विपक्षी गौरी) पर अपना खड्ग उठाया।

लोहानौ महमुंद[१], बान मुक्कै बहु भारी।
फुट्टि सु ठट्टर ज्वान, पिट्ठ ऊरद्ध निकारी॥
मनो किवारी लग्गि[२], पुट्टि खिरकी उघ्घारी[३]।
बढ्ढारी[४] बर-कढ्ढि, वीर अवसान सँभारी[५]॥
एक झर वीर उर झारिझर, करि सुमेर परि अरि सु क्रिरि।
चवसट्ठि खान गौरी परै, तीन राष[६] इक राज परि॥ ६७॥

मा० पा० १ सर्वप्रति। २ का० पा०। ३,५ भीं। ४ का० भीं० घ०। ६ का० घ०।

शब्दार्थ—ठट्टर=ठठरी, शरीर। पिट्ठ-ऊरद्ध=पीठ पर। बढ्ढारी=बींढने वाली, तलवार। अवसान-सँभारी=सावधान हुआ। एक-झर-मीर=एक मीर को काटकर। उर=अरु, फिर। झारि-झर=शस्त्र झड़ी करके।

अर्थः—इधर से लौहाना और उधर से महमूद ने एक दूसरे पर भारी बाण वर्षा की। वे बाण वीरों के तन-पिंजर को बेधकर पीठ की ओर इस प्रकार निकल गये, मानों जडे हुए खिड़की के किवाड खुल गये हों। बाद में वीर लौहाने ने तलवार

निकालकर सावधानी से एक मीर को खण्ड २ कर दिया, फिर शस्त्र प्रहार करके मृत-शत्रुओं के शवों का सुमेरु पर्वत के समान ऊँचा ढेर लगा दिया। उस समय गोरीशाह के ६४ खान, चौहान योद्धाओं मे से तीन राव और एक राजा पदधारी वीर रणस्थल मे धराशायी हुए।

मांनि लौह मारूफ, रोस विड्डुरि गाहक्के।
मनु पचानन व्याहि[1], सद्द सिर-सद्द[2] हहक्के॥
दुहूँ मीर वर तेज, सीस इक सिंघह बाही।
टोप टुट्टि वरकरी[3], चद ओपम ता पाई॥
मनु शृंग विहस्सिय[4] बिज्जुलह, रही-हेट[5]-तुटि भा नहति।
उतमग सुहै बिव टूक ह्वै, मनु उडगन पत्ते[6] जमति॥ ६३॥

प्रा० पा० १, ३, ५, ६, सर्वप्रति। २ ४, पा०।

शब्दार्थ:—रोस=क्रोध। बड्डुरि=विड्डरता हुआ। गाहक्के=गर्जना की। पचानन-व्याहि=व्याही (प्रसूता) सिंहनी। सद्द-सिर-सद्द=आवाज पर आवाज। हहक्के=हुंकार की, गर्जना की। सिंघह=सिंह तुल्य वीर ने। बाही=खड्ग चलाई, प्रहार किया। वरकरी=वडक कर। विहस्सिय=हास्य प्रभा फैलाई, दम दमाई। रही हेट-तुटि=नले पडकर रही, प्रपात किया। भा=प्रभा नहति=निहित। उतमग=उत्तमग, सिर। सुहे=वह। बिवटूक=दो दो टुकडे, किरचे। उडगन=तारे। पत्ते=टूट पडे। जमति=यम।

अर्थ:—क्रोध करते और डरते हुए मारूफखॉ ने लोहाने वीर के शस्त्र प्रहार की दक्षता को स्वीकृत कर लिया फिर भी वह इस प्रकार गर्जना करने लगा जैसे प्रसूता सिंहनी गर्जना करती रहती है। मीर महमूद और मारूफखॉ-दोनों मीर श्रेष्ठ तेजधारी थे उन दोनों में से एक के सिरपर, सिंह तुल्य लोहाने ने खड्ग का प्रहार किया जिससे उसका शिरस्त्राण इस प्रकार फटकर टूट गया (कविचन्द इसकी तुलना करता हुआ कहता है) मानों गिरिशृंग पर तीक्ष्ण प्रभायुक्त चमकती हुई बिजली निहित हो। मीर के मस्तक तक पहुँचती हुई उस खड्ग के टुकडे २ होकर उछल पडे जिससे ऐसा ज्ञात हुआ मानों मृत्यु-सूचक (अनिष्ट कारी) तारे (धूमकेतु) टूट पडे हों।

दस हथ्थी सु विहान साहि गोरी मुख किन्नौ।
करअ कास ग्रादी तत्तार, मार[1] चवकौदवि छिन्नौ[2]॥

नारि गोर जबूर, कुहक वर बान अघान[3] ।
गज्ज भग्ग प्रथिराज, चित्त करयो अकुलान[4] ॥
सोमोह कोह वर वज्जि के, वृज्ज उन धारय धमसि कै ।
सामत सूर वर बीर वर, उठे वीर वर हमसि कै ॥ ६४ ॥

प्रा०पा० १, २, सर्वप्रति । ३, ४ पा०घ० ।

शब्दार्थः—मुख किन्नौ=अग्रभाग पर नियुक्त किया । कग्ग=किया, छोड़ा । कास=कसाकमी । वादी=विवाद । चवक्कौं दिसि=चारों ओर को । छिन्नौ=छागया, विस्तृत हुआ, फैला कुहक=शब्द, ध्वनि । अघान=तृप्त हो गई, पूर गई । सोमोह=सोमेश्वर का पुत्र । कोह=क्रोध करके । धमसि के= धमाका करके, गर्जना करके । हमसि के=हुमसकर, उत्तेजित होकर ।

अर्थः—शहाबुद्दीन गौरी ने अपने दस हाथियों सहित सुविहान को अग्रभाग में नियुक्त किया । तत्तार खां ने कमाकमी का विवाद छेड़ा जिसका शोरगुल चारों ओर फैल गया । आग्नेयास्त्र और बाणादि के शोर से भी दसों दिशायें पूरित हो गई । इस शोरगुल से पृथ्वीराज का हाथी भाग गया, जिससे पृथ्वीराज के चित में व्याकुलता होने लगी । तब उस सोमेश्वर के श्रेष्ठ पुत्र (पृथ्वीराज) ने क्रोध करके रणवाद्य बजवाये, जिससे ऐसा ज्ञात हुआ मानो व्रज को डुबोने के लिए मेघ उमड़-घुमड़ कर जलधारा बरसाते हुए गर्जना कर रहे हों । उसी समय वीर-शस्त्रुओं से भिडने के लिये उसके बहादुर सामत भी उत्तेजित होकर खडे होगये ।

अद्ध अद्ध जोजनह, मीर चढ़ि सगा फेरय[1] ।
तब गौरी सुरतान, रोस सामतह घेरिय[2] ॥
चक्र अवन चौंडोल, अगग शेवन पचासौ ।
सूर कोट ह्वै जोट, सार मरनह हुल्लासौ[3] ॥
वर अगनि वगी हल्लानहीं, पद्धर[4] कोट सुजोट हुअ ।
वर वीर रास समरह परिय, सार धार वर कोट उअ[5] ॥ ६५ ॥

प्रा० पा० १ से ३, पा० घ० । ४, पा० ५, मों० घ० का० ।

शब्दार्थः—संगा=सांग । फेरिय=हिलाई । चक्र-अवन=चक्र चलाने वाले । चौंडोल=चारों ओर । पंचासौं=पचासों । ह्वै जोट=जुड़कर सम्मिलित होकर । सार मरनह=लोहे द्वारा मृत्यु प्राप्त करने ।

हुल्लासौ=हुल्लास, उल्लास, प्रसन्नता, उत्साह। बर अगनि वगी=श्रेष्ठ लोहाग्नि बरसाई। हल्लोन-हीं=हल्ला करने वालों ने, आक्रमण कर्ताओं ने। पद्धर=समतल। सुजोट=श्रेष्ठ जुटा हुआ। सार-धार=शस्त्रधारा। उभ्र=उनके लिये।

अर्थ—आधे २ योजन तक आगे बढ़ कर उछलते हुए मीरों ने सांग चलाना प्रारंभ किया। तब क्रोधित होकर पृथ्वीराज के सामन्तों ने गोरी शाह को घेर लिया, किन्तु शाह के चारों ओर चक्र चलाने वाले पचासों (या पाचसों) शेष योद्धा थे। वे सब सम्मिलित होकर शाह के चारों ओर दीवार स्वरूप होगये, तथा उनके हृदय में शस्त्र द्वारा मृत्यु प्राप्त करने का उत्साह बढ़गया। पृथ्वीराज के आक्रमण-कर्त्ता योद्धाओं ने श्रेष्ठ लोहाग्नि बरसाना शुरु किया जिससे जुड़ी हुई वह सैनिकों की दीवार टूटकर समतल बनगई, उन श्रेष्ठ वीरों ने उस युद्ध रूपी रासमडल में धराशायी होते हुए भी उन विपत्तियों के प्रतिबन्ध के लिये अपनी शस्त्रधारा को श्रेष्ठ कोट बना दिया।

खा – खुरसान ततार, खिभिझ दुज्जन दल भक्खै।
वचन सामि उर खटकि, हटकि तसवी कर नक्खै॥
कजल पति गज विथुरि, मध्य सैना[1] चहुआनी।
अजै मानि जै रारि, वियसु - तेरह चंपि प्रानी॥
धामत फिरस्तन कढ्ढि असि, दहति पिंड सामत भजि।
पर वीर भीर वाहन करह[2], परे धाइ चतुरंग सजि॥ ६६॥

पा. पा. १ सर्व प्रति। २ भीं.।

शब्दार्थः—भक्खै=विनष्ट करने लगे। सामि=स्वामी। हटकि=हट करके, या शीघ्रता करके। तसवी=माला। नक्खै=फेंक दी। विथुरि=बिखर गई, यत्र-तत्र होगई। अजै मानि=विजयी समझे जाते थे। जै=जो। रारि=युद्ध मे। वियसु-तेरह=दो या तेरह, पद्र। चपि=दबाये गये। प्रानी=वीर प्राणी, वीर। धामत=बढ़ते हुए। भजि=नष्ट कर दिये। भीर=भड़, टोली। वाहन-करह=वहन करदी, हटा दिया। परे-धाइ=बढ़कर, उमड़कर।

अर्थः—तब खुरासानखा और तत्तारखा क्रोधित होकर शत्रुओं के दल का विनष्ट करने लगे। उन वीरों के हृदय में स्वामी के समक्ष की गई प्रतिज्ञा का भंग होना खटकने लगा। अतः उन्होंने शीघ्रता पूर्वक तसबी को पृथ्वी पर डाल दिया। उनके

आघातों द्वारा सेना के मध्य भाग में स्थित कज्जलगिरि के समान जो हाथी थे वे विचलित होकर यत्र-तत्र भागने लगे। युद्ध में विजयी वीर माने जाने वाले पंद्रह पट्ठु वीर चाहुवानो सामंतों को दबाने के लिये आगे बढ़े। उन देव दूतों तुल्य वीरों को आगे बढ़ते हुए देख कर पृथ्वीराज के सामंतों ने तलवार से तेरह वीरों को नष्ट कर दिया और अपनी चतुरंगिनी सेना के बल पर आगे बढ़कर मुसलमानों के वीर-समूह को हटा दिया।

पच्छै भौ संग्राम, अग्ग अपछर[1] विच्चारिय।
पुछै रंभ मेनिका, अज्ज चित्तं किम भारिय॥
तब उत्तर दिय फेरि, अज्ज पहुनाई आइय।
रथ्थ बैठि औ थांन, सोभ्रतह कंत न पाइय॥
भर सुभर परें भारथ्थ भिरि, ठाम ठाम चुप जीत सथि[2]।
उत्थ किय पंथ हल्लै-चल्यौ, सुथिर संभ दिख्खीय[3] नथि[4]॥ ६७॥

प्रा० पा० १, ४, घ०। २, पा० घ०। ३ पा०।

शब्दार्थ—पच्छै=पीछे। अपछर=अप्सरा। अज्ज=आज। पहुनाई-आइय=पाहुने होने का न्यौता, युद्ध भूमि का निमंत्रण। औ-थान=इस स्थान। सोभ्रतह =ढूँढते हुए। जीत-सथि=विजय श्री सहित, विजय प्राप्त करके। उत्थ=उधर। किय-पंथ=किस रास्ते। हल्लै-चल्यौ=होकर चला गया। सुथिर=स्थिर रूप में, टक टकी लगाये। संभ=शंभू। नथि=नहीं।

अर्थः—इधर युद्ध होने से पूर्व ही अप्सराएँ उसके बारे में विचार करने लगीं। रंभा से मेनका ने पूछा आज तुम्हारा चित्त भारी (उदास) क्यों है? तब रंभा ने उत्तर दिया-आज युद्ध देखने का निमन्त्रण आने पर मैंने रथ मे बैठकर इस स्थान पर बहुत खोज की, किन्तु प्यारे को नहीं देख पायी। यद्यपि योद्धागण युद्ध में भिडकर विजय-श्री को प्राप्त करते हुए स्थल २ पर चुप हो (मृत) पड़े हुए हैं, किन्तु न जाने वे (सीधे स्वर्ग या ब्रह्मलोक को) किस राह से होकर चले गये हैं, जिसे कोई भी नहीं जान सका, (स्थिर रूप से) टकटकी लगाये हुए खड़े २ शंभु भी उन्हें नहीं देख पाये हैं।

खा हुस्सैन ढरि पर्‌यौ, अस्व फुनि पर्‌यौ सार वहि।

खां—ततार मारूफ, खान खाना घट घुम्मैं।
तब गोरी सुबिहान, आइ दुज्जन मुख झुम्मै॥
कर तेग-झल्लि पुट्ठिय-सु-वर[२], नहि सुलतानह पन करी।
अदिहार दीह पलटे सु बर, तबह साह फिरि पुक्करी॥ ६८॥

ग्रा० पा० १, २, पा० घ०।

शब्दार्थः—अस्व=घोड़ा। फुनि=फिर। सार बहि=लोहा बजाकर, तलवार बजा कर। घट=शरीर। घुम्मै=घूमने लगे, झूमने लगे। मुख-झुम्मैं=सामना किया। तेग-झल्लि=तलवार पकड़ कर। पुट्ठिय सु-वर=पीछे को हटा। अदिहार=द्रष्टि गत नहीं होने वाला [ईश्वर]। पुक्करी=पुकारा।

अर्थः—अपने घोडे के मारे जाने पर पैदल ही शस्त्र प्रहार करता हुआ गाजी-हुस्सैन धराशायी हुआ। विपक्षी दल के हुज्जावखा, शेरखा, उजवक्कखा, तत्तारखा, मारुफखां और खान खाना (श्रेष्ठखान) घायल होकर झूमने लगे। यह देखकर खुदावन्द-गौरी शाह ने विपक्षियों से सामना किया। लेकिन तलवार ग्रहण करके भी वह पीछे हट गया और अपने सुलतान पने को नहीं निभा सका। जब द्रष्टिगोचर नहीं होने वाला [ईश्वर] ही उससे पलट गया, तब उसने उसको [ईश्वर को] फिर से पुकारा।

तब साहिब गोरी नरिंद, सत बान समाहिय।
पहिल बान वर बीर, हने रघुवंस गुराइय[१]॥
दूजै बान तकत[२], भीम भट्टी वर भजिय।
चाहुवान—तिय—बान, खान अद्ध—धरि रज्जिय॥
चहुवान कमान सु सवि करि, तोय बान हथ्थह[३] रहिय।
तब लगि चपि प्रथीराज ने, गौरीवै गुज्जर गहिय॥ ६९॥

ग्रा० पा० १ सर्वप्रति। २ पा० घ० मो०। ३ पा० घ०।

शब्दार्थः—साहिब=शहाबुद्दीन। समाहिय=हाथ में लिये। पहिल=पहला। गुराइय=गरुर धारी, गौरव धारी। तक्कत=ताकवर। वर=बल। चाहुआन-तिय बान=चाहुवान पृथ्वीराज पर तीसरा बाण ताना। अद्ध धरि=आधा ही धर पाया, खींच पाया। तीय-बान=तीसरा बाण। हथ्थह=हाथ में ही। गुज्जर=रामराय बडगुज्जर।

अर्थः—फिर शहाबुद्दीन ने अपने हाथ में सात बाण लिये। उसने पहला बाण गौरव धारी श्रेष्ठ वीर रघुवंशीराय पर मारा, दूसरे बाण से ताक कर भीम भट्टी के वलको तोड़ा, तीसरा बाण चौहान (राजा) पर चलाने के लिए प्रत्यंचा पर चढाया, किन्तु वह आधा ही चढ़ पाया था कि चौहान राजा पृथ्वीराज ने बाण को कमान पर साधकर शाह के तीसरे बाण को हाथ का हाथ में ही रख कर (वार को वृथा करके) उसको दबा दिया। इतने में रामराय बडगुज्जर ने उस (गौरी) को पकड़ लिया।

गहि गौरी सुरतान, खग्न-हुस्सैन उपार्‌यौ।
खा-ततार निसुरत्ति, साहि झोरी करि डार्‌यौ ॥
चामर छत्र रखत्त, बखत लुट्टै सुरतानी[१]।
जै जै जै चहुवान, बजी रन जुग जुग बानी ॥
गज बंध बंधि सुरतांन कौं, गय ढिल्ली ढिल्ली नृपति।
नर नाग देव अस्तुति करै, दिपति दीप दिवलोक पति ॥७०॥

मा० पा १, पा०।

शब्दार्थः—खान हुस्सैन=गाजी हुसैन। उपार्‌यौ=उठाया। झोरी करि=झोलियों मे। गजबंध= गजारोही वीरों ने। दिपति=दीप्ति। दीप=दैदीप्यमान।

अर्थः—गौरीशाह को पकड़ लेने के बाद घायल हुए गाजीहुस्सैन को उठाया गया तथा तत्तारखां और निसुरतखां आदि पकड़ कर झोलियों में डाल दिये गये। इसके पश्चात् शाह के राज्यचिन्ह चमर, छत्र आदि एवं रसद सामान को लूट लिया गया। तब रणक्षेत्र में बाजे बजने लगे और चौहान राजा की जय जय कार होने लगी। इसके पश्चात् शाह को गजारोहियों ने बांधकर हाथी पर डाल दिया, इस प्रकार दिल्ली पति उसे साथ में दिल्ली लेगया। यह देख कर नर, नाग, देवता, आदि उसकी स्तुति करने लगे, और इस विजय से पृथ्वीराज की दीप्ति इन्द्र के समान दैदीप्यमान होगई।

समै इक्क[१] वत्ती नृपति, वर छड्यौ सुरतान।
तपै राज चहुवान यौं[२], ज्यौं ग्रीपम मध्यान ॥७१॥

मा०पा०१, २, पा०।

शब्दार्थः—वत्ती=बीती, बितने पर। तपे=तपने लगा।

अर्थः—कुछ समय बीतने पर श्रेष्ठ राजा पृथ्वीराज ने सुलतान को छोड़ दिया और वह (पृथ्वीराज) इस प्रकार तपने लगा, जिस प्रकार ग्रीष्मकाल मे मध्यान्ह समय का सूर्य तपता है।

मास एक दिन तीन, साह संकट मे रुंद्धौ।
करिय अरज उमराउ, दंड हय मंगि प सुद्धौ॥
असत्र मोल[1] नव सहस, सत्त सै दीन[2] ऐराकी।
उज्जल दंतिय अट्ठ, बीस मुर ढाल सुजा की[3]॥
मोतीय नग्ग मानिक नवल, करि सलाह समेल करि।
पहिराइ[4] राज मनुहार करि, गज्जनवै पठयौ सु घरि॥७२॥

१ प्रा०पा०१, पा०घ०। २, का०घ०। ४ सर्वप्रति।

शब्दार्थ—रुंद्धौ=रूधा रहा। सुद्धौ=सीधा, साधारण। असत्र मोल=प्रत्येक घोडे का मूल्य। मुर=मुड़ जानेसी मुलायम। सुजाकी=सूस की (एक जानवर की त्वचा से बनी हुई)। समेल करि=सभा कर, समेलन कर। घरि=घर पर।

अर्थः— शाह एक माह और तीन दिन तक (पृथ्वीराज के) बंधन मे रहा, तब शाही उमरावों ने राजा पृथ्वीराज से उसे छोड देने की प्रार्थना की। तब पृथ्वीराज ने उनसे साधारण सा दंड मांगा। इस पर शाह ने नव नव हजार के मूल्य वाले सात सौ ऐराकी घोड़े, उज्ज्वल दांत वाले आठ हाथी और लचकदार बीस सुन्दर ढालें आदि पृथ्वीराज को दंड स्वरूपीय भेंट की। तब पृथ्वीराज ने भी सामंतों से सलाह करके बादशाह को नग, मोती, माणिक आदि से पिरोई हुई एक नूतन माला पहनाकर गजनी को रवाना किया।

— ❀ —

अनंगपाल

(समय २६)

दोहा

दिय दिल्ली चहुवान कौं, तूंअर वद्री जाइ ।
कहौं[1] दद क्यौं पुक्करिय, फिरि दिल्लिपुर आइ ॥ १ ॥

प्रा पा १, स. ।

शब्दार्थः—वद्री=वद्रिकाश्रम । दंद=विघ्नकारी । पुक्करिय=पुकारा गया, कहा गया, हुआ, किया ।

अर्थः—पृथ्वीराज को दिल्ली दान में देकर तोंमर राजा अंनगपाल बद्रिकाश्रम चला गया । उसने पुन दिल्ली लौटकर क्यों विघ्न पैदा किया ? उसी का वर्णन मैं (कविचन्द) यहाँ पर करता हूँ ।

रक्खि वीर पृथीराज कौं, गौ तीरथ्थह राज ।
व्यास वचन आनद सजि, तिंहु पुर वज्जन वाज ॥ २ ॥

शब्दार्थः—रक्खि=रखकर । गौ=चला गया । तीरथ्थह=तीर्थ को । राज=राजा अनगपाल ।

अर्थः—व्यास द्वारा कहे हुए भविष्य-कथन को मान कर राजा अनगपाल प्रसन्नता पूर्वक वीर पृथ्वीराज को दिल्ला देकर तीर्थ चला गया । इससे तीनों लोकों में बाजे वजे (सुर, नर, नाग आदि को प्रसन्नता हुई) ।

जुग्गिनिपुर पृथीराज लिय, वज्जि त्रिघोष सु दद ।
अनंगपाल तूंअर-वरन, किय तीरथ आनंद[1] ॥ ३ ॥

प्रा. पा. १ घ. पा ।

शब्दार्थः—जुग्गिनिपुर=दिल्ली । लिय=प्राप्त की । वज्जि=बाजे, वाद्य । त्रिघोष=उच्च ध्वनि । तूंअर-वरन=तोमर जाति के, तोमर वशी ।

अर्थः—विघ्नकारी वाद्यों को वजाते हुए पृथ्वीराज ने दिल्ली को और तोंमर वशी अनगपाल ने तीर्थ का श्रेष्ठ आनन्द प्राप्त किया ।

कवित्त

तसकर चेलक विप्प, बैद दुरजन अति लोभी।
प्राहुन अहि जल ज्वाल, काल त्रिप इनमे मोभी॥
इन पर चिंता नांहि, बहुत करि जौ पै कहिये।
अप्प सहज चालत, चित्त की वत्तन[1] लहिये॥
पृथीराज-लोक तौअर-घरह, अरुचि[2] दिट्ठ मडै तनह।
भौगवै धरा जीवत धनिय, संक न कोइ मानै मनह॥ ४॥

ग्रा० पा० १ पा० घ०। २ पा०।

शब्दार्थ:—तसकर=चोर। चेलक=चेला। विप्प=ब्राह्मण। प्राहुन=पाहुन। मोमी=मैं स्वय, अर्थात् कवि मी। इन=इनको। पर=पराई। अप्प=अपने। सहज=स्वाभाविक। वत्त=बात। पृथीराज-लोक=पृथ्वीराज के आश्रित। तौअर-घरह=तोंमर अनंग पाल के आश्रित। दिट्ठ=दृष्टि। मडै=करते, देखते। जीवत-धनिय=स्वामी (अनग पाल) के जीते जी।

अर्थ:—चोर, चेला, ब्राह्मण, वैद्य, दुर्जन, अत्यन्त लोभी, मेहमान, सर्प, जल, ज्वाला, काल, राजा, और इनके अनन्तर मै स्वय (कवि) हू। इन सबको बहुत कुछ कहा जाय किन्तु फिर भी पराई चिन्ता नही होती। ये अपने स्वाभाविक रास्ते पर चलते रहते हैं (अपने रास्ते को नहीं छोडते अपनी आदत से बाज नहीं आते) और न इनके मन की बात ही प्रगट होती है।* अत पृथ्वीराज के साथ मे आये हुए आश्रित गण अनगपाल के आश्रितों का अरुचि की दृष्टि से देखते थे और अनगपाल के समय उसके आश्रित मन मे निश्शंक होकर पृथ्वी को भोगते थे।

स्पष्टीकरण:—चोर को दूसरे की चिन्ता नहीं होती—वह अपनी आदत को नहीं छोडता और न अपनी गुप्त बात ही प्रगट होने देता है। शिष्य को भी अपने अन्य साथियों की चिन्ता नहीं होती-वह अपनी ही धुन मे मस्त रहता है और अपने अध्ययन विषय को गुप्त रखता है। ब्राह्मण को अन्य के हित अहित का विचार नहीं होता—यज्ञादि कार्य से दाता का फायदा हो न हो दान-दक्षिणा और सीधे (आमान्न) से काम है, वह अच्छे बुरे को नहीं सोचता—शास्त्र कथित रास्ते का ही अनुसरण करता है और अपने गुप्त विषय को दाता के हानि लाभ सम्बन्धी या अपने स्वार्थ को प्रगट नहीं होने देता। वैद्य को रोगी की चिन्ता नहीं होती—वह भी

दोहा

सभरि वै मोमेम नृप, अति उतग आचार ।
ढिल्ली प्रिथि[1] तौंअर[2] दई[3], सुनि[4] खिज्यौ महिपार ॥ ५ ॥
म्रा० पा० १, २ पा० । ३ घ०, पा० । ४ सर्व० ।

शब्दार्थ:—उतंग=ऊँचे । आचार=आचरण । महिपार=महिपाल नामक कोई विपक्षी ।

अर्थ:—समरेश्वर-सोमेश्वर के उत्तम और ऊँचे आचरण थे । जब तोमर-राजा अनंगपाल ने पृथ्वीराज को दिल्ली दी इसकी सूचना मिलने पर महिपाल विपक्षी क्रोधित हो उठा ।

अपने स्वार्थ के रास्ते को नहीं छोडता और अपना गुप्त उद्देश्य प्रगट नहीं होने देता । दुर्जन को पराई चिन्ता नहीं होती – वह अपने स्वार्थ के रास्ते को नहीं छोड़ता और अपना गुप्त उद्देश्य प्रगट नहीं होने देता न वह अपने दुष्ट स्वभाव को ही छोडता एवं न अपनी दुष्टता को प्रकाश में हीं आने देता । अत्यन्त लोभी को,पराई चिन्ता नहीं होती – वह अपने धनोपार्जन के रास्ते पर चलता रहता है और अपने गुप्त स्वार्थ विषय को प्रगट नहीं होने देता । महमान को घर वालों की चिन्ता नहीं होती वे भी आकर डट जाते हैं और अपने खास उद्देश्य को छिपाते रहता है (अर्थात् जैसा घर वालों का और घर का खयाल घर के मालिक को होता है वैसा महमान को नहीं हाता) । सर्प को अन्य के भय का खयाल नहीं होता – वह अपने डसने की आदत को नहीं छोडता, और प्रगट नहीं होता । जल प्रवाह अन्य के नुकसान को नहीं सोचता-जिधर रास्ता पाता है उधर ही वह निकलता है, उसकी गति भी अज्ञात रहती है । अग्नि ज्वाला का भी अन्य को हानि का विचार नहीं होता – वह भी चाहे जिधर फैल जाती है और उसकी गति का ज्ञान नहीं हो पाता । काल भी अन्य की चिन्ता नहीं करता – वह नाशकारी रास्ते को नहीं छोडता और उसकी गति भी अज्ञात रहती है । राजाओं को पाराई चिन्ता नहीं होती–वे मन माने रास्ते पर चलते रहते हैं और उनकी मन्त्रणा गुप्त होती है । कवि को भी साहित्य–सृजन के अतिरिक्त अन्य की चिन्ता नहीं होती – ये भी अपने नियमित मार्ग का अनुसरण करते हैं एव इनके भी व्यंग-विषय प्रगट नहीं होते या इनको भी दाता की परिस्थिति का विचार नहीं होता, ये अपनी याचना की आदत को नहीं छोडते और किस प्रकार ये तुष्ट हो सकें. उनकी यह बात दान देने वाले पर प्रगट नहीं हो पाती ।

कवित्त

चदेरी चतुरंग, सैन हय गय पल्लान ।
ठौर ठौर कग्गदह, दए मालव धरवान ।।
गक्खड गु ड भदौड, सोरपुर सूर समाहे ।
मिलि आए महिपाल, आप वल सेन उमाहे ।।
एकत मत[1] सोमेस पर, धर[2] सभरिवै लिज्जियै ।
प्रथिराज तुँअर दिल्ली दिसा, फिरि कलहतर क्रिज्जिये ।। ६ ।।

प्रा० पा० १ पा० । २ सशोधित ।

शब्दार्थ:—पल्लान=पलाने, सजाये । दए=दिये । धरवानं=भूमि पतियों । समाहे=तत्पर हुए । मत=मत्रणा । उमाहे=उत्साहित हुआ ।

अर्थ:—उसी समय हाथी घोडों के साथ चदेरी की चतुरगिनी सेना सजाई गई और मालव जाति (या मालव-प्रदेश) के भूमि-पतियों को यत्र तत्र पत्र दिये गये, जिन्हें पढकर गौंड, भदोर (भदावर) और सोरपुर (श्यौपुर) के गक्खड गर्जना करने वाले के साथ युद्धार्थ सजकर एकत्रित हो गये और महिपाल से आ मिले । इस प्रकार सबके आने पर अपनी सेना को वल-वृद्धि देखकर महिपाल उत्साहित होगया । तब सबने एकान्त में वैठकर मत्रणा की जिसमे यह निश्चय किया गया कि पहले सोमेश्वर पर चढ़ाई कर साभर-धरा (अजमेर और साभर) को अधिकार में किया जाय बाद में तोमरों के मुख्य स्थान दिल्लीपर आक्रमण कर पृथ्वीराज से युद्ध छेडा जाय

बर-मालव महिपाल, चढ्यौ चहुवान सु उप्पर ।
मन सज्जि[1] चतुरग, दियौ मेलानह मोपुर ।।
हय गय थट्ट अघट्ट, घाट चविल परि आइय ।
घुरि निसान घमसान, थान थानह हल्लाइय ।।
जादव नरिंद हरि-वस-कुल, अति आतुर अजमेर पर ।
उत्तर्यो सरित समित सकल, धूसि धरा रावत्त वर ।। ७ ।।

प्रा० पा० १, पा० ।

शब्दार्थः—वर-मालव=मालव सेना के बल पर। मेलानह =डेरा। अघट्ट=अघटनीय, भयानक। चम्बिल-परि=चंबलपर। घुरि=गूँजे, बजे। घमसान=युद्ध के। हल्लाइय=कंपित कर दिये। हरि-बस-कुल=कृष्ण वंशज सह कुटुम्ब। घु सि-धरा=भूभाग को घुमस (कुचल) दिया। रावत्त-धर=धरापति, भूपति।

अर्थः—इस प्रकार मालव के बल पर महिपाल ने चाहुवान (सोमेश्वर) पर अपनी चतुरंगिनी सेना सुसज्जितकर चढाई की और श्योपुर में आकर डेरा डाला। उसके हाथी घोडे और भयानक वीर-समूह चम्बल के घाट पर आ उतरा तथा युद्ध के नक्कारे बजवाये, जिससे भूभाग का प्रत्येक कोना थर्रा गया। उधर कृष्ण-वंशज [पट्टन का] यादव राजा भी उसका सहायक बन तीव्र गति से अजमेर की ओर बढा। सब भूपतियों ने समिलित हो नदी पार कर चाहुवानी भूभाग को घुमस (कुचल) दिया।

सुनि सोमेसर सूर, चिंति मन मत्ति[1] उपाइय।
वर पृथिराज नरिंद, अनॅगपालह बुल्लाइय॥
रज रजवट रक्खियै, राव रावत्तन क्रिज्जै[2]।
रहै गल्लह संसार, आव जल अजुल छिज्जै॥
मो वस अंस आनल अटल, कोइ न कहु काइर कहिय॥
अप्पान सुभर[3] सबोधि नृप, जुद्ध बात पुच्छत लहिय॥ ८॥

भा०पा०१, घ०। २, पा०। ३, पा०भीं।

शब्दार्थः—मत्ति=मन्त्रणा। उपाइय=उपजाई, पैदा की। बुल्लाइय=बुला लिया, रख लिया। रज=रजोगुण। रजवट=राज गौरव। राव-रावत्त=राव और रावत पदधारी। क्रिज्जै=करना चाहिये, या कहना है। आव=आयु। गल्लह=ख्यात बात। छिज्जै=नश्वर है। अटल=अडिग। कहु=कहीं। काइर=कायर। अप्पान=अपने। बात=दाव। पुच्छत=पूछने लगा।

अर्थः—यह सुनकर वीर सोमेश्वर ने मनमें सोचा कि पृथ्वीराज को तो अनगपाल ने दिल्ली पर बुला लिया है। (रखलिया है) अब मेरा राव और रावत्त पद धारियों से यही कहना है — कि हमे रजोगुण और रजवट की रक्षा कर लेनी चाहिये, क्योंकि आयु तो क्षणिक है और नष्ट होने वाला है, किन्तु वीरों की बात

ससार मे रह जाती है। हमारा अक्षय वश राजा अनल (चौहान) के अंश से है- अत. कहीं कोई हमें कायर नहीं कहदे ? इस प्रकार अपने सामन्तों को सम्बोधित-कर राजाने युद्ध की पद्धति (दाव) के विषय मे उनसे पूछा।

सिंघ पँवार वरसिंघ[1], गौड़ संजम चहुआनं।
बाहन-वीर सधीर, राज गुर राम सुजान ॥
मत मति भर अवर, करे सम-चित्त अनेक।
तुम लज्जा धर धीर, बीर वीराधि विमेक[2] ॥
सभरिय सोम पुच्छत बयन, कहिय बत्त सम-तत्त कल
छल बल अनेक छित्रिय[3] करत[4], तुच्छ सत्थ पुम्भै न[5] बल ॥९॥

ग्रा० पा० १, ३, पा० घ० । २ भीं० का० । ४ का० । ५ भीं।

शब्दार्थः—बाहन-वीर=वीरवाहन, नाम विशेष। सधीर=धैर्य वाला। राज गुर-राम=राज गुरु पदधारी (राजा पृथ्वीराज का शस्त्र गुरु) रामराय (अथवा राजा का गुरु, गुरुराम पुरोहित)। मत=मत्रणा। मति=मत्री। करे सम-चित=चित्त को एक समान करके, एकचित्त होकर। विमेक= विवेक। पुच्छत-बयन=बात पूछते हैं, प्रश्न करते हैं। सम तत=तत्व युक्त, तत्व सहित। कल=सुन्दर। छित्रिय=क्षत्रिय। पुम्भै न=नहीं पहुँचते, समानता नहीं करते।

अर्थः—तब सिंह प्रमार, बरसिंह गौड, सजम चौहान, धैर्यवान वीरवाहन, राज-गुरु पदधारी चतुर रामराय बडगुज्जर (या राजा का गुरु गुरुराम) तथा अन्य मत्रीगणों और तदुपरान्त प्रमुख सामन्तों ने एक चित्त होकर मत्रणा की और कहा— हे वीरों! तुम लज्जा को धारण करने वाले धैर्यवान तथा वीरों मे श्रेष्ठ एव विवेक-वान हो—अत. सभरी-पति सोमेश्वर तुमसे पूछते हैं कि —युद्ध किस प्रकार किया जाय, तुम इस विषय मे अपने विचार प्रगट करो ? तब सब सामन्तों ने सुन्दर तत्व युक्त बात कही—कि जब शत्रुओं की सख्या अधिक और अपनी सेना स्वल्प होती है तब देखा गया है कि अनेकों क्षत्रिय छल और बल को अपनाते रहे हैं, क्योंकि स्वल्प वीर विशेष वीरों से युद्ध म सामना नहीं कर सकते।

दोहा

चद दद-निसि दद मति, रुतु सरद गुरवार।
तेरसि तकि सज्जो सयन, रचि रतिवाह विचार ॥१०॥

शब्दार्थः—दढ-मति=युद्ध में मति रखने वाले। गुरवार=गुरुवार। तकि=तक कर। सयन=सेना। रतिवाह=रात्रि की छापा डालना।

अर्थः—कविचद (या चंद पुडीर) ने कहा—हे युद्ध में मति रखने वाले (राजा सोमेश्वर)! आप शरद ऋतु की शुक्ल पक्षीय त्रयोदशी गुरुवार की रात्रि मे छापा मारने के लिये (आक्रमण करने को) सेना सजाइये (यही मेरी सम्मति है)।

कवित्त

रत्तिवाह छल जुद्ध, अधम खित्री परिमानं।
कूड़[1] कपट मारियै, अध्रम निद्रागत जानं॥
मल मोचन रति रवन, सेव[2] पूजन जल न्हान।
मंत्र जाप जप्पन, करै नह घात सुजानं॥
तुम मत तत सच्चौ[3] कहिय, इह अधम्म ध्रम हारियै।
जो गिन न[4] पुरुख निन्दा अपर, तो[5] रतिवाह विचारियै॥ ११॥

प्रा. पा १, टि ६। २, ३, ४, दे.। ५ स।

शब्दार्थः—खित्री=क्षत्रिय। परिमान=प्रमाणाते,मानते। कूड़=बुरा। अध्रम्म=अधर्म। निद्रागत=निद्राग्रस्त। मल-मोचन=शौच करते हुए। रवन=रमण। मत=मत्रणा। तत=तत्व। ध्रम-हारियै=धर्म का ह्रास करना। गिन न=नहीं गिनते परवाह नहीं करते।

अर्थः—राजा सोमेश्वर बोला—रात्रि मे छापा मारकर छद्म-युद्ध करना क्षत्रियों ने अधर्म माना है, रण-दक्ष पुरुष, कपट और अधर्म को काम में लेकर किसी को मारना ठीक नहीं समझते। वे निद्राग्रस्त, शौच, रति-रमण, सेवा पूजा, स्नान-मत्रणा और जप करते हुए पर, घात नहीं करते। हे सामन्तों! तुमने सार युक्त सच्ची मत्रणा कही, किन्तु ऐसे अधर्म से धर्म का ह्रास होता है। जो पुरुष अन्य द्वारा की गई निन्दा की परवाह नहीं करता वही छापा मारने की बात सोच सकता है।

छल तक्यौ श्रीराम,[1] सेत साइर तत्र बध्यौ।
छल तक्यौ सुग्रीव, बालि जिउ ताडह संध्यौ॥
छल तक्यौ लछिमना, सूरमंडल अरि वेध्यौ।
छल तक्यौ [illegible]॥

छल बल करंत दूखन न कोइ, किस्न कलह कसह करिय।
सोमेस राज तकि अप्प विधि, रत्तिवाह बल मन धरिय॥ १२॥

प्रा० पा० १ का०।

शब्दार्थ–सेत=सेतु। साइर=सागर। सध्यौ=सधान किया, वेध दिया। अरि=मेघनाद। वेध्यौ= भेद गया, स्थान पाया। अग्गकस=हिरण्य कश्यप। किस्न=कृष्ण। अप्प=आप। विधि=तरीका। रत्तिबाह=छापा।

अर्थ—समुद्र पर सेतु बांधते समय रामचन्द्र ने छल किया। रामेश्वर की स्थापना के समय रावण को निमंत्रण कर विजय प्राप्त और रावण निधन का सकल्प उसी के द्वारा कराया। ताड़ वृक्षों को वेधकर सुग्रीव ने छल द्वारा बडे भाई को मरवाया। मेघनाद के यज्ञ को पूर्ण न होने देकर लक्ष्मण ने उसे सूर्य मण्डल से भी ऊपर को स्थान दिया। अचानक स्तम्भ से प्रगट होकर हिरण्यकश्यप को नृसिंह ने चीर दिया। कृष्ण ने छल करके (जन्म से गुप्त रहते हुए अचानक आकर) कस को मार पछाडा। हे राजा सोमेश्वर! छल द्वारा बल करना दोष नहीं माना गया है। अत इस समय आप उपर्युक्त बातों को सोचकर छापा मार छद्म-युद्ध करने का ही मन से निश्चय कीजिये।

दोहा

ससि न्रिम्मल ससि-सूर-अप, दिय अस अस्त्र उतान।
प्रथुक-जोग जिन-साल जर, सजोजन सव्वान॥ १३॥

शब्दार्थ–न्रिम्मल=निर्मल। ससि-सूर-अप=वह बहादुर जो स्वयम् शशि (सोमेश्वर) था। अस=अश्व, घोडे। उतान=ऊँचे, अच्छे। प्रथुक-जोग=भिन्न २ का यथा योग्य। जिनसाल=पटकोष, कपडे के भाडागार। जर=जरीन। सजोजन=सयोजन, सजोये, सजाये। सव्वान=सबको।

अर्थ:—उस वीर सोमेश्वर ने इस बात को मानकर निर्मल चन्द्रोदय के अवसर पर अपने सब वीरों को यथा योग्य अच्छे अच्छे घोडे, शस्त्र और पट-कोष से जरीन वस्त्र देकर सुसज्जित किया।

पट्टन जादव आय नृप, किय-डेरा वरवान।
सुनि सोमेसर दौरि-करि, ज्यौं निधि रक प्रमान॥ १४॥

शब्दार्थ:–किय डेरा=डेरा किया, डेरा दिया। दौरि-करि=दौड की, बढा। निधि=धन राशि।

अर्थः—उस तरफ पट्टन-निवासी यादव-नृप ने बरवांन मे आकर डेरा दिया, इध से सोमेश्वर, जैसे कोई रक धन-राशि की सुचना पाकर दौड़ता है वैसे वढ़ा।

अति आतुर अजमेर-पहु, आइ कुलिंगन बाज।
यों रस रत्ता सूर भर, मुकति त्रिया धरि साज ॥ १५ ॥

शब्दार्थः—अजमेर-पहु=अजमेर का राजा (सोमेश्वर)। रस रत्ता=रस में लीन। मुकति=मुक्ति त्रिया=कामिनी। धरि-साज=शृंगार किया।

अर्थः—अजमेर का राजा (सोमेश्वर) इस प्रकार शीघ्रता से जा पहुँचा जैसे कुलिंजन पक्षी पर बाज झपटता है। उसके वीर सामन्त भी मोक्ष-रूपी कामिनी के साज-शृंगार युक्त देखकर अपनाने के लिये रस में लीन हो गये।

कवित्त

अप्प अप्प मुख अरिन, सूर समूह झल्लारिय।
हाइ हाइ उच्चार, धरनि अम्बर तुटि-डारिय ॥
चमकि चित्त त्रिपुरारि, अष्ट गन नारद नचिय।
सेस सटप्पटि सलकि, दिसा-दतिन तिन[1] अंचिय ॥
मानौं कि जलद तुट्टिय तड़ित, वर पट्टन आहुट्ट भर।
रतिवाह प्रात हूते दियौ, अगनि सार वुट्ठी[2] कहर ॥ १६ ॥

प्रा० पा० १, २, पा०।

शब्दार्थः—अरिन=अड़कर। झल्लारिय=झल्लाये गये। तुटि-डारिय=तोड़ फोड़ कर डाल दिया सटप्पटि=सिटपिटाकर। सलकि=सल सलाया, हिला। दिसा दतिन=दिग्गज। तिन-अंचिय=तृणग्रसे मुँह में तृण लिया। आहुट्ट=भिड़े। हूँते=होते होते। वुट्ठी=वरसाई। कहर=विघ्न स्वरूपी।

अर्थः—अपने २ मोर्चे पर डटे हुए वीर सामना करते हुए झल्ला गये, जिससे सेन में हाहाकार मच गया। उन वीरों ने गगन-मण्डल को तोड़ फोड़कर पृथ्वी पर डाल दिया। यह देखकर त्रिपुरारि का चित्त भी चौंक उठा। अष्टगण और नारद नृत्य करने लगे। सटपटा कर शेष हिल पडा, दिग्गजों ने भी आश्चर्यान्वित होकर मुंह में तृण ले लिया। पट्टन वाले श्रेष्ठ वीरों से सामन्त इस प्रकार भिड़ पडे, मानों वादल से विजली टूट पड़ी हो। उन्होंने प्रातःकाल होते २ छापा मारकर विघ्न स्वरूपी लोहाग्नी वरसानी प्रारम्भ की।

दोहा

सार मार मच्ची कहर, दूश्र दलनि सिरि[1] मंधि।
प्रौढा नायक छयल रमि, प्रात न वच्छै संधि॥ १७॥

प्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थः—मच्चो=होने लगी। सिरिमधि=सिर पर। छयल=छैल। वच्छै=चाहती। संधि=संध कर, जुटकर, सम्पर्क पाकर।

अर्थः—दोनों दल के योद्धाओं द्वारा भयंकर मार सिर पर होने लगी, किन्तु वे युद्ध से इस प्रकार नहीं हटना पसंद करते थे जैसे प्रौढ़ा नायिका छैल छबीले पुरुष का संपर्क पाकर उससे रमण करती हुई प्रातःकाल होना नहीं चाहती।

कवित्त

सोमेसर गजि[1] सूर, सूर उभझारिग झरि झरि।
सार फुट्टि चहुआन, भिरिय जहाँ भरि लरि लरि॥
घरी इक्क[2] तिन रत्त, सार मेगल सिर बुट्टिय।
समरिवै रसु आनि, सार भग्गि जु सिर तुट्टिय॥
भग्गइय सूरिमा[3] दुहु सयन, किहि न कोइ वर चपयौ।
उप्पारि लियौ अजमेर पहु, दाग न किहुँ दिन्नौ[4]-गयौ॥ १८॥

प्रा० पा० १, पा० मो०। २, ४, पा०। ३, घ०।

शब्दार्थः—गजि-गर्जना करता हुआ। उभझारिग झाड़ दिये, काट कर पटक दिये। झरि झरि=लगातार शस्त्र झड़ी करके। सार-फुट्टि-लोहा आर पार हो गया, लोहे द्वारा निदीर्ण कर दिये। जहाँ-भरि-योद्धा वीर। तिन उस। रत्त रात्रि। मेगल हाथी। बुट्टिय-बरसा। समरिवै-समरेश्वर। रसु आनि-रस में आकर, विनोद में आकर, रंग में आकर। भग्गि-तोड़ दिया। तुट्टिय तोड़ दिये। भग्गइय-भाग गये। सूरिमा-योद्धा। दुहु सयन-दोनों (भागा और योद्धा) सेना के। किहि न कोइ=कोई किसी का न हुआ, कोई किसी का साथ न दे सके। वर चपयो-[illegible] से दबाये गये। उप्पारि लियो-उठा लिया, उठाया गया। अजमेर पहु-अजमेर का राजा (सोमेश्वर)। किहु-किसी को।
[illegible]

अर्थः—गर्जना करता हुआ वीर सोमेश्वर शस्त्र प्रहार द्वारा शत्रु-वीरों को काट २ कर गिराने लगा। यादव-वीरों के भिड़ने पर उस चाहुवान राजा ने अपने लोहे द्वारा विपक्षियों को विदीर्ण कर दिया। उस रात्रि को एक घड़ी तक हाथियों के मस्तक पर खड्ग-प्रहार होता रहा। समरेश्वर ने युद्ध के रंग में आकर शत्रुओं के शस्त्रों के साथ २ उनके मस्तकों को भी तोड़ दिया, जिससे दोनों (मालव और यादव) सेना के यौद्धा उसके सामने से भाग गये। उनको इस प्रकार श्रेष्ठ ढंग से दवाया गया कि उनमें से कोई किसी का साथ न दे सका और न वे अपने मृत-यौद्धाओं को दागही दे पाये (पड़े ही छोड़कर चलते वने), किन्तु इस युद्ध में अजमेर-पति (सोमेश्वर) भी इतना घायल हुआ कि वह अपने योद्धाओं द्वारा युद्ध भूमि से उठाया गया।

हथ्थिय ढाल ढलक्कि, घालि लिन्नो[1] अजमेरी।
परि लंगा लंगरी, सेन दुज्जन दल फेरी॥
भाग वीर पृथिराज,[1] अरिन उप्पारि सु[2] लिन्नौ[3]।
इन सोमेसर राव, सत्त हथ्थिन वर किन्नौ[4]॥
जिम तिमर सूर भजै सुभर, गुरु-गल्ल्हां नन कवि टरै।
जब लग्गि[5] भूंमि साइर सुम्रित, तब लगि कवित सु उब्बरै॥ १६॥

प्रा० पा० १, पा० भौं। २, घ०। ३, ४, ५, पा०।

शब्दार्थः—ढलक्कि=ढलकती हुई। घालि लिन्नौ=डाल लिया। परि=उपर पड़कर, हमला करके। लंगा=महावीर स्वरूप। दल=दलका। फेरी=फेर दी, मोड़ दी। भाग=भाग्य। अरिन=अडाकू। सत=सौ। वर=बल। सूर=सूर्य। गुरु-गल्ल्हां=विशेष ख्याति, महत्व पूर्ण ख्याति। नन=नहीं। टरै=मिटती। साइर=सागर, सागर। सुम्रित=स्मृति। कवित=कविता, पद्यमय यश गाथा। उब्बरै=उबरती, बचती, अमर रहती।

अर्थः—लटकती हुई ढाल के साथ अजमेर पति (सोमेश्वर) को हाथी के होदे में डाला गया। शेष शत्रु-सेना पर महावीर स्वरूप लंगरीराय ने हमला कर उसे कुचलते हुए भगा दिया। वीर पृथ्वीराज के सौभाग्य से वह अडाकू वो (सोमेश्वर) उठाया गया। इस युद्ध मे सोमेश्वर राजा ने सौ हाथियों के समान बल प्रदर्शित किया, जिस प्रकार सूर्य अँधेरे का नाश कर देता है, उसी प्रकार उसने अच्छे २ विपक्षी

वीरों का नाश किया। कवि द्वारा कही गई ऐसी महत्व पूर्ण गाथा सदा अमिट है। यह पद्य-मय यश गाथा जहॉं तक पृथ्वी से समुद्र का सम्बन्ध है वहाँ तक स्मृति रूप मे अमर है।

दोहा

रह्यौ न को रवि मडलह, रहि कवि मुक्ख सु भल्ल।
जीरन जुग पाखान ज्यौं, पूर रहदी गल्लह ॥ २० ॥

शब्दार्थ:—भल्ल=भलाई, अच्छाई। जीरन=जीर्ण। जुग=युग। पाखान=पाषाण, मूर्ति। रहदी=रही। गल्लह=यश गाथा।

अर्थ—इस रवि-मण्डल के नीचे कोई भी नहीं रह पाया, केवल एक मात्र कवि के मुख से निकली हुई भलाई ही रह जाती है, युगों का परिवर्तन होता रहता है और इसीलिये वे जीर्ण मानी जाती हैं परतु कवि-कथित सम्पूर्ण यश-गाथा का परिवर्तन नहीं होता, मूर्तिमान होकर हमेशाउसी रूप मे बनी रहती है।

फिरि जद्दव भर देस दिसि, समर घाइ लै सेन।
अवर चिंत ते अवर परि, कढ्ढि-न-सक्कै-वैन ॥ २१ ॥

शब्दार्थ:—भर=वीर। समर घाइ=युद्ध मे घाव सहकर, युद्ध की मार सह कर। अवर=अन्य। चिंत=चिंतन किया, सोचा। अवर-परि=और ही वीती। कढ्ढि न-सक्कै वैन=बोल नहीं सका, बोलने जैसा न रहा।

अर्थ:—युद्ध की मार सहकर यादव-वीर (राजा) अपनी शेष सेना साथ मे लेकर अपने देश की ओर रवाना हुआ, उसने चढाई करते समय कुछ ओर हीं वात सोची थी, किन्तु वीती कुछ ओर ही, जिससे वह बोलने जैसा न रहा।

गृह सोमेसर आनि तिन, मास इक' दिन वीस।
रक्खि जतन किय न्हान जब, दियौ दान सु जगीस ॥ २२ ॥

मा० पा० १ भौं०।

शब्दार्थ:—जतन=यत्न। न्हान=स्नान। जगीस=राजा।

अर्थ:—सोमेश्वर को सामन्त गण अजमेर लाये, वहॉं एक मास २० दिन यत्न करने पर उसके घाव ठीक हुए, तब राजा ने स्नान किया और ब्राह्मणादि को दान दिया।

सुनिय खबरि[1] पृथिराज नृप, चिंति भविक्खत वत्त ।
अरियन तौ आहोड़ियै, जो लब्भीजै घत्त ॥२३॥

प्रा० पा० १ पा०, भीं० ।

शब्दार्थः—खबरि=खबर, सूचना । भविक्खत=भविष्य की । आहोड़ियै । अड़ूंगा, भिड़ूँगा । लब्भीजै=प्राप्त हो । घत्त=घात, अवसर ।

अर्थः—राजा पृथ्वीराज को भी इस बात की सूचना मिली, जिससे वह भविष्य पर चिंतन करने लगा और सोचा कि कभी दाँव लगा तो शत्रुओं से भिड़ूँगा ।

कवित्त

अनॅगपाल प्रज लोक, जाइ बद्री पुक्कारिय ।
हम तुम सेवक सामि, छंडि ग्रह राज निकारिय ॥
नहि अदब्ब मन्नयौ, कूर मच्चौ चहुआनं ।
हो अनगेम नरेश, गई ढिल्ली घर जानं ॥
जा जियत राज धर पर बसिय, न्याय नीति[1] न प्रकासियै ।
नर नाग देव निंदै सकल, त्रिक्क[2] करतह[3] बासियै ॥ २४ ॥

प्रा० पा० १, २, स० । ३, पा० भीं० घ० ।

शब्दार्थ—प्रज लोक=प्रजा के लोक, जनता । सामि=स्वामी । अदब्ब=अदब, इज्जत, प्रभाव । कूर=क्रूरता । पर बसिय=पराधीन । त्रिक्क=नरक । जाजियत=जिसके जीवित रहते हुए । बासियै=वास ।

अर्थः—उधर अनंगपाल की जनता ने बद्रिकाश्रम में जाकर पुकार की कि हे स्वामी ! हम तुम्हारे सेवक हैं हमें घर छुड़वाकर राज्य से निकाल दिया है । और चाहुवान (पृथ्वीराज) ने आपका कुछ भी प्रभाव नहीं माना है एवं उसने क्रूरता मचा दी है । हे अनंगपाल राजन् ! दिल्ली तो आपके हाथों से गई ही समझिये, किन्तु जिसके जीवित रहते हुए उसकी पृथ्वी (जनता) पराधीन होती हो, तो यह न न्याय है और न नीति ही, ऐसे राजा की नर, नाग, देवता आदि निन्दा करते हैं और अन्त में उसका नरक में निवास होता है ।

सुनिय ज जाजुल्य दूत पर धान पठाइय ।
हम भँडार धन धान, द्रव्व सव्वह भरि लाइय ॥
व्यास वचन सँभारि, कहे तव मत्री पुव्वह[1] ।
देस वीक्रर धन आदि, राज ग्रहियौ[2] गढ सव्वह ॥
नृप सेव-देव दुज्जन उरग, इन ढिल्लै नन मुक्कियै ।
वर वध पुत्त अरु तात नृप, इन विसास धर चुक्कियै ॥ २५ ॥

ग्रा० पा० १ भों पा० का० । २ पा० ।

शब्दार्थ—जाजुल्य=ज्वाज्वल्यमान । द्रव्व=द्रव्य । समारि=सोचकर । पुव्वह=पहले का । ग्रहयो=गृहण कर लिया, अधिकार होगया । दुज्जन=दुर्जन, शत्रु । उरग=सर्प । वध=वधु । विसास=विश्वास । धर-चुक्कियै=पृथ्वी से दूर होना ।

अर्थ:—यह सुनते ही उस (अनगपाल) का तेज ज्वाज्वल्य मान होगया और प्रधान को दिल्ली दूत के रूप में भेजा और कहलाया कि हमारा धन्य, धान्य, द्रव्य सब यहाँ पर भरकर ले आओ, तब अनगपाल का वह पहले वाला मत्री व्यास के भविष्य-कथन को याद करता हुआ बोला–हे राजन ! देश, कृपि, धन, राज्य और गढ आदि पर चाहुआन का अधिकार होगया है । आपको पहले ही सोचना चाहिये था कि राजा, देव सेवा, शत्रु, और सर्प इन चारों को ढील नहीं देनी (राजा से दूर, देव सेवा में चूक, शत्रु को दवाने में देरी और सर्प को मारने मे विलम्ब नहीं करना) चाहिये । नीति का कथन तो यहाँ तक है कि श्रेष्ठ वधु, पुत्र और पिता का भी ऐसे विपय मे विशेप विश्वास किया जाय तो पृथ्वी से हाथ धोना पडता है ।

धर कज्जै[1] कौरवन, पड जानिय न वध-गति ।
धर कज्जै दससीस, सव वध्यौ भमिखन मति ॥
धर कज्जै[3] नलराय, वव वन खेत न अप्पौ ।
धर कज्जै[4] वलिराय, देव देवादि उथप्पौ ॥
धर कज्ज[5] मुज त्रिय के कहै, भोज प्रहारन मत कियौ ।
धर कज्ज[6] कन्ह तूँवर अव्रत, पुत्तह से मुख विसिदियौ[7] ॥ २६ ॥

ग्रा पा १ से ६ पा । ७ घ ।

शब्दार्थः—धर कज्जै=पृथ्वी के लिये । पड=पांडव । बध गति=भ्रातृभाव । बध=भाई । मति=मति बनाई सोची । वन=वन, जगल । खेत=क्षैत्र । अप्पौ=अर्पित किया, दिया । देव देवाधि=देवताओं के देव, विष्णु । उथप्पौ=च्युत किया । प्रहारन=मारने का नष्ट करने का । मत कियौ=मत्रणा की । कन्ह=कृष्ण । तुंवर=हे तोमर नरेश । अधम–पुत्तह=अधम पूतना ।

अर्थः—हे तोमर नरेश ! इस पृथ्वी के लिये कौरव और पांडवों में भ्रातृ भाव नहीं रहा, रावण ने विभीषण को बांधने की सोची, राजा नल के भाई ने नल को वन मे से एक क्षैत्र मात्र भी नहीं दिया, विष्णु ने राजा बलि को उसके आसन से च्युत कर दिया । स्त्री के कहने पर मुंज ने भोज को नष्ट करने की सोची और अधम पूतना ने कृष्ण के मुख में विष दिया ।

तुम तूंअर मति चुक्कना[१], करि किल्ली ढिल्लीय ।
फुनि मत अप्पन ही करिय, पृथीराज धर दीय ॥ २७ ॥

मा०पा०१, घ० ।

शब्दार्थः—मति चुक्कना=बुद्धि हीन । फुनि=पुनि, फिर । मत अप्पन=अपने ही मत से, अपनी मन मानी करके ।

अर्थः—हे तोमर नरेश ! तुम बुद्धि हीन हो, इसीलिये तो किल्ली को ढीली की, फिर अपनी मनमानी कर पृथ्वीराज के आधिपत्य में पृथ्वी सौंप दी ।

राज दान गज तुरिय द्रव, देत न लग्गे वार ।
धर तिय रक्खन यों सु द्रढ, अहिमनि रक्खन हार ॥ २८ ॥

शब्दार्थः—राज=हे राजन । द्रव=द्रव्य । द्रढ=स्थिर, अटल । अहिमनि=अहिमनि, अहिको सर्प को ।

अर्थः हे राजन ! राज्य, हाथी, घोडे और द्रव्य देने में कोई समय नहीं लगता, ये सहज ही मे दिये जा सकते हैं, किन्तु पृथ्वी और स्त्री को अटल रूप में रखना सर्प को रखने के समान है ।

मन्त्रि सु मंतह सीख ले, चलि दिल्लिय चहुवान ।
आइस कों जो यस कहां, इह भूत भम्म प्रमान ॥ २९ ॥

शब्दार्थः—सु मंतह=अच्छी मंत्रणा देने वाला। सीखले=विदा हो। आइसकों=आज्ञाकारी को। इह=ऐसा। भृत=भृत्य, सेवक। ध्रम्म=धर्म। प्रमान=माना गया।

अर्थः—यह कह कर वह अच्छी मंत्रणा देने वाला मंत्री अनंगपाल से विदा लेकर चौहान के पास दिल्ली की ओर चला। सत्य है आज्ञाकारी को यश कब मिल सकता है? उसे तो आज्ञानुसार कार्य करना ही पडता है। यही एक मात्र सेवक का धर्म है।

उठ्यौ वीर बसीठ तब[1], करि जुहार चहुआन।
धनी उभै धर लुट्टियै, इह अचिज्ज परिमान ॥ ३० ॥

ग्रा०पा०१, दे०।

शब्दार्थः—बसीठ=दूत। धनी उभै=स्वामी के रहते हुए। अचिज्ज=आश्चर्य। परिमान=प्रमाण, समान।

अर्थः—वह दूत (मंत्री) जब दिल्ली पहुँचा, तो वीर पृथ्वीराज उसके स्वागत के लिये आसन से खडा हो गया। वन्दना करते हुए मंत्री ने चौहान से कहा कि स्वामी के रहते हुए उसकी पृथ्वी को लूटना आश्चर्य प्रद है।

कवित्त

रे बसीठ मति धीठ[1], बोल-वुल्लै[2] मति हीना।
सनैपात उप्पनै, किनै मक्कर पय दीना ॥
धर कर लुट्टिय संगि[3] हत्थ चढ्ढै मरदाना।
फिरि बच्छे जो मूढ, होइ ताही जिय ज्याना[4] ॥
सट्टीय वुद्धि नट्ठिय नृपति, तुम विमत्ति दिन-लहि कहिय।
उग्गमैं सूर पच्छिम अरक, तौ दिल्ली धर तुम नहिय ॥ ३१ ॥

ग्रा० पा० १ दे०। २ पा०। ३ भीं। ४ पा० का०।

शब्दार्थः—धीठ=ढीठ। बोल-वुल्लै=वार्तालाप करता। सनैपात=सन्निपात। संगि=साथी। बच्छै=इच्छा करता है। जिय ज्याना=प्राणान्त। सट्टीय=साठ वर्ष की। नट्ठिय=नष्ट हो गई। विमति=कुमंत्रणा। दिन-लहि=समय पाकर। उग्गमैं=उदय हो। सूर=वीर। अरक=अर्क, सूर्य।

अर्थः—हे ढीठ बुद्धि के दूत ! तू बुद्धिहीन व्यक्ति के सदृश वार्तालाप करता है। क्या कभी सन्निपात की अवस्था हो जाने पर रोगी को दूध और शक्कर पिलाया जाता है (अन्त समय आ जाने पर भी क्या तुम्हारे राजा को राज्य उपभोग रूपी दूध शक्कर अच्छे लगते हैं) ? क्या तुम्हें मालूम नहीं कि उसके हाथ से उसकी पृथ्वी और साथी निकल गये हैं और वह पुरुषार्थी पुरुष (पृथ्वीराज) के आधिपत्य मे आगये हैं ? उसे पुन प्राप्त करने की इच्छा करने वाले को मूर्ख समझना चाहिये और समझ लेना चाहिये कि उसका प्राणान्त है। राजा (अनगपाल) की साठ वर्ष की आयु होजाने से अब उसकी बुद्धि भी नष्ट हो गई (सठिया गई) है ? इसीलिये समय देखकर तुमने भी उसे कु मत्रणा दी है परन्तु हे वीर वसीठ ! यदि सूर्य पश्चिम से उदय होना प्रारभ हो जाय तो भी दिल्ली का भाग अब तुम्हारा नहीं हो सकता है।

सुनिय[1] वत्त सो दूत चलि, विन आदर मन मद ।
दीन हीन[2] दिक्खन इसौ, मनो कि वासुर[3] चंद ॥ ३२ ॥

प्रा पा. १, दे । २ पा । ३ भों. पा ।

शब्दार्थः—चलि=चल पड़ा। विन आदर=अपमान के कारण। मद=उदास। दिक्खत=देखा गया। इसौ=ऐसा। मनो=मानो। वासुर-चद=दिन का चन्द्रमा।

अर्थः—यह बात सुनकर अपमानित दूत मन से उदास हो अनगपाल के पास पुन: चला गया, उस समय वह इस प्रकार दीन हीन के समान दिखाई दिया, मानों दिनका चन्द्रमा हो। (तेजहीन चन्द्रमा के समान उसकी दशा था)।

कवित्त

तुअर वीर वसीठ सांमि, सदेस सु अक्खिय ।
तुह[1] वृद्धत्त न कुसल, वत्त पहिले हम भक्खिय ॥
वह वलिष्ट दैवान, दैत्य वंसी चहुआन ।
सूज अग्र उप्परै, देय नह तास प्रमानं ॥
तुम दई भूमि निज हथ्थ करि, अत्थि[2] मित्त[3] नन खोइये ।
सभरहि देस देसन नृपति, तौ वृद्धत्त विगोइये ॥ ३३ ॥

प्रा पा. १, पा. । २, ३, दे. ।

शब्दार्थः—सामि=स्वामी। अक्खिय=कहने लगा। तुह=तुम्हारी। वृद्धत्त=वृद्धत्व, बुढापा। मक्खिय=कहदी। सूज=सुई। अत्थि=वास्तविक अर्थ लाभ की प्राप्ति। तौ=तुम्हारी, अपनी। विगोइये=छिपाये रहिये, बचाये रहिये।

अर्थः—तॅवर राजा के उस वीर दूत ने अपने स्वामी (अनगपाल) से जाकर कहा कि अब तुम्हारे बुढापे की कुशल नहीं है, यह बात पहले से ही हमने आपसे कहदी थी। वह चौहान देवता के समान बलवान और दैत्य ढूढा (तृतीय वीशल) का वंशज सुई के अग्रभाग के बराबर भी वह आपको पृथ्वी देने को तैयार नहीं है, अस्तु, आपने अपने हाथों से ही पृथ्वी उसे दे दी है। हे मित्र! अब आप अपने वास्तविक अर्थ लाभ (ईश्वरोपासना और उसके द्वारा साक्षात्) से दूर न होइये। ऐसा कर आप अपनी वृद्धत्व की शान को बचाये रहिये, नहीं तो आपका अपवाद देश-विदेश के राजाओं के कानों तक पहुँचेगा।

अनग पाल नन मानि, कूॅच किन्नौ दिल्लिय दिसि।
भूत भविख जानो न, किये रत्तेत नयन रिसि[१]॥
अप्प सेन सजि जूह, आय ढिल्ला धरवान।
मात-पिता मरजाद, चित्त लग्गौ[२] चहुवान॥
कैवास[३] मत पुच्छ्यौ नृपति, कहो कहा अब किज्जिये।
अहि ग्रहिय छछुन्दरि जो तजे, नैन जठर-भखि छिज्जिये[४]॥ ३४॥

प्रा० पा० १, २ ३, दे०। ४, का० पा०।

शब्दार्थः—भविख=भविष्य। रत्तेत=रक्त वर्ण, अरुण वर्ण। रिसि=क्रोध करके। जूह=जूथ, समूह। ढिल्ली-धरवान=दिल्ली पर अधिकार किये हुए पर, दिल्लीश्वर पर। मात पिता=नाना। मर-जाद=मर्यादा। कैवास=कैमास। अव=अब। अहि=सर्प। जठर-भखि=उदर में भक्षण कर। छिज्जियै=दु ख पाना पड़ता, दुखद, नाशक।

अर्थ—दूत-रूप ये गये हुए मंत्री ने दिल्ली से लौटकर यद्यपि अच्छी सलाह दी, किन्तु अनगपाल ने नहीं ानी और उसने दिल्ली की तरफ प्रस्थान कर दिया। भूत और भविष्य की स्थिति पर भी उसने विचार नहीं किया। क्रोध के कारण उसके नेत्र रक्त वर्ण होगये। उसने अपने पक्ष के सैन्य-समूह को एकत्रित कर सजाया और दिल्ली-

श्वर पृथ्वीराज पर चढ़ाई करदा। यह सुनकर चाहुवान (पृथ्वीराज) अपने नाना की मर्यादा की रक्षा के लिये चिंतन करने लगा। और कैमास से मत्रणा की कि अब क्या करना चाहिये? इस समय मेरी दशा छछुन्दर को ग्रसे हुए सर्प का सी है (सर्प छछुन्दर को पकड़कर छोड़ देता है ता वह फुत्कार कर उसे अन्धा कर देती है और खा जाता है तो वह मर जाता है) अब मुझ से पृथ्वी छोड़ते भी नहीं बनती और नाना का अपमान कर निन्दा का भागी भी नहीं होना चाहता।

दोहा

जो मारों तो मात-पित, छंडों तो बल हानि।
कहि मंत्री मत्र[1] गपति, न्याइ रीति विधि जानि ॥२५॥

प्रा० पा० १ भीं०।

शब्दार्थ:—मात-पित=माता का पिता, नाना। मत्रं=मत्रणा। गपति=गुप्त।

अर्थ:—पृथ्वीराज बोला—यदि मैं अनगपाल को मारता हूँ तो माता के पिता (नाना) को मारने का कलक लगता है और यदि छोड देता हूँ तो अशक्त गिना जाता हूँ। इसीलिये हे मन्त्री (कयमास)! सब प्रकार से न्याय-रीति के अनुसार सोच कर इस विषय में कोई उचित गुप्त राय बताओ।

कवित्त

सुनौ नृपति चौहान, न्याय तौ कलह न किज्जै।
इन 'दीन्ही[1] धर अप्प, अप्प तौ इनह न दिज्जै॥
जो निम्मान प्रमान, होइ है सोइ निआन[2]।
लव लग्गे गढ आइ, जाइ तव जुद्ध जुरान॥
सजि कोट ओट सामंत सथ, नारि गोर जवूर वहि।
लग्गै न जोर छिज्जै सुभर, इन[3] सा मत लगत नहि॥२६॥

प्रा० पा० १ भीं०। २, ३ दे०।

शब्दार्थ:—नियान=न्याय। लग्गै=घेरे। जुरान=जुटना। छिज्जै=दु:खपायें, कष्ट उठायें। इन=इस। सा=समान जैसी। लगत-नहि=अन्य नहीं लाग खाती, अच्छी नहीं लगती, ठीक नहीं जँचता।

अर्थः—हे चौहान राजा पृथ्वीराज। न्याय तो यही है कि इससे (अनगपाल से) कलह (युद्ध) नहीं करना चाहिये, किन्तु इसने जो पृथ्वी आपको अर्पित कर दी है उसे आप वापस मत दीजिये। ईश्वरने जो सोच लिया है वही न्याय है और वैसा ही होगा। जब वह गढ़ घेर ले तब युद्ध करना चाहिये, किन्तु दुर्ग की दीवार की आड़ मे सब सामन्तों और आग्नेयास्त्रों को सजा दो जिससे इनका वश नहीं चल सके और योद्धा कष्ट उठाकर स्वत लौट जायँ। इस समय यहाँ पर इस मत्रणा के समान अन्य मत्रणा ठीक नहीं जँचती (इस प्रकार करने से ही दूध और दुहना दोनों रह सकते हैं)।

अनँगपाल बल मंडि, सुभर ढिल्ली गढ लग्गा।
लेहु लेहु करि दौरि, अप्प वर अप्प विलग्गा॥
नारि गोरि आतस्स, कोट पारस भर घाइय।
जे भर मडे आइ, सोर करि मोर उडाइयँ॥
लग्गै न घात तूँअर नृपति, दिवस च्यारि मंडिय ररिय।
पुज्यौन-प्रान पानप घटत, ढिल्ली धर ढिल्ली करिय॥ ३७॥

ग्रा०पा०१, दे०।

शब्दार्थः—बल मडि=शक्ति सगठित करके। लेहु लेहु=छीन लो २। बिलग्गा=उलझ गये। पारस=पास, चारों ओर। घाइय=घात की। मडे=भिड़े। ररिय=युद्ध क्रीड़ा। पुज्यौन-प्रान=पूज्य प्राणी। पानप=तेज, नूर। ढिल्ली-करिय=ढील दी, प्रशान्त किया।

अर्थः—अनगपाल ने शक्ति सगठित की और श्रेष्ठ योद्धाओं ने दिल्ली-दुग को घेर लिया। वे झपटते हुए छीन ला (छीन लो) आवाज करने लगे और अपने आपमें ही उलझ गये। उन वीरों ने दुर्ग की दीवार के आसपास आग्नेयास्त्रों द्वारा दाव लगाने का प्रयत्न किया, किन्तु पृथ्वीराज के सामन्तों ने केवल गर्जना मात्र से ही अनगपाल की उस हरावल (अग्रभाग की सेना) को हटा दिया। इस प्रकार चार दिन तक ऐसी युद्ध-क्रीडा करने पर भी जब तोमर नृपति का गढ पर दाँव नहीं लगा तब उस पूज्य प्राणी (अनगपाल) का तेज घट गया और उसने दिल्ली पर से अपने आक्रमण को ढीला कर दिया।

दोहा

अनॅगपाल पडिय गयौ, सैन सु बधिय-थट्ट ।
अद्ध सेन अजमेर पर, टारिग सथ्थ[1] सुभट्ट ॥ ३८ ॥

प्रा० पा० १, भीं० ।

शब्दार्थः—बधिय-थट्ट=समूहबद्ध किया । टारिग=चुनकर विदा किये ।

अर्थः—दिल्ली से घेरा हटा कर जब अनंगपाल पंडी-स्थान पर चला गया तब पृथ्वीराज ने सेना को समूह बद्ध किया और उसमें से आधी सेना और कुछ साथी सामंतों को चुनकर अजमेर की रक्षा के लिये विदा किया ।

वीर वसीठ सुमंत मिलि, स्वामि वचन सम काइ[१] ।
मतौ मंडि चहुआन कौ, माधौ भट्ट चलाइ ॥ ३९ ॥

प्रा० पा० १, दे० ।

शब्दार्थः—सुमत=मत्री । काइ=काया । मतो=मंत्रणा । चलाइ=चलाया, भेजा ।

अर्थः—जो वचन और काया से स्वामी के समान था ऐसे उस (अनंगपाल के) मत्री वीर वसीठ और राजा अनगपाल ने मिलकर चौहान के बारे में (विरोध की) मत्रणा कर निश्चय किया एव माधव भट्ट (वदीजन) को (गौरीशाह की ओर) रवाना किया ।

माधौ भट्ट सु मुक्कल्यो, वर गज्जनै नरिंद ।
तूअर अरु चहुआन के, धर बज्यौ ब्रहुदद ॥ ४० ॥

शब्दार्थः—गज्जनै=गजनी के । धर=इस भूमि पर । बज्यौ=बजे, हुआ । दद=द्वद ।

अर्थः—माधौ भट्ट को श्रेष्ठ गजनीश के पास भेजा । उसने जाकर कहा कि तोमर और चौहान नरेश के बीच में पृथ्वी के लिये युद्ध के वाद्य बजने लगे हैं ।

नीति राव खित्री सुवर, तूअर तिहि परधान ।
गोरी दिसि नृप-अप्प-दिसि, भदे दियौ चहुआन ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ—परधान=प्रधान मत्री । गोरी-दिसि=गौरीशाह को । नृप-अप्प-दिसि=अपने राजा (अनग-पाल) का ।

अर्थः—चतुर नीतिराव खत्री (तँवर नरेश के मन्त्रियों में से था) ने भी अपने राजा (अनगपाल) और चाहुवान राजा का सब भेद (हालात) गोरीशाह को लिख भेजा।

अनँगपाल मन्यौ[1] नहीं, वरजिय पडि नरिंद।
तुम सु ध्रम्म मेच्छह मिलन[2], रहै न एको वंध॥ ४२॥

प्रा० पा० १, पा०। २, दे०।

शब्दार्थः—वरजिय=मना किया। मेछह=म्लेच्छों से। एकौ बंध=सगठित, एकता।

अर्थ—तब पडि के राजा ने अनगपाल को समझाया कि तुम्हारा धर्म नहीं है कि तुम मुसलमानों से मिलो, क्योंकि तुम्हारा यह सगठन नष्ट हो जायगा, किन्तु वह नहीं माना।

कवित्त

दई भूमि मा-पित्त, लई हम हत्थ पसारह।
सो पाओ फिरि[1] किमसु, बोल-बुल्लहु अविचारह॥
तुम बिरद्ध तप जोग, राज चाहौ सु करन अब।
दयौ राज तुम हमह, कहा उपजी चित्तह तब॥
मगौ जु आइ फिरि भूमि तुम, सोवि राज पाओ नहीं।
जो गयौ जत चलि गेह[2] जम, कहो सु फिरि आवै कहीं॥ ४३॥

प्रा पा १ का पा। २ पा.।

शब्दार्थः—मा-पित्त=मातृ-पितृ, नाना। पाओ=पा सकते। फिरि=फिर, पुन। बोल-बुल्लहु=वाक्य कहना। बिरद्ध=वृद्ध। दयौ=दिया। हमह=हमें, मुझे। कहा उपजी=क्या हो गया था। आइ=आकर। सोवि=वह, अब। जत=जतु, प्राणी। गेह=गृह। जम=यम।

अर्थः—फिर पृथ्वीराज ने भी यह (पडा नृप द्वारा या दूत द्वारा) कहलाया कि हे मातृ-पितृ आपने मुझे पृथ्वी दी और मैंने हाथ पसार कर ली, उसे आप पुन कैसे पा सकते हैं? आपकी बात विचार सगत नहीं है आप वृद्ध और तपस्या करने योग्य होते हुए भी अब राज्य करना चाहते हैं यदि आपकी यही इच्छा थी तो मुझे जब राज्य दिया तब आपके चित्त में क्या होगया था? आप आकर पृथ्वी की माग कर रहे हैं, किन्तु अब आप राज्य नहीं पा सकते। आप ही सोचिये जो प्राणी यम-गृह में प्रविष्ट हो चुका हो क्या फिर वह कभी लौट कर आने का है?

जलद बूंद परि धरनि, कबहुं न जावै न अभ्भ[1] फिरि[2]।
पवन तुट्टि तरु पत्र, तरु न लग्गै सु आइ थिरि[3]॥
तुटि तारक आकास, वहुरि आकास न जाऔ।
सिंघ उलंघि सब्ब जहँ[4], सोइ फुनि हन्नि न[5] खाऔ॥
अप्पिय सु पुहवि[6] तुम उदक सहु, सौ पाओ दूजै जनम।
तप्पौ सु जाइ वद्री तपह, मति[7] विचार राजस मनम॥ ४४॥

प्रा० पा० १ से ३, ६, दे०। ४, ७, पा०। ५ स०।

शब्दार्थ:—अभ्म=अाम, बादल। थिरि=स्थिर रूप। तारक=नक्षत्र। जाऔ=जाता। सिंघ=सिंह। उलघि=लांघी हुई। सब्ब जहँ=सब्जी, घास, दूब। फुनि=फिर। हन्नि=हिरण। खाऔ=खाता। पुहवि=पुहमि, पृथ्वी। उदक=सकल्प के द्वारा। सहु=उसे। मति=मत, नहीं। राजस=राजा, ठाटबाट। मनम=मन में।

अर्थ:— बादल से बूंदें पृथ्वी पर गिरकर पुन: कभी बादलों में नहीं मिलती, पवन द्वारा वृक्ष से टूटा पत्ता पुन: स्थिर रूप में आकर वृक्ष से नहीं लगता, व्योम से टूटा हुआ नक्षत्र पुन: व्योम मे नही जाता और जिस सब्जी को (दूब या हरियाली को) सिंह लॉघ जाता है उसे हिरन नहीं खाता (जिस दूब पर सिंह के पॉव लग जाते हैं उसकी सुगंध से डरकर हिरन उसे नहीं खाता)। इसी प्रकार आपने जिस पृथ्वी को मुझे संकल्प द्वारा दे दी है। उसे आप पुनर्जन्म में ही पा सकेंगे। अत. आप पुनः बद्रिकाश्रम जाकर तपश्चर्या करिये। अब आप राजसी ठाटबाट का विचार मन में मत लाइये।

तुम गोरी पति साह, कहँ जिन मत भरमावहु।
सत्त ध्रम्म साहस्स, काइ पर कहँ गमावहु॥
सामंतनि सुलतान, बार बहु गहि गहि छंड्यौ।
उन अपत्ति कै सत्थ, सपति तुम मत्त सुमड्यौ[1]॥
जिम लगिग जम्हें विधवा चरन, अप ममान होअन[2] कहै।
मगौ सु द्रव्य कारन सुध्रम, कछू[3] आप चित्तह चहै॥ ४५॥

प्रा० पा० १, घ०। २, पा० का०।

शब्दार्थः—कहैं जिन=उसके कहने में आकर। मत मरमावहु=मत भरमाओ, भुलावे में मत आओ। काइ=क्यों। पर कहैं=दूसरे के कहने पर। गमावहु=गँवाते हो, खाते हो। सामतनि=सामन्तों ने। छड्यौ=छोड़ा। अपत्ति=पति रहित, निर्लज्ज। सपति=पति सहित, लज्जावान। मत्त=मन्त्रणा। जम्हैं=सौभाग्यवती (जम्हैं शब्द राजस्थानी है, जो युवति का रूपान्तर है)।

अर्थः—अत' आप गौरी शाह के भुलावे में मत आइये। दूसरों के कहने मे आकर आप अपना सत्य, धर्म, और साहस क्यों गँवाते हैं। आप जानते हैं कि मेरे सामन्तों ने जिस सुलतान को कई वार पकड़ २ कर छोड़ दिया है, ऐसे निर्लज्ज के साथ आप लज्जावान होते हुए भी मन्त्रणा कर रहे हैं, किन्तु ज्ञात रहे कि सौभाग्यवती स्त्री विधवा के चरण स्पर्श करती है, तो वह उसे अपने समान होने के लिये ही कहती है सौभाग्य विनष्ट होने का ही आशीर्वाद देती है। अत आप उससे सम्पत्ति की आशा न करें। यदि आपको सही इच्छा है तो धर्म कार्यार्थ इच्छानुसार द्रव्य माग लीजियेगा।

अनंग पाल झुकि आप, दूत ढिग हुँते साह जिह[1]।
तिनह[2] कह्यौ तुम जाइ, कहौ साहाब लिख्यौ[3] तिह[4] ॥
दिए पत्र फुनि हत्थ, धरा दैत न चहुवानह।
तुम आवहु चढि अतुर, कूच पर कूच मिलानह ॥
मिलि अप्प अप्प[5] एकह सुमति[6], लरि सु लेहिं दिल्लीय धरा ॥
तुम मत छड्डि तप बद्रि वर, अब सु पाँइ रुपे खरा ॥ ४६ ॥

मा०पा०१, भीं०। २, ५, ६, पा०। ३ भीं०का०पा०। ४, स०।

शब्दार्थः—झुकि=झुक कर, नत मस्तक होकर। हुते=थे। तिनह- कह्यो=उनसे कहा। साहाब=शहाबुद्दीन से। लिख्योतिह=उसने लिखा है। फुनि=पुनि। अतुर= आतुरता के साथ शीघ्रता पूर्वक। अप्प अप्प= अपने सहित, आप हम। एकह सु-मति=एक मत होकर। तुम मत=तुम्हारी मन्त्रणा पर ही। पाइ=पाव। खरा=खरे, दृढता के साथ।

अर्थः—यह संदेश सुनकर अनंगपाल नत मस्तक हो गया और अपने पास आये हुए शाही दूतों से कहा कि जो कुछ पत्र मे लिखा है- वह सत्य है। तुम शहाबुद्दीन से जाकर कह दो कि यह संदेश उसी (अनंगपाल) ने भेजा है फिर उस

(अनगपाल) ने एक और पत्र लिखकर दूतों के हाथ मे दिया, उसमे लिखा था कि चौहान मेरी पृथ्वी नहीं लौटाता है इसीलिये आप सजकर यथा स्थान ठहरते हुए शीघ्र ही आइये। आप हम परस्पर-मिलकर एक मत हो जांय और युद्ध करके दिल्ली के भू भाग को छीन लें, क्योंकि तुम्हारी मत्रणा के कारण ही मैंने वद्रिकाश्रम की श्रेष्ठ तपश्चर्या छोड़ी है। अत आप और हम दोनों दृढ पांवों पर डट जांय।

गए दूत गज्जनै, साहि सम वत्त वदैं वर।
नप सु छड्डि तों बरह, आइ हरद्वार लियन धर[१]॥
पुहवि[२] मगि[३] पृथिराज, राज अप्पै न इक्क तिल।
दैवादर चढि माहि भुम्मि[४] पलिज्जै[५] सु उभय मिल॥
सुनि साह घाव नीसान किय, चढ्यौ सैन चतुरंग सजिं।
हय गय ममूह साकति मकल, अनगपाल साहस्स कजि॥ ४७॥

प्रा० पा० १ से ३, ६, दे० । ४, पा० । ५, पा० का० घ०।

शब्दार्थः—सम=सामने वदैं=कहे जाते। लियन=लेने के लिये। पुहवि=पृथ्वी अप्पै न=नहीं देता है। दैवादर=देवद्वार, हरिद्वार। घाव=चोट, डका। साकति=साज वाज।

अर्थः—अनगपाल के पास से लौटे हुए शाही दूत गजनी पहुँचे और उन्होंने शाह को शुभ बात की सूचना देते हुए कहा कि तँवर नरेश तपश्चर्या छोड़कर अपने भू-भाग को लेने के लिये हरिद्वार आगया है। उसने पृथ्वीराज से अपना भू-भाग लौटाने को कहा है, किन्तु वह एक तिलभर भूमि भी देने को तैयार नहीं है। इसीलिये आप देवद्वार (हरिद्वार) की ओर चढ़कर चलिये और दोनों नरेश मिलकर पृथ्वीराज से पृथ्वी ले लीजिये। यह सुनकर शहाबुद्दीन ने नक्कारे पर डंका बजवाया और चतुरंगिनी सेना सजाकर चढ़ चला उसने अनंगपाल के पराक्रम को प्रदर्शित करने के लिये ही अपने हाथी घोड़ों के समूह को सब साज-बाज से सुशोभित किया।

चढ़त साहि साहाब, चढ्यो तत्तार खान वर।
खान खान खुरसान, खान माफरू महा भर॥
कलिम खान कमाम, मीर नासेर अभंगह।
अलूखान आलील, चढिय हय गय चतुरगह॥

सथ सयन सकल सारद्ध लख, उभय सहस मत मत्त इभ ।
निरसान[१] बज्जि नौबति निहसि, रहै गज्जि धर-पुर सु नभ ॥ ४८ ॥

ग्रा० पा० १, दे० ।

शब्दार्थः—सारद्ध लख=सार धारी, एक लख, एक लख लोहाधारी । गज्जि=गर्जित, प्रतिध्वनित । धर-पुर=भू मंडल ।

अर्थः—शाह शहाबुद्दीन के चढाई करने पर साथ मे श्रेष्ठ तत्तारखान, खानों मे श्रेष्ठ खुरासानखा, महान योद्धा मारुफ खान, कालिम खांन, कमाम मीर, अभग वीर नासीर, अलूखांन, आलीलखां आदि तथा हाथी, घोड़े और चतुरगिनी सेना लेकर चढ़ चले, उस सम्पूर्ण सेना मे एक लक्ष लोह-धारी और मद मस्त दो हजार हाथी थे । उस समय नक्कारे और नौबत के बजने से पृथ्वी और व्योम-मडल प्रतिध्वनित हो गया ।

सिंध[१] उतरि सुरतान, कह्यौ सम खान ततारह ।
तुम अनगेसह लैन, जाहु तहँ जहँ[२] हरिद्वारह ।
सहस बीस लै सेन, अनंग सम मिलिय सोनपुर ।
बिलम करहु जिम बहुत, अभंग सजि आवहु आतुर ॥
करि नवनि खान तत्तार चलि, पहुँच्यौ हरद्वारह सहर ।
करि खबरि तब्ब अति प्रीत तन, मिल्यौ राज अनगेस वर ॥ ४९ ॥

ग्रा० पा० १, पा० । २, स० ।

शब्दार्थः—सम=मे, साथ । अनगेसह=अनगपाल को । लैन=लेने को । नवनि=नवनि, वदना । बिलम=विलम्ब । जिन=नहीं । सहर=शहर या सिहर-शिखर, अथवा सु घर । तब्ब=तब ।

अर्थः—सिन्धु को पार कर शाह ने तत्तारखा से कहा—तुम अनंगपाल को लेने के लिये हरिद्वार की ओर जाओ और अनगपाल सहित आकर सोनपुर मे मुझ से मिलो । हे वीर ! इसमे अधिक विलम्ब न कर तुम शीघ्र ही आना । यह सुन शाह को अभिवादन कर तत्तारखा चला गया और हरिद्वार पहुँचा । वहाँ अपनी सूचना दी तब हार्दिक प्रेम बताता हुआ राजा अनगपाल उससे मिला ।

दोहा

तहँ तोअर अनगेस नृप, लए मोल बहु वाज ।
उभै सहस सेना सजित, रखिव सुभर किय साज ॥ ५० ॥

शब्दार्थ:—लए=लिये, खरीदे । वाज=वाजि, घोड़े । सुभर=सामन्तों को । साज=सजाई ।

अर्थ:—तँवर-नरेश अनंगपाल ने बहुत से घोडे मोल लिये और बहुत से सामन्तों को साथ लेकर दो सहस्र सुसज्जित सेना सहित युद्ध का उत्तम साज सजाया ।

सत्त तीन भर सुभर जे, निज बैराग सरूप ।
तिन बधी तरवारि[1] फिरि, बदलि भेख बहुरूप ॥ ५१ ॥

१. मा. पा. १, का ।

शब्दार्थ:—सत्त तीन=तीन सौ । निज=अपने (अनंगपाल के निजी) । सरूप=स्वरूप । भेख=भेष । बहुरूप=बहुरूपिया, स्वांग लाने वाला ।

अर्थ:—अनंगपाल के तीन सौ श्रेष्ठ सुभट सामन्त थे जिन्होंने उसी के साथ वैराग्य धारण कर लिया था, उन्होंने फिर तलवार इस प्रकार बांधी मानों बहुरूपिये ने भेप बदला हो ।

कवित्त

मिलत खान तत्तार, मत्त मत्तंत रत्ति वर[1] ।
दै निसान पहु फटित[2], चलै पुर-सोन उभै भर ॥
भए साह दल निकट, रखिव जोजन जुग अंतर ।
दई खवरि सुरतान[3], चढ्यौ साहाव समं तर ॥
दस कोस अग्ग अनगेस कहुँ, मिल्यौ जाय साहाव हित[4] ।
वैठे सु उतरि अति प्रीति पर, मनहु उभै जन इक्क चित ॥ ५२ ॥

मा. पा १, ४, पा । ३, का ।

शब्दार्थ:—मत्त मत्तत=मत मतातर । रत्ति=लीन । पहु फटित=उष काल होते होते । पुर-सोन=सोनपुर । उभै भर=दोनों वीर (अनंगपाल और तत्तार) । जुग=युग, दो । सम=सामने, अगवानी को । तर=त्वर, शीघ्र ।

अर्थः—तत्तारखांन के मिलने पर अनगपाल सलाह-मशविरा करने मे लीन होगया। फिर (एकमत हो) वे दोनों वीर (तत्तार और अनगपाल) उपाकाल में नक्कारे पर डंका देकर सौनपुर के लिये चले और जब शाही दल के निकट पहुँच गये तब दो योजन की दूरी पर ठहर कर शहाबुद्दीन को अनगपाल के आने की सूचना दी गई जिसे पाकर शहाबुद्दीन शीघ्रता पूर्वक दस कोस आगे बढकर अनगपाल से प्रेम के साथ सिला, फिर घोडों से उतर कर वे दोनों (अनगपाल और गौरी शाह) अति प्रेम से इस प्रकार मिले मानों दोनों एक चित्त हों।

गाथा

झुकि किय घाइ[१] निसान, चढि प्रथिराज बाज साजेय
सब सामत समेत, दिय डेरा सु दोइ जोजनय ॥ ५३ ॥

१ ना० पा० १, भीं०।

शब्दार्थः—झुकि=टेढा होकर। घाइ=घाव, डके का आघात। बाज—घोड़ा। साजेय=सजाकर। समेत=सहित।

अर्थः—इधर राजा ने भी युद्धार्थ नक्कारे पर डका दिलवाया तथा घोड़े का सजाकर चढ चला और सामन्तों सहित दो योजन पर आकर डेरा डाला।

दोहा

दिखिव दूत[१] गय साहि ढिग, कही खबरि प्रथिराज।
चढ्यौ सूर सँभरि[२] धनी, हय गय दल बल साज ॥ ५४ ॥

शब्दार्थः—सँभरि धनी=सम्भर पति। बल=शक्ति।

अर्थः—पृथ्वीराज को सज्जित देखकर दूत शाह के पास पहुँचे और यह सूचना दी कि वीर सभरि पति (पृथ्वीराज) हाथी घोडे और सैन्य-शक्ति को सगठित कर युद्धार्थ चढ आया है।

सामत सूर समस्त बर, भय ससार विरत्त।
स्वामि ध्रम्म साधन सुबर मरन जरन मन मत्त ॥ ५५ ॥

शब्दार्थः—सामत=सामन्त। विरत्त=विरक्त। सुबर=सबल। रत्त=लीन, तत्पर।

अर्थः—साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि उसके समस्त श्रेष्ठ वीर सामन्त ससार से विरक्त होगये हैं और वे स्वामि-धर्म का पालन करने के लिये लड़ मरने तक को तत्पर हैं।

चर सु दिक्खि[1] चहुवांन के, साह खबरि कहि राज[2]।
सुनत राज प्रथिराज वर, चल्यौ जुद्ध कज साज ॥ ५६ ॥

प्रा० पा० १ पा० भीं०। २ पा०, भीं०, का०।

शब्दार्थः—दिक्खि=देख भाल करके, हालात जानकर। खबरि=खबर, सूचना। कज=लिये।

अर्थः—इधर पृथ्वीराज के दूतों ने भी शाही दल की देख-भाल कर (हालात जानकर) राजा को सूचना दी, जिसे सुनकर राजा पृथ्वीराज युद्धार्थ तय्यार होकर आगे बढा।

सज्जि आयौ चहुआन जुध, सुन्यो श्रवन पति साह[1]।
हुकम खांन उमरान हुअ, सजौ सु[2] अंग सनाह[3] ॥ ५७ ॥

प्रा० पा० १, ३ पा० का० घ०। २ पा० घ०।

शब्दार्थः—जुध=युद्ध। पतिसाह=पातशाह। उमरान=उमरावों को। अंग=शरीर पर। सनाह=कवच।

अर्थः—पृथ्वीराज युद्ध के लिये सजकर आगया है-यह सुनकर शाह ने उमरावों और खानों को शरीर पर कवच धारण करने का आदेश दिया।

गाथा

मुक्ख सु रिख्खि तत्तार, वाई दिसा खांन मारूफं।
दाहिन खां-खुरसानं, मध्धि अनगेस पुट्ठि साहाव ॥ ५८ ॥

शब्दार्थः—मुक्ख सु=अग्रभाग पर। रिख्खि=रखकर। दाहिन=दाहिने पार्श्व पर। मध्धि=मध्यमें। अनगेस=अनगपाल को। पुट्ठि=पृष्ठ भाग में।

अर्थः—सेना के अग्र भाग पर तत्तार को, वाम पार्श्व पर मारूफ खां को, दाहिने पार्श्व पर खुरासान खां को, और मध्य भाग में अनगपाल को रखकर शहाबुद्दीन पृष्ठ भाग में नियुक्त हुआ।

सजि ठट्टौ सुलतानं, सुनि चहुआन अप्प व्यूहान ।
मुख किन्नौ[1] कैमास, चावडराइ पुच्छ सज्जाय ।। ५९ ।।

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थ:—ठट्टौ=ठटा । अप्प=सर्प । व्यूहान=व्यूह । सज्जाय=सजा ।

अर्थ:—शाह की व्यूह रचना सुनकर पृथ्वीराज ने भी अपनी सेना की सर्प व्यूहाकार रचना की, जिसमें मुख के स्थान पर कैमास और पूछ के स्थान पर चावडराय को नियुक्त किया ।

दोहा

मध्धि फौज प्रथिराज रचि, कह्यौ सु कर करि उच्च ।
अनग राज जीवत गहौ, इह सु रचौ परपच ।। ६० ।।

शब्दार्थ:—मद्धि=मध्य भाग कर=हाथ । करि उच=उठाकर । इह=ऐसा । परपच=प्रपच ।

अर्थ:—पश्चात् मध्य भाग (सर्प के अग के स्थान पर) मे स्वयं पृथ्वीराज नियुक्त हुआ और हाथ को उठाकर बोला ऐसा प्रपच रचो कि राजा अनगपाल जीवित ही पकडा जाय ।

जिन सु हनौ अनगेस जिय, गहौ सु जीवित साह ।
इते दुदल दिट्ठाल भय, लई वग्ग कैमाह[2] ।। ६१ ।।

प्रा० पा० १ स० ।

शब्दार्थ:—जिन=नहीं । हनौ=मारो । जिय=इसे । दुदल=दोनों दलों की । दिट्ठाल भय=आमने सामने दिखाई दिये, दृष्टि मिली । लई=ली, पकड़ी, उठाई । वग्ग=वाग, लगाम, रास । कैमाह=कयमास मंत्री ।

अर्थ:—अनगपाल नहीं मारा जाय और शाह को जीवित ही पकड लिया जाय ऐसी आज्ञा राजा ने सामन्तों को दी । उसी समय दोनों की दृष्टि मिली और कैमास ने घोड़े की रास उठाई ।

खिचँ दल सिंधू उजैं, उपजत सूर हुलास ।
ज्यों निपरि नग्गौ खग्ग, करि तिलकौ[1] कैमास ।। ६२ ।।

प्रा० पा० १ प्रा० प० ।

शब्दार्थ:—वीहूँ=विय, दोनों। उहास=उच्चहास, उत्साह। ख्यौहनि=अक्षौहिणी सेना। परि=पर। नख्यौ-खयग=घोडे को वढाया।

अर्थ:—दोनों ओर के सैन्य दल मे सिंधु राग के बाजे बजने लगे, जिससे वीरों के हृदय में उत्साह उत्पन्न हो गया, उसी समय शत्रु की अक्षौहिणी सेना की ओर लल-कार कर कैमास ने घोडा वढ़ाकर आक्रमण किया।

कवित्त

वधि साहि साहाव, लियौ चावंडराय वर।
हय कधह लै डारि, गयौ निज सैंन सथ्थ नर॥
नीर उतरि पति-असुर, खेत ढुह्यौ प्रथिराज।
मुसलमान सत सहस, परे सामथ करि काजं॥
पच सै सुभर हिंदू सु परि, उभे सत्त झौरी सजिग[1]।
जित्यो सु राज सोमेस सुअ, घने जैत वज्जै वजिग॥ ६३॥

प्रा० पा० १, स०।

शब्दार्थ:—वधि=वांधकर। हय-कधह=घोडे के कधे पर। सथ्थ=साथ में। नीर=नूर। उतरि=उतर गया। पति-असुर=मुसलमानों के स्वामी का। ढूह्यौ=खोजा, निरीक्षण किया। परे=धराशायी हुए। सामथ=सामर्थ्य का। उभै-सत्त=दो सौ। झौरी=झोलियें। सजिग=सजाई, वनाई। घने=वहुत से। जैत वज्जै=विजय के वाजे। वजिग=वजे।

अर्थ:—शाह शहाबुद्दीन को वीर श्रेष्ठ चावडराय ने वाधकर अपने घोडे के कधे पर डाल लिया और अपनी सेना सहित युद्ध भूमि मे चल पडा। जिससे शहाबुद्दीन का नूर उतर गया। पृथ्वीराज ने रणक्षेत्र का निरीक्षण किया तो सात हजार मुसल-मान और पाच सौ हिन्दू वीर सामर्थ्य का कार्य कर धराशायी हुए। साथ ही दो सौ योद्धाओं को घायलावस्था मे झोलियाँ वनाकर उठाया गया। इस प्रकार सोमेश्वर के पुत्र पृथ्वीराज ने विजय प्राप्त की, जिससे वहुत से विजय वाद्य बजने लगे।

मुसलमान वर गह्नि, दाग निज सुभर दिवायो।
लियें-जीति प्रथिराज, समह सामँत वर आयो॥

सभा बैठि भर सुभर, कह्यौ कैमास राइ गुर।
अनगेसह लै आन, चल्यौ मन्त्री सुलेन घर॥
आन्यौ सु राज अनगेस तहँ, प्रथीराज लग्गौ सु पय।
सनमान प्रान अति प्रीति सों, भाव भगति[1] राजन करय॥६४॥

प्रा. पा १, पा का।

शब्दार्थः—गड्डि=गाडे, दफनाये। दाग=दाह किया। लियें-जीति=विजय लक्ष्मी को साथ में लिये। समह=सहित। राइ गुर=राजाओं का गुरु स्वरूपी पृथ्वीराज। लेन-घर=राज महल में लाने को। लग्गौ=स्पर्श किये। पय=पैर। प्रान=आत्मा। करय=की (प्रदर्शित की)।

अर्थः—मृत मुसलमानों को दफनाया गया और हिन्दू-वीरों की दाह क्रिया की गई। पश्चात् विजय लक्ष्मी को साथ में ले सामन्तों-सहित पृथ्वीराज घर (दिल्ली) आया और सामन्तों सहित सभा गृह मे बैठ गया। उसके बाद राजाओं के गुरु स्वरूपी पृथ्वीराज ने कैमास को कहा — अनगपाल को हमारे सामने ले आओ यह सुन मन्त्री उन्हें राज गृह में लाने के लिये गया और अनगपाल को वहा लेआया। तब पृथ्वीराज ने अनगपाल के चरण स्पर्श किये और विशेष प्रेम-पूर्वक हृदय से उन्हें सम्मानित कर भक्ति-भाव प्रदर्शित किया।

दियौ हुकम दाहिम्म, ल्याउ दीवान साह कहु।
सब दिक्खै[1] सामंत, सुक्कि[2] आनन अपत्ति वहु॥
आन्यौ साहि हजूर, मिल्यौ प्रथिराज राज बर।
बैठि साह साहाब, मुख्ख देखें सुभर[3] भर॥
बोल्यौ जु राज प्रथिराज तब[4], अनग राइ तुम अति सुमति।
भरमौ सु केम कहैं[5] साहिके, इह तौ पति—उत्तरि अपति॥६५॥

प्रा० पा० १, ३, ४ पा०। २ पा० का०। ५ का० घ०।

शब्दार्थः—दीवान=सभा में। दिक्खै=देखें। सुक्कि=सूखे हुए। अपत्ति=निर्लज्ज। हजूर=सेवा में। साह साहाब=शाह शहाबुद्दीन। भरमौ=बहकावे में आते। केम=कैसे। पति—उत्तरि=उत्तर दिशा (गजनी) का स्वामी या इसकी लज्जा तो नष्ट प्राय है। अपति=निर्लज्ज या कु शासक।

अर्थः—फिर दाहिमे (कैमास) को आज्ञा दी कि सभा में बादशाह को लाया जाय, ताकि उस निर्लज्ज के सूखे हुए मुख को सामन्तादि सब देख लें। यह राजाज्ञा पातेही कैमास उस (शाह) को सेवामें ले आया। तब श्रेष्ठ राजा पृथ्वीराज उससे मिला और शहाबुद्दीन को भी सभा में बिठाया गया। सब बहादुर सामन्त शहाबुद्दीन के मुख की ओर देखने लगे। राजा पृथ्वीराज, अनंगपाल से कहने लगा — कि आप बुद्धिमान होकर भी शाह की सिखावट मे कैसे आगये ? यह उत्तर दिशा (गजनी) का स्वामी तो निर्लज्ज है (या इस कु शासक की लज्जा तो नष्ट ही गई है)।

दोहा

कहि राज प्रथिराज गुर, सुभर बुल्लि वर अग्ग।
अनँग सीस उंच न करै, नाग – दमनि सिर नग्ग ॥ ६६ ॥

प्रा. पा १, पा.।

शब्दार्थः—गुर=गुरु वाक्य। बुल्लि=बुलाकर। अग्ग=सामने। उंच=ऊँचा। नाग-दमनि=नाग दमनी एक पौधा, या हाथियों का दमन करने वाला। नग्ग=नम गया।

अर्थः— उपर्युक्त गुरु-वाक्य (बड़प्पन का कथन) राजा पृथ्वीराज ने सामन्तों के सामने अनंगपाल को कहे, जिससे अनगपाल का सिर इस प्रकार ऊँचा नहीं हुआ, जिस प्रकार नाग दमन के पौधे का सिर ऊपर नहीं उठता (या जो अनंगपाल युद्ध भूमि में हाथियों का दमन करने वाला था, उसका मस्तक दान देकर पलटने से नीचा हो गया)।

कवित्त

कहै गज्जि गहिलौत, कहूँ सामंत सुनौ सहु।
आप अनी एकग, असुर-सुरतानि बही कहुँ ॥
समुद सजल जल खार, ससी लग्गौ सु कलकह।
सूर गिलै रस राह, पथ्थ लुट्टाइ गोप ग्रह ॥
दशरथ्थ आप काक सु विक्रम, दइ दिवान विपरीत गति।
पति साह कही सुन तें सकल, अनगपाल नट्ठी सुमति ॥ ६७ ॥

शब्दार्थः—गज्जि=गर्जना करता हुआ। गहिलौत=गोविन्दराय, गुहिलोत। सहु=समस्त। अनी=सेना। एकंग=एकमत। असुर-सुरतानी=मुसलमानों का बादशाह। बही=विचलित कर दी, भगादी। कहुँ=कभी। रस-राह=रसराशि। दिवान=देव प्रदत्त। तें=उसने। नट्ठी=नष्ट हुई।

अर्थः—तब गर्ज कर गुहिलौत वीर (गोविन्दराय) बोला-हे सामन्तों सुनो ! अपनी सेना संगठित है । क्या कभी हमारी सेना को मुसलमानों के स्वामी (गौरी) ने विचलित किया है ? समुद्र सजल होते हुए भी क्षारत्व का अवगुण उसमें निहित है, उज्ज्वल शशि, कलंक के धब्बे से दूषित है, देदिप्यमान सूर्य इस राशि को खींचता है, उसके पीछे राहु लगा हुआ है । अर्जुन के उज्ज्वल यश का नाशक बहुत सी गोपियों का लूटा जाना है-वचन का पालन करने वाला दशरथ अंधे-द्विज के) श्राप के कारण कलुषित है और प्रसिद्ध नरेश विक्रम पर कौए के भक्षण का लाञ्छन है, इस प्रकार बुद्धि में जो कलुषितपन आता है, वह तो देवों द्वारा प्रदत्त ही है । इसी तरह बादशाह ने अनंगपाल से जो कहा उसे इन्होंने सुना और इसी के कारण इनकी सुमति भी नष्ट हुई (अतः अनंगपाल निर्दोष है) ।

दोहा

बदै राइ चावंड बर, इह अवस्थ हुइ[१] अग ।
जब सु मानसर तजि करै, हंस काग कौ संग ॥ ६८ ॥

प्रा० पा० १ दे० ।

शब्दार्थः—बदै=बोला । अवस्थ=अवस्था ।

अर्थः—वीर श्रेष्ठ चावंडराय बोला, जब शरीर की ऐसी अवस्था (सत्य का त्याग और असत्य की लालसा) हो जाती है तो समझना चाहिये कि हँस ने मान सरोवर का संयोग छोड़कर कौवे से नाता जोड़ा है ।

जिते वचन सामत कहे, तिते सहे अनगीस ।
खील चील्ह सम सुनि रह्यौ, उठ्यौ न ऊरध सीस ॥ ६९ ॥

शब्दार्थः—खील=मंत्र द्वारा कीलित । चील्ह=चिल्ह जाति की डाइनी ।

अर्थः—जो वचन सामन्तों ने कहे उन सबको अनंगपाल ने इस प्रकार नत मस्तक होकर सुना और सहन किया जैसे मंत्र द्वारा कीलित चिल्ह जाति की डाइनी नम्र होकर सब कुछ सुनती रहती है ।

भाव भगति प्रथिराज नै, किन्नौ[१] अति महिमान ।
इक्क बाज सिर पाव दै, छडि दियौ सुरतान ॥ ७० ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—किन्नी=की। महिमान=मेहमानी, आतिथ्य। इक्क=एक। बाज=घोड़ा।

अर्थः—सद्भाव के साथ पृथ्वीराज ने शाह की महमानदारी की। फिर एक घोड़ा और शिरोपाव देकर उसे छोड़ दिया।

कवित्त

छड्डि[१] दियौ सुरतान, डंड कब्बूल कियौ सिर।
बीस हस्ति सत बाज, उच्च जाति गातह बर॥
उभै लक्ख बर द्रव्व[२], दियौ साहाव सु दई।
सो प्रथिराज नरिंद, अद्ध दीनौ चामडं॥
अथ दड सव्व सामत कहुँ, बटि-दियौ चहुआन वर।
दै दड खत्त नर बर सुभर, प्रथीराज छीवै न कर॥ ७१॥

मा० पा० १ का० पा०। २ का० भी०।

शब्दार्थः—सत=सौ। बाज=ताजी, घोड़े। उभै लक्ख=दो लक्ष। द्रव्व=द्रव्य। बटि-दियौ=बांट दिया। खत्त=क्षत्रिय। नर बर=नरपुंगव। छीवै=छूया।

अर्थः—छोड़ते समय शाह से दंड लेना स्वीकार किया। जिसमें उत्तुंग काय पर्वताकृति बीस हाथी और श्रेष्ठ सौ घोड़े एवं दो लक्ष का द्रव्य लेना निश्चित हुआ। शहाबुद्दीन ने चाहुवान राजा को यह दिया। उसमें से आधा चामंडराय को और आधा सब सामन्तों को बांट दिया गया। नरपुंगव श्रेष्ठ क्षत्रिय बहादुर राजा पृथ्वीराज ने इस प्रकार शत्रु को दण्डित किया; किन्तु उसने दण्ड से प्राप्त द्रव्य को हाथ से नहीं छुआ।

दोहा

मेछ[१] बंधि चहुआन ने, लए[२] हयगय भार।
फिरि प्रसन्न प्रथिराज किय, ढिल्ली-कोटह बार॥७२॥

मा० पा० १, पा० का०। २ पा०।

शब्दार्थः—बंधि=बांधकर। लए=लिये। भार=भारी, बड़े २। ढिल्ली-कोटह बार=दिल्ली नगर के कोटे से जिन्हें बाहर कर दिये थे,- उन्हें।

अर्थः—इस प्रकार शाह को बांधकर राजा पृथ्वीराज ने बडे २ हाथी, घोडे आदि दण्ड स्वरूप लिये और जिन विरोधियों को दिल्ली नगर के परकोटे से बाहर कर दिया था उन सब को राजा ने पुन प्रसन्न किया।

बरख एक पच्छै नृपति, तब लगि भर सबलान।
सभी हयग्गय दल सजे, चतुरगी चहुआन ॥ ७३ ॥

शब्दार्थः—बरख=वर्ष। पच्छै=पीछे, व्यतीत होने पर। सबलान=सबल।

अर्थः—जब एक वर्ष बीत गया तब चाहुआन राजा पृथ्वीराज और उसके सबल सामन्तों ने हाथी और घोडों सहित चतुरगिनी सेना को अजमेर लौट जाने के लिये पुन सजाया (*अनगपाल को सतुष्ट करने के लिये दिल्ली राज्य का परित्याग* करने के लिये तत्पर हुआ)

कवित्त

मिल्यौ राव पज्जून, मिल्यो मोरो महनसिय।
मिले राव पुडीर, गए दुज्जन वल नसिय ॥
मिले निडर रठ्योर, मिले गोइंद गहिलौत।
मिलि खीची परसग[1], जाम जदौं पहिलौत ॥
आरभ राव कनक मिल्यौ, रघुवसी हय-जार-ही।
कविचद मिल्यौ जो बद को[2], नाम-सु-मट्टा[3]-भार-ही ॥ ७४ ॥

पा० पा० १, भीं०। २, पा०। ३. भीं० का०।

शब्दार्थ—महनसिय=महनसी। गए=भाग गये। दुज्जन=दुर्जन। नसिय=नाश। रठ्योर=राठोड़ पहिलौत=पहला वार करने वाला, या प्रमुख। आरभ-राव=युद्धारभ करने वाला हय—जार-ही=जार पुरुषों का नाश कर्ता, लपटों का नाशक बद को=बांधने वाला, छन्द बद्ध करने वाला। नाम सु-मट्टा-भार-ही=बड़ेर सुभटों के नाम (यश) को।

अर्थः—यह सुन कर पज्जूनराय, महनसीमोरी, दुर्जनों के वल को नष्ट कर उन्हें भगाने वाला पुडीरराय, निडडुरराय राठौड, गोविन्दराय गुहिलौत, प्रसगराय खींची, युद्ध मे प्रथम वार करने वाला (या प्रमुख वीर) जामराय यादव, युद्धारभ करने वाला कनकराय बडगुज्जर, लपट पुरुषों का नाशक रघुवशी रामराय और

वडे २ सुभटों के नामों को (यश को) छन्द वद्ध करने वाले कविचद आदि वहाँ आकर मिले।

दोहा

अनॅगपाल तिन पावि ग्रहि[1], अरु वर वंधव साल।
वृद्ध जोग वपु जोग धरि, चंपि जरा अरि काल ॥ ७५ ॥

प्रा. पा १, पा.।

शब्दार्थ:—पावि=पांय, पाव, चरण। ग्रहि=ग्रहण किये, छुये। वधव=कुटुम्ब। वधव-साल=गृह वधु, सगोत्रीय (भाइयों की कोटडियों वाले)।

अर्थ:—उन्होंने और अनंगपाल के निकट वंधुओं ने आकर अनंगपाल के चरण छुए और कहा, हे राजन ! आपका शरीर वृद्ध होगया है इसलिये योग को पुन. प्रारम्भ कर शत्रु–रूपी जरा और काल को दवा दीजिये।

युग्गिनपुर[1] प्रथिराज कौ, देव दियौ दिन वित्त।
मोह वंध वंधन तजै, ध्रम–क्रम किज्जै[2] चित्त ॥ ७६ ॥

प्रा. पा १, २, पा.।

शब्दार्थ:—युग्गिनपुर=योगिनीपुर, दिल्ली नगर। दिन वित्त=दिन बीत गये, अतिम अवस्था हो गई। ध्रम-क्रम=धर्म कर्म।

अर्थ· हे देव अनगपाल ! आपने दिल्ली पृथ्वीराज को दे ही दी है, अव आप-की अतिम अवस्था है, अत' आप इस मोह रूपी वंधन के फदे को छोड़ धर्म कम् को चित्त में स्थान दीजिये।

कवित्त

न रहै सर वापीय, अनुप गढ मॅंडप वहुज्ज।
न रहै धन वन तरुनि, कूप प्रव्वत फिरि-छुज्ज ॥
न रहै ससि रवि भौम, जाइ थावर अरु जंगम।
न रहै सत्त[1] समद, धरै भजय सोइ अगम ॥
जानहु न प्रलै चतुरंग तम, प्रलै इहै सो दिक्खियै।
राखौ न चित आचित का, जाम-न[2] मर-न विसिक्खियै ॥ ७७ ॥

प्रा० पा० १, का० पा० ध०। २ सर्वप्रति।

शब्दार्थः—तरुनि=तरुणी। प्रब्बत=पर्वत। फिरि-छब्ज=बिगड़ते बनते। धरै=धारण किया हुआ। भजन=नष्ट होता। अगम=शरीर। न-प्रलै=प्रलय रहित, नश्वर। जाम-न= जनमता नहीं। मर-न= मरता नहीं। सिखियै=सीख लो, मानलो।

अर्थः—सर, वापिका, अनुपमगढ, बहुत से मण्डप, धन, वन, तरुणी, कूप, पर्वत, शशि, रवि, भूमि, स्थावर जगम सप्त सागर और धारण किया हुआ शरीर बनकर बिगड़ता है, ये सब स्थाई रहने के नहीं है। चतुरगिनी सेना को नहीं मानते हैं, किन्तु उसका नाश भी आपने प्रत्यक्ष देख ही लिया है। अत अचिंतनीय वस्तुओं का अब आपको चिन्तन नहीं करना चाहिये और यह मान लेना चाहिये कि न कोई जन्म लेता है और न कोई मरता ही है।

फुनि[१] बरज्यौ नृप त्रीय, जीय तिय तीय उतारिय।
तजिय मान घर वार, पुच्छ्यौ व्यास हॅकारिय॥
चाहुआन अरि भज्जि, होइ वर अनॅग नरेस।
पच नदी करि अद्ध, बटि अप्पै अध देस॥
तुम कहौ जोति जग जोति विप, इह अपुब्ब कथ मडिकै।
कै ग्रहो पथ बद्री सरन, धरा काम कलि छडिकै॥ ७८॥

ग्रा० पा० १, का० भी०।

शब्दार्थः—फुनि=पुन, फिर। बरज्यौ=निषेध किया। तिय=त्रै। तीय=तीनों (तृतीय)। उतारिय=हटा दिये। मान=अभिमान। घर वार=गार्हस्थ्य जीवन, गृह। हकारिय=बुलाकर। पच नदी=पाचाल, पजाब। अ द्ध=आधा। जोति=जोने वाले, जानने वाले। विप=विप्र। काम= कामना, इच्छा, मोह, ममत्व। कलि=निश्चय।

अर्थः—फिर राजा (अनगपाल) की स्त्री ने भी निषेध किया कि आप हृदय से तीनों बातों को (त्रिताप) हटाकर अभिमान का त्याग कीजिये और गृह को छोड दीजिये। उसने व्यास को बुलाकर पूछा और कहा—चौहान पृथ्वीराज ने ही शत्रु का नाश किया है और मेरी पृथ्वी का राजा बनने योग्य है अत तुम कहो तो पजाब एव दिल्ली के भू भाग को आधा २ बांट कर हम दोनों अलग २ राजा बन कर रहें। हे जग ज्योति विप्र! तुम सभी बातों को जानने वाले हो। अत इस अपूर्व कथन को

समझ कर मुझ से कहो, यदि तुम कहो तो यह सब पृथ्वी के ममत्व वाली बातें छोड़कर मैं पुनः मन की राह लूं और बद्रीकेश की शरण ग्रहण करूं।

कहै व्यास अनगेस, तपै ढिल्ली चहुआनं।
बहु बर बल छब्जि है, बंध मोखन सुलतानं॥
तुम बद्री तप जाहु, धरा संदे न आनहु।
इह त्रिम्मान प्रमान, पुब्ब सबंधन जानहु॥
त्रिम्मलौ ध्यान गुर ग्यान करि, हरि भजि त्रिम्मल होइये[1]।
नन करौ चित्त दुविधा न्रपति, अत्त पुत्तन खोइये[2] ॥७६॥
ग्रा पा. १, २, पा.।

शब्दार्थः—बहु बर=अनेक बार। बल छब्जि है=शक्ति का संगठन करेगा। बंध=बांधेगा, पकड़ेगा। मोखन=छोड़ेगा। पुब्ब=पूर्व जन्म। अत्त=अर्थ। पुत्तन=पुरातन, सदा से माने जाने वाला।

अर्थः—तब व्यास ने कहा:— हे राजन अनंगपाल! दिल्ली पर पृथ्वीराज ही तपेगा और अनेक बार शक्ति का संगठन करके वह शाह को पकड़ २ कर छोडेगा। तुम अपनी अच्छाई-बुराई की शका छोड़ कर बद्रिकाश्रम तपस्या करने के लिये चले जाओ, क्योंकि इस निर्माण (भविष्य) का सम्बन्ध पूर्व-जन्म से ही निश्चित है। इसलिये निर्मल गुरु-ज्ञान का ध्यान कर हरि भजन करने में अपने आपको निर्मल करने लग जाइये। अत तुम अपने चित्त को द्विधा के वश न करो और सदा से माने जाने वाले वास्तविक अर्थ (ईश प्राप्ति) को न खोओ।

न लहै मग्यौ[1] देस, वेस फुनि[2] मग्यौ[3] न लहै।
न लहै मग्यौ मान-पान फुनि मग्यौ[4] न लहै॥
न लहै धन मगत्त, गत्त फुनि रूप विनानं।
पुब्ब निबध्यौ बंध, लहै सोई परिमान॥
तुम जान ग्यान मतिमान गुर, नेह न लभ्भै जोर करि[5]।
आतम्म चित्त[6] अन-चित तजि, डहै मत्त तुम सत्त करि॥ ८० ॥
ग्रा० पा० १ से ४ पा०। ५ स०। ६ पा० का०।

शब्दार्थः—न लहै=नहीं मिलता। मंग्यौ=मांगने पर। मान-पान=सम्मान। मगत=मागने पर। गत=विनष्ट। फुनि=पुन. (प्राप्ति)। बिनान=ज्ञान। जोर बरि=जोरावरी, जबरदस्ती, बिना प्रयत्न किये। चिंत=चिन्तन। अन-चिंत=अन्य चिंतन।

अर्थः—मागने पर देश-वेश, मान-पान (सम्मान), धन और ज्ञान विनष्ट होने पर पुन नहीं मिलता। पूव कर्मों द्वारा निर्मित फल की ही प्राप्ति होनी निश्चित है। तुम ज्ञान के जानने वाले और महामति हो। आप स्वय सोचले कि कहीं विना प्रयत्न किये श्रेष्ठ स्नेह (ईश्वर प्रेम) की प्राप्ति हो सकती है? अन्य चिंताओं को छोड़ कर आप आत्म-चिंतन करिये और इसा मत्रणा को आप सत्य सलाह मानिये।

अनॅग राइ अति सेव, करे प्रथिराज राज अति।
मास एक वृख बित्त, बहुरि उपजो सु राज मति॥
कह्यौ पुत्रि-सुत समह, मोहिं मुक्कलि बद्री दिसि।
तहा तपु[1] साधन करौं, धरौं हरिध्यान अहो निसि॥
वुल्लयौ[2] सु राज चहुआन वर, रहौ इहा साधन करौ।
तप तुला-दान ध्रम्मह[3] विबिध, ग्यान ध्यान[4] हिरदै धरौ॥ ८१॥

प्रा० पा० १ पा० घ०। २, ३ पा०। ४ मों।

शब्दार्थः—सेव=सेवा। अति=इधर। वृख=वर्ष। वित=व्यतीत हुआ। पुत्रि-सुत=पुत्री का पुत्र पृथ्वीराज। समह=से। मुक्कलि=पहुँचादे, लौटादे। ध्रम्मह=धर्म कर्म।

अर्थः—इधर राजा पृथ्वीराज अनगपाल की अधिक सेवा करता रहा। जब एक वर्ष और एक महिना व्यतीत हुआ तब पुन राजा अनगपाल को ज्ञान प्राप्त हुआ और उसने पृथ्वीराज से कहा– मुझे पुन बद्रिकाश्रम भेजदो ताकि मैं तपस्या का समारभ करुँ और रात दिन हरि का ध्यान धरुँ। पृथ्वीराज ने कहा– आप यहीं रहकर साधन करते रहिये। तपस्या और तुलादानादि विविध धर्म कर्म कीजिये। हरि का ध्यान हृदय में धारण करिये।

कही सुत्त सोमेस, राज अनगेस न मानी।
वपु साधन तप काज, बद्रि दिसि मनछा[1] ठानी॥
तब पुत्री वर पुत्र, लख्ख इह द्रव्य सु अप्पो।

सत अनुचर इक जांन, विप्र दस एक समप्पौ ॥
चल्ल्यौ अनंग वद्री सरंन, पहुचायौ प्रथिराज नृप ।
तहँ जाइ राज तोंवर सु-वर, तपै राज उग्रह सु तप ॥ ८१ ॥

मा० पा० १ का० पा० ।

शब्दार्थः—वपु=शरीर । मनछा=मनसा, इच्छा । लख्ख दह=दस लच । अप्पौ=अर्पित किया, भेंट किया । जांन=यान, रथ । दस एक=ग्यारह । उग्रह=उग्र ।

अर्थः—इस प्रकार पृथ्वीराज ने कहा-किन्तु अनंगपाल ने नहीं माना, और शरीर से तपस्या का साधन करने के लिये वद्रिकाश्रम की ओर जाने की इच्छा की, तब पृथ्वीराज ने धर्म कर्मादिकों के लिये दस लक्ष का द्रव्य दिया और सौ सेवक, एक रथ, ग्यारह विप्र साथ में दिये तथा वद्रिकाश्रम को सकुशल पहुँचाया गया । श्रेष्ठ राजा अनँगपाल ने वहाँ जाकर वद्रीकेश की शरण ग्रहण की और उग्र तपस्या प्रारम्भ की ।

धनी सु चित्त[1] प्रथीराज, करुन रस आप[2] उपन्नौ ।
द्रव्व दरक सत अद्ध, पुन्य कारज[3] भरि-दिन्नौ ॥
सवै सुभर अनगान आनि आदर गृह वासिय ।
धनि धनि जपै लोई, किति भूमडल भासिय ॥
आखेट दुप्ट दुज्जन दलन, करै केलि सामत सथ ।
कवि चद छद-वधिय कवित्त, पथ्थ राज[4] भारथ्थ कथ ॥ ८२ ॥

म ० पा० १, ३, ४, भों । २ पा० ।

शब्दार्थः—आप=आप, स्वयम् । उपन्नौ=उत्पन्न हुआ । द्रव्व=द्रव्य । दरक=ऊट । सत-अद्ध=पचास । भरि-दिन्नौ=दिला दिया । अनगान=अनगपाल के । लोइ=लोग । किति=कीर्ति । छद-वधिय=छंद बद्ध किया । पथ्थ=पार्थ, अर्जुन । भारथ्थ-कथ=महाभारत में वर्णित ।

अर्थः—राजा पृथ्वीराज धन्य है, नाना की विदाई से उसके चित्त में करुण रस उत्पन्न हो गया । उसने पुण्य-कार्य के लिये पचास ऊट द्रव्य से लादकर अनगपाल के साथ कर दिये और अनंगपाल के जितने आश्रित वीर थे उन सब को पुन सम्मान

पूर्वक लाकर उनके निवास स्थानों पर बसाया। जिससे उसको सब कोई धन्य २ कहने लगे और उसकी कीर्ति सारे भूमण्डल पर छागई। वह (पृथ्वीराज) सामंतों के साथ आखेट और दुष्ट शत्रुओं का नाश करने की क्रीडा (युद्ध) मे लग गया–महाभारत में वर्णित अर्जुन के समान ऐसे उस राजा के यश गान को मैंने (कवि-चद ने) छन्दबद्ध किया (पद्यों में लिखा)।



घघर की लड़ाई
(पातिसाह ग्रहण युद्ध)
(समय २७)

कवित्त

दिल्लीपति[1] प्रथिराज, अवनि आखेटक खिल्लै[2] ।
साठि[3] सहस असवार, जाइ लग्गा धर टिल्लै[4] ॥
धूनि धरा—पति साह, रहै पैसोर धरत्तिय[5] ।
सथ्थ लियै सामत, दिल्लि कैमास सु मत्तिय[6] ॥
मृगया सु रमय प्रथिराज वर, गज्जनवै धर धुम्मियै[7] ।
दूसरौ इद्र दिल्लेस वर, सुभर सरस ढिग सुभ्भियै ॥ १ ॥

प्रा० पा० १ पा० का० । २, ३ दे० । ४ पा० । ५ घ० । ६ भीं० । ७ स० ।

शब्दार्थः—खिल्लै=खेलता था, करता था । टिल्लै=टीला नामक पहाड़ । धूनि=कम्पायमान । धरा-पति=भू भाग का पति, भूपति । पैसौर=पेशावर । मत्तिय=मतवाला । धुम्मियै=धूवा, ताड़ना दी, आतक फैलाया । सुम्मियै=सुशोभित ।

अर्थः—दिल्लीश्वर पृथ्वीराज आखेट में व्यस्त था । उसके साथ साठ हजार सवार थे । उन्होंने ''टीला'' नामक पहाड़ (भू भाग) को जा घेरा । वह भूपति (पृथ्वीराज) पैशोर के भूभाग के निकट था फिर भी शाह को अपने आतक से कम्पायमान करता था । उसके साथ सब सामत थे । दिल्ली की रक्षा के लिये केवल एक मात्र मतवाला वीर कैमास ही दिल्ली में था । इस प्रकार श्रेष्ठ राजा (पृथ्वीराज) शिकार खेलता और गज्जनेश्वर के भूभाग में आतंक फैलाता हुआ श्रेष्ठ सामंतों से सुशोभित दूसरे इन्द्र के समान दिखाई देता था ।

दोहा

गई खबरि[1] ध्रम्मान की, उंट[2] चढ़े असवार ।
टिल्ला[3] धर लिज्जै[4], तखत-दिसि-गज्जनै पुकार ॥ २ ॥

प्रा. पा. १ पा. । २ का. भीं. घ. । ३ का. । ४ दे. ।

शब्दार्थः—खबरि=खबर, सूचना। धम्मान की=धर्मायन कायस्थ की। उंट=ऊँटों पर। तखत-दिसि गज्जनै=गजनी के तख्त की ओर गजनेश्वर को।

अर्थः—इधर पृथ्वीराज के शिकार मे जाने की सूचना धर्मायन कायस्थ ने शुतर-सवारों (उष्ट्र सवार) द्वारा गज्जनेश्वर को दी कि— इस समय पृथ्वीराज का विचार "टिल्ला" के भू-भाग को हस्तगत करने का है।

पृथीराज साजत पवँग, है गै नर भर भार।
दिल्लीपति आखेट चढि, कुहक-बान हथ नार[1] ॥ ३ ॥

[1] पा १, पा।

शब्दार्थः—पवँग=पवग, घोड़ा। कुहक-बान=कुहकते हुए वाण सन सनाते हुए वाण। हथ नार=मारने वाले चलाने वाले।

अर्थः—जब दिल्लीश्वर पृथ्वीराज आखेट के लिये अपने घोड़ों को सजाकर सवार हुआ। उसी समय बडे २ हाथी-घोडे और योद्धा एव सन-सनाते हुए वाण चलाने वाले साथ मे हो गये।

डेरा करि पेसौर नृप, सहस सट्ठि सुभ बाज।
सोन पच[1] विचि[2] पथ दुइ[3], गल्ल गज्जै - अवाज ॥ ४ ॥

[1] पा १, टि ४। २ भी घ। ३, दे।

शब्दार्थः—बाज=घोडे। सोन=सोन नदी। पच=पांचाल, पजाब। विचि=बीच। दुइ=दोनों। गज्जै अवाज=गहरी गर्जना की (हुई)।

अर्थः—इस प्रकार राजा (पृथ्वीराज) ने साठ हजार घोडों (अश्वारोहियों) के साथ पेशौर मे आकर जब डेरा किया तब सोन नदी और पजाब के बीच के रास्तो पर दोनों (पृथ्वीराज और शाह) की ललकारें होने लगी।

कवित्त

गौरी पठए दूत, चले न्यारों चतुरन्नर।
लीय खबरि प्रथिराज, चले पच्छे गज्जन धर ॥
किय सलाम जब दूत, तबहि तत्तार सु बुम्भिझय।
कहै करत्त दिल्लेस, चढन गिरवर धर धुजिनय ॥

सँग सित[5] खट्ट सामत चलि, तीन-पाव लक्खइ तुरी ।
अनि सूर वीर नर वर सकल, उडी खेह घर उप्परो ॥ ५ ॥
प्रा० पा० १, घ० पा० । २, का० ।

शब्दार्थ:—चतुरन्नर=चतुर दूत । पच्छे=पीछे । कह-करत=क्या करता है । गिरवर=गिरिवर । धुज्जिय=कम्पित हो गई । सित-खट्ट=एक सो छ । तीन-पाव=वामन स्वरूप । लक्खइ=लखाई पड़ते, दिखाई पड़ते । अनि=अन्य भी । खेह=धूलि, रज । उप्परी=ऊपर ।

अर्थ:—गौरी ने जिन दूतों को रवाना किया था, वे चारों चतुर पुरुष वहाँ से चले और पृथ्वीराज के सब हालातों की जानकारी कर पुनः पहुँचे उन दूतों ने जब शाह को सलाम किया, तब तत्तारखाँ ने उनसे पूछा कि दिल्लीपति क्या करता है ? इस पर दूतों ने कहा कि उसके प्रस्थान से बड़े २ पहाड़ और पृथ्वी कम्पायमान हो गई है । उसके साथ एक सौ छ सामन्त हैं उनके घोडे वेग में त्रिविक्रम (पृथ्वी के तीन पौंड करते हुए वामन)स्वरूप दिखाई देते हैं तथा अन्य श्रेष्ठ वीर सैनिकों के साथ मे चलने से धूलि ऊपर को उड़ चली है (आकाश धूलि से आच्छादित हो गया है) ।

आखेटक दिन रमय, सग स्वान घन चीते ।
नावक पावक विपुल, जक्कि दिन जामइ जीते ॥
सहस तुरी वग्घइ सु, सेत—मेघा[1] कलि कठिय ।
सीह गोस पुच्छिय सु, लंव सिक्खा[2] सिर पुट्ठिय ॥
जुरी रु वाज कूही गुहा, धानुक्की दारू धरा ।
वहु काल भाल वदक विला, जम भय तव जित्तिय धरा ॥ ६ ॥
प्रा० पा० । १ दे० । २ घ० ।

शब्दार्थ:—नावक=किरात । पावक=पायक, पैदल । विपुल=असंख्य, वहुत से । जक्कि=जकड़ने वाले । जामइ=रात्रि । जीते=जाते हुए को । वग्वइ=तवेला । सेत-मेघा=श्वेताश्व । कलि कठिय=कल कंठ, सुन्दर ग्रीवा ,वाले मयूर । सीह गोस=सिंह गोप । पुच्छिय=पूंछ । सिक्खा=शिखा । पुट्ठिय=पीठ । गुहा=गुह, निषाध । दारू=कठिन । धरा=धरने वाले, ग्रहण करने वाले । वहु-काल=वहन करने का समय, आने जाने का समय। भाल=भालने वाले, जानने वाले । वदक=वधिक । विला=वलाय । जम=यम । भय=हुए । तव=तेरी । जित्तिय-धरा=जितनी भी भूमि, जितना भी भू भाग या तेरे द्वारा जीति हुई पृथ्वीपर ।

अर्थ:—पृथ्वीराज प्रतिदिन शिकार खेलता है। उसके साथ बहुत से शिकारी कुत्ते, चीते, शिकारी पशुओं को दौड़कर पैदल ही जकड़ने वाले (बंधन में लेने वाले) किरात, श्वेताश्व (सूर्य के घोड़ों) के तुल्य एव मयूर सी ग्रीवा वाले (या कार्तिक स्वामी के मयूर तुल्य) सहस्रों घोड़ों के तबेले, पूँछ, शिखा मस्तक और लम्बी पीठ वाले सिंह गोष, जुर्रा, बाज, कुहीं, कठिन धनुष रखने वाले गुह (निपाध) और बलास्वरूप बधिक जो जानवरों के आजाने और घेरने के समय को जानने वाले हैं इत्यादि सब यम-तुल्य होकर तेरे जीते हुए भी तेरे भू भाग पर फैले हुए हैं।

रमै राज आखेट, सत्त एकल बन भजै।
पच[1] पथ्थ परिगाह, रग आपन मन रजै॥
सहस इक्क[2] बाजित्र, सूर किल्लह[3] स पेखै।
सुनि गोरी साहाब, दाह दिल महन,विसेखै॥
जित्तौब जब्ब पृथिराज कौं, तब तसबी कर मंडि हौं।
टामंक सद्द नद्दह करौं, जुगति साह तब छडि हौं॥ ७॥

ग्रा० पा० १, २, भीं। ३, घ० का०।

शब्दार्थ:—एकल=वाराह। पच=पांचाल, पजाव। परिगाह=परिगह, कुटुम्बी। सूर=शूरवीर। किलहन=किरणें, रश्मियां। स पेखै=पेखी जाती, प्रस्फुटित होती। दाह=जलन। महन=में। विसेखै—विशेष। जित्तौब=जीत लिया। जब्ब=जब। मडि हौं=लूंगा, ग्रहण करुँगा। टामक=डके की चोट। सद्द=शब्द। नद्दह=नाद। जुगति=युक्ति पूर्वक। साह=साहि, पकड़।

अर्थ—इस प्रकार शिकार करते हुए उस राजा (पृथ्वीराज) ने अपनी शक्ति से वाराहों को मार दिया है और पजाब के रास्तों पर अपने परिगह सहित शिकारी-खेल में अपने मन को प्रसन्न कर रहा है। उसके साथ एक हजार बाजित्र हैं। उसके मुख पर सूर्य की किरणें प्रस्फुटित होती हैं। दूतों द्वारा इस बात को सुनकर शहाबुद्दीन के दिल में अधिक जलन पैदा होगई और वह बोला—अब मैं पृथ्वीराज को जीत लूंगा। तब ही हाथ मे माला (तसबी) लूँगा और युक्ति द्वारा जब मैं उसे पकड़ कर छोडूंगा तब ही मैं अपने नक्कारे पर डका दिलवाऊँगा।

दोहा

देस देस कग्गद फटे, पेसंगी खुरसान।
रोम हसब अरु बलक मे, फट्टे पहु अप्पान ॥ ८ ॥

शब्दार्थः—कग्गद=कागज, पत्र। फटे=दिये। पेसगी=पेशकशी के, चढाई की सूचना के। बलक=बलख। फट्टे=अपनी ओर मिलाने को।

अर्थः—फिर शाह ने खुरासान, रोम, हबस, बलख आदि देशों में, जो उसके पक्ष के थे उनको मिलाने के लिये अपनी पेशकशी (चढाई) की सूचना के पत्र दिये।

कवित्त

सिलह लोह सज्जन्त, लक्ख पचह मिलि पक्खर।
कूंच कूंच खरि खैर, गुरज धारी लख गक्खर ॥
कोस दहंदह कूच, आइ गिरवान सपत्तौ।
दौरि दूत दिल्लेस, जामत्रय दिनकर[1]—वित्तौ ॥
मुक्काम कियौ पृथिराज नृप, तहाँ खबरि कहि दूत सब।
गोरी नरिंद है गै सुभर, सजि आयौ उप्पर सु अप ॥ ९ ॥

प्रा पा १, पा

शब्दार्थः—पक्खर=पखरेत, अश्वारोही। खरि=खड़कर, चलकर। खैर=खैरियत, कुशलता के साथ। दहंदह=दस दस। गिरवान=गिरि प्रदेश वाला, गजनीपति। सपत्तौ=पहुचा। जामत्रय=तीन प्रहर। दिनकर-वित्तौ=सूर्योदय ।। है-गै=हाथी, घोड़े उप्पर=ऊपर।

अर्थः—कवच और शस्त्रधारी पाच लक्ष अश्वारोही एकत्रित हुए और स्थान २ पर ठहरते हुए कुशलता पूर्वक एक लक्ष गुरजधारी गक्खरों के सहित आगे बढ़े। इस प्रकार दस २ कोस पर ठहरता हुआ वह गिरि प्रदेश (गजनो) का स्वामी आ पहुँचा। तब दिल्लोश्वर के दूतों ने आकर दिन का तृतीय प्रहर बीत जाने पर और पृथ्वीराज के शिकार से लौट आने पर सूचना दी कि गौरीशाह हाथी, घोड़े और योद्धाओं को सजाकर आपके ऊपर चढाई करने के उद्देश्य से आगया है।

चैत मास रवि तीज, सेत पख्खह कल चद्दह ।
भयौ सु दिन मध्यान, चढ्यौ प्रथिराज-नरिंदह ॥
कटक सबर हिल्लोरि, भार सेसह कर भग्गिय ।
चढि सामंत सकज्ज, नद्द सुर अमर जग्गिय ॥
गज रोर सोर बधे घटा, सिलह वीज सिलकाव लिय ।
पप्पीह-चीह सहनाइ सुर, नदि घघ्घर मेलान दिय ॥ १० ॥

शब्दार्थः—सेत=श्वेत, शुक्ल । पख्खह=पक्ष । कल=कलायुक्त । कटक=सेना । सबर=सबके । हिल्लोर=तरंगित । सेसह-कर=शेष नाग का । भग्गिय=कुचला गया । सकज्ज=उस युद्ध कार्य के लिये । अमर=आकाश । जग्गिय=जगा, जागया, प्रतिध्वनित हो गया । रोर-सोर=शोरगुल, हल चल । सिलह=सलह, *कवच । सिलकाव=चमक । लिय=ली । पप्पीह-चीह=पपिहों की चीत्कार, पपिहों के स्वर । मेलान-दिय=मुकाम किया ।

अर्थः—यह सूचना पाकर पृथ्वीराज चैत्र शुक्ला तृतीया रविवार का जब चद्रमा कला युक्त था तब मध्यान्ह समय मे शाह की ओर युद्धार्थ चढ़ा और उसकी सबल सेना उत्साहित होती हुई बढी, जिसके भार से शेष कुचला गया । उस युद्ध कार्य के लिये सामन्त भी चले । उनके स्वर-नाद से आकाश प्रतिध्वनित हो गया, हाथियों की हल चल और सेना की आवाज ने घटा का रूप बाध लिया और वीरों के कवचों ने वीज (द्वितीया) की चमक धारण की । पपीहों के स्वर की पूर्ति शहनाई के स्वर से हुई, इस प्रकार घघर नदी पर आकर पृथ्वीराज ने मुकाम किया

दोहा

आयौ आतुर उत्तरह, पैसगो पतिसाह ।
पच्छाई बादल प्रबल, भग्गे राह चिराह ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—पैसगी=पेशकशी, चढाई करके । पच्छाई=पश्चिम देशीय, मुस्लिम सेना । भग्गे=भागी, दौड़ पड़ी । राह चिराह=यत्र तत्र ।

अर्थः—उधर से बादशाह चढाई कर पृथ्वीराज की ओर तेजी से बढा, उस समय पश्चिम देशीय (मुसलमानी) प्रबल सेना बादलों के समान यत्र यत्र दौडने लगी ।

वरन वरन तहँ दिक्खियौ[१], घंटा रव गज राज ।
मनाही संनाह रजि, पक्खर पख्खर साज ॥ १२ ॥

प्रा० पा० १, पा० ।

शब्दार्थः— घंटा रव=घंट निनाद । संनाही संनाह=कवच धारी से कवच धारी । पख्खर-पख्खर= पखरेतों से पखरेत, अश्वारोहियों से अश्वारोही । साज=सजे, अड़े । सख्खर=अश्व ।

अर्थः—दोनों (पृथ्वीराज और शाह की) सेनाओं के विभिन्न (श्वेत, काले, धूमिल) वर्ण वाले हाथियों के घंटे ध्वनित होने लगे और कवच धारी कवच धारियों से तथा अश्वारोही अश्वारोहियों से भिड़ते हुए सुशोभित हुए ।

भई हलोहल सेन सब, पांन व्यूह वर खेत ।
लख्ख एक भर अंग में, छत्र धर्यौ सिर जैत ॥ १३ ॥

शब्दार्थः—हलोहल=शोरगुल । पांन=हथ पान, एक प्रकार का कर भूषण । वर=वर, श्रेष्ठ । भर= भट, योद्धा । अगमें=लोहा लेना स्वीकृत किया ।

अर्थः—रण क्षेत्र मे शाही सेना ने पान (हथपान, एक प्रकार का कर भूषण) व्यूह की रचना कर शोरगुल मचाना शुरु किया । यह देखकर एक लक्ष विपक्षी योद्धाओं से लोहा लेने के लिये (पृथ्वीराज की ओर से) जैत्र प्रमार ने सेनापतित्व का छत्र सिरपर धारण किया ।

हुअ टामक सु दिसि विदिसि, हुअ सनाह सनाह ।
हुअ हल्लोहल सुभ्भरन, दऊ दीन इक राह ॥ १४ ॥

शब्दार्थः—टामक=नक्कारे पर डंका, रणवाद्य का नाद । सनाह=कवच धारी । हुअ=भिड़े । हल्लोहल=शोर-गुल ।

अर्थः—सर्व दिशाओं में रण-वाद्य का नाद शुरु हुआ और कवच धारी से कवच धारी भिड़ पड़े तथा योद्धाओं में हल-चल मच गई । इस प्रकार दोनों दीन एक ही मार्ग (युद्ध-पथ) के पथिक वन गये ।

कवित्त

फौज वधि सुरतान, मुख्ख अग्गै तत्तारिय ।
मधि नाइक[१] सुरतान, नील खुरसान सुभारिय ॥

मोती निसुरति खान, लाल हवसी कोलंजर ।
पोंचि[2] पीठि रुस्तम, पना बहु भंति[3] अवर नर ।।
उत्तरीय नद्द गौरीस पहुँ, वज्जा दस दिसि वज्जिया ।
मानौकि भद्द उलटी मही, साइर - अम्बु - गरज्जिया ।। १५ ।।

मा पा १, घ. का २, दे । ३. घ. भी. का ।

शब्दार्थः—वधि=व्यूह बद्ध की । मुख्ख अग्गे=अग्रभाग पर (सेनापति के स्थान पर) । लाल=लालें । कोलजर=कालजर । पोंचि=पहुँची । पना=पन्ने । भति=भांति । अवर नर=अन्य सैनिक । वज्जा=बाजे । भद्द=भाद्रपद (भाद्रपद के मेघ) । साइर–अम्बु=समुद्र का जल । गरज्जिया=गरजता हो, गहरी ध्वनि करता हो ।

अर्थः—तत्तारखा को अग्रणी (आगे) कर बादशाह ने अपनी सेना को व्यूह बद्ध किया, जिसमे हथ-पान (करभूषण) के मध्य मे जो हीरा (मध्यनायक) होता है । उस स्थान पर स्वयं शाह, आस-पास नीलम होती है उस स्थान पर अपने साथियों सहित महान् वीर खुरासानखां, मोतियों की जगह पर निसुरत्तिखां और लालों के स्थान पर कालंजर और हबसी वीर, पन्ने की पहुँची (मणीबंध) के स्थान पीठ पर रुस्तमखा एव अन्य सैनिक हुए ।

इस प्रकार व्यूह-बद्ध होकर गौरीशाह ने नदी को पार किया और दसों दिशाओं में रणवाद्य इस भाँति बजने लगे, मानों पृथ्वी पर भाद्रपद के मेघ उलट गये हों— या समुद्र का जल गहरी ध्वनि करता हो ।

दोहा

दिल्ली पति फौजह रची, दियो जैत सिर छत्र ।
चावँड-रा अग्गै भयो, मनों सु गिरवर गत्त ।। १६ ।।

शब्दार्थः—रची=व्यूह रचना की, व्यूह बद्ध किया । चावंड-रा=चावंडराय । अग्गैं=अग्रगण्य । गत्त=चलना फिरना ।

अर्थः—इधर दिल्लीश्वर ने भी जैत्र प्रमार को सेनापति बना उसके सिर पर छत्र धारण करवाकर फौज को व्यूह-बद्ध किया और चावण्डराय उस सेना मे अग्रगण्य बना, वह ऐसा दिखाई दिया मानों चलता फिरता पहाड हो ।

कवित्त

फौज सची सामंत, गरुड़ व्यूह रचि गड्डिय ।
पख भाग प्रथिराज, चच चावड सु मड्डिय [1] ॥
गावरि अत्ताताइ, पांइ गोइंद सु ठड्डिय ।
पुछ कंन्ह चौहान, पेट पमारह पड्डिय ॥
सु डाल काल अग्गौ धरैं, कढे दोइ कलहन्न क्रिय ।
चालत वान गोरैं प्रवल, मानहु अंधकि मारदिय ॥ १७ ॥

प्रा० पा० १, स० ।

शब्दार्थः—गड्डिय=दृढ । चंच=चोंच के स्थान पर । मड्डिय=मढा, सुशोभित हुआ, शोभा बढ़ाई । गावरि=गर्दन । पांइ=पैर । ठड्डिय=ठाड़ा हुआ, खड़ा हुआ । पुछ=पूंछ । पमार=प्रमार [जैत्र प्रमार] । पड्डिय=पढा गया, कहा गया । सुडाल=हाथी । अग्गौं धरैं=आगे किये । कढे=निकले, चल पडे, आगे बढे । कलन्न किय=कलह कर्ता । गोरैं=गोले । अधकि=अधा । मारदियं=वार किया ।

अर्थः—पृथ्वीराज ने सामन्तों से मिलकर अपनी सेना को गरुड़ व्यूहाकार जमाकर दृढ बनाया । जिसमें पंखों के स्थान पर स्वयं पृथ्वीराज, चोंच के स्थान पर चावंडराय, गर्दन के स्थान पर अत्ताताई, पैरों के स्थान पर गोयदराव, पुच्छ के स्थान पर कन्ह चौहान, उदर के स्थान पर जैत्र प्रमार नियुक्त हुए और यम स्वरूप हाथियों को आगे बढाया फिर दोनों ओर से युद्धकर्ता आगे बढ़े । उसी समय बाण आग्नेयास्त्रों की मार इस प्रकार होने लगी जिस प्रकार अधा वीर अधाधुंध वार करता है (अंधे का वार किसी विशेष व्यक्ति पर नहीं होता, उसके वार से शत्रु मित्र सब कोई समाप्त होते दिखाई देते हैं) ।

तत्तारह उप्परह, चित्त चावड चलायौ ।
दुहूं फौज अग्गंज, दुहू भुज भार भलायो ॥
मीर वान वरखंत, धार धारा हर लग्गौ ।
त्राही चामंड राइ, भूमि तत्तारह भग्गौ ॥
उत्तरे मीर सै-पच-दुइ, दाहिम्मै किन्नी दहन ।
पहिलैं सु [1] झुम्भ दिन-पहिल कैं, मच्यौ जुद्ध जानैं महन ॥१८॥
प्रा० पा० १, घ० का० ।

शब्दार्थः—अग्गज=नहीं पजने वाले, अमत वीर । मलायो=समर्पित किया । भार=ग्रहण कर, पकड़ कर । धाराहर=धाराधर, तलवार । भूमि=युद्ध भूमि से । मग्गौ=भाग गया । उत्तरे=उतर पड़े, सहायतार्थ बढे । सै-पच-दुई=पांचसौ के दूने, एक सहस्र । दहन=दग्ध, नाश । पहिले सु भुम्भ्भ= सबसे पहले आक्रमण करके । दिन-पहिलकै=युद्ध के शुरु दिन । मच्यौ=ठाना, मडन किया । जानै= जिसने, उसने । महन=महान, घमासान ।

अर्थः—तत्तारखां से भिड़ने के लिये चावण्डराय आगे बढा (अपने चित्त को चलाया) उन दोनों दलों में वे दोनों वीर (तत्तार और चावण्ड) प्रचड माने जाते थे । इसीलिये दोनों की भुजाओं पर युद्ध का भार डाल दिया गया । उधर से वह मीर (तत्तार) बाण वर्षा करने लगा । इधर से चावंडराय तलवार पकड़कर उससे जा भिडा और वार किया, जिससे तत्तार युद्ध-भूमि को छोड कर भाग गया-उसकी सहायतार्थ एक सहस्र मीर बढ़े, उन सबका उस दाहिमें वीर ने नाश कर दिया । इस प्रकार युद्ध के प्रारभिक दिन ही उसने (चामडराय ने) सबसे पहले आक्रमण कर घमासान युद्ध को जमा दिया ।

भूमि परयो तत्तार, मोरि कमनेत प्रहारै ।
इक्क[1] घाउ[2] दुय टूक, परे धारन मुहु[3] धारै ॥
खुर वज्जै खुरतार-चमकि चावड चलायौ ।
भरै वथ्थ सिर हथ्थ, एक-वहु लख्खन धायौ ॥
जव परैं चूद तव वीर हुअ-सत्त घरी साहस धरैं ।
तिन-मारि-कटक त्रिविधी-घडा[4], एक एक पग अनुसरैं[5] ॥ १६ ॥

प्रा० पा० १, २, ३, ५ भों । ४, पा०, का० ।

शब्दार्थः—कमनेत=धनुर्धर । इक्क-घाउ=एक वार । धारक-मुहु-धारै=तलवार की धारा को सामने सहने पर । खुर=पैर । भरै-वथ्थ=बाहुपार्श्व में ग्रहण करता हुआ । सिर हथ्थ=सिर पर हाथ मारता हुआ । एक-बहु=अकेला वहन करता, अकेला वढता । लख्खन धायौ=लाखों का समूह वढा हो, लाखों वढे हों । सत्त=सौ । तिन-मारि-कटक=उनके कट कटाकर, दांत पीसकर, वार करने पर । त्रिविधी-घडा=तीन प्रकार (अश्वारोही, गजारोही और पैदल) की सेना । पग-अनुसरै=पगका अनुसरण करती, एक के पीछे एक भागती ।

अर्थः—धनुर्धरों के वार से तत्तारखां धराशायी हुआ और जिन विपक्षियों ने तलवार की धार का प्रहार अग पर सहा, उनके एक ही वार में दो-दो खण्ड हो गये। अश्व के पैरों में चमकती हुई और वजती हुई खुरतालों सहित चामण्डराय आगे बढता रहा, वाहु पार्श्व को पकड कर सिर पर हथ्थल मारता हुआ वह वीर अकेला बढा; किन्तु विपक्षियों को ऐसा दिखाई दिया मानो लाखों वीर बढ़े हों, उस वीर की जहाँ रक्त की एक बूंद पड़ जाती थी वहाँ सौ वीर उठ खडे होते और वे घड़ी तक पराक्रम करते रहते थे। उनके दांत पीसकर वार करने पर तीनों प्रकार की (अश्वारोही, गजारोही और पैदल) सेना एक दूसरे के पैरों का अनुसरण करती थी। एक के पीछे एक भाग पड़ती थी।

खान खान आखूँद, अट्ठ सहसं वहु गक्खर।
परिय पंति अवनेस, पारि वहु गक्खर पक्खर[1] ॥
हयौ नेज चावड, बीर दो सहस लरे भर।
हस्ति इक्क[2] विन दंत,तमह तिन मथ्थ[3] सहस कर ॥
दाहिम्म राव मुरछ्यौ पर्‌यौ, दौरयौ जैत महा वलिय।
मानौ कि अग्गि[4] जज्जर वही, कलि ममम्मै रितवट क्रलिय ॥२०॥

मा० पा० १, ३, स०। २, पा०। ४, दे०।

शब्दार्थः—आखूँद = आने पर कुचला गया। वहु=वहन किया, बढा। गक्खर=जाति-विशेष। पंति=पङ्क्ति, सेना। अवनेस=अवनीस, पृथ्वीराज। पारि=गिराया, धराशायी किये। पक्खर=पखरेत। हयौ=हन्यौ, चलाया। नेज=नेजा। लरेभर=भिड़ पड़ा। मथ्थ=पर। सहस कर=सहस्र बाहु। रितवट=युद्धवट। जज्जर=काल, यम। वही=वहन की, फैलाई। क्रलिय=करिय, किया।

अर्थः—उस समय खानों में प्रसिद्ध जो खान था वह कुचला गया, तब आठ सहस्र गक्खरवीर बढ़े, यह देखकर पृथ्वीराज की सेना ने हमला किया, जिसने बहुत से पखरेत गक्खरों को धराशायी कर दिया। चामुण्डराय ने भी नेजा संभाला और वह दो सहस्र योद्धाओं से लड पडा। उसने सहस्रबाहु के समान तमोगुण धारण कर एक हाथी को दांत विहीन कर दिया, किन्तु वह दाहिमा वीर मूर्छित होकर धराशायी हो गया। यह देखकर शीघ्रता के साथ महान बलवान योद्धा जैत्र प्रमार इस

प्रकार आगे बढ़ा मानों कलिकाल में स्वयं यमराज क्रोधाग्नि की ज्वाला फैला कर युद्ध-वट का प्रदर्शन किया हो।

धपी मुट्ठि[१] सुरतान, मुट्ठि छुट्टि चावद्दिसि।
मनु किपाट[२] उघर्‌यौ[३], कूह फुट्टिय दिसि विदिसि॥
मार मार मुख किन्न, लिन्न चावंड उपारे।
परे सेन सुरतान, जाम इक्कह परि-धारे॥
गल बत्थ घत्ति गाढौ ग्रह्यौ, जानि सनेही भिटयौ।
चावडराइ करि-वर कहर, गौरी दल वल कुट्टयौ॥ २१॥

प्रा० पा० १, ३, दे०। २, भीं०।

शब्दार्थः—धपी=अघा गई, तृप्त होगई। मुट्ठि=मुष्टिका। किपाट=कपाट, किंवाड़। उघर्‌यौ=खुल गया। फुट्टिय=फट्टिय, फैली। उपारे=उठाया। जाम इक्कह=एक प्रहर तक। परि-धारे=खड्ग धारा पड़ने पर, खड्गाघात होने से। घत्ति=घायलकर, डालकर। भिट्‌यौ=भिटे, मिले। करि-वर=बल करके। कुट्टयौ=कूटा, मारा।

अर्थ—शाह की मुष्टिका (हाथ) इस युद्ध में अघा (तृप्त हो) गई। चारों ओर से उस समय वीरों की मुष्टिकायें (हाथ) चलने लगीं, जिससे ऐसा ज्ञात हुआ मानों स्वर्ग के द्वार खुल गये हो या कूह रात्रि, दिशा-विदिशाओं मे फैल गई हो। उस समय मार २ उच्चारण करते हुए चावण्डराय को उठाया गया, किन्तु उसकी खड्ग के एक प्रहर तक पड़ने से स्वय शाह भी धराशायी होगया। चामुण्डराय ने उसके गले मे हाथ डालकर ऐसा दृढ़ पकड़ा मानों एक प्रेमी दूसरे प्रेमी से मिला हो। इस प्रकार चामुण्डराय बल प्रदर्शित कर कहर (विघ्न) मचा दिया और गौरी शाह के दल पर मार की (प्रहार किया)।

जैत राइ जडधार, लियौ करदत मुक्खकर।
परैं वज्र सिर धार, मनो सेना सिर उप्पर॥
खुरसानी वगाल, मनहु डहुर – रमावैं।
भरैं पत्र युग्गनी[१], डक्क नारद वजावैं॥

अपछ्रा गीत गावत इला, तुंबर तंति[२] बजावही ।
सुरतान सेन दिल्लेस वर, मग्ग मग्ग सज्ज गावही ॥ २२ ॥

ग्रा पा. १, पा. । २, दे. ।

शब्दार्थः—जडधार=जड़लक तलवार । मुक्खकर=मुह में लेकर । डहूर-रमावै=डंहूर नामक खेल खेलते हों । पत्र=पात्र । युगिनी=योगिनियें । डक्क=कूह कर, उछल २ कर । इला=पृथ्वी । तु वर=गंधर्व । तति=तन्त्री ।

अर्थ.— जैत्रप्रमार ने एक तलवार हाथ में और दूसरी को मुँह में लेकर दाँतों से पकड़ी, उसकी खड्ग शत्रुओं के सिर पर इस प्रकार पड़ती हुई दिखाई दी मानों विपक्षी सेना पर वज्रपात हो रहा हो या खुरासानी और बंगाली मिलकर डहूर खेल खेल रहे हों। उस समय योगिनियाँ शोणित से खप्पर भरने लगीं। नारद उछल २ वाद्य बजाने लगा, अप्सराएँ गीत गाने लगीं, गधर्व तन्त्रीनाद करने लगे। इस प्रकार शाह और दिल्लीश की सेना का यश गान उनके द्वारा मार्ग २ पर होने लगा।

सिर धुन्नत[१] पतिसाह, धाह सुनि सेना सत्थिय ।
लुत्थि लुत्थि मुह-धार, परे वत्थन सों वत्थिय ॥
जम सोंजम आहुरै, सूर जुट्टै दुय[२] घुट्टै ।
नई गठि तन-जोग, सूर मुंडावलि थट्टै[३] ॥
खुरसान जैत अब्बू घनिय, धार धार मुह कट्टिया ।
ऐसो न जुद्ध दिक्खौ सुन्यो, दारुन मेछ दवट्टिया ॥ २३ ॥

ग्रा० पा० १, से ३, पा० ।

शब्दार्थः—धुन्नत=धुनने लगा । धाह=भयावह । सत्थिय=साथी । मुह-धार=तलवार के आगे, तलवार की धार द्वारा । आहुरै=भिड़े । सूर=योद्धा । जुट्टे=जुट पड़े । दुय घुट्टे=दो घड़ी तक । तन- ग=योग काय, शिव । थट्टै=करने लगे । मुह=मुहाने । मेछ=म्लेच्छ । दवट्टिया=दबा दिये ।

अथः— अपनी सेना और साथियों को भयावह सुनकर शाह अपने सिर को धुनने लगा। उस समय तलवार की धार द्वारा लोथों पर लोथें पड़ गई और एक दूसरे से परस्पर गुत्थम गुत्था हो गये। वीर परस्पर इस प्रकार दो घडी तक जूझ पडे मानों यम से यम भिडे हों। योग काय (शंकर) नई ग्रन्थियाँ लगाकर वीर मुण्डों का सग्रह

करने लगे [मुण्ड माला बनाने लगा]। खुरासान खाँ और आबू राजवंशीय जैत्र ने तलवार धारणकर एक दूसरे के मुँहाने को काट दिया, किन्तु जैत्र प्रमार ने भयकरता से मुसलमानों को दबा दिया। जैसा उसने युद्ध किया वैसा न तो आँखों से देखा और न कानों से सुना गया।

मनु द्वादस सुरिज्ज[1], हत्थ चद्रमा महासर।
जिन उप्पर खलमलै, ताहि-धर गोरिय सुब्भर॥
कटक कूह-किलकार, सार परमार बजायौ।
भिरि भज्यौ सुरतान, एक एकह मुख धायौ॥
सिर सार धार वुठ्यौ प्रहर, तब दौर्‌यौ पज्जून भर।
निसुरत्तिखान लख्खह-बली, लख्ख इक्क[2] पाइल सुभर॥ २४॥

ग्रा० पा० १, घ० पा० का०।, २, पा०।

शब्दार्थ:—सुरिज्ज=सूर्य। महासर=महान श्रेष्ठ। जिन-उप्पर=उसे उठाकर। खलमलै=खलबली मचा दी। ताहि-धर=उन्हें धर पकड़ कर। कूह-किलकार=किलकारी करके। सार=तलवार। वुठ्यौ=बरसा। लख्खह-बली=लक्ष वीरों के समान बल रखने वाला। पाइल=पैदल।

अर्थ:—उस समय वह वीर जैत्रप्रमार द्वादश सूर्य के समान दिखाई दिया और उसने तलवार क्या पकडी मानों द्वादश सूर्य ने हाथ मे श्रेष्ठ चद्रमा को पकड लिया हो।, उसे उठाकर उसने गौरी के अच्छे २ योद्धाओं मे खलबली (भागदौड) मचादी। सैन्य में किलकारी कर उस प्रमार वीर ने लोहा बजाया और प्रत्येक से सामना करता हुआ स्वय शाह से भिडा तथा उसे नष्ट-प्राय कर दिया। उस वीर प्रमार पर उस समय लोहे की धार एक प्रहर तक बरसी, यह देख कर वीर पज्जून तेजी से उसकी सहायतार्थ बढा। उससे सामना करने के लिये लक्ष वीरों के समान बलवान निसुरत्ति खान, जिसके अधिकार में एक लक्ष पैदल योद्धा थे, बढा।

कालजर इक लख्ख, सार सिधु रह गुडावै।
मार मार मुख चवै, सिंघ सिघा मुख धावै॥
दौरि कन्ह नरनाह, पट्टि छुट्टिय[1] अखिन पर।
हत्थ लई किरवान, रुड माला किन्निय हर॥

।बिहु बाह लख्ख लोहै परिय, जानि करी बरदा[२] हकिय ।
उच्छारि पारि धरि उप्परे, कलह कियौ किउ घान-किय ॥ २५ ॥

प्रा० पा० १, का० पा० । २, पा० ।

शब्दार्थ—सिंधुरह=हाथियों को । गुड़ावै=गिरने लगे, लुढ़कने लगे । चवै=कहते हुए, उच्चारण करते हुए । बिहु बाह=दोनों बाहु । लोहै=लोहधारी । करी=हाथी । बरदा=बिरदाया हुआ । हकिय=बढ़ा हो । पारि=पटक, पछाड़ कर । धरि उप्परें=पृथ्वी पर । किउ=कितने ही को । घान-किय=नष्ट कर दिये ।

अर्थ:—उस समय एक लक्ष कालिंजरों ने खड्ग द्वारा हाथियों को गिराना प्रारंभ किया और मुख से मार २ उच्चारण करते हुए सिंह रूपी वीरों का सामना करने लगे । यह देखकर कन्ह चौहान की आँखों से पट्टी खोली गई और तब वह वीर नरनाह शत्रुओं पर झपट पड़ा । उसने तलवार हाथ में लेते ही शिव की मुण्ड-माला को पूर्ण कर दिया । उसकी भुजाओं के आघातों से लाखों लोह-धारी योद्धा धराशायी हुए। वह इस प्रकार बढ़ा, मानों बिरदाया हुआ हाथी बढ़ा हो । उसने शत्रुओं को उखाड़-पछाड़ कर धराशाई कर दिया । इस प्रकार उसने युद्ध कर कितने ही वीरों को नष्ट कर दिया ।

कालंजर जब परिय, भगिय सेनापति साहिय ।
पच-भौज एकट्ठ, कंन्ह करवारि समाहिय[१] ॥
घर पारे बहु मीर, सथ्थ जब सेना भग्गिय ।
गर घत्ती कमान, लियौ गौरीय उछंगिय ॥
उत्तरे मीर पच्छे फिरे, हाय हाय मुक्खह कर्‌यौ ।
पज्जून झेलि-मुख मीर कौ, कन्ह लोइ गौरी वर्‌यौ ॥ २६ ॥

प्रा० पा० १, टि० ५ ।

शब्दार्थ:—पच-भौज=पांचाल देशीय सेना । एकट्ठ=एकत्रित । करवारि=करवाल, तलवार । समाहिय=पकड़ी । गर=गले में । घत्ती=डालकर । उछंगिय=गोद में । उत्तरे=उत्तर देशीय, या भगे हुए । पच्छे=पीछे । झेलि-मुख=उन्हें रोका, सामना किया । वर्‌यो=भला, गया, चल पड़ा।

अर्थ:—जब पाञ्चाल देशीय सेना को एकत्रित करने के लिये कन्ह ने तलवार पकडी, तब कालिंजर वीर धराशायी होगये और शाही सेना भाग चली। कन्ह ने बहुत से मीरों को धराशायी कर दिया। जिससे उनकी सेना भी भाग गई। उसी समय उसने (कन्ह ने) कमान गले मे डालकर गोरी को पकड़ा और उसे गोद मे ले लिया। यह देखकर हाय २ उच्चारण करते हुए भागे हुए मीर वापस लौटे, जिनका सामना वीर पज्जून ने किया और कन्ह चौहान गोरीशाह को लेकर वहाँ से (अजमेर की ओर) चल पडा।

जनु उद्यानह लाइ, पवन चल्ले ज्यौं वांधै।
त्यौं पज्जून नरिंद, मीर जम दढ्ढ साधै॥
परे मीर सै-सत्त, विए रन छुडिव भज्जै।
चामर छत्त रखत्त, तखत लुट्टै ज्यौ सज्जै॥
कन्हा नरिंद पतिसाह लै, गयौ थान अप्पन वलिय।
पमार सिंव लग्यौ-सु पय, चाव-भाय कीरति चलिय॥ २७॥

शब्दार्थ—उद्यानह=उद्यान में। लाइ=लाय, अग्निज्वाला। बांधै=बढी, वृद्धि पाई। जम दढ्ढ=कटार। साधै=निशाना बनाया। सै-सत्त=सात सौ। विए=अन्य, दूसरे। भज्जै=भाग गये। छत्त=छत्र। रखत्त=रसद सामान। ज्यौं सज्जै=जिस प्रकार धारण किये थे। लग्यौ-सु-पय=चरण स्पर्श किया। चाव-भाय=सन्मान।

अर्थ:—वीर पज्जून ने मीरों को अपनी चमचमाती कटार का निशाना बनाकर ऐसा दृश्य कर दिया, मानो उद्यान (बाग) मे पवन के सहारे अग्नि ज्वाला मे वृद्धि हुई हो। उसकी मार से सात सौ मीर धराशायी हुए। शेष युद्ध-भूमि को छोडकर भाग गये। शाह ने जिस प्रकार क्रमश चमर छत्र और तख्त आदि राज्य चिन्ह धारण किये थे, उसी प्रकार एक २ करके सब उतार दिये और रसद सामान भी लूट लिया गया। बलवान कन्ह नरनाह बादशाह को पकड कर अपने स्थान पर सकुशल जा पहुँचा। सिंह प्रमार ने भी इस युद्ध मे अच्छा साहस किया और पृथ्वीराज के चरण छूये। उस वीर का भी पृथ्वीराज ने अच्छा सम्मान किया, जिससे उसकी कीर्ति संसार मे फैल गई।

रहै कन्ह अजमेर, गयो चहुआन जैत लिय।
धरिअ-गग्गोरि नरिन्द, दौरि प्रथिराज सुद्ध दिय॥

गयौ अप्प अजमेर, तहां[1] पतिसाह नरिंदह ।
दिन किज्जै महिमान, पास ठढ्ढारहै वृन्दह ॥
बैठारि तखत सिर छत्र दिय, सभा विराजे सुपहुँ भर ।
सिर फेरि खैर-दिज्जै-दुनी, यों रक्खै पतिसाह दर ॥ २८ ॥

प्रा० पा० १, भीं ।

शब्दार्थ:—जैत-लिय=विजय प्राप्त करके । धरिय-गौरि=गोरी को बधन में लिया । सुद्ध दिय=सूचना दी । ठढ्ढारहै=खड़े रहते, नियुक्त किये । सुपहु=राजा । भर=सामंत । सिर-फेरि=मस्तिष्क को ठीक करके । खैर-दिज्जै-दुनी=ससार में शांति फैलाइये । दर=द्वार पर, अपने यहाँ ।

अर्थ:—शाह को लेकर कन्ह अजमेर जाकर रहने लगा और इधर चौहान पृथ्वीराज विजय प्राप्त कर दिल्ली पहुँचा । शाह को बधन में लेने की सूचना कन्ह ने शीघ्रता पूर्वक पृथ्वीराज को दी । तब स्वयं पृथ्वीराज अजमेर पहुँचा । वहाँ पर पृथ्वीराज ने बादशाह की हमेशा महमानदारी की । उसकी सेवा में सेवक-समूह नियुक्त कर दिया और राजाने सामतों सहित सभा की । उसमें गौरीशाह को भी तख्त पर बिठाया और उसके सिर पर छत्र रक्खा गया फिर राजाने बादशाह को उपदेश दिया कि अपने मस्तिष्क को ठीक कर दुनिया में शान्ति बनी रहे । ऐसा आप कीजिये । इस प्रकार बादशाह को उसने अपने यहाँ सम्मान पूर्वक रक्खा ।

एक लक्ख वाजित्र, सहस तीनह मय मत्तह ।
लक्ख इक्क[1] तोरवार, तेज ऐराकी तत्तह ॥
आरब्बा[2] हथ्थिनी, सत्तसैं सत्त सुभारिय ।
चामर छत्र रखत्त, साहि लिन्निय रिध[3] सारिय ॥
सामत सूर बहु विधि भरिग, पट्टै घावमु बधियै ।
रन जीत सोधि सभर धनी बज्जै अनत सु वज्जियै ॥ २९ ॥

प्रा. पा. १, २, पा । ३, का ।

शब्दार्थ:—वाजित्र=वाद्य । मय मत्तह=मस्त हाथी । तोरवार=घोड़े । ऐराकी=घोड़े । तत्तह=ताते, वेगवान । रखत=रखकर, लौटाकर । रिध=रिद्धि, सम्पत्ति । भरिग=भिड़े । सोधि=खोज करा कर ।

अर्थः—एक लक्ष वाद्य, तीन हजार मस्त हाथी, ऐराकी जाति के वेगवान एक लक्ष घोडे, अरब देशीय दीर्घ काय सात सौ सात हथनियाँ आदि शाही सम्पत्ति छीन ली गई। केवल शाह के चॅवर और छत्र पृथ्वीराज ने लौटा दिये। इस युद्ध मे अपने बहुत से सामन्त भिड़ पडे थे, विजय के बाद सॅभरेश्वर ने उनकी खोज करवा कर उनके घावों पर पट्टियाँ चढवाईं और बहुत से विजय-वाद्य बजवाये।

रची सभा पृथिराज, सूर सामत बुलाए।
गोयद निद्दुर सलख, कन्ह पतिसाह पठाए॥
करौ दड सिर छत्र, राम प्रोहित पुडीरह।
रा पज्जून प्रसंग[१], राव हाहुलि हंमीरह॥
इत्तने मत्त ममझह मिले, हम मारै छंडे[२] न अब।
व्है है न हास[३] अवकें हमैं, फिरिन[४] आइहै[५] इह सु कब॥ ३०॥

श्रा पा १, पा घ। २, ४, ५, दे। ३, घ का.।

शब्दार्थः—मत्त मभ्भह=मुख्य मंत्रणा देने वाले। छडेन=नहीं छोडेंगे। हास=हास्य, उपहास।

अर्थः—फिर दूसरे दिन पृथ्वीराज ने वीर सामन्तों को बुलाकर सभा की, जिसमे गोविन्दराय, निड्डुरराय, सलख जैत्र, कन्ह, गुरुराम पुरोहित, चद पुंडीर, पज्जूनराय, प्रसगराय और हाहुलीराय हम्मीर इत्यादि योद्धाओं को, 'जो मुख्य मत्रणा देने वाले थे, बुलाया गया। कन्ह ने भी अपने बंधन से मुक्त शाह को पृथ्वीराज के सुपुर्द कर दिया। फिर सब सामन्त बोले— हम इसे अब मारना चाहते हैं, छोडेंगे नहीं। ऐसा करने से यह फिर कभी नहीं लौटेगा और न हमारा पुन उपहास ही होगा।

दिये देस खधार, दिए पाल्हवान सार।
कासमीर कबिलास, दिए धर[१] टिला पहार॥
गज्जन रक्खै देस, वियौ समयै प्रथिराजह।
नातरु छुट्टै नाहिं, करें हम उप्पर काजह॥
बुल्लयौ[२] कन्ह करनाह सुनि, अबकै मारै कोइ नह।
पॅजाब दियौ छुट्टै सु अब, इहह[३] मीर दिज्जे हमह॥ ३१॥

प्रा०पा०१, दे०। २, ३, पा०।

२

शब्दार्थः—पछियान=पश्चिमीय देश। सारं=सारा, श्रेष्ठ। कविलास=काबुल। वियौ=अन्य। नातरु=नहीं तो। उप्पर काजह=उपरोक्त कार्य।

अर्थः—फिर वे बोले—यदि खंधार, पश्चिमीय देश, काश्मीर, काबुल और टिल्ला भू-भाग के पहाड़ादि देश, पृथ्वीराज को समर्पित करदे और केवल गजनी प्रांत अपने अधिकार मे रक्खे, तो यह जीवित छूट सकता है अन्यथा हम उपर्युक्त कथित कार्य को करके छोड़ेंगे, (इसे मार देंगे)। यह सुनकर नरनाह कन्ह बोला, इस वार इसे कोई नहीं मार सकता। केवल पंजाब देने पर यह छोड़ा जा सकता है। हे वीर हम्मीर! इसी बात पर हमारे कहने से ही शाह को हमे दे दीजिये (हमारे कहने से इस वार शाह को छोड़ दीजिये)।

तब बुल्ल्यौ पृथिराज, कहे काका सा किज्जै।
जेता रजक होइ, तिता लादा भरि लिज्जै॥
जग्ग कियौ पहवन, हेम का चौ उनि आन्यौ।
त्यौं लभ्यौ पतिसाह, लक्ख लोहा हम मान्यौ॥
करि दण्ड कंन्ह पतिसाह को, लौहानौ सत्थै दियौ।
असवार सहस सत्थे चले, कर सिर कंन्ह इत्तौ कियौ॥ ३२॥

प्रा० पा० १, पा०।

शब्दार्थः—बुल्ल्यौ=बोला। रजक होइ=प्रसन्न कर सकता हो, दे सकता हो। का=क्या। चौं=चारों ओर का। उनि=उन्होंने। आन्यौ=लिया कर=लगान, ऋण।

अर्थः—तब पृथ्वीराज ने कहा—जो काका कन्ह कहे वही बात माननी चाहिये, जितना यह (गौरीशाह) प्रसन्नता पूर्वक दे सके (दे सकता हो) उतना दण्ड भर लिया जाय (दण्ड ले लिया जाय)। पाण्डवों ने भी राजसूय यज्ञ किया, किन्तु क्या उन्होंने चारों ओर का सोना ले लिया? (चारों दिशाओं को जीत लिया लेकिन सब की सम्पत्ति नहीं ली)। उसी प्रकार तुमने बादशाह को पकड़ लिया है। जिससे लाखों शत्रुओं ने हमारा लोहा माना है यही विशेषता है। यह कहकर कन्ह के कथनानुसार बादशाह पर दण्ड किया गया और एक हजार सवारों सहित लोहाने को गजनी सुरक्षित पहुँचाने के लिये साथ में दिया। इस प्रकार इस बार कन्ह ने बादशाह के सिर पर प्राणदान देने का ऋण किया।

करि सलाम गजनेस, करिय नवनीह दिलेसर ।
तम रखियो हम प्रीति, बरख मन सत्त हकेसर ॥
पेसंगी धर सीम, बीच पौरान कुरान ।
जो तक्कौ तुम अबै, तबै तुम कढियो प्रान ॥
उत्तरौ अटक तौ मैं अवर, मुसलमान नाही धरौ ।
तुम हमसु प्रीत चलि है बहुत, हूं न अबै ऐसी करौ ॥ ३३ ॥

शब्दार्थः—नवनीह=नमन, सलाम । बरख=वर्ष । मन-सत्त=सच्चे मन से, शुद्ध भाव से । हकेसर=श्रेष्ठ ढग से विदा किया । पेसंगी=पेश किया हुआ, सधि रूप में दिया हुआ । अवर=अन्य, ओर ही । नाही-धरौ=न समझो । हू=मैं ।

अर्थः—विदा होते समय शाह ने नम्रता के साथ पृथ्वीराज को सलाम किया और कहा, आपने एक वर्ष तक शुद्ध भाव से हमें प्रीति पूर्वक रखकर विदा किया है इसलिये जो पेश किया हुआ (सधि मे दिया हुआ) भूभाग सीमाबद्ध है । उसकी ओर अब मैं फिर देखू तो तुम्हारे और हमारे बीच कुरान और पुराण है । यदि फिर मैं ऐसा करू तो आप प्राण दड ही दीजियेगा । अब मैं अटक से इस पार आऊँ तो मुसलमान नहीं, मुझे ओर ही समझिये । तुम्हारे हमारे बीच अब प्रीति रहेगी और भविष्य में ऐसा नहीं होगा ।

सु पहु[1] चल्ल्यो सुरतान, दियो लोहानों सत्थे ।
सहस सेन असवार,[2] काल छुट्यो सें हत्थैं ॥
गयो बीस म्होलान, अटक उत्तारि अनपार[3] ।
सोवन पथ मेलान, सहस मम्हे असवार ॥
निसुरत्ति सुतन दरिया सुतन, आइ कियो सल्लाम तहँ ।
आजान बाह महिमान किय, चल्यौ आप गज्जन रहँ ॥ ३४ ॥

मा पा १. सर्व प्रति । २, दे । ३, पा ।

शब्दार्थः— पहु=राजा पृथ्वीराज । सें हत्थैं=स्वय हाथों से । म्होलान=मुकाम । सोवन=सोन नदी । मेलान=मुकाम । मम्हे=सामने । रहँ=राह ।

अर्थः—राजा पृथ्वीराज दिल्ली रवाना हुआ और एक सहस्र सवारों सहित लोहाने को साथमे देकर पृथ्वीराज ने शाह को विदा किया ।

तब शाह ने मनमें समझा कि मैं साक्षात काल के हाथ से छूट पाया हूँ। वह रास्ते में बीस स्थान पर ठहरता हुआ गहरी अटक नदी के पार उतरा। वहाँ सोन पथ पर एक हजार सवार सामने लेकर निसुरत्तिखां और दरियाखा का लड़का आकर मिला और सलाम की। शाह ने लौहाने आजान बाहु को अपने यहाँ महमान होने का आग्रह कर उसे साथ में लिया और वहाँ से आगे बढ़ा तथा गजनी का रास्ता लिया।

रय सल्लह रिन-वट्ट[1], सहस अट्ठारह सत्थें।
हे रौ-करि पतिसाह[2], पुले-लग्गा इन-पत्थें॥
दुत्त-च्यारिअनु सार[3], कटक देख्यौ असवारह।
कह्यौ चरन सब सत्थ, सहस दुइ सेना-सारह॥
तिन बार बज्जि त्रंबाल बहु, सिलह सज्जि दरबार[4] सहु।
उत्तर्‌यौ कटक छोरे अटक, नद्दी हुऔ उगत पहु॥ ३५॥

ग्रा०पा०१, पा०का०। २, च०भीं०पा०। ३, घ०। ४, पा०।

शब्दार्थ:—रिन-वट्ट=युद्ध वट। हे रौ-करि=पता लगाता हुआ, खोज करता हुआ। पुले-लग्गा=चलने लगा। इन-पत्थें=उसके रास्ते, उसके पीछे। दूत-च्यारिअनु=दूताचारमें, दूत पने में। सार=सारा, श्रेष्ठ। चरन=दूतों ने। सेना सारह=शस्त्र कुशल सेना या श्रेष्ठ सेना। तिनबार=उस समय। त्रंबाल=तासे, बाघ। दरबार=दरबारी सैनिक। सहु=सब। कटक=दल, सेना। छोरे-अटक=अटक को पार करके। नद्दी=नाद। उगंत-पहु=दिन उदय होते २, प्रात: होते २।

अर्थ:—युद्ध में जीवट रखने वाला अठारह हजार सैनिकों के साथ रयसल्ल नामक वीर बादशाह की खोज करता हुआ उसी के पीछे होगया। रयसल्ल के श्रेष्ठ दूतों ने शाह के साथ जो अश्वारोही दल था उसे देखा और उन्होंने रयसल्ल से कहा कि दो हजार शस्त्र-कुशल सेना, शाह के साथ है। यह सुनकर उसी समय उसने बाजे बजवाये और उसके सब सैनिकों ने कवच धारण किये। जब, शाही दल अटक से पार हुआ तब प्रातःकाल होते २ रयसल्ल के रणवाद्यों का नाद सुनाई देने लगा।

गाथा

बज्जै पुट्ठि तँबाल[1], हथ्थिय नेजं सु उप्पर फहरँ।
जानि समुद्द वहाल, किय गजनेस हुकमयं मीरँ॥ ३६॥

ग्रा पा. १, घ।

शब्दार्थः—पुट्ठि=पीठ पर, पीछे। तँबाल=त्रबाल वाद्य। नेज=नेजा, पताका। उहाल=उमड़ा हो।

अर्थः—पीछे की ओर रणवाद्य बजते हुए और हाथियों पर पताकाएँ फहराती हुई दिखाई दी और रयसल्ल की सेना ऐसी दीख पडी मानों समुद्र उमड़ा हो, यह देख कर शाह ने मीरों को सचेत होने का आदेश दिया।

कवित्त

कह्यौ साहि[१] लोहान, कौन बज्जा बज्जाए।
दौरि दूत तिन वेर, धनी पछिवानह धाए॥
कूच कूच पर कूच, कौन पछिवान धनी कहि।
तब जान्यौ रयमल्ल, सेन आजान बर्‌यौ सहि॥
पतिसाह चलो हूँ[२] पछि रहौ, सहस डेढ असवार दिय।
बधेव फौज लोहान बर, दुहूँ[३] फौज टामक किय॥३७॥
प्रा० पा० १, ३, भीं०। २ का०।

शब्दार्थः—तिन वेर=उस समय। धनी=स्वामी, नरेश। पछिवानह=पश्चिम देशीय। धाए=आया, बढा। बर्‌यौ=स्वामित्व ग्रहण किया। सहि=सह, समस्त। हूँ=मैं। पछि=पीछे। बधेव=व्यूह बद्ध किया। टामक-किय=नक्कारे पर डंका दिया वाद्य बजे।

अर्थः—शाह ने लोहाने से कहा कि ये रणवाद्य किसके बजते हैं, तब दूतों ने दौड कर पता लगाया और कहा कि पश्चिम देशीय नरेश बढ रहा है। शाह ने पूछा कि निरन्तर आगे बढने वाला यह कौन सा पश्चिमी नरेश है? जब ज्ञात हुआ कि यह तो वीर रयमल्ल है, तब लोहाने ने समस्त सेना का स्वामित्व ग्रहण कर बादशाह से कहा आप चलिये, मैं पीछे रहता हूँ। यह सुनकर शाह ने डेढ सहस्र सवार उसके साथ में दिये तब वीर लोहाने ने अपनी सेना को व्यूह बद्ध किया और दोनो सेनाओं में रणवाद्य बजने लगे।

अरुन किरन पसरत, आइ पहुँच्यौ रयसल्ल॥
बज्जे बान विहग, जानि जुट्टा दुय[१] मल्ल॥
समाही आजान, तेग मानहु हवि दिट्ठिय।
जानि सिखर मझि बीज, कच रेसल्लह वुट्ठिय॥

लोहान तनी वज्जै लहरि, को[२] हल्लै को[३] उत्तरे ।
परनाल रुधिर चल्लै प्रबल, एक घाव एकह मरै ॥ ३८ ॥

प्रा० पा० १, घ० । ७, ३, पा० ।

शब्दार्थः—पसरत=फैलने पर। वज्जे-वान-विहंग=पक्षियों के पख-ध्वनि के समान बाणों की सनसनाहट होने लगी। जुट्टा=जुटं, भिड़े। समाही=पकड़ी। हवि=हवि, हव्य। मझि=में, पर। वीज=बिजली। वुट्ठिय=बरसी। तनी=की। को=कोई, कितने ही। उत्तरे=उतर पडे। घाव=घायल।

अर्थः—सूर्य की अरुण किरणें जब फैल रही थीं, उस समय रयसल्ल आ पहुँचा। पक्षियों की पख ध्वनि के समान बाणों की सनसनाहट होने लगी और लौहाना व रयसल्ल भिड़ते हुए ऐसे दीख पडे, मानों दो मल्ल जूझ पडे हों। लौहाने ने तलवार पकड़ी, वह तलवार हवि के समान शत्रुओं का होम (स्वाहा) करती हुई दृष्टि गोचर हुई। रयसल्ल के कंधे पर वह इस प्रकार पड़ी, मानों शिखर पर बिजली पड़ी हो। लौहाने की तलवार के चल कितने ही भाग गये और कितने ही उस तलवार के घाट उतर पडे। भयकर रूप से खून का परनाला वह चला। उस वीर के आघात से कोई घायल हुआ और कोई मारा गया।

दोहा

मुह-मुह चमकै दामिनी, लोह वज्यौ लौहान ।
इक उप्पर इक इक्क तर, लुत्था[१] लुत्थ समान ॥ ३६ ॥

प्रा० पा० १, घ० ।

शब्दार्थः—मुह-मुह=मधुर मधुर, शनै २। दामिनी=बिजली। तर=तल, नीचे, तले। लुत्था लुत्थ=गुत्थम् गुत्था।

अर्थः—लौहाने ने ऐसा लोहा बजाया, मानों शनै २ बिजली चमक रही हो। जिससे वीर एक दूसरे पर इस प्रकार ऊपर तले पड़ने लगे मानों वे गुत्थम् गुत्था हो रहे हों।

पर्‌यौ लुत्थि रयसल्ल तहँ, ढुंढि खेत लौहान ।
सु वर साहि गोरी त्रिभय, गयौ सु गज्जन थान ॥ ४० ॥

शब्दार्थः—लुत्थि=भिड़ कर । सु बर=उस लोहाने के बल पर । निमय=निर्भय ।

अर्थः—उस समय रयसल्ल लड़ता हुआ धराशायी हुआ । लोहाने ने रणक्षेत्र को खोजा । उस लोहाने की शक्ति पर ही गोरीशाह निर्भय होकर गजनी पहुँचा ।

कवित्त

तत्तारिय खुरसान, सुतन गोरी पय लग्गा ।
न्यौछावरि करि-खैर, बहुत मनसा भय भग्गा ॥
लख्ख एक असवार, मिल्यौ गौरी दल पक्खर ।
लक्ख भए दरवेश आइ पइ लग्गे गक्खर ॥
उच्छाह भयौ गज्जन इला, गयौ मभिझ गोरी-धनिय ।
दरबार भीर मीरन्न[1] घन, मिलत आइ अप-अप्पनिय ॥ ४१ ॥

प्रा० पा० १. घ० ।

शब्दार्थः—करि खैर=खैर मनाई । बहुत मनसा=मन में बहुत से । भग्गा=दूर हो गये । पक्खर=पखरैत अश्वारोही । दरवेश=फकीर । आइ=आकर । पइ-लग्गे=चरण छूये । मभिझ=में, अन्दर, महल में । गोरी-धनिय=गोरियों का स्वामी । अप-अप्पनिय=अपने सब ।

अर्थः—तत्तारखां, खुरासानखां और शाहजादा ने आकर शाह के चरण छुए और न्योछावर कर खैर मनाई । मन में जो आशकायें थीं, वे सब दूर होगईं । गोरी का एक लक्ष अश्वारोही दल उससे आकर मिला और लाखों गक्खर, जो युद्ध मे फकीर होगये थे, वे भी आकर शाह के चरण छूने लगे । इस प्रकार गजनी में और उसके प्रान्त मे उत्सव मनाया गया । फिर गोरीशाह ने महलों मे प्रवेश किया । सभा मे बहुत से मीरों की भीड़ लग गई और जो अपने थे वे सब आकर मिले ।

डेरा दिय लोहान, करिय मनुहारि रोज दस ।
करिय मत्त आज्ञान तुरिय पचास आप बस ॥
दह दिन्नौ लोहान, फियौ भेज्यौ नृपराज ।
लादे दोइ हजार, सत्त सै तोल साज ॥
इक इक्क तुरी हथ्थी सु इक, सामन्तन दीनौ मयै ।
मुह करिय किन्ति अन्नेक विधि, सुबर मूर फेरिय जयै ॥ ४२ ॥

शब्दार्थः—मनुहारि=मनुहार। करिय=करि, हाथी। सत्त=सात अप्प वस=मालिक के अधीन रहने वाले। वियौ=अन्य, कोष भेंट। लादे=उठ पाये। साजं=साज बाज। सुवर=सबल। सूर=शूर, शूरवीर। फेरिय=फेरा, विदा किया।

अर्थः—लौहाने को डेरा दिलवाया गया और दस दिन तक मनुहार कर रखा। प्रस्थान के समय उसे मदमस्त सात हाथी और मर्षार के अधीन रहने वाले पचास घोड़े दिये। शेष भेंट पृथ्वीराज को भेजी जिसमें दो हजार सात सौ तोला (सुवर्ण) साज बाज(भूषणादि) थे। एक २ घोड़ा और एक२ हाथी सब सामन्तों के लिये भेजा। इस प्रकार उस बलवान वीर को विदाकर शाह ने अपने मुंह से राजा और सामन्तों की बहुत कुछ प्रशंसा की।

सीख दई लोहान, चल्यौ दिल्लिय पथानं।
सग सहस असवार, अप्प रिध वासव यान॥
दिल्लीपति सामंत, कुली[१] छत्तीसह दक्खै।
मिल्यौ बाह आजान, वत्त सुरतान सु अक्खै॥
इक इक्क तुरिय हत्थी सु इक, सामतन पठए घरै[२]।
सोव्रन्न रासि रंजक खरह[३], मुक्कलियै चित्रगपुरै॥ ४३॥

प्रा० पा० १ से ३, दे०।

शब्दार्थः—सीख दई=विदा दी। पथान=राह, पथ। अप्प=अर्पित की हुई। रिध=रिद्धि, सम्पत्ति। वासव यान=इन्द्र विमान। खरह=खरा, शुद्ध। चित्रगपुरै=चित्तौड़ेश्वर के पास।

अर्थः—लौहाने ने विदा मिलने पर दिल्ली की राह ली। उसके साथ एक हजार सवार, अर्पित की हुई सम्पत्ति और इन्द्रविमान था। छत्तीस ही वंश के रण दक्ष सामन्तों और दिल्लीश्वर से आकर वह आजान बाहु लौहाना मिला और शाह के यहाँ की बातें कहीं। फिर राजा ने शाह द्वारा भेजा हुआ एक २ हाथी और एक २ घोड़ा सामन्तों के यहाँ भिजवा दिया और दंड-स्वरूप आया हुआ शुद्ध स्वर्ण और चांदी चित्तौड़पति के पास भेंट रूप में भेजी।

गढ चित्तौड दुरंग[१], भट्ट पठयौ परिमान।
कहे[२] सित्त[३] सुरग, सित्त लै तुलन प्रमानं॥

दुश्र' हत्थी मयमत्त, मत्त हय वर कुल राक्रिय ।
छत्र लियौ पतिसाह, जटित मनि मानिक साक्रिय ॥
लै चद चल्यौ चित्तौड़गढ़, जाइ समप्यौ राव रह ।
बहु दान दियौ रावर समर, चल्यौ भट्ट आपन घरह ॥ ४४ ॥

प्रा० पा० १, घ० भीं० का० । २, पा० । ३, भीं० का० । ४, भीं । ५ दे० ।

शब्दार्थ:—परिमान=परिमाण, प्रमाण । लद्दे=लादे जा सके । सित=सौ । सुरंग=घोड़े । तुला=तुलादान (राजा, महाराजा, श्रीमतादि अपने बराबर सोना चादी तोलकर दान करते हैं, उसे तुलादान कहते हैं) । राकिय=ऐराकी । साकिय=साज ।

अर्थ:—वह द्रव्य लेकर कविचद को दुर्गम दुर्ग चित्तौड़ भेजा जिसका प्रमाण निम्न है-सौ अच्छे घोडे लादे गये, जितना द्रव्य था वह सौ तुला के बराबर था । दो मस्त हाथी, सौ ऐराकी घोडे तथा जो शाही छत्र लूटा गया-वह तथा अन्य मणि-माणिक जटित साज बाज इत्यादि थे। वह उन्हें लेकर चित्तौड़ पहुँचा और वहाँ जाकर उसने रावल को समर्पित किया। तब रावल (समर विक्रम) ने चंद को बहुत दान देकर विदा किया ।

करनाटी पात्र

(समय २८)

दोहा

दूत चरित दिल्ली तनौ, देखि गयौ कनवज्ज ।
चढत पंग सम्हौ मिल्यौ, सु वरवीर कमधज्ज ॥ १ ॥

शब्दार्थः—चरित=हाल । तनौ=का । कनवज्ज=कन्नौज । पंग=पंगुराज जयचंद । चढत= चढाई करते समय । सम्हौ=सामने । सु=उस । वरवीर=श्रेष्ठवीर ।

अर्थः—दिल्ली की स्थिति देखकर दूत कन्नौज गया । वह श्रेष्ठ कमधज वीर जयचद के सामने उसी समय जाकर खड़ा हुआ, जब कि वह चढाई करने वाला ही था ।

करिषल खट सुरतान सौं, दल भग्गौ सुविहान ।
अब करनाटी देस पर, चढि चल्यौ चहुवान ॥ २ ॥

शब्दार्थः—करिषल=कर्षण, । षट=छ । सुविहान=सुबहानी, मुसलमानी, शाही ।

अर्थः—दूत ने कहा-सुलतान से छः वार युद्ध में टक्कर हुई जिससे शाही दल को भागना पड़ा । अब वीर चौहान ने (पृथ्वीराज ने) करर्नाटक देश पर चढाई की है ।

कवित्त

चढ्यौ सुवर चहुवान, वीर क्रन्नाट देस पर ।
मिली जद्दव वर सेन, तारि कढ्यौ सु तुंम[1]नर ॥
धर दक्खिन[2]दक्खिन[3]नरिंद, सबै पृथिराज सुगाही ।
तिन राजन इक पात्र पठय, नाइक घर थाही ॥
वर वीर युद्ध, कमधज्ज[4] करि, भीर भगी वर वीर अचि ।
तिहि दिना वीर पज्जून[5] पर, खग्ग[6] मारि[7] वोहिथ्थ मचि ॥ ३ ॥

ग्राह्यपाठ-१ का । २, से ६, सं० । ७, पा ।

शब्दार्थः—वरसेन=नाम विशेष या श्रेष्ठ सेना । तारि=ताड़ना देकर । कढ्यौ=निकाल दिया । तुंम=तोम, समूह । गाही=कुचलदिया । पात्र=वैश्या (इसे दासी भी लिखा है) । पठय=पठाई, भेंट

स्वरूप दी। नाइक=उस्ताद (नर्तक)। घरथाही=घर की शक्ति थाह कर। श्रचि=शोषण कर। बोहिथ्थ=बहुत, विशेष

अर्थ:—उस बलवान चौहान ने कर्नाटक देश पर चढ़ाई की, जिससे वरसेन नामक यादव को पराजित कर (यादवी सेना को पराजित करके) नर समूह को (पृथ्वीराज ने) ताडना दी और निकाल दिया। दक्षिणी प्रदेश और वहाँ के राजाओं को पृथ्वीराज ने कुचल दिया। उन राजाओं ने मिलकर, अपने घर की स्थिति देखकर एक वैश्या और नायक (नर्तक) भेंट स्वरूप पृथ्वीराज के पास भेज दिये। हे-कमवज्जराज! सुनिये, उस वीर श्रेष्ठ पृथ्वीराज ने युद्ध में बहुत से उत्तम वीरों का रक्त शोषण कर उन्हें भगा दिया। इस युद्ध में वीर पज्जून पर तलवार चलाने का विशेष भार पड़ा (अर्थात् उसने विशेष शक्ति लगाई)।

दोहा

ल आयौ नाइक्क सथ, करनाटी प्रिथिराज[१]।
जत्र तत्र एकठ भए, सवै साज सम्माज ॥ ४ ॥

ग्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थ:—करनाटी=कर्नाटक देश की होने से वैश्या को करनाटी लिखा गया। जत्र तत्र=यत्र तत्र। साज=सामान, वाद्य, यन्त्रादि। सम्माज=समाज।

अर्थ:—इसप्रकार पृथ्वीराज नर्तक सहित करनाटी को अपने साथ में ले आया, जिससे नाट्य तथा गायन विषयक सब साज सामान संग्रहीत हुआ और उस वैश्या को देखने के लिये समाज एकत्रित हो गया।

कवित्त

संवत इकत्यालीस[१], सुदिन प्रिथिराज राज भर।
अति सामंत उभार, तखत[३] वज भ्रम्म ढिल्लि धर ॥
दिय थानक नाइक्क, नाम किल्हन[४] गुन[५] गेय।
अति संगीत सु चित्र[६], कला लच्छन्न[७] अनेय[८] ॥
ना सत्थ त्रीय रति रूप तन, वरस[९] चवद चातुर सकल।
दुव तीस सुलच्छित[१०] मति विमल, अति मति अगनित विद्य वल[११] ॥ ५ ॥

ग्रा पा १, स। २,३,४,७,१०, का। ४, घ पा। ६, ८, का.। ६, ११, का घ।

शब्दार्थ:—उमार=फूलना। तखन=तख्त। धज=ध्वजा। ध्रम्म=धर्म। ढिल्लि=दिल्ली। थानक=निवास स्थान, गृह। गुनगेयं=गुण ज्ञाता। विद्य=विद्या। लच्छन=लक्षण। अनेयं=अपार। रूव=रूप। दुव तीस=बत्तीस। लच्छिन=लक्षण। मति=बुद्धि।

अर्थ:—अनंद संवत् ११४४ (वि० १२३५) में पृथ्वीराज ने यह विजय की। वे दिन पृथ्वीराज और उसके सामन्तों के लिए अच्छे थे। इस विजय से सामन्त फूले नहीं समाये। उस समय दिल्ली का तख्त धर्म की ध्वजा स्वरूप था। पृथ्वीराज ने भेंट में आए हुए नर्तक कलहन को, जो गुणज्ञ, संगीतज्ञ, विद्या एवं कला का ज्ञाता और अनेक सुलक्षणों से युक्त था, रहने के लिये निवास स्थान दिया। उसके साथ वह स्त्री (कर्नाटी वैश्या) थी, जिसके शरीर की सुन्दरता रति के समान थी। वह चौदह वर्ष की आयु वाली, रूव बातों में चतुर, बत्तीस ही लक्षणों से युक्त, निर्मल मतिवाली और अपार विद्याबल कारण विशेष मतवाली थी।

दोहा

संझ समय अदर महल, किय सु राज-ग्रह धाम।
अप्प बयट्ठौ राज तहँ, अनत सजग्गित काम ॥ ६ ॥

शब्दार्थ:—संझ=सांझ, संध्या। महल=सभा। राज-ग्रह=राज-महल। धाम=खास महल। अप्प=आप-स्वयं। बयट्ठौ=बैठा। अनत=अनंत, विशेष। सजग्गित=सजग, सचेत (जागृत अर्थ भी होता है, किन्तु मर्यादा के खयाल से काम में नहीं लिया गया)।

अर्थ:—संध्या होने पर पृथ्वीराज ने राज-महलों के अन्दर अपने खास महल में सभा की और स्वयं विशेष रूप से कामदेव से सजग रहकर आ बैठा (अर्थात् वैश्या पर मोहित होकर भी उसने सभा में मर्यादा का ध्यान रक्खा)।

कवित्त

रुच्च धाम अभिराम, राज हरि थान बयट्ठौ।
दिपत देह[1] सुभ लीह, तेज उब्भर तप त्रिट्ठौ ॥
बोलि चंद पुण्डीर[2], बोलि जद्दव रा जानं।
निड्डुर बोलि कमधज्ज, अत्ति जा मति[3] बल सामं ॥

बलि भद्र बोलि कूरंभ भर, लोहानौ आजान भुअ ।
बैठक्क बैठि आसन्न सजि, ताम[4] सतप्पै तेज धुअ ॥ ७ ॥

ग्रा० पा० १, २. टि० । ३, पा० । ४, सर्वप्रति ।

शब्दार्थः—हरिथान=सिंहासन । वयट्ठौ=बैठा । सुम=शोभित । लीह=लकीर, मर्यादा । उम्मर=फैला । जिट्ठौ=ज्यैष्ठ । बोलि=बुलाया । जद्दव=यादव । रा-जाम=जामराय । निड्डर=निड्डुरराय । जा=उसकी । साम=समान, बराबर । कूरम=कूर्म, कछवाहा क्षत्रिय । भर=भट, सुभट वीर । लोहानौ=लोहाना क्षत्रीय । आजान भुअ=आजानुबाहु । बैठक्क=निर्धारित स्थान । ताम=उस समय । सतप्पै=तपते हैं । धुअ=ध्रुव ।

अर्थः—उस राजमहल को सुन्दर सजाया गया, वहाँ सिंहासन लगा हुआ था, उस पर आकर राजा बैठा, जिसके शरीर पर दीप्ति और मर्यादा सुशोभित थी, जिसका तेज ज्यैष्ठ मास के समान फैल रहा था। उस राजा ने सभा में चद पुण्डीर, जामराय यादव, अपने समान ही बल और विशेष बुद्धि रखने वाले निड्डुरराय कमधज, कछवाहा वीर बलिभद्र, और लोहाना आजानबाहु को बुलवाया। वे सब आकर अपने २ निर्धारित आसन पर बैठ गए। उस समय उनका तेज ध्रुव-कान्ति के समान था।

बोल ताम नाइक्क, सत्थ सत्थह सब साजं ।
बोलि पात्र कर्नाटि, बैठि गान वर[1] वाज ॥
नाटक भेव[2] निबध, बूझि राजन वर वत्त[3] ।
कवन कलाकृत पात्र, कहो नाइक निज सत्त ॥
नायक[4] कहै प्रथिराज सुनि, एह पात्र दिक्खो[5] सु पय ।
इह रूप रग जोवन सुवय, कला मनोहर चिंति मय ॥ ८ ॥

ग्राह्यपाठ -१, ३, ५ पा० । २ सर्व प्र० । ४ घ० ।

शब्दार्थः—सत्थ–सत्थह=साथ २ । गान=गायन । वर वाज=श्रेष्ठ वाद्य । भेव=भेद । निबध=रचना । वर वत्त=श्रेष्ठ बात । कलाकृत=कला कौशल । सत्त=सत्य । नायक=नायक, नर्तक । सु पय=अच्छा पानी, अच्छी कांति, अच्छा नूर । इह=इसका । जोवन=यौवन । सुवय=अच्छी आयु । मनोहर=सुंदर । चितिमय=चिंतन करने योग्य ।

अर्थ.—तब नर्तक को सभा में संगीत की सभी सामग्री सहित बुलाया और कर्नाटी वैश्या भी बुलाई गई। वह श्रेष्ठ वाद्य-यंत्रों के साथ बैठ कर गाने लगी। राजा शिष्ट ढंग से वार्त्तालाप करता हुआ नर्तक से नाट्य रचना के भेद और उस वैश्या की कला कुशलता के विषय में पूछने लगा और सत्य उत्तर देने के लिए आदेश दिया। तब नायक कहने लगा—हे राजन! यह अच्छे नूर (कांति) वाली है और इसका रूप रंग, यौवन, आयु तथा कला सब प्रकार से सुंदर और चिंतन योग्य है।

साटक

विद्या विनय विवेक, वानि विमलं वर्णो कुवेर-प्रभा।
सुविचारो सुविचक्षणे सु[1] सुभनं सौजन्य सौंदर्यता॥
भाग्यं रूप अनूपमं रस रसं संजोग विभ्भोगय।
मांगल्यं सपूर सौम्य कल स जानति[2] केली कला॥ ६॥

प्रा० पा०, १, २ पा०

शब्दार्थः—वानि विमल=शुद्ध वाणी, शुद्ध उच्चारण। वर्णो=कही जाती है। कुवेर-प्रभा=कुवेर की कांति (कुवेर का नूर उसके लक्ष्मी संपन्न होने से है, अतः लक्ष्मीवत या लक्ष्मी स्वरूपा अथवा संतान पिता का अंश माना गया है अतः यक्ष कन्या, या कुवेर की साक्षात् कन्या भी अर्थ हो सकता है)। सुविचारो=अच्छी प्रकार से विचार लिया है भली प्रकार से माना है, भली प्रकार से मानिये। सु=इसे। रस=रसिक, लीन। विभ्भोगय=उपभोग करने योग्य। सौम्य कल=चंद्रकला। स=यह।

अर्थ·—विचक्षण पुरुषों ने इसे विद्यावान्, विनयी, विवेकी, शुद्ध उच्चारण करने वाली, कुवेर की कांति स्वरूपा लक्ष्मी (यक्ष कन्या के समान) अच्छे विचार वाली, श्रेष्ठ मनवाली, सौजन्य एवं सौंदर्य्य युक्त और भली माना है (हे विचक्षण पुरुषो! इसे उपर्युक्त गुणों से युक्त मानिए)। इस का भाग्य और रूप अनुपम है, यह नवों रसों मे लीन है और संपर्क करने योग्य है। यह मंगल स्वरूपा, संपूर्ण चंद्रकला के समान है और केलिकला को जानने वाली है।

मृदु वाच[1] मृदु गान वाक्य[2] रचना मर्यादया[3] मडनें।
उद्दाय उद्दार दीप्ति[4] उवहं[5] एते गुना राजय ॥
सोय जान विचार सार[6] चतुर विव्वेक विच्चारय।
सोय नीति सुनीति क्तित्तिअ तुल प्राप्त जय जोरय ॥ १० ॥

प्रा० पा० १ से ६ तक पा०।

शब्दार्थ:—मृदुवाच=मधुर वचन। मृदुगान=मधुर गान। मर्यादया=मर्यादा से। मडन=मडित। उद्दाय=उदित होकर। उद्दार=उदार। उवह=प्रसारित होती है। एते=इतने। राजय=हे राजन्। सोय=इसे। सार=तत्त्व। चतुर=चतुरों के। विव्वेक=विवेक। विच्चारय=विचारा। सुनीति=सुनिए। किचित्र=कीर्ति। तुल=तुल्य। जय=विजय के। जोरय=बल पर।

अर्थ:—हे राजन्! इसके वचन, गीत और वाक्य रचना मधुर है, यह मर्यादा से मडित है इसकी दीप्ति उदित होकर फैलती रहती है, यह इतने गुणों से सुशोभित है। इसे आप चतुर पुरुषों के विचार के लिये तत्त्व रूप समझिए। यह मैंने विवेक से विचार कर कहा है। इसे नीति रूप समझिए और आपने इसे विजय के बलपर प्राप्त किया है। अत इसे कीर्ति-तुल्य मानिए।

दोहा

काम कला तुट्टे[1] नृपति सुग्रिह[2] पवारी द्वार।
तिन अवास दासी सघन अहनिस रहि[3] रखवार ॥ ११ ॥

प्रा० पा० १, २ पा०। ३, पा० का०।

शब्दार्थ:—तुट्टे=सन्तुष्ट हुआ, प्रसन्न हुआ। सु=उसका। ग्रिह=घर। पवारी=रानी प्रमारिनी (इच्छनी)। सघन=गहरी, विशेष, बहुतसी। अहनिस=अहर्निशि, रातदिन। रहि=रही, रक्खी गई।

अर्थ:—उस काम-कला रूपी कर्नाटी पर राजा प्रसन्न होगया। रानी इच्छनी प्रमारनी के अंतःपुर के बाहर के द्वार पर इसे रहने को भवन दिया और उसके भवन पर रक्षा के लिए रात दिन बहुतसी दासियाँ रख दीगई।

देवास कथा (पीपा युद्ध)

(समय २६)

कवित्त

महलु[1] भयौ न्रप[2] प्रात, आइ सामंत सूर भर।
ठट्टा दिसि उच्चरिय[3], गवन[4] चावंड[5] राइ वर ॥
वमन[6] वास सु राज, कोइ मुक्कलि[7] वड्[8] काजं।
भुम्मिय[9] लघु[10] दिघ[11] निकट[12], सीस[13] कढ्ढे[14] नहिं[15] आज ॥
कयमास[16] वोलि[17] मंत्री तहाँ, मंत्र लज्ज[18] जिहि राज[19] भर।
सिरु[20] नाइ आइ विट्ठौ[21] ढिगह, मनहु[22] देव[23] रजि[24] इन्द्र दर[25] ॥ १ ॥

प्रा० पा०.- १, ६, ८, ६, १०, ११, १३, १७, १८, २०, २१, २२, पा०। २, दे० का० भी०। ३, ४, ५, दे०। १३. १४, १५, १६, १६, २३, २३, २५, पा० दे०।

शब्दार्थः—महलु भयौ=सभा की न्रप=नृप, राजा। आइ=आए। सामंत=प्रथम श्रेणी के वीर। सूर=बहादुर, द्वितीय श्रेणी के वीर। भर=भट, तृतीत श्रेणी के वीर। ठट्टा=स्थान विशेष। दिसि=दिशा। उच्चरिय=कहा, चाला। गवन=गमन। चावंडराय=पृथ्वीराज का सामंत चामुंडराय (इसे खंडेराव भी लिखा है)। वमनवास=ब्रह्मवास (ब्रह्म क्षत्रिय चालुक्यों के भूभाग की ओर)। कोइ=किसी को। मुक्कलि=भेजा। वड्‌ काज=बड़े कार्य के लिए (किसी विशेष गुप्त कार्य के लिए)। भुम्मिय=भोमिए भूमि पति (राजस्थान में भोमिए वे कहलाते हैं, जिनका शासन प्रारंभ से उस भूभाग पर रहता आया हो। अब उन भोमियों का उस भूभाग पर शासन न रहते हुए भी उदरपूर्ति के लिए कुछ २ जमीन कुए रह गए हैं जिनके बजाय भी क्षत्रियोचित नौकरी देनी पड़ती है)। लघु=छोटे। दिघ=दीर्घ, बड़े। सीस कढ्ढे=सिर उठावें। आज=आज। वोलि=बोलकर, बुलाकर। मंत्र लज्ज=मंत्र की लज्जा। जिहि=जिसको। राजभर=सारे राज्य को। सिरु=सिर, शीश। नाइ=नमाकर। आइ=आकर। विट्ठा=बैठा। ढिगह=पास में। रजि=सुशोभित। दर=दरवाजा, दरबार सभा।

अर्थः— प्रात होने पर राजा ने सभा की, जिसमें प्रथम, द्वितीय, तृतीय श्रेणी के योद्धा (क्रमशः सामन्त, शूर और सुभट) आ एकत्रित हुए। तब राजा ने श्रेष्ठ वीर

चामुण्डराय को ठट्टा की ओर जाने के लिए कहा और एक विशेष व्यक्ति को ब्रह्म क्षत्रिय चालुक्य के निवास की ओर बड़े (गुप्त) कार्य के लिए भेजा। (वह गुप्त कार्य यह था कि) अपनी राज्य सीमा का निकट वर्ती कोई छोटा-बड़ा भूमि पति सिर न उठावे। तत्पश्चात् केमास मंत्री को, जिस पर सारे राज्य की मंत्रणा का भार था, वहाँ बुलाया गया। वह मंत्री सिर नमाता हुआ (आदर पूर्वक) राजा के निकट आकर बैठ गया। उस समय वह ऐसा दिखाई पड़ा, मानो इन्द्र की सभा में (प्रमुख) देवता सुशोभित हो।

कवित्त

गल्हा काज सुरयंद, अस्त दद्धीच दीन कर।
गल्हा काज फन्यंद, कोटि पचास[१] धरी धर॥
गल्हा काज नरयंद, वंस दुरजोध मान रखि।
गल्हा काज सु मान-धत्त आव्रत्त भुंमि लखि।
रहि है नरणि गल्हा पहुमी, सार एक कित्ती सुमुख।
असि लक्ख हयनि दल पग सौं, करौ क्यों न गल्हा पुरख॥ २॥

प्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थः—गल्हा=ख्याति। सुरयंद=सुरेन्द्र, इन्द्र। अस्त=अस्थि, हड्डी। दद्धीच=दधीच ऋषि। दीन=देना। कर=कर, हाथ। फन्यंद=फणिंद-शेष नाग। कोटि=करोड़। पचास=पचास। धरी=धारण की। नरयंद=नरेन्द्र, राजा। दुरजोध=दुर्योधन। मान=हठ। मान-धत्त=मान्धाता। आव्रत-भुम्मि=भू मंडल। लखि=लक्ष (उसने दिग्विजय करने की ओर ही ध्यान रक्खा)। नरणि=नरों, पुरुषों। कित्ती=कीर्ति। सुमुख=अच्छा मुख विद्वानों का मुख। असि-लक्ख=अस्सी लाख। हयनि दल=अश्वारोही सेना। पग=पंगराज, जयचंद। सौं=से। गल्हा पुरख=पुरुषत्व की ख्याति।

अर्थः—कैमास कहने लगा-हे नरेश्वर! ख्याति प्राप्त करने के लिए दधीचि ने इन्द्र के हाथ में अपनी हड्डियाँ दे दीं, शेषनाग ने पचास करोड़ योजन पृथ्वी को अपने सिर पर उठा लिया, दुर्योधन ने अपना कुल-हठ बनाये रक्खा और मान्धाता ने समस्त भू-मण्डल को अपने अधीन करने का उद्देश्य रक्खा। (मरने के पश्चात्) मनुष्यों की ख्याति ही संसार में रह जाती है और (विद्वानों के) श्रेष्ठ मुँह द्वारा किया गया कीर्ति गान ही तत्त्व होता है। अतः हमें भी अस्सी लक्ष अश्वारोही सेना

रखने वाले पंगुराज जयचंद से लोहा लेकर (युद्ध करके) अपने पौरुष की ख्याति प्राप्त करनी चाहिए ।

दोहा

इह परतंग्य[1] नरिंद मन, करैं वनैं प्रथिराज ।
सकल सूर सामंत सम[2], मुहि अग्या सिर-ताज ॥ ३ ॥

ग्रा. पा. १, २ पा. ।

शब्दार्थः—इह=यह । परतग्य=प्रतिज्ञा । नरिंद=राजा । मुहि=मुझको । अग्या=आज्ञा ।

अर्थः—हे राजन पृथ्वीराज ! आपके मन में जो दृढ विचार हैं, उसे पूर्ण करना ही होगा । आप मुझे भी सब सामत बहादुरों के समान ही अपना सेवक समझिए । आप जो आज्ञा देंगे, उसे मैं अपने सिर पर ताज के समान शिरोधार्य करूँगा ।

दोहा

सामँत[1] इक सय अग्ग[2] छह; तिन सँग[3] असी हजार ॥
असी लक्ख दल पगु सौ; गल्ह रहै संसार ॥ ४ ॥

ग्राह्य पाठ—१-२-३-४ सशोधित ।

शब्दार्थः—सामँत=सामंत । सय=सौ, शत । अग्ग=आगे, ऊपर । छह=छ (६) । तिन=उन । लक्ख=लख । सौ=के साथ । गल्ह=यश, ख्याति ।

अर्थः—राजा कहने लगा-हे सामंतो ! तुम्हारी कुल संख्या १०६ एव तुम्हारे सैनिकों की (सख्या) ८० सहस्र है और पगु दल की कुल सख्या ८० लाख है । यदि हमारा एक एक व्यक्ति उन सौ सौ सैनिकों से भिड पड़ें तो संसार में हमारी ख्याति अमर हो सकती है ।

दोहा

जग जीवनु अंछै[1] इसौ, ज्यौं[2] सुपनतर राति ॥
अजुलि जल जीवनु इसौ, आव घटति इम जाति ॥ ५ ॥

ग्रा० पा० १, २ सं० ।

शब्दार्थः—जीवनु=जीवन । अंछै=इच्छे, इच्छा करता है । इसौ=इस तरह । राति=रात्रि । आव=आयु, उम्र । इम=इस तरह ।

अर्थः—जिस प्रकार कोई व्यक्ति स्वप्नावस्था में अपने आप को सुख सम्पन्न अनुभव करे, किन्तु उसकी वह सम्पन्नता चिरस्थायी न होकर क्षणिक ही होती है, उसी प्रकार व्यक्ति इस संसार में सुख पूर्वक जीवन यापन करना चाहता है, किन्तु उसका जीवन स्वप्न तुल्य क्षणिक ही होता है। उसकी आयु प्रतिपल उसी प्रकार कम होती जाती है, जिस प्रकार अंजली मे लिया हुआ जल।

कहै सूर सामंत सब, तो सम छत्रि न आज।
तो उर दिगपति सभरैं, तो अग्या सिर राज ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—सब=सब। तो=तेरे। दिगपति=दिगपाल। सभरैं=कांपते हैं। अग्या=आज्ञा।

अर्थः—सब बहादुर सामंत राजा से कहने लगे कि आपके समान आज कोई क्षत्रिय नहीं है। आपके डर से दिक्‌पाल तक थर्राते हैं। हे राजन! हमे आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।

चल्यौ राज सब सेन सजि, दिसि उज्जैनिय रग ॥
आइ साहि सगह जूरन, लये सहायक पग ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—दिसि उज्जैनिय=उज्जैन प्रान्त (देवास)। रग=विनोद (व्याह विनोद)। जूरन=जुड़ने था। लये-लिये।

अर्थ—तब पृथ्वीराज अपनी सेना सजाकर उज्जैन प्रान्त की ओर (देवास को) व्याह-विनोद की इच्छा से चला। इधर जयचन्द से सहायता प्राप्तकर, बादशाह युद्ध करने की इच्छा से मार्ग में आ उपस्थित हुआ।

गही गैल देवास की, गहन उपन्नौ सिन्धु[1]।
नर च्यतनु उर और कछु[2], ईसुर[3] औरैं इन्द्र ॥ ८ ॥

प्रा० पा० १ से ४ [illegible]।

शब्दार्थः—गैल=रास्ता। गहन=गहरा, [illegible]। उपन्नौ=उत्पन्न हुआ, पैदा हुआ। सिन्धु=समुद्र, [illegible]। [illegible]=चिंतन। ईसुर-ईश्वर। [illegible]=[illegible], [illegible] करता।

अर्थः—राजा ने यद्यपि देवास की ओर (विवाह विनोद की इच्छा से) गमन किया, किन्तु रास्ते में ही गौरीशाह से संघर्ष होगया। सच है, मनुष्य हृदय में विचारता कुछ ओर है और ईश्वर करता कुछ ओर ही है।

कवित्त

नर च्यतनु कछु और, करै करता कछु औरै।
मन च्यतनु करै ईसु, जीं सु नरु औरुइ दौरै॥
रचै रचनु नरु कोटि, जोटि जम पाई वस्त सह।
छिनक मद्धि[1] हरि हरै, केलि कर्त्तव्य कर्म यह॥
प्रथिराज गवनु देवास दिसि, व्याह विनोद उमग हिय[2]।
अनच्यत गज्जि[3] गज्जन[4] वलिय[5], आनि अचानक कंक किय[6]॥ ६॥

आ. पा १ से ६ स०।

शब्दार्थः—ईसु=ईश्वर। जीं=जी, जिय। नरु=कर। औरुइ=और ही, और तरफ को। दौरै=दौड़े। रचै रचनु=उपाय करके पैदा कर पाता है। कोटि=कोटि, कोद, करोड़ों की संपत्ति। जमपाई=जमा कर पाता है, संग्रह कर पाता है, प्राप्त कर पाता है। वस्त=वस्तु। सह=सब। छिनक मद्धि=क्षण भर में। केलि कर्त्तव्य=क्रीड़ा कर्तव्य। कर्म=काम, फल। गवनु=गमन, जाना। अनच्यत=अचानक, कल्पना तक नहीं। गज्जि=गर्जना को। गज्जन=गजनेश्वर। वलिय=बलवान। आनि=आकर। कंकिय=कलह किया, युद्ध छेड़ा।

अर्थः—मनुष्य सोचता कुछ ओर है और ईश्वर करता कुछ और ही है। मनुष्य का मन बाह्य रूप से ईश्वर चिंतन करता है, किंतु उसका जीव अन्य वस्तु की ओर दौड़ता रहता है। वह अनेकानेक उपायों द्वारा करोड़ों की संपत्ति और विविध पदार्थ प्राप्त करके संग्रह कर लेता है, किंतु ईश्वर उन संचित वस्तुओं को क्षण मात्र में ही उससे हर लेता है। यह समस्त क्रीडा कर्म (भाग्य) का ही परिणाम है। पृथ्वीराज का देवास की ओर जाने का कारण वहाँ की राजकुमारी से विवाह करना था। किंतु बीच में ही, जिसके आने की कल्पना तक नहीं थी, यह बलवान गजनेश्वर आकर गर्जना करने लगा और यकायक युद्ध छिड़ गया।

दोहा

जरासंध सौं जदुपति, संग पंथ सुत-वाइ ।
आनि अचानक जुद्ध[1] कौ, तिम गज्जनवै[2] आइ ॥ १० ॥

प्रा० पा० १, २ दे० ।

शब्दार्थः—सुत-वाइ=वायु पुत्र, हनुमान । गज्जनवै=गजनेश्वर ।

अर्थः—जिस प्रकार जरासंध से कृष्ण और हनुमान से रास्ते में कालनेमि ने अचानक युद्ध छेड़ दिया था, उसी प्रकार पृथ्वीराज से गजनेश्वर आ भिड़ा ।

कवित्त

ज्यं बावन बलि पास आनि अनं च्यत छलनु किय[1] ।
लै धर रक्खि[2] पताल, इनं सु रनि बंधि छंड दिय[3] ।
दस हू दिसि दल उमडि, घुमडि घन घोर आइ जनु ।
मीर मसंद मसंद, बान बहु त्रिष्टि बुंद जनु ॥
दोउ दीन दुंद दनु देव दुति, भ्रम भग्गे[4] लग्गे[5] लरण ॥
प्रलै[6] काल हाल दिखिये नजरि, मनहु म्रत्य वत्ती[7] करण ॥ ११ ॥

प्रा० पा० १ से ७ । दे० ।

शब्दार्थः—बावन=वामन भगवान् । बलि=राजा बलि । छलनु किय=छल किया । रक्खि=रख दिया । पताल=पाताल । रनि=रण में, युद्ध में । बंधि=बांध कर, बंधन में लेकर । छंड दिय=छोड़ दिया । दस हू=दसों, दस ही । दिसि=दिशाओं से । उमडि=उमड़ कर । मसंद=मसनद धारी, जिन्हें राज दरबार में भी गोल मसनद लगा कर बैठने की इज्जत हो । बान=बाण, तीर । त्रिष्टि=वृष्टि, बरसने लगा । बुंद=बूंदें । दुंद=द्वंद्व-लड़ाई । दनु=दानव । दुति=द्वितीय । भ्रम भग्गे=संदेह निवारण हुआ । लग्गे लरण=लड़ने लगे । प्रलै=प्रलय । दिखिये=देखा जाने लगा । म्रत्य=मृत्यु । वत्ती करण=व्यवसाय कर रही हो ।

अर्थः—जिस प्रकार वामनावतार ने बलि को छलने के लिए अचानक पहुँच कर, उससे पृथ्वी छीन कर उसे पाताल में पहुँचा दिया, उसी प्रकार गजनेश्वर भी पृथ्वीराज के पास (युद्ध करने के लिए) यकायक पहुँच गया, किन्तु वह पृथ्वी तो प्राप्त नहीं कर सका, (उलटा) स्वयं ही बंधन में आ गया और जिसे पृथ्वीराज ने पुन

छोड़ दिया (अर्थात् वामनावतार से पृथ्वीराज ने विशेष कार्य किया) । उस समय दसों दिशाओं से सेना के दल के दल इस प्रकार उमड़ पडे, मानों घनघोर बादल उमड़ पडे हों । मसनद धारी वीरों से मसनद धारी वीर भिड पडे । बाण वर्षा ने वृष्टि का रूप धारण कर लिया । दोनों धर्मावलम्बी परस्पर देव दानव तुल्य संग्राम करने लगे, जिससे एक दूसरे की शक्ति का पता लग गया (भ्रांति मिट गई) । उस समय प्रलय काल के सदृश वातावरण दिखाई पड़ने पर ऐसा ज्ञात होने लगा, मानों मृत्यु अपना व्यवसाय कर रही हो ।

उठीं ढाल सुलितान, खान अन संक अग्गि[1] सजि ।
भेरि भयक निफीर, तबल तंदूर लाग बजि ॥
गज गुमान मद मंत, अग्ग[2] मंडे गिरि कज्जल[3] ।
मनहु बाइ बस जलद, गहिर गज्जे[4] जल सज्जल[5] ॥
तरकंति तेग दामिनि मनहु, तीर बुंद लग्गे[6] परण ।
हथ नारि नारि आतस उडी, कहर लोह सज्जे[7] करण ॥ ८२ ॥

प्रा. पा १ से ७ दे ।

शब्दार्थ:—उठीं=उठी, (उठने पर) । सुलितान=सुल्तान, शाह । अन सक=निशक, निडर । अग्गि=आगे । भेरि=रणवाद्य, रण भेरि । भयक=भयकर । निफीर=नफेरी, वाद्य विशेष । तबल=तबला । लाग बजि=बजने लगा । मदमत=मतवाले । अग्ग मडे=आगे को पंक्ति बद्ध हुए । बाइ=पवन । बस=वश, सहारे । जलद=बादल । गहिर=गहरे । गज्जे=गर्जना करते हैं । सज्जल=सजल । तरकति=कड़कड़ाती हुई, बजती हुई, आवाज करती हुई । परण=पड़ने लगे, लगी । हथनारि=तुपक, आग्नेयास्त्रादि । नारि=नालें । आतस=ज्वाला । कहर=विघ्न । लोह=लोहा । सज्जे=ग्रहण किया ।

अर्थ:—शाह द्वारा अपनी ढाल (और तलवार) उठाने पर निडर मुस्लिम वीर भी आगे बढ़े । भैरी, नफेरी, तबला, तदूरे आदि भयानक वाद्य यंत्र बजने लगे । मदोन्मत्त हाथी कज्जल-गिरि के समान आगे २ चलने लगे । वे गर्जना करते और विचरण करते हुए इस प्रकार दिखाई दिये मानों पवन के सहारे आगे बढ़ते हुए जल युक्त बादल गभीर घोष कर रहे हों । परस्पर टकराती और चमकती हुई तलवारें

बिजली के समान एवं तीरों की बौछार जल की झड़ी के समान आभासित होने लगी, साथ ही तुपकों के मुँह से आग भी झड़ने लगी। इस प्रकार वीर सैनिक शस्त्र उठाकर परस्पर युद्ध करने लगे।

दोहा

दिक्खि[1] फौज हय`दूह से, कसि सनाह सअग।
वीर मंत्र सुमिरे सवनि, करन मिच्छ[2] घट भग ॥ १३ ॥

प्रा० पा० १, २ देवलिया।

शब्दार्थ:—दिक्खि=देखकर। हय`दूह=हिन्दू वीर। सनाह=कवच। सअग=अपने अग। सवनि=सबने घट भग=शरीर का नाश करने।

अर्थ:—विपक्षी सेना को युद्धार्थ तत्पर देखकर हिन्दू वीर हँसते हुए, अपने अगों पर कवच कसकर वीर मत्र का उच्चारण करते हुए मुस्लिम वीरों के अग प्रत्यगों को काटने लगे।

कवित्त

मुख अग्गैं[1] नर नाह, वाम गोइन्द[2] राज्ञ मडि।
दच्छिन[3] जैत पवार, भार सिर छत्र लज्जि[4] गढि ॥
पच्छ[5] फौज जदुजाम, माम स्वामित्त[6] सवाई।
गोलराज पृथिराज, छुट्टि[7] आघात हवाई ॥
अनि सुभट सूर सामत सब, तिन सँगतिन जुत्थ[8] तँह।
करि काल नजरि नाहर मिले, गिलन साहि सुरतान कँह ॥ १४ ॥

प्रा. पा १ से ८ दे।

शब्दार्थ:—अग्गैं=आगे। नर नाह=कन्ह वीर, कन्ह चाहुआन। वाम=वाम पार्श्व में। मडि=मँडि, मडन किया, नियुक्त हुआ। दच्छिन=दक्षिण, दाहिने पार्श्व में। जैत=जैत्र, नाम विशेष। पवार=पँवार, प्रमार शाखा के क्षत्रिय। लज्जि=लाज। गडि=गाढी, दृढ। पच्छ=पीछे। जदुजाम=जामराय यादव। माम=नाम। सवाई=सवाया। गोल=मध्य भाग। छुट्टि=छूटा, आक्रमण किया। आघात=वार, चोट। अनि=अन्य। जुत्थ=यूथ-समूह। काल नजरि=काल दृष्टि। गिलन=निगलने, दबाने। साहि=पकड़ना। सुरतान=सुलतान शाह।

अर्थः—पृथ्वीराज की सेना के अग्रभाग (हरावल) में नरनाह कन्ह, वाम पार्श्व में गोविंद राय, दाहिने पार्श्व में राज छत्र की रक्षा और लज्जा का भार दृढ़ ग्रहण किए हुए जैत्र प्रमार, पश्च भाग में धर्म-धारण करने वाला जामराय नामक यादव और मध्य भाग में स्वयं पृथ्वीराज ने शत्रुओं पर वार करते हुए पवन के समान तीव्र वेग से आक्रमण किया। अन्य बहादुर सामंत अपने साथियों की शक्ति से युक्त होकर यमराज के समान दृष्टि डालते और सिंह के समान भिड़ते हुए सुलतान को घेर कर पकड़ने की इच्छा करने लगे।

दोहा

सार[1] मद[2] मत्ते, सुभट, खग ठिल्लैं[3] गज ठाट ॥
स्वामि-धर्म-सद्धैं[4] रनह; मुक्ति सु झारैं वाट ॥ १५ ॥

प्रा० पा० १ से ४ दे०।

शब्दार्थः—मद=गर्व। मत्ते=मतवाले। खग=खड्ग। ठिल्लैं=ठेलने, ढकेलने लगे। गज ठाट=हाथियों का समूह। सद्धैं=साधने। रनह=युद्ध में। झारैं=झाड़ते हुए, साफ करते हुए। वाट=रास्ता।

अर्थः—शस्त्र-गर्व में मतवाले सामंत अपनी खड्ग से हाथियों के समूह को धकेलते हुए, युद्ध में स्वामिधर्म का साधन करके, मुक्ति के मार्ग को साफ करने लगे।

कवित्त

छोह कोह रस पान; वीर मत्त[1] चावद्दिसि[2] ।
वल उतंग सजि जग; वहहि रण हत्थ[3] कपिय जसि ॥
हय दल वल उच्छारि[4], कढ़्ढ़ि[5] गजदंत निढारैं ।
जनु माली महि मढ्ढि[6], कढ्ढि[7] मूरा कर धारैं ।
भयभीत सीत कायर कपहि, सुभट सार सामत रण ॥
कलि काल कहर कंकहि हकहि; मनहु अंत अत्तिय[8] करण ॥ १६ ॥

प्रा० पा० १ से० ८ दे०।

शब्दार्थः—छोह=उत्साह। कोह रस=क्रोध, रौद्र रस। चावद्दिसि=चारों ओर। वल=बल। उतंग=ऊँचा श्रेष्ठ। वहहि=चलाने, प्रहारने। हत्थ=हाथ। कपिय=कपि, हनुमान। जसि=जैसे। उच्छारि=

उखालते हुए, पछाड़ते हुए। कढ्ढि=काढना, निकालना। उरि=आले। माली=बागवान। महि=पृथ्वी मद्धि=अंदर से। मूरा=मूली। कर धारें=हाथ में लेना। सीत=शीत, हेमत ऋतु। काइर=कायर। कम्पहि=कांपने लगे। कहर=नाश। कफह=कंकाल, शरीर। हनहि=नाश करने। पत=प्रतक, यमराज। मत्तियकरण=मृत्यु का प्रचार कर रहा हो।

अर्थ:—उत्साह और रौद्र रस का पान करते हुए श्रेष्ठ और मतवाले वीर चारों ओर से युद्धार्थ तत्पर होकर हनुमान (और अन्य वानर सैनिकों) के समान हस्त बल (कौशल) प्रदर्शित करने लगे। बलवान अश्वारोहियों (या अश्वों) को पछाडते और हाथियों के दाँत उखाडते हुए वीर इस प्रकार सुशोभित होने लगे, मानों माली खेत से मूली उखाड कर अपने हाथों मे ले रहे हों। भयभीत एवं कायर सैनिकों के शरीर मे हेमन्त ऋतु के समान कम्प होने लगा, किन्तु वीर सामन्तगण आगे बढते ही रहे। वीर योद्धा शत्रुओं के शरीर को अपने खड्गाघात द्वारा इस प्रकार नष्ट करने लगे, मानों यमराज स्वयं उपस्थित होकर मृत्यु का प्रचार कर रहा हो।

दोह

पिक्खि[१] ढाल आलम अगह, पीप पयट्ठौ[१] ठेलि ॥
जनु गयदु सरवर सुभर, करतु कमलिनी केलि ॥ १७ ॥

प्रा० पा० १-२, दे०।

शब्दार्थ:—पिक्खि=देखकर। ढाल=अग्ररक्षक, ढलैत सैनिक। (इस समय भी जयपुर में अग रक्षक वीरों को ढलैत कहते हैं)। आलम=बादशाह। अगह=आगे को। पीप=पीपा प्रतिहार नामक सामत। पयट्ठौ=प्रवेश कर गया। गयदु=हाथी। सरवर=सरोवर। सुभर=श्रेष्ठ भरा हुआ। करतु=करने लगा, करता हो। कमलिनो=कमलनी। केलि=क्रीड़ा।

अर्थ:—शाह के आगे ढालधारी सैनिकों के दल को देख कर पीपा प्रतिहार उन्हें ढकेलता हुआ, उसके बीच में उसी प्रकार जा पहुँचा, जिस प्रकार सरोवर मे हाथी प्रवेश करके हाथी कमलिनियों के साथ क्रीड़ा करता है।

कढी साहि[१] तत्तार[२] सौं, खानि खान खुरसान ॥
मारुत मीर हसम लै, तुम तक्कौ[३] ग्रह थान ॥ १८ ॥

प्रा० पा० १ से ३ दे०।

शब्दार्थ:—कही=कहा। साहि=शाह। खांनि खांन=खांनों की खान, शिरोमणि। खुरसान=खुरासान खां (नाम विशेष)। मारुत मीर=नाम विशेष। हसम=हसम खां। तक्को=देखो।

अर्थ:—इस प्रकार पीपा प्रतिहार को बढते हुए देख कर शाह ने तत्तारखा से कहा—तुम्हें खॉनों के खॉन-शिरोमणि खुरासान खॉ, मारूत मीर और हसम के साथ घर लौट जाना चाहिए (अर्थात् तुम पीपा प्रतिहार को बढ़ते हुए नहीं रोक सकते)।

खानिखान तत्तार[1] कहि, क्यौं छड्डैं रण साहि।
दुनिया रंग कसूम यह, क्तिक[2] दिना रहाहि ॥ १९ ॥

प्रा० पा० १, २, दे०।

शब्दार्थ:—कसूम=कुसुमिया रंग। कितिक दिना=कितने दिनों तक। रहाहि=रह पाता है।

अर्थ:—तब खॉन-शिरोमणि खुरासानखाँ और तत्तार खॉ ने कहा—हे बादशाह! हम युद्ध स्थल को कैसे छोड़ दें? इस ससार का कुसुमिया रंग है, जो कितने दिन रहेगा (अर्थात् हमें एक दिन इस संसार को छोड़ना ही पडेगा)।

कवित्त

साहि छडि सग्राम, जाहि घर जियन नेह धरि।
ध्रिगग[1] जनम संसार, पत्थरण[2] पिट्ट[3] माइ परि ॥
बीबी किया हराम, किसहु फिरते सौं ल्यना।
व्यमी भारी भार, स्वामि ठड्डन जिह ध्रंना[4] ॥
अनि कहै मीर साहाब सुनि, जो छड्डैं सुरतान रण।
पावैं न भिस्ति दोजक परैं; कुत्ता[5] काग भखैं न तन ॥ २० ॥

स० १ से ५ दे०।

शब्दार्थ:—जियन=जीने का, जिन्दा रहने का। ध्रिगग=धिक्कार। पत्थण=पत्थर। पिट्ट=पेट, उदर, कुक्षि। माइ=माता के। परि=पड़े। बीबी=बीबी। हराम=व्यभिचार। किसहु=किसी द्वारा, (किसी अन्य पुरुष द्वारा)। फिरते सौं ल्यना=और से गर्भ धारण कराया। व्यमी=पृथ्वी। भारी भार=

मार दिया। ठड्ढन=खडे रहते हुए, सामने। जिउ=जीव। घना=दिया। साहाव=शहाबुद्दीन। भिस्ति=बहिश्त-स्वर्ग। दोजक=दोजख, नर्क। काग=कौआ। भखैं=चखें, छुए, भक्षण करें।

अर्थ:—यदि हम जीवन (शरीर) से प्रेम रखते हुए बादशाह को युद्ध मे छोडकर घर चले जावें और स्वामी के लिए प्राणोत्सर्ग नहीं करें तो इस ससार मे हमारा जीवन धिक्कार है, हम माता के गर्भ से पत्थर और पृथ्वी पर भार स्वरूपी होकर उत्पन्न हुए हैं, या हमारी माता ने पर पुरुष से व्यभिचार कर हमे गर्भ मे धारण किया है।

जौ छडै सुलितान, हत्थ[1] मुच्छौं[2] फिरि वाहैं।
जौ छडै सुलितान, तेग हत्थौ[3] फिरि साहैं॥
जौ छडै सुलितान, गल्ल[4] यारौ मे मारैं।
जौ छडै सुलितान, मरद हुइ जाइ सभारैं॥
सुलतान साहि साहावदी, क्यों फरमावै हुकम हम।
हम उभ्भै साहिवु गिरैं भ्रमैं नक्क[5] तो काटि जम॥ २१॥

प्रा० पा० १ से ५ दे०।

शब्दार्थ:—छडै=छोडकर चले जायें। हत्थ=हाथ। मुच्छौं=मूँछों पर। फिरि वाहैं=फिर कैसे दें। तेग=तलवार। हत्थौं=हाथ में। साहैं=पकडे, ग्रहण करें। गल्ल=बातें, शेखी। यारों में=दोस्तों में। मारैं=करें। हुई=होकर। जाइ=जावें। सभारैं=सभा में, सभासदों के बीच में। साहावदी=शहाबुद्दीन। फरमावें=कहें। उभ्भै=रहते हुए, खडे रहते। साहिव=शहाबुद्दीन, स्वामी। गिरैं=पतन हो। भ्रमैं=भटकते रहें। नक्क=नर्क। कोटि=करोड। जम=जन्म।

अर्थ:—यदि हम आपको युद्ध मे छोड़कर चले जावें तो फिर हम मूछों पर हाथ कैसे दे सकते हैं, हाथ में तलवार कैसे ग्रहण कर सकते है, मित्रों मे अपनी वीरता की झूठी प्रशसा कैसे कर सकते हैं और पुरुष (वीर) कहलाकर सभा मे कैसे जा सकते हैं? (अर्थात् हम वीर है, अत आपको रण मे छोडकर शत्रु को पीठ नहीं दिखा सकते)। अत हे शहाबुद्दीन! आप हमें युद्ध से हटने की आज्ञा मत दीजिये। यदि हमारे जीवित रहते हुए आपका पतन हो जाय तो हमारा करोडों जन्मों तक नर्क में निवास होता रहे (अर्थात् हम जीवित रहते आपका पतन नहीं होने देंगे)।

दोहा

सीस नाइ सुलतान सौं,[1] धाए खान ततार ।
परे सेन चहुआन पर, मनौ मत मतवार ॥ २२ ॥

प्रा० पा० १ सं० ।

शब्दार्थः—धाए=आक्रमण किया, बढे । परे=टूट पडे । सेन=सेना । मंत=मतवाला । मतवार=मतवाला ।

अर्थः—यह कह कर बादशाह के सम्मुख मस्तक नवॉ कर तत्तारखॉ रणस्थल में आगे बढ़ा । उसने चाहुआनी सेना पर इस प्रकार हमला किया, मानो कोई मतवाला हाथी अन्य मतवाले हाथियों से जा भिड़ा हो ।

रत्त[1] मत्त[2] वारे सुभर, विधि-विनान उन मान ।
तहॅ[3] न दुख[4] सुक्खह[5] नजरि; मोह कोह-रस पान ॥ २३ ॥

प्रा० पा० १ से ५ दे० ।

शब्दार्थः—रत्त=लीन । मत्त वारे=मतवाले । सुभर=सुभट, योद्धा । विधि-विनान=ब्रह्म ज्ञान । उन=उनमें । मान=मान लिया । नजरि=नजर आता । मोह=मोहित, मुग्ध । पान=पीना ।

अर्थः—सभी सामंत युद्ध रस में लीन होने के कारण ब्रह्म ज्ञानी से प्रतीत होते थे, क्योंकि उनके पास सुख दुःख की लौकिक भावना नहीं दिखाई पड़ती थी । वे तो केवल मात्र रौद्र रस का पान करने में ही मोहित थे !

कवित्त

मोह कोह रस पांन, वीर मत्ते[1] चावद्दिसि ।
तवल तुंग वजि जग,वीर आहत मत्त[2] असि ॥
जा दिक्खै[3] सुलितान; नैंन वड़वानल धारी ।
प्रलै करण करपान, प्रलय सम हक्कहकारी[4] ॥
सुभि[5] लोह उदय अरुणय उदय, उर उदार न्यता रनह ॥
प्रथिराज राज छत्रीनि गुर, गहन गज्जि ल्यनौ पनह ॥ २४ ॥

प्रा० पा० १ से ४ सर्व० ।

शब्दार्थः—तु ग=ऊँची आवाज से। वाहत=चलाते। जा=उसने। वड्वानल=वाडवाग्नि। हक्क-हकारी=हहकार, हुँकार। सुभि=सुशोभित हुई। अरुणय=अरुण, सूर्य। च्यंता रनह=रण का चिंतन करने वाला। राज छत्रीनि=क्षत्रिय राजाओं को। गुर=गुरु, बड़ा। गहन=पकड़ने को। गज्जि=गर्जना करके। ल्यनौ=लिया, किया। पनह=प्रण-प्रतिज्ञा।

अर्थः—रौद्र रस का पान करते हुए मतवाले वीर चारों ओर फैल कर युद्ध वाद्यों को जोर से बजाते हुए तलवार चला रहे थे। उसी समय बडवानल के समान नेत्र वाले पृथ्वीराजने बादशाह को देखा। उस वीर नरेश की कृपाण और हुंकार प्रलय कारिणी थी, उसने जब आगे बढ़कर तलवार चलाना प्रारम्भ किया तो म्यान से निकलती हुई तलवार इस प्रकार सुशोभित हुई, मानो सूर्य उदय हुआ हो। वह नृपति उदार हृदय, रण का चिंतन करने वाला और क्षत्रिय नरेशों का गुरु था। उसने गर्जना करके शाह को पकड़ने की प्रतिज्ञा की।

साहन वाहन विरद, साहि गौरिय सयन सम।
हय गय दल बिच्छुरहि[१], सूर सजूरहि वीर भ्रम॥
वजहि खग्ग[२] धर धार, हड्डु[३] उडहि असमान।
मनहु स्यघ गिरि गज्जि, हक्कि हत्थिय[४] सिह भान॥
दल डोहि वहसि माहाव भर, भर-भर कर असि वर वजहि।
जाने क मेघ मत्ते दिसा, नभ निसान[५] विज्झुल लसहि॥ २५॥

प्रा० पा० १ से ५ भीं०।

शब्दार्थः—साहन=शाह को। वाहन=वहन करना विचलित करना। साहि=पकड़ना। सयन=सेना। सम=श्रम, श्रमित करना। हय=हाथी। गय=घोड़ा। बिच्छुरहि=बिछुड़ना, यत्र तत्र होना। सूर=शूरवीर, बहादुर। सजूरहि=जुटने पर। वीर=बावन वीरों में से कोई वीर। वजहि=बजती है। धार=तलवार की धारा। हड्डु=हड्डियां। उडुहि=उड़तीं, उछलती हैं। असमान=आसमान की ओर। स्यघ=सिंह। हक्कि=बढकर आक्रमण करना। हत्थिय=हाथी। भान=विदीर्ण करना। डोहि=मथन करना। वहसि=वहन करना, भगा देना, विचलित करना। भर=भट सामत। भरभर=लगातार। असि=तलवार। वजहि=चलाना। जाने क=मानो। निसान=ध्वजा। विज्झुल=बिजली।

अर्थ:—जिस पृथ्वीराज का विरुद शाह को विचलित कर पकड़ने और शाही सेना को श्रमित करने में था, जिसके युद्ध में जुट जाने पर वीरों (बावन वीरों में से कोई एक) का सा भ्रम हो जाता था और अश्वारोही एवं गजारोही सेनाएँ तितर-बितर हो जाती थीं, उसकी तलवार शत्रुओं को नष्ट करती हुई जमीन से टकराकर बज उठती थी और शत्रु वीरों की हड्डियाँ कटकट कर आसमान की ओर उछलती थीं। वह शत्रुओं पर हमला करता हुआ ऐसा दिखाई पड़ता था, मानों पहाड़ों मे गर्जता हुआ सिंह आक्रमण करके हाथियों के मस्तक विदीर्ण कर रहा हो। ध्वजाएँ, मेघ में बिजली चमकती हों, ऐसी सुशोभित थीं। वह तलवार के प्रहार से शाही दल का मथन कर उसे भगा देता था। हाथियों पर चढ़ी हुई उसकी विजय पताकाएँ बादलों मे चमकती हुई बिजलियों के समान सुशोभित होरही थीं।

वरकि वीर भट सुभट, झुमिं झूरहि चावदिसि।
इक[1] इक[2] वल अठिल, घात निर्घात वीर जिसि॥
रचि नारद निर्तत; जगि[3] जुगिनी[4] हकारही।
मार ताल वयताल, नच्चि[5] रण वीर डकारही॥
अम्मरिय रहसि दल दुव वहसि, करसि वीर लग्गो[6] सवर।
चहुवांन आन सुरतान भर, करहि केलि समरह अडर॥ २६॥
प्रा० पा० १ से ६ दे०।

शब्दार्थ:—वरकि=वड़कना, फूलना। झुमि=झूमते हुए। झूरहि=झाड़ने लगे, वार करने लगे। अठिल=नहीं हिलने जैसे, अडिग। घात निर्घात=घात प्रतिघात। जिसि=जैसे। निर्तत=नृत्य करने लगा। जगि=प्रकट होकर, जाग्रत होकर। जुगिनी=योगिनियाँ। हकारही=हुंकार करने। ताल=ताली। वयताल=वैताल, वीर विशेष। नच्चि=नाचते हुए। डकारही=उच्च घोष करते हुए। अम्मरिय=आकाशस्थित देवता। रहसि=रहस्य। दुव=दोनों। वहसि=वहन करना, आक्रमण करना। करसि=करने लगे। सवर=अपना वल। आन=दुहाई। समरह=समर, युद्ध। अडर=निडर।

अर्थ:—उत्साह में फूले हु वीर सामंत झूमते हुए चारों ओर शस्त्राघात करने लगे। वे सभी वीर अडिग और वली थे। उनका घात प्रतिघात वीरों जैसा था। उस युद्ध स्थल में नारद नृत्य करने लगे, योगिनियाँ प्रकट होकर हुंकार करने लगीं, वैताल तालियाँ बजाने लगे और बावन ही वीर नृत्य करते हुए उच्च घोष करने

लगे। इस प्रकार दोनों दलों ने एक दूसरे पर आक्रमण करते हुए आकाशस्थित देवताओं को भी रहस्य में डाल दिया। वे निडर वर अपनी २ शक्ति प्रदर्शित करते और चाहुआन तथा सुलतान की दुहाई देते हुए समर क्रीडा करने लगे।

अद्ध कोस नृप अग्ग, मिच्छ ठड्ढे पग गड्ढे।
(ज्यों) सद्द मद्द गजराज, छडि पट्टे बल वड्ढे॥
लज्ज वध सकुरिय, वीर अकुरिय दिट्ठि रण।
सार धार वज्रिय कपाट, घात निर्घात धुकत रण॥
कलमलिय कक सह मिच्छ इम, जनु लुअ लग्गहि जेठ महि।
जद्दौ सु जाम घरि इक्क लौं जनु वडवानल चद कहि॥ २७॥

शब्दार्थः—अद्ध=अर्द्ध, आधा। ठड्ढे=ठाढे, रुके। पग गड्ढे=पैर दृढता से जमाए। सद्द=सद्य, शीघ्रता पूर्वक। मद्द=मदोन्मत्त। छडि पट्टे=पटा चलाता हुआ (पहले युद्धस्थल में जाते समय प्रशिक्षित हाथियों की सूँडों में तलवारें पकडा दी जाती थीं, जिससे वे रास्ता साफ करते जाते थे, शत्रुओं का संहार करते थे)। वड्ढे=वृद्धि करना। वध=बाधना। सकुरिय=शृंखला, सांकल। अकुरिय=अंकुरित हुआ। दिट्ठि=दृष्टि। सार धार=शस्त्र धारा। वज्रिय=वज्रतुल्य। कपाट=किंवाड़। धुकत=गिरने लगे। कलमलिय=तिलमिलाना। कक=कंकाल, शरीर। लुअ=लू, गर्म हवा। जेठ=ज्येष्ट मास। जद्दौ=यादव सत्राय। जाम=जामराय

अर्थः—राजा से आधा कोस दूर (पीछे हट कर म्लेच्छों ने पुनः अपने पैर दृढ़ता से इस प्रकार जमाए जैसे मतवाले हाथी शीघ्रता पूर्वक पटा चलाते हुए अपनी शक्ति की वृद्धि करते हों। यह देख कर लज्जाशील जामराय यादव की दृष्टि में वीर रस अंकुरित हो गया और उसकी शस्त्र-धारा के प्रहारों से शत्रु सेना के वज्र कपाट तुल्य वीर कट २ कर धराशायी होने लगे। उसके मुसलमानों के शरीर इस प्रकार तिलमिलाने लगे मानो वे ज्येष्ठ मास की लू की लपट से मुरझा गए हों। कवि-चंद कहता है कि वह यादव वीर युद्धस्थल में एक घडी तक वाडवाग्नि का रूप धारण किये रहा।

दिक्खे[१] मुच्छय[२] मछर, अरु जदुवम नाम श्रवनाई[३]।
अच्छरि[४] वर कर इच्छ[५], भ्रमति फिरैं गैन मग्गाई[६]॥ २७॥

प्रा० पा० १ से ६ दे०।

शब्दार्थः—दिक्खें=देखकर। मुच्छय=मूछें। मछरं=मरोड़दार, मस्ती छाई हुई। श्रवनाई=सुनकर। अच्छरि=अप्सरा। वर कर=वरण करने के लिए। इच्छं=इच्छा करके। भ्रमति फिरें=घूमने लगीं। गैंन=गगन, आकाश। मग्गाई=मार्ग, पथ।

अर्थः—उस जामराय की मस्ती युक्त मरोड़दार (वंकिम) मूछें देखकर और उसे यदुवंशी सुनकर वरण करने की इच्छा से अप्सराएँ आकाश मार्ग में भ्रमण करने लगीं।

कवित्त

कर वल खान ततार, खान न्याजी खा गोरी।
मौर व्यूह रचि राज, सज्जि[1] सव सेन सजोरी॥
च्यचु पीप परिहार, कन्ह गोयंद नयन धरि।
कठ चद पुण्डीर, पाइ जुक जैत सलख करि॥
सम पुंछि और भर सुद्ध[2] मन, व्रंन व्रंन छवि सिलह तन।
रनु रोहि रह्यौ पृथिराज मधि, गिलन सप्प[3] सुलतांन जन॥ २८॥

प्रा० पा० १ से ३ दे०।

शब्दार्थः—कर=करके। वल=शक्ति। मौर व्यूह=मयूरव्यूह। राज=राजा ने। सजोरी=जुटाई, या वलवान। च्यचु=चौंच। नयन धरि=आंखों के स्थान पर। पाइ=पाँव। जुग=दोनों। सम=समता पर, स्थान पर। व्रन व्रन=विविध वर्ण। छवि=छवि, शोभा। सिलह=कवच। रनु=रण, युद्ध। रोहि=रौंधना, वाधक होना। गिलन=निगलना। सप्प=साँप।

अर्थः—तव तत्तारखा, न्याजीखा और स्वय गौरीशाह (या गौरी समूह) ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया। इस पर पृथ्वीराज ने सेना को एकत्रित करके मयूर-व्यूह रचा। चोंच के स्थान पर पीपा प्रतिहार, नेत्रों के स्थान पर कन्ह और गोविंदराय, कठ के स्थान पर चंद पुण्डोर, दोनों पैरों के स्थान पर सलख जैत्र और पूंछ के स्थान पर शुद्ध मनवाले अन्य सामत नियुक्त किये गये। उसके मयूरपंख की शोभा विविध रग के कवचों से होने लगी। पृथ्वीराज ने सेना के मध्य भाग में स्थित होकर सर्प स्वरूपी सुलतान और उसके साथियों को निगलने के लिए उन्हें रण स्थल मे रोक दिया।

गाथा

खग षगि लग्गो समर, हुइय मिच्छ चट्ट पट्टाई।
सार सप्प डस जहर, जित तित परै घुक्कि धरनाई ॥ २६ ॥

प्रा० पा० १ से ७ दे०।

शब्दार्थः—षगि=आग। समर=युद्धस्थल। हुइय=हो गए। चट्ट पट्टाई=व्याकुल। डस=डसना, काटना। जहर=विष। घुक्कि=झुकते हुए झोंका खाते हुए। धरनाई=पृथ्वी पर पड़ गए।

अर्थ—युद्धस्थल में खड्ग ज्वाला के फैल जाने से मुसलमान सैनिक आकुल हो गए। शस्त्र स्वरूपी सर्प से डसे जाने के कारण उनमें हलाहल छा गया और वे यत्र-तत्र झूमते हुए धराशाई होने लगे।

एव हिंदुअ हत्थ वज्जे वीर वज्र घाताई।
खिल्लें वहर नट जम, ढाल माल स्रिं सु नाई ॥ ३० ॥

प्रा० पा० १-२ दे०।

शब्दार्थः—एव=अहो। हिंदुअ=हिंदुओं के। हत्थ=हाथ। वज्जे=बजने लगे, वार करने लगे। वज्र घाताई=वज्राघात तुल्य। खिल्लें=खेलते हों। वहर=खेल विशेष। नट जम=जैसे नट। ढाल माल=ढाल समूह। सं=से। नाई=नम कर झुक कर।

अर्थ ओह! उस समय हिन्दू वीरों के शस्त्राघात वज्राघात से दिखाई देने लगे और ऐसा दृश्य दिखाई पड़ा मानो नट झुक २ कर (टेढ़े होकर) ढाले फिराते हुए जादू का खेल कर रहे हों।

कवित्त

तन तरफहि धर मिच्छ, कलाङ्कवि जानि नटन कहि।
मत—तत आहुरहि, दंत सौं दंत कटक्कहि ॥
समर अमर रर चढ़ि भये विस्मित पलहारी।
जह—तह चद पुरहोर चर ज्यों रैनि उजारी ॥
तन ग्रेह नेह सह अत मन भ्रम भग्गो दल मलि दुभर।
सभरिय नूर सुरतान दल, महन रभ मन्यौ सुभर ॥ ३१ ॥

प्रा० पा० १ से ६ दे०।

शब्दार्थः—कला छवि=गुलाँछें । जानि=जानो, मानो । मत=मतवाला । तंत=तहाँ उस स्थान पर । श्राहुरहि=भिड़ने लगे । कटक्कहि=कटकटाने लगे, बोलने लगे । कर वंदी=वंदीजनों द्वारा किये गये । पलहारी=मांसाहारी । रैनि=रात्रि । उजारी=प्रकाश फैलाया । ग्रेह=गेह, घर । मगते=दूर हुआ । मलि=मिलने से । दुमर=दुर्लभ, कठिन । संभरीय=चाहुआन । महनरम=महान् आरम्भ, घमासान युद्ध । मच्यो=छिड़ा ।

अर्थः—मुसलमानों के क्षत-विक्षत शरीर पृथ्वी पर गिर कर इस प्रकार तड़फड़ाने लगे, मानों नट गुलांछें खा रहे हों। मतवाले वीर एक दूसरे पर दांत कटकटाते हुए परस्पर भिडने लगे। वे वीर वंदीजनों द्वारा समर में अमर हो गए और उनके युद्ध को देखकर मांसाहारी जीव भी विस्मित हो गये। चन्द्रमाँ जिस प्रकार रात्रि मे प्रकाशित होता है, उसी प्रकार चंद पुण्डीर ने युद्धस्थल में प्रकाश फैला दिया (अर्थात् युद्धस्थल मे सर्वत्र उसकी तलवार चमक पडी) उस समय उन वीरों के मन में शरीर और घर आदि का स्नेह नहीं रहा, क्योंकि दुर्लभ सेना में स्थान पाने के कारण उनका सांसारिक भ्रम विदा हो गया था। इस प्रकार चाहुआन तथा मुस्लिम सेना के वीरों मे घमासान युद्ध छिड़ गया।

समर होत मध्यान, पीप पन मडि सु रुंध्यौ ।
प्रवल पानि परचड, साहि गौरी गहि वध्यौ ॥
सेतु वध ज्यौं राम, चद सुरभान सूर सधि ।
यौं ल्यनौ परिहार, वालि दस कठ कख मधि ॥
रण छडि हंडि चलि मिच्छ[1] वहु, लज्जवत[2] किक फिरि परिय ।
जय जया सद[3] धर अम्मरह, कवि सु चद कित्ती[4] करिय ॥ २२ ॥

ग्रा० पा० १ से ४, दे०।

शब्दार्थः—पन मडि=प्रतिज्ञा पूर्ण करने को। प्रवल=प्रबल । पानि=हाथ। परचड=प्रचड । सूर सधि=वीरों द्वारा साधन किया या वीर ने साधन किया। ल्यनौ=पकड़ा, लिया। परिहार=प्रतिहार क्षत्रिय। वालि=बाली। कंख=कौंख, कुक्षि में। हडि चलि=चल पड़े। वहु=बहुत। लज्जवत=लज्जावान। किक=कितने ही। फिरि परिय=मुड़ पड़े। जय जया=जय २ कार। सद=ध्वनि। अम्मरह=आकाश में। कित्ती=कीर्ति।

अर्थ:—युद्ध होते होते मध्यान्ह समय होने पर पीपा प्रतिहार ने शाह को पकड लेने की प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए शत्रु सेना को कुचलकर अपने प्रबल-प्रचण्ड हाथों से बादशाह को इस तरह पकडकर बाध लिया, जैसे सूर्य-चन्द्र और देवताओं का साधन कर (देवतादि का स्मरण कर) वीर रामचन्द्र ने सेतु बाधा तथा बालि ने रावण को काँख में धर दबाया। यह देखकर बहुत से मुसलमान युद्ध-स्थल छोडकर भाग गए, किन्तु वीरता की लज्जा रखने वाले कितने ही वीर युद्ध करने के लिए पुन लौट पडे। उसी समय पृथ्वी और आकाश सर्वत्र उस वीर की (पीपा की) जय जय कार होने लगी और मैंने (कविचद ने) भी उसका कीर्ति गान किया।

चौरगी चहुआन, खान गौरिय मुख लग्यौ।
दुवनि हत्थ[१] तरवारि, ख्यालु फुल हत्थनि[२] वग्यौ ॥
सिलह वज्जि[३] खग धार, जानु घन मार गवारि।
दुवनि टुट्टि[४] तरवारि, वाहि गलवत्थ[५] कटारि ॥
उर फारि दुवनि दुव धर परे, भय[६] ससक दुत स्वामि तन।
गौरीय खान धरणी परत, भयो ग्रहन सुलतान रण ॥ ३३ ॥

प्रा० पा० १ से ६ दे० ।

शब्दार्थ:—चौरगी=चौरगीराय चाहुआन। दुवनि=दोनों के। ख्यालु=खेल। फुल=फूल डोल। वग्या=बजाया, किया। जानु=जनु,मनु, मानों। घन=लोहा कूटने का बड़ा हथौड़ा। मार=चोट। गवारि=लोहार। वाहि=चलाई। गलत्र थ=गुत्यमगुत्था। फारि=चीर कर, विदीर्ण कर।

अर्थ:—लौट कर आए हुए खान गौरी से चौरगीराय चाहुआन का सामना हुआ। दोनों ने हाथ मे तलवारे लीं और फूलडोल (होली के बाद देव मदिर के सामने देव मूर्ति को फूलों की डोली मे आरूढ कर, उनके सामने जनता घूमती हुई छडियों से खेल करती है। जिसे राजस्थानी मे "गेर" कहते है) का सा खेल करने लगे। एक दूसरे के खड्ग प्रहार से उनके कवच इस प्रकार बजने लगे, मानों लोहार घन पटक रहा हो। तलवारों के टूटते ही दोनों ने कटारें निकाल कर एक दूसरे के गले में हाथ डालकर प्रहार किया, जिससे दोनों के हृदय विदीर्ण हो गए और दोनों ही गिर पडे। यह देख कर दोनों वीरों के स्वामी सशकित

हो गए (क्योंकि आपत्ति के समय रक्षा करने वाले इनके समान और कौन हो सकते हैं ?)। खान गोरी के मारे जाने पर ही बादशाह को अच्छी प्रकार से बंधन में लिया गया।

दोहा

इन परंत सुरतान गहि; ग्रह निग्रह घट वीर।
तिन जसु जपै का कवी; जिन किय जज्जर[1] श्रीर ॥ ३४ ॥

प्रा० पा० १ सं०।

शब्दार्थः—परत=पड़ने पर। गहि=पकड़ा गया। ग्रह निग्रह=सुख-दुःख। घट=शरीर। जसु यश। जपै=कहै, वर्णन करे। का=क्या, कहाँ तक। जज्जर=जर्जरित। श्रीर=शरीर।

अर्थः—चौरंगीराय और खान गोरी के धराशायी होने पर गोरी शाह पकड़ लिया गया। उस समय कुछ वीरों के शरीर पर विपत्ति आ पड़ी और कुछ वीर उस विपत्ति से छूट गये, किन्तु कवि उनके यश का कहाँ तक वर्णन करे, जिनके शरीर उस युद्ध में जर्जरित होगये।

कवित्त

विनु जज्जर[1] पंजर परान, साहि गौरी गहि बध्यौ ॥
विनु सेवा विनु दान, पान खग्गह[2] खलु सध्यौ ॥
फिरि ग्रह पत्तौ[3] राज, लुट्टि[4] चतुरंग विभूतिय।
डोला तेरह तीस, मद्धि[5] साहाब सु भत्तिय[6] ॥
ग्रह गयौ लियै सुरतान सँग[7], जय जय जय जसु लद्धयौ[8]।
जयचंद कनाइति च्यति जिय[9], मान प्रसन न सद्धयौ[10] ॥ ३५ ॥

प्रा० पा० १ से १० दे०।

शब्दार्थः—विनु=बिना। पंजर=शरीर। परान=प्राण। विनु सेव=सेवा के फल रहित। दान=पारितोषिक। पान=हाथ, बल। खग्गह=तलवार। खलु=शत्रु। ग्रह पत्तौ=घर गया (दिल्ली)। लुट्टि=लूट कर। चतुरंग=चतुरंगिनी सेना। डोला=डोलियें। तेरह तीस=तयालीस। सु भत्तिय=अच्छी तरह लद्धयौ=प्राप्त किया। कनाइति=छोटा भाई (विरोधी जयचंद और गौरी का एक ही लक्ष्य होने से उसे जयचंद का छोटा भाई कहा गया)। च्यति=चिंतन। प्रसंन=प्रसन्नता। सद्धयो= साध सका प्राप्त कर सका।

अर्थः—शस्त्राघात से प्राण पिंजर जर्जरित नहीं होने देकर ही पीपा प्रतिहार ने निस्वार्थ भाव से अपने खड्ग के बल पर ही गौरीशाह को पकड कर बाँध लिया। तत्पश्चात पृथ्वीराज उसकी चतुरंगिनी सेना की विभूति को लूट कर दिल्ली को रवाना हो गया शाह और घायल वीरों को ४२ डोलियो में भली प्रकार से उठा कर साथ में ले लिये। पृथ्वीराज को तो इस युद्ध से जय २ कार के साथ यश प्राप्ति हुई, किन्तु जयचंद के छोटे भाई तुल्य गौरी शाह के हृदय मे चिंता पैदा हो गई। उसे न तो मान ही मिला और न प्रसन्नता ही प्राप्त हुई।

मान भजि सुलितान, खान खेसे खुरसान।
मधि सिंगार हुव वीर, धीर धप्पे[1] समरान॥
ब्याह इच्छ देवास, सोम अग्गै[2] न उचारी।
भई कत्थ[3] चहुआन, इन्द्र कुर पत्थह[4] वारी॥
मुँह मुच्छ सुच्छ[5] सोमेस सुव, धुव समान सभरि धनी।
पद्धरे[6] दीह जसु अक्खि[7] जगु, पर धर बर करि अप्पना[8]॥ ३६॥
प्रा० पा० १ से ६ दे०।

शब्दार्थः—भजि=भग किया। खेम=खिसियाये, लज्जित किए। खुरसान=खुरासानी। सिंगार=शृंगार। धप्पे=तृप्त हुए। समरान=युद्धस्थल में। इच्छ=इच्छा करके। सोम=सोमेश्वर, पृथ्वीराज के पिता। इन्द्र कुर=कुरेंद्र, कौरवेंद्र, दुर्योधन। पत्थह=पार्थ। मुच्छ=मूँछ। सुच्छ=स्वच्छ। सुव=सुवन, सत। धुव=ध्रुव। सभरि धनी=सभरियों के स्वामी, पृथ्वीराज। पद्धरे दीह=अच्छे दिन। अक्खि=कहने लगे जगु=संसार। पर=पराई। धर=भूमि। बर करि=शक्ति करके। अप्पनी=अपनाई।

अर्थः—इस प्रकार पृथ्वीराज और उसके सामन्तो ने सुलतान का मान मर्दन कर के खुरासानी खानों को लज्जित कर दिया। (यह तो भाग्य की ही बात थी कि) शृंगार रस के अन्तर्गत वीर रस का प्रादुर्भाव होगया (देवास शादी की इच्छा से जाते हुए, रास्ते मे युद्ध हो गया) और चौहान वीर युद्ध मे वीर रस से तृप्त हो गए। पृथ्वीराज ने विवाह की इच्छा मे देवास की ओर जाने की बात सोमेश्वर से गुप्त रक्खी थी, किन्तु रास्ते में दुर्योधन और अर्जुन के समान युद्ध के छिड जाने से पृथ्वीराज की यह ख्याति सब पर प्रकट हो गई। इस सोमेश्वर के पुत्र पृथ्वीराज

मुख और मूँछें निष्कलंकी ही रही तथा वह सर्वदा ध्रुव के समान ही अटल माना गया। उसके अच्छे दिनों और श्रेष्ठ वश का संसार गान करता रहा, क्योंकि उस वीर ने दूसरों की पृथ्वी को अपनी शक्ति से अपना लिया।

दोहा

ध्यनि राज अवसान मन, जसु जित्यौ सुलितान।
लच्छि[1] लई चतुरग जिति वर वज्जे[2] नीसान॥ ३७॥

प्रा० पा० १, दे०। २, सर्व०।

शब्दार्थ:—ध्यनि=धन्य। अवसान=सावधान, सचेत। जसु=कीर्ति। जित्यौ=अपहरण किया, प्राप्त किया। लच्छि=लक्ष्मी। लई=प्राप्त की। जिति=जीतकर। नीसान=निशान, नक्कारे।

अर्थ:—उस सचेत मनवाले पृथ्वीराज को धन्य है, जिसने सुलतान की कीर्त्ति का अपहरण कर लिया और चतुरंगिनी सेना पर विजय प्राप्त करके उसकी सम्पत्ति को छीनकर श्रेष्ठ विजय वाद्य बजवाये।

कवित्त

छत्र मुजिक्क[1] निसान, जित्ति[2] ल्यन्ने सुलितान।
गौ घरि[3] ढिल्लिय[4] ईस वज्जि[5] नृग्घोष[6] निसान॥
दिसा दसौं[7] जय कित्ति[8], जैति जपै प्रथिराज।
बाल वृद्ध[9] भर जुवन, जग जपै धनि लाज॥
साधर्म धरन सामत सब, दिपति दीप भूव लोक पति।
पुज्जैन[10] कोइ चहुवान कौ, सुक्ख[11] स्यन पारथ्थ[12] गति॥ ३८॥

प्रा० पा० १ से १२ दे०।

शब्दार्थ:—जिति=जीतकर। घरि=घर। ढिल्लिय ईस=दिल्लीश्वर। जय किति=विजय कीर्ति। जैति=जयति, जय २ कार। भर जुवन=जवानी में भरे हुए युवक। घनि=धन्य। सा धर्म=स्वामी धर्म। दिपति=दीप्ति, प्रकाश। पुज्जैन=नहीं पहुंचता, समानता नहीं कर पाता। सयन=सेना। पारथ्थ=पार्थ।

अर्थ:—उस मूंजी सुलतान पर विजय प्राप्त करके उसके छत्र और नक्कारे छीन कर दिल्लीश्वर अपने स्थान को लौट गया। इसके बाद ऊँची आवाज के नक्कारे

बजने लगे और दसोंदिशाओं में उसकी विजय कीर्ति फैल गई। आबाल वृद्ध पृथ्वीराज की जय २ कार करते हुए, कहने लगे कि युद्ध मे लज्जा रखने वाले इस राजा को धन्य है। उसके सब सामत भी स्वामी धर्म को धारण करने वाले हैं। सेना सचालन में जिसकी गति अर्जुन के समान है, ऐसे चाहुआन नरेश की कौन समता कर सकता है?

छडि दियौ सुलितान, सुजसु पहु पीप मडि सिर।
(जिहि) जग रग राजन्न[1], इच्छ[2] पुज्जाइ[3] किन्ति[4] थिर ॥
भुम्मिय[5] इकमिलै आइ, इक्क[6] वधिरु वस किज्जहि[7] ॥
इक्क पकरि पहिराइ, मान भजिरु मन दिज्जहि[8] ॥
आवइ अपार लच्छी[9] सहज, वर्न सर्न सुक्खह गनय[10] ॥
चहुवान राज सभरि धनी, तपै तेज नृप त्रिगुनय ॥ ३६ ॥

प्रा० प से १० सर्व०।

शब्दार्थः—सुजसु=सुयश। पहु=राजा। पीप=पीपा प्रतिहार। मडि सिर=सिर पर दिया। जग रग=युद्ध के रग में रगा हुआ। इच्छ=इच्छा। पुज्जाइ=पूर्ति करके। वधिरु=बांध कर। किज्जहि=किया जाता। पहिराइ=पुरस्कार देकर, पोशाक पहिना कर। दिज्जहि=दिया जाता है। आवइ=आता है। वर्न=चारों वर्ण। सर्न=शरण। सुक्खह=सुख पूर्वक। गनय=गिने जाते। त्रिगुनय=तीनों (सत्व, रज, तम) गुण युक्त।

अर्थः—पृथ्वीराज ने शाह को पकड़ने का श्रेय पीपा प्रतिहार को देते हुए, बादशाह को छोड दिया। इस प्रकार युद्ध के रग मे रगे हुए उस राजा ने अपनी इच्छा पूर्ति करके अपनी कीर्ति को स्थिर कर दिया। कितने ही भूमि पति उसके चरणों मे स्वत आआकर उपस्थित होने लगे और कितने ही बाधे जाकर वश मे किए गये, कोई पकडा जाकर उससे (पृथ्वीराज से) पुनः उपहार प्राप्त करता था। इस प्रकार वह शत्रु का मान भजन करके भी उसे अपना मन समर्पित कर देता था। अपार लक्ष्मी उसके पास स्वत दौडी आती थी। चारों वर्ण उसकी शरण मे सुख पूर्वक दिन बिताते थे। वह चाहुआन नरेश सभरेश्वर प्रताप और सत्त्व, रज और तम तीनों गुणों सहित तपता था।

सहस अट्ठ[1] हय डंड, सड सुलतान[2] सीस किय ।
नरणाहा कुंडीर, इक्क[3] इक सहस विज्जुलिय[4] ॥
जैत राइ गोइन्द, इक्क धंनिय जदु जानं[5] ।
इक्क सहस वरदाई, उभय परिहार स मान ॥
इनि दिए वटि सुभटति सहस, किति[6] राज रक्खी[7] घरह ।
सुनि वत्त[8] राज सोमेस यह, वज्जि[9] पंच वज्जे[10] दरह ॥ ४० ॥

प्रा० पा० १ से १० दे० ।

शब्दार्थः—डंड=दंड । संड=क्लीव । नरणाहा=नरनार कन्ह । कुडीर=चंद पुडीह । विज्जुलिय=विधुत गामी । धंनिय=दिए । जदु=जामराय यादव । जानं=जानो । वरदाई=मुभ्म चंद वरदाई । उभय=दो (सहस्र) । परिहार=पीपा प्रतिहार । स मानं=मान सहित । वटि=विभाजित करके । सुभटति=सामंतों को । सहस=सहर्ष । रक्खी घरह=अपने हिस्से में । वत्त=बात । वज्जे=बाजे । दरह=द्वार पर ।

अर्थः—पृथ्वीराज ने उस क्लव सुलतान से आठ सहस्र विद्युतगामी घोड़े दंड में लिए । उनमें से एक सहस्र नरनाह कन्ह को, एक सहस्र चंद पुण्डीर को, एक सहस्र जैत्रराय को, एक सहस्र गोविन्दराय को, एक सहस्र जामराय यादव को, एक सहस्र मुम्फ (वरदाई चद) को और दो सहस्र पीपा प्रतिहार को सम्मान सहित सहर्ष प्रदान कर दिए और अपने लिए केवल कीर्ति ही रक्खी । यह बात जब सोमेश्वर ने सुनी तो उसने अपने द्वार पर पांचों प्रकार के बाजे बजवाए ॥

भइय भीर दरवार; भूरि[1] सुभटनि दुति राजहिं ।
ऐरावत आकार; मत मंते गज गाजहिं ॥
तुरी तत्त[2] निरतत्त[3]; जिनहिं दिक्खत[4] रवि भुल्लत[5] ।
वस तीस छह अगग[6], मछर मुच्छति[7] खग तुल्लत[8] ॥
दिक्खियै दीनु दालिद्र तहँ, सह मत्त[10] लच्छी[11] मयन ।
दिक्खत[12] पित्थ[13] प्राक्रम पहु, जै जै सुर जंपै जयन ॥ ४१ ॥

प्रा० पा० १ से १३ दे० ।

शब्दार्थ –द्युति=द्युति । ऐरावत=ऐरावत [इन्द्र की सवारी का हाथी] । मत मते=मद में मतवाले । तुरी=घोड़ा । तत्त=तेज । निरतत=नाचते हुए । भुल्लत=भूल जाता । तीस सह=छत्तीस । तुल्लत= तोलते, उठाते । दिक्खियै=देखे जाते । दीनु=गरीब । दालिदु=दरिद्री । पिथ= पृथ्वीराज । प्राक्रम=पराक्रम ।

अर्थः—इस विजयोत्सव को देखने के लिए सभा मे भीड लग गई । उस समय सुभटों की कान्ति अत्यन्त सुशोभित हो रही थी । ऐरावत के तुल्य मद मे मतवाले हाथियों की गर्जना और तीव्र गामी अश्वों के नृत्य को देख २ सूर्य भी स्वय अपने को भूल जाता था और छत्तीस ही कुल के क्षत्रीय मूछें मरोंडते और तलवार उठाते हुए दिखाई पड़ते थे । दान-दरिद्री भी उस दिन अपार लक्ष्मी को पाकर मन से मत-वाले हुए फिरते थे । पृथ्वीराज के इस अपार पराक्रम को अन्य राजा गण देखते ही रह गये और आकाश से देवता गण भी उस की जय २ कार करने लगे ।

-- —※— —

करहेरा युद्ध

(समय ३०)

दोहा

कितक दिवस विते नृपति, सारंगीपुर साज ।
धर मालव मंड्यौ नृपति, आखेटक पृथिराज ॥ १ ॥

शब्दार्थ:—कितक=कितने ही । विते=बीतने पर । मड्यौ=की । आखेटक=शिकार ।

अर्थ:—कुछ दिन बीतने पर राजा पृथ्वीराज मालव प्रदेश में शिकार करता हुआ सारंगीपुर की ओर चला ।

कवित्त

चौ अग्गानि सट्ठि, सूर सामंत सु सथ्थं ।
मालव धर पृथिराज, सज्जि आखेटक तथ्थ ॥
वर उज्जैनीराव, जीति पावार सु भीमं ।
बल समर जोगट्ठ, गाहि चहुआनजु सीमं ॥
सगपन सु जीति सभरि धनिय, ग्रहन जोग समवर नृपति ।
सभाग समर सुनयौ नृपति[1], समर बीर मडन दिपति ॥ २ ॥

१ पा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थ:—चौ अग्गानी=चार ऊपर । सट्ठि=साठ । तथ्थ=तहाँ । उज्जैनीराव=उज्जैन राजवंशज । पांवार=प्रमार । बल समर=समर विक्रम । जोगट्ठ=योगीन्द्र । गाहि=ग्रहण की, प्रवेश किया, सहायता की । सीम=सीमा में । सगपन सु जीति=सम्बन्धी पर प्रेम की विजय की, प्रेम निभाया । ग्रहन=ग्रहण किया । समवर=स्वयंवर । सभाग=समान रूप से ।

अर्थ:—मालव प्रांत में आखेट के लिये जाते समय पृथ्वीराज के साथ ६४ सामंत थे उसने उज्जैन राजवंशी प्रमार भीम (इन्द्रावती के पिता सारंगीपुर के राजा) पर विजय प्राप्त करने के लिये योगीन्द्र उपाधिधारी **समर विक्रम की सीमा में प्रवेश** किया

(अर्थात् समर विक्रम की सहायता पर पहुँचा)। इस प्रकार उस समरेश्वर ने अपने सम्बन्धी पर प्रेम की विजय और इन्द्रावती से स्वयंवर करने के लिये एक ही साथ निश्चय किया। तब राजा और उसके जाज्वल्यमान सामंतों द्वारा समान रूप से युद्ध का मंडन हुआ।

दोहा

सुबर बीर चिंतै नृपति, बर बरनी दुति काज।
बर इन्द्रावती सुन्दरी, बरन तकै पृथिराज ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—चिंतै=चिन्तन करती है, करते हैं। बरनी=वर्णन की गई। दुति=दीप्ति, कांति। काज=के, लिये। तकै=देखना, सोचना, विचारना।

अर्थः—पृथ्वीराज की श्रेष्ठ कांति वर्णन कीगई, इससे उस बहादुर राजा को इन्द्रावती अपने पति रूप में चिंतन करने लगी। इधर पृथ्वीराज भी उस इन्द्रावती सुन्दरी को वरण करने के लिये उत्सुक होगया।

अथवा—कवि कहता है-हे नृपति! उत्तम वीर उनका चिंतन कर रहे हैं, जिनकी (अप्सराओं की) कांति का श्रेष्ठ वर्णन हुआ है और इधर तू इन्द्रावती सुन्दरी का वरण करने के लिये उत्सुक है।

कवित्त

इन्द्र सुन्दरी नाम, बीय इन्द्रावती सोभै।
बर समुंद पावार, धरिग अति सम सग लोभै॥
मनमथ मथन नरिंद, हाइ करि भाइह गाढी।
रूप तरंग झकुरित, तुंग दोऊ करि काढी॥
ज्यों छित्ति काम चाग्यो परित, अति सुदेह त्रिम्मल झलकि।
सकुच सु काम कर कलिय तिहि, रिपु सु देखि आयौ ललकि॥ ४ ॥

शब्दार्थः—इन्द्र सुन्दरी=इन्द्राणी। वीय=द्वितीय। समुंद=समुद्र। पावार=प्रसारिनी। धरिग=धारण कर लिये हैं। अति=विशेष। सम=समान। सग=साथी। लोभै=लोभित, मोहित करने वाली। मथन=मथन। हाइ=हाव। भाइह=भाव। गाढी=दृढ। झकुरित=हिलोरों

पर, तूफान आने पर। तुंग=शिखर। काढ़ी=निकाले। चंप्यौ परित=दबाया गया, दमन किया गया। त्रिम्मल=निर्मल। रिपु=शत्रु, (कामदेव के शत्रु शिव)। ललकि=मुग्ध होकर, इच्छा करके।

अर्थः इंद्रावती द्वितीय इन्द्राणी तुल्य सुशोभित थी। वह प्रमारिनो उत्तम सिन्धु के समान थी और उसी प्रकार आकर्षित करने की सामग्री भी उसके पास थी। राजा (पृथ्वीराज) के मन को हाव भावों द्वारा खींच लेना ही उसकी दृढ शक्ति थी। रूप की तरगों के तूफान से उसके अंग में दो गिरि शिखर (कुच) निकल आये थे, या जैसे २ पृथ्वी पर कामदेव का शंभू द्वारा दमन किया गया, वैसे २ ही वह विशेष रूप से सतर्कता पूर्वक देह में झलकने लगा। यह देख कर काम-शत्रु (शिव) मुग्ध होकर कलियों के रूप में उसके अंग से अवतरित हुए हों, ऐसा दीखने लगा।

दोहा

श्रीफल दुजवर हथ्थ करि, दैन गयौ चहुआन।
दिन पचमि वर भौम दिन, लगन करै परमान॥ ५॥

शब्दार्थः—लगन=लग्न तिथि। परमान=निश्चय।

अर्थः—राजकुमारी के सम्बन्ध का नारियल हाथ में ग्रहण कर वहां का पुरोहित (सारंगीपुर के राजा का पुरोहित) चाहुआन नरेश्वर के पास समर्पित करने के लिये आया और उत्तम तिथि पंचमी मगलवार को लग्न करना निश्चय किया गया।

दुज पुच्छै आतुर नृपति, किहि वय किहि उनहार।
किहि लच्छिन मति कौन विधि, कहि कहि सुमति विचार॥ ६॥

शब्दार्थः—उनहार=सूरत, रूप। लच्छिन=लक्षण।

अर्थः—पृथ्वीराज ने व्यग्रता पूर्वक आये हुए ब्राह्मण से पूछा कि राजकुमारी की क्या अवस्था है, कैसा सौन्दर्य है, किस प्रकार के लक्षण हैं और किस तरह की बुद्धि है? हे द्विज! अपनी श्रेष्ठ बुद्धि से विचार कर कहो।

वाल सुनत पृथिराज गुन, ढुरि ढुरि श्रवन सु हित्त।
जिम जिम दुजवर उच्चरत, तन मन तिम तिम रत्त॥ ७॥

शब्दार्थः—बाल=बाला। लगि २=लगा २ कर। रत्त=लीन।

अर्थः—पृथ्वीराज प्रेम मे लीन होकर उस बाला के गुण सुनने लगा और कानों को तृप्त करने लगा। जैसे २ ब्राह्मण उसका वर्णन करता गया, वैसे ही पृथ्वीराज का तन मन उस बाला में अनुरक्त होगया।

कवित्त

वर उज्जैनोराव, रग बज्जे नीसान।
इन्द्रावती सुन्दरी, बीर दीनी चहुआन॥
राज मंडि आखेट, समर कग्गर बर धाइय।
बर गुज्जरवै राव, चपि चित्तौरै आइय॥
उत्तरे बीर प्रव्वत गुहा, धर पद्धर मेलान किय।
जोगिन्दराव जग हथ्थ वर, गढ उत्तरि किरपान लिय॥ ८॥

शब्दार्थः—उज्जैनीराव=उज्जैनराजवशी (सारगीपुर का राजा)। रग=मांगलिक। धाइय=प्राप्त हुआ। बर=बल। गुज्जरवै=गुर्जरेश्वर के। चपि=दबाने को। उत्तरे=पार किये प्रव्वत=पर्वत। गुहा=गुफा। धर पद्धर=समतल भूमि। मेलान किय=मुकाम किया। जोगिन्दराव=योगीन्द्र उपाधि धारी चित्तौड़ेश्वर। किरपान=कृपाण।

अर्थः—इस प्रकार उज्जैन राजवशी (सारगीपुर के राजा भीम) ने अपनी सुन्दर राजकुमारी इन्द्रावती को चाहुआन नरेश को देने का निश्चय करके पुरोहित द्वारा वाग्दान करवाकर मागलिक बाजे बजवाये। इधर पृथ्वीराज शिकार करने लगा (या शिकार करता हुआ चल , उसी समय रावल समर-विक्रम का पत्र मिला। उसमे लिखा था कि गुजरात के राजा की सैन्य शक्ति चित्तौड को दबाने के लिये आई है। वे चालुक्की वीर, पर्वत और गुफाओं को (भील प्रदेश को) पार कर समतल में आगये है और वहाँ डेरा डाल दिया है। इस से ससार के श्रेष्ठ बाहू स्वरूपी योगीन्द्र राय (योगीन्द्र उपाधिधारी चित्तौडपति) ने दुर्ग छोड़ युद्धार्थ कृपाण हाथ मे ली।

दोहा

छंडि बीर आखेट वर, गौ मेलान नरिंद।
छंडि सूर सिंगार रस, मंडि बीर वर नंद॥ ९॥

शब्दार्थः—गो=गया, चल पड़ा। मेलान=मुकाम करता हुआ। नद=प्रसन्नता युक्त।

अर्थः—यह सुनकर राजा पृथ्वीराज ने आखेट छोड़ पड़ाव करते हुए चित्तौड़ की ओर प्रस्थान किया। इस प्रकार वह बहादुर श्रृंगार (रस) को त्याग कर वीर रस का मडन करने के लिये चला।

कवित्त

मतो मडि चहुआन, सबै सामत बुलाइय।
दै खडौ पज्जून, वीर उज्जैन चलाइय॥
सथ्थ कन्ह चहुआन, सथ्थ वड़गुज्जर रामं।
सथ्थ चंद पुंडीर, सथ्थ दीनौ नृप हामं॥
आवृत्त अत्तताई सुवर, रा पज्जून सु मुक्कलिय।
मुक्कल्यौ गौर निद्दुर सुवर, मुक्कलि जै सिंघ पक्खलिय॥ १०॥

शब्दार्थः—मतो=मत्रणा। खडौ=खड्ग। उज्जैन=उज्जैन प्रांत की ओर (सारंगीपुर) या उज्जैन राजवंश की ओर। हामं=हमीर। आवृत्त=घिरा हुआ। निद्दुर=निड्डुरराय। गौर=कोई गौड़ क्षत्रिय। मुक्कलि=भेजा। पक्खलिय=पक्ष पर।

अर्थः—मत्रणा करके चाहुआन नरेश्वर ने सब सामतों को बुलाया तथा अपना खड्ग कछवाहे पज्जून को दिया और उस वीर को उज्जैन (उज्जैन प्रांत) की ओर (सारंगीपुर को) या उज्जैन राजवंशी भीम की ओर रवाना किया। उसने (पृथ्वीराज) कन्ह चाहुआन, रामराय वड़गुज्जर, चद पुंडीर, राजा हम्मीर, श्रेष्ठ अत्ताताई, वीर गौर, निड्डुरराय और जयसिंह आदि को साथ में दिया। वे वीर पज्जून के साथ होकर उसके आसपास चलने लगे।

दोहा

मुक्कलयौ कवि चद सथ, नृप मुक्कलि गुरुराम।
मुक्कलयौ कैमास सॅग, दाहिम्मों वर ताम॥ ११॥

शब्दार्थः—कैमास सग=कैमास के पीछे उत्पन्न होने वाला (चामडराय)। ताम=तब।

अर्थः—इनके अलावा कविचद, गुरुराम पुरोहित और कयमास के बाद पैदा होने वाले दाहिमा चामंड को भी राजा ने पज्जून के साथ रवाना किया।

मत्र सामत सु सगली, लै चल्यौ चहुआन ।
वरनि चिन्ह उर सल्लई[1], कहिय कविय वक्खान ॥ १२ ॥

ग्रा० पा० १ भी० ।

शब्दार्थ:—सगली=सिंहली, सिंह के समान । वरनि=वरण की जाने वाली नव वधू । चिन्ह=चाहने वाली । सल्लई=खटकने लगी, चुभने लगी ।

अर्थ:—सिंह के समान शक्ति रखने वाले सामतो को साथ में लेकर चाहुआन नरेश्वर रावल की सहायता पर चल पड़ा । यह बात प्रेम करने वाली नव वधू (इन्द्रावती) के दिल में खटकी, परन्तु पृथ्वीराज ने उसकी भी परवाह नहीं की। इस विषय मे कवि पृथ्वीराज की प्रशसा करता है (अर्थात् स्त्री प्रेम से भी मित्र की सहायता करना उच्च माना) ।

दोहा

सज्जि सेन प्रथिराज वर, बीर वरन चहआन ।
वर दसौर सभय मिल्यौ, चित्रगी परधान ॥ १३ ॥

शब्दार्थ:—बीर वरन=वीर रस को वरण करने के लिये (या वीरों का अप्सराओं के साथ वरण कराने के लिये) । दसौर=दशपुर (मन्दसोर) । सभय=सामने । चित्रगी=चित्तौडेश्वर का ।

अर्थ:—वीर रस का वरण करने के लिये चाहुआन राजा पृथ्वीराज ने श्रेष्ठ सेना सजाई । इतने मे चित्तौडेश्वर का प्रधान भी मन्दसौर स्थान पर सामने (अगवानी के लिय) आकर मिला ।

उत राव सम्हौ मिल्यो, चित्रगी परधान ।
कहौ समर रावल कहा, पुच्छि कुसल चहुआन ॥ १४ ॥

शब्दार्थ:—पुच्छि=पूछा ।

अर्थ:—चित्तौडेश्वर के प्रधान के आने पर चाहुआन नरेश्वर ने कुशल पूछी और पूछा कि रावलजी आजकल कहाँ है ?

कवित्त

कहि चित्रगिय मंत्रि, चपि आयौ चालुक्कह ।
तुप नन दीनौ भेद आइ मडो वर चुक्कह ॥

चित्रंगी चतुरंग, आइ अड्डो करहेरां ।
जुद्ध रुद्ध चालुक्क, हुए कोऊ दिन भेरां ॥
हम दैन खबर तुम मुकलिय, कहौ कही मुख मुक्ख-रुख ।
पृथिराज राज अग्गैं विवरि, कही वत्त परधान मुख ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—चंपि=दबाता हुआ । नन=नहीं । आइ=आकर । मडो=किया । वर=श्रेष्ठ ढंग से । चुक्कह=चूक, अचानक आक्रमण । अड्डो=रोका । करहेरा=करेड़ा (मेवाड़ के अंतर्गत जैनियों का तीर्थ स्थान और स्टेशन) । कहौ=कहता हूं । कही मुख=श्री मुख से कही हुई । मुक्ख-रुख=मुख की चेष्टा, इच्छा । विवरि=व्यौरेवार । मुख=सामने या मुख्य ।

अर्थः—तब चित्तौडेश्वर का मंत्री कहने लगा कि चालुक्य दबाता हुआ आ गया है । आपको इसका भेद हम न दे सकें, ऐसे ढंग से उसने अचानक आकर आक्रमण किया है । चित्तौड़ेश्वर ने ससैन्य करहेरा (करेड़ा) नामक स्थान पर उसे रोका है और अपने पक्ष वालों सहित एकत्रित होकर बहुत दिनों से चालुक्यों के साथ युद्ध में उलझा हुआ है । उसी की खबर देने के लिये मुझे आपके पास भेजा है । जैसा रावलजी ने श्री मुख से कहा है और उनकी जो इच्छा है, उसी के अनुसार मैं निवेदन करता हूँ । इस तरह प्रधान ने व्यौरेवार सब बातें पृथ्वीराज के सामने कहदीं ।

नृप बुमझै चालुक्क, सेन कित्तक परमान ।
आइ मड्यौ चित्रंग, निरत दीना नन आनं ॥
सूर सुबर आवृत्त, रीति रक्खी विधि जान ।
इन अग्गै चालुक्क, वेर कित्ती भग्गान ॥
जोगिन्द्राव जिप्पन बलिय, कलिय काल छप्पन विरद ।
समरंग वीर सम सिंघ बल, चपि लैन चालुक दुरद ॥ १६ ॥

शब्दार्थः—कित्तक=कितने, क्या है । निरत=विश्राम । आन=और को, विपत्तियों आवृत्त=घेरा । विधि=तरीका । वेर=बार २ । भग्गान=भग गये । जिप्पन=जितने में । छप्पन विरद=जिसके छप्पन विरुद हैं । समरंग=समर विक्रम । चंपि लैन=दबा लेने वाला । दुरद=द्विरद, हाथी ।

अर्थ:—प्रधान कहने लगा–हे राजन्! आपके पूछने से कहता हूँ कि चित्तौडेश्वर के सामने चालुक्की सेना क्या चीज है? उसने आकर चित्तौड़ेश्वर को घेर लिया; किन्तु उन्होंने विपक्षियों को विश्राम तक न लेने दिया। श्रेष्ठ वीरों से घिरे हुए होने पर भी उन्होंने ढग से अपनी मर्यादा की रक्षा की। उनके सामने से कई बार चालुक्य भाग गये हैं। धन्य है योगीन्द्र उपाधिधारी रावलजी को, जो विजय प्राप्त करने मे बलवान हैं और इस कलिकाल मे जिनके ५६ विरुद हैं। कुजर स्वरूपी चालुक्यों को दबाने के लिये समर विक्रम सिंह के समान है।

पावस रन प्रव्वाह, अभ्भ छायौ छिति छाइय।
छित्री छित्ति प्रमान, अभ्भ बद्दर उठि झाइय॥
आलस नींदय खीझ, सत्त राजस गहि तामस।
धर दुहरन बुट्ठनह, करै उद्दिम रन हामस॥
शृगार रभ ग्रेह बसह, औ कुलटा सुकवीय हुव।
कारन्न किति औकाल मिसि, द्रवै इद्र सूरह सुलव॥ १७॥

शब्दार्थ:—पव्वाह=प्रवाह। अम्भ=अभ्र, बादल। बदर=बादल। झाइय=चमक। आलस=आलस्य। नींदय=निंदित किया, अभाव किया। दुहरन=दुरूह, घनघोर। बुट्ठनह=बरसने के लिये, झड़ी करने के लिये। रन=रण कुमार। हामस=हुमस कर। ग्रेह=घर में। कुलटा=कुलटत्व। सुकवीय=स्वकीय, स्वकीया। सुलव=सुलभ, सहज में।

अर्थ:—युद्ध का प्रवाह वर्षा-प्रवाह के तुल्य बढ़ा और जिस प्रकार आकाश मे बादल छा जाते है, उसी प्रकार पृथ्वी वीरों से ढक गई। जिस प्रकार बादलों में विविध रग होते हैं, उसी तरह पृथ्वीपर वीरों के कवच आदि की चमक भी दिखाई पडी। सत्व और रजोगुण को धारण करने वाले वीरों ने तमोगुण को गृहण कर आलस्य को भगा दिया। पृथ्वी पर घन घोर प्रहार करने के लिये उन्होंने क्रुद्ध होकर युद्ध का उद्यम किया (या रण कुमार ने गर्म हो कर प्रयत्न किया)। रभा के निवास-स्थान मे सजावट के कारण मानों, शृगार रस बस गया हो, ऐसा आभास हुआ और सुर-वाराङ्गनायें वीरों पर मोहित होकर कुलटत्व से स्वकीयत्व मे प्रवृत्त हो गई। उन बहादुरों ने कीर्ति और काल द्वारा सहज ही में इन्द्र को भी प्रसन्न कर लिया।

कवित्त

ज्यौं गुनाव गारडू, सेन चालुक मिमि साही।
विषम लोर फुकर्यौ, सु फन ब्रह्मण्डन वाही॥
जीभ खग्ग जम्भ्मरि, सेन सज्जे चतुरंगी।
बान मंत्र मंने न, रसन कुंनन अवग्गी॥
मन धीर वीर तामस तमसि, निधि चल्ले मन मध्य दिसि।
भोरा भुवंग भजन भिरन, पुब्ब दई चितह सु वसि॥ १८॥

शब्दार्थः—गुनाव=गुण। मिसि=बहाने से साही=गृहण की, घेरादिया। फुकर्यौ=फुंकार की। फन=फण। ब्रह्मडन=ब्रह्माण्ड को। वाही=चलाये। जम्भ्मरि=चलाई, भाड़ी। चतुरंगी=चित्तौड़ेश्वर। कुंनन=फण, फेनकण। अवग्गी=उगले। निधि=नाघकर, देखकर। मध्य दिसि=मालव प्रांत को (इंद्रावती की ओर)। पुब्ब=पूर्व, पहले।

अर्थः—चालुक्केश्वर ने सेना के बहाने गारुड़ी के गुणों को काम में लेकर (गरुड व्यूहाकार) घेरा डाला; किंतु चित्तौडेश्वर प्रबल पराक्रम करता हुआ फुंकार कर ब्रह्मांडतक फन चलाने लगा (फैलाने लगा)। वह अपनी सेना को सर्पाकार सजाकर खड्ग रूपी जिह्वा चलाता हुआ बाणों रूपी मंत्रों को लोप गया। रसना द्वारा जहर के झाग (फैन) उगलने लगा। यह सुन (देख) कर धीर वीर पृथ्वीराज तमोगुण धारण कर चित्तौड़पति की मदद पर चला, किन्तु उसका मन मध्य प्रांत (इद्रावती) की ओर था। उसने पहले भीम (चालुक्य) और उसके साथियों से लड़कर उन्हें नष्ट करने का ही निश्चय किया।

थह संभरि चहुआन, वीर पारधि खरि आइय।
दुहुं निसान वजि समुद्द, भूमि पुर कंपि हलाइय।
वीर सिंघ आहुट्ट, वीर चालुक मुख साहिय।
पुच्छ मग्ग चहुआन, दुहून वर वीर समाहिय।
उत्तरिय मनों सामुद्द तहि, उदित दीह मंगल अरक।
जोगिंद जेम जोगिंद कसि, अट्ठ कुली वच्छै मुरक॥ १९॥

शब्दार्थः—थह=स्थल, स्थान। पारधि=शिकारी। खरि आइय=चलकर आया। हलाइय=हिलादिये।

सिंघआहुठ्ठ=सिंह उपाधिधारी आहड़ा (चित्तौडेश्वर)। पुच्छ=पूछ। समाहिय=पकड़ा। उत्तरिय=उतर पड़ा, निकल पड़ा। सामुद्द-समुद्र तल से। जोगिंद=रुद्र । जोगिन्द=योगीन्द्र उपाधिधारी चित्तौडेश्वर । अष्टकुली=सर्प । पुरक=गर्वयुक्त मरोड़ युक्त ।

अर्थः—उस युद्ध स्थल में समरेश्वर वीर चाहुआन पारधी (शिकारी) का रूप गृहण कर पहुँचा और चित्तौडेश्वर तथा दिल्लीश्वर के नक्कारे बजने शुरु हुए। जिससे पृथ्वी के सारे नगर कंपित होकर हिल पडे। सिंह उपाधिधारी वीर आहडे ने (चित्तौडेश्वर ने) चालुक्की वीरों का मुख भाग (मुहान) ग्रहण किया और चाहुआन ने पूछ (पृष्ठ भाग) को पकडा। इस प्रकार शत्रु सेना को दोनों श्रेष्ठ वीरों ने घेर लिया (दबाया)। उस समय ऐसा दीख पडा, मानो अरुणवर्ण सूर्य ने समुद्रतल से निकल कर (पृथ्वीराज के उदय होते ही) प्रात काल कर दिया हो (शत्रु-तम का नाश कर दिया) और योगीन्द्र उपाधिधारी भी रावल रुद्र रूप हो गया। उन्हें चाहने वाले उनके वीर अष्टकुली नागों के समान गर्व करने लगे।

दोहा

चालुक्का चहुआन दल, भई सनाह सनाह ।
दोऊ सेन कवि चद कहि, बरनि वीर गुन चाह ॥ २० ॥

शब्दार्थः—सनाह=कवच ।

अर्थः—चालुक्की सेना और चाहुआनी सेना ने कवच से कवच मिला दिये [छाती से छाती मिला दी अथवा कवच कस लिये]। कवि उनके उत्साह और गुणों का उत्सुकता पूर्वक वर्णन करता है।

चालुक्का चित्रग पति, मिले दिष्टि दुअ दौरि ।
मनों पुब्ब पच्छिमहुतें, उडि डबर इल सौर ॥ २१ ॥

शब्दार्थः—दिष्टि=दृष्टि । पुब्ब=पूर्व । डबर=बवडर । सौर=बारूद ।

अर्थः—चालुक्की वीरों से चित्तौडेश्वर की दृष्टि इस तरह मिल गई मानों पूर्व और पश्चिम से पृथ्वी पर बारूद का बवडर (ढेर) भभक उठा हो।

इत चप्यौ चित्रग पति, उत चुहान पृथिराव '
आइ राज उप्पर करन, बज्जि निसानन घाव ॥ २२ ॥

शब्दार्थः—उप्पर करन=सहायता करने पर। घाव=चोट।

अर्थ—इधर से (आगे से) चित्तौड़पति ने और उधर से (पीछे से) पृथ्वीराज ने चालुक्की सेना को धर दबाया। इस प्रार राजा पृथ्वीराज के रावलजी की मदद पर आते ही नक्कारे पर डके की चोट पड़ी।

कवित्त

सब सामत रु समर, वीर दच्छिन दिसि हंडिय।
चाहुआन हूसेन, गज्ज व्यूहं रचि गढ्ढिय।
एक दत हूसेन, दंत दच्छिनह तत्तारी।
सुड गरुअ गोयद, राज कुम्भस्थल भारी॥
दिसि वाम सबै आकार गज, महनसीहमोरी सुबर।
वढ्ढनय अंग आहुट्ठपति, महनरंभ मच्चौ सुभर ॥ २३ ॥

शब्दार्थः—हडिय=चले। गढ्ढिय=दृढ। तत्तारी=तत्तार खानदान का कोई गाजी हुस्सेन का साथी। राज=पृथ्वीराज। वढ्ढनय=चढाने वाला, महावत। आहुट्ठपति=आहडों का स्वामि चित्तौड़ेश्वर। महनरभ=महान युद्धारभ। मच्चौ=मचाया, ठाना, किया।

अर्थः—सब सामतों सहित वीर समर विक्रम ने शत्रुओं पर दक्षिण की ओर से या दाहिने पार्श्व पर आक्रमण किया। उसी समय चाहुआन और हुस्सैनखां ने दृढ़ गज-व्यूह की रचना की। जिसमें एक दाँत के स्थान पर हुस्सैन, दूसरे दांत (दाहिने) के स्थान पर उसी का साथी कोई तत्तारी खानदान का योद्धा, सूंड़ के स्थान पर बड़ा गोइन्द राज, कुंभस्थल के स्थान पर स्वयं पृथ्वीराज, वाम पार्श्व के सारे अंगों के स्थान पर महनसिंह मोरी और महावत के स्थान पर स्वयं आहडों का मुखिया चित्तौडेश्वर हुआ और भयकर युद्ध छेड़ा।

दोहा

चालुक्कां परि सूर रन, सहस एक सुर सत्त।
चूक चित चूको चित न' श्रौ अचिज्ज विधिवत्त ॥ २४ ॥

शब्दार्थः–मुर=मुड़ गये, पैर छोड़ दिये। सत्त=सौ। अै=यह। अचिज्ज=अचरज, आश्चर्य।

अर्थः—उस समय एक सहस्र चालुक्की वीर युद्ध स्थल मे धराशायी हुए और एक सौ के पैर उखड गये। फिर भी आश्चर्य है कि छद्म चिंतन (छल करने) से उनका चित्त न हटा।

पंच पहर बित्यौ समर, दिन अथवत प्रमान।
उभै सत्त रावर समर, पृथीराज सत आन॥ २५॥

शब्दार्थ–उभै सत्त=दौ सौ। सत=शत, सौ।

अर्थः—पाच प्रहर तक युद्ध होता रहा और सूर्यास्त होने तक युद्ध मे रावलजी के दौ सौ और पृथ्वीराज के सौ १०० योद्धा काम आये (धराशायी हुए)।

निस वर घट्टिति सत्तरहि, सेस जाम पल तीन।
भिरि भोरा रावल समर, रत्तिवाह सो दीन॥ २६॥

शब्दार्थः–घट्टिति=वह घडी। सत्त=सात। सेस=शेष। जाम=याम, प्रहर। रत्तिवाह=छापा मार।

अर्थः—जब तृतीय प्रहर रात्रि मे से सात घडी पाच पल रात्रि शेष रही, उस समय भीम चालुक्य और रावल समर मे छापा मार युद्ध हुआ।

नदी उत्तरि चालुक्क वर, चपि सुभर पृथिराज।
सुभर भीर उप्पर परे, मनो कुलींगन बाज॥ २७॥

शब्दार्थः–कुलींगन=एक प्रकार का पक्षी।

अर्थः—श्रेष्ठ चालुक्की वीरों ने नदी को पार किया, उसी समय पृथ्वीराज के योद्धाओं ने आक्रमण कर भीम के योद्धाओं को इस प्रकार दबाया जैसे बाज कुलिंग पक्षियों को दबाता है।

दोहा

औसरि भर पिच्छै परे, समर तिरच्छौ आइ।
मानहुँ बहु¹-हूत्तोमनी, भई त्रिभच्छनि धाइ॥ २८॥

१ पा० पा० १, पारमोलो।

शब्दार्थः—औसरि=अवसर पाकर। पिच्छै परै=पीछा किया। खहु-हुतेसनी=गगनाग्नि, बिजली।

अर्थः—अवसर पाकर रावल समर विक्रम ने भी तिरछा रुख देकर चालुक्की वीरों का पीछा किया। उसकी तलवार ऐसी दीख पड़ी, मानो गगनाग्नि (बिजली) ने वीभत्स रूप धारण किया हो (अर्थात् लोहू, मज्जा, मांस, हड्डियों आदि का ढ़ेर कर दिया)।

कवित्त

वीर वीर आरब्ब, चढ्ढि वीरतन हक्के।
चावद्दिसि बिड्डुरे, मोह माया न कसक्के॥
एक दिनां आहुरे, आदि जुद्धं खिति लग्गे।
कै छुट्टे मदमोख, जानि वीरन द्रग जग्गे॥
घन घाइनि घाइ अघाइ घन, मति सुभाइ बिब्भाइ परि।
कवि चंद वीर इम उच्चरै, प्रथम जुद्ध आदीत टरि॥ २९॥

शब्दार्थः—आरब्ब=अरबी घोड़े। हक्के=चलाये। बिड्डुरै=भय छागया। कसक्के=कर्षण किया, छूआ। लग्गे=दीखपड़ा। मति सुभाइ=सुहावनी मति के। बिब्भाइ=विभ्रम, भ्रमित।

अर्थः—प्रत्येक वीर घोड़े पर चढ़कर विपक्षी वीरों को विचलित करने लगा, जिससे चारों ओर भय छा गया। उन वीरों को कभी मोहमाया नहीं छू पाई थी। वे एक ही दिन में भिड़कर पृथ्वी पर पूर्वकालीन युद्धों का भ्रम फैलाने लगे। उस समय वे ऐसे दिखाई पड़े, मानों मतवाले हाथी छूट पड़े हों या चक्षु के समस्त बावन वीर जागृत हुए हों (अथवा शिवनेत्र से वीर प्रगट हुआ हो)। उन वीरों ने विपक्षियों को घायल कर दिया, जिससे सुहावनी मति वाले भी भ्रम में पड़ गये (चकित हो गये)। कवि कहता है- युद्ध में सम्मिलित वीरों ने मुझे कहा कि इस प्रकार आदित्यवार को हुआ वह प्रथम युद्ध समाप्त हो गया।

दोहा

संझ सपत्तिय वीर भर, परिग सुभर दस राइ।
तिय खवास परिगह नृपति, सिर घुम्मे घट घाइ॥ ३०॥

शब्दार्थः—संझ सपत्तिय=सांझ हो आई। तिय=तीन। खवास=पास रहने वाले, अंगरक्षक। परिगह=परिवार के।

अर्थः सध्या हो आई। दोनों ओर के बहुत से योद्धा, दस राजा (राजा उपाधिधारी) और तीन अग रक्षक तथा कितने ही राजपरिवार के वीर घायल होकर धराशायी हुए। उनके सिर और शरीर झूमने लगे।

कवित्त

परयौ समर खावास, जिनस जिरयौ चालुक्किय
परि भट्टी महनग, छत्र नल्यौ[1] अरि सकिय[2] ॥
परयौ गौर केहरी, रेह अजमेरी लग्गिय।
परिग वीर पामार, धार धारह तन भग्गिय ॥
रघुवस पच पचौ मिले, वर पचानन और कवि।
चित्रगराव रावर लरत, टरय दीह अथवत रवि ॥ ३१ ॥

ग्रा० पा० १, २ पा०।

शब्दार्थः—रेह=मर्यादा। लग्गिय=लगी, धारण की, के लिये। अथवंत=अस्त होते।

अर्थः—इस युद्ध मे एक जिसने चालुक्यों पर विजय पाई थी, ऐसा रावल समर-विक्रम का अग रक्षक वीर, जिसके भय से सशक होकर शत्रु ने सिर से छत्र हटा लिया, ऐसा महनसी भट्टी, अजमेर की मर्यादा को निभाता हुआ केहरी गौड, तलवार लेकर टूट पडने वाला वीरसिंह प्रमार, पचतत्व मे मिलते हुए पाच रघुवशी वीर, तथा पचानन वीर और एक कवि आदि धराशाई हुए। चित्तौड़ेश्वर के युद्ध करते हुए सूर्यास्त हुआ और वह दिन भी समाप्त हुआ।

घरी अद्ध दिन रह्यो, चलिग हुस्सैनखान भ्रम।
चालुक्का दिसि चल्यौ, मोह छड्यौ जु कमक्रम ॥
असि प्रहार चढि धार, मन न मोर्‌यौ तन तोर्‌यौ।
अस्त वस्त वज्री कपाट, दद्धिच ज्यों जोर्‌यौ ॥
वर रभ वरन उतकठनी, सूर हूर उतकठ मिलि।
ढिल्लीव ढोल जीरन जुग, गल्ह वीर जुग जुग्ग चलि ॥ ३२ ॥

शब्दार्थः—कमक्रम=क्रमश। उतकठनी=अभिलषित हुई। हूर=मुस्लिम अप्सरायें। ढोल=नक्कारे। गल्ह=ख्याति।

अर्थः—उस दिन जब आधी घडी दिन शेष था,तब हुस्सैनखां के शरीर से(सांसारिक) भ्रम दूर हुआ। वह क्रमश' ममत्व को छोड़ चालुक्यों की ओर वढा। खड्ग प्रहार करता हुआ वह खड्ग से मारा गया। शरीर कट गया किन्तु युद्ध से मन नहीं हटा। उसका अस्त व्यस्त शरोर दधीचि की हड्डियों के समान पुन. जुडकर वज्र-कपाट तुल्य हो गया। विपक्षी हिन्दू वीर से मिलने के लिये रंभा इच्छुक हुई। इधर हूर भी उस मुस्लिम वहादुर से मिलने की इच्छा लेकर चली। चाहे युगोंपरात दिल्ली के विजयी नक्कारे मद हो जॉय! फिर भी ख्याति युगों तक वनी रहेगी।

दोहा

निसि दिन-घटियति सत्त वर, दल चहुआनन चीन्ह।
भिरि भोरा रावर रिनह, रत्ति वाह सो दीन्ह ॥ ३३ ॥

शब्दार्थः—दिन-घटि=उस दिन की घड़ियों में से। सत्त=सात।

अर्थ—उस रात्रि की कुल घटिकाओं में से जब सात घडी शेष रही, तब चाहुआन की सेना भी नहीं जान सकी और रावल रणसिंह ने (या चित्तौड़ेश्वर रावल ने) छापा मारकर भोला भीम से (या भोराभीम की सेना से) युद्धारभ किया।

भिरि भग्गौ सुत-भुऑग को, गरुड़ समर गुर राज।
फिरि पच्छौ पुछी पटक्कि, विन सु गरव तजि लाज ॥ ३४ ॥

शब्दार्थः—सुत भुअँग=नागराज का वंशज (चालुक्यी वश में नागराज हुआ उसका पर्याय रूप लिखा गया)। पच्छौ=पीछा।

अर्थः—गरुड-तुल्य राजाओं के गुरु रावल समर से लडकर भुजंग-वंशज (चालुक्य नागराज का वशज भीम) गौरव और लज्जा को छोड़ कर पूंछ पटकता हुआ भाग गया।

खेत जीति चित्रंग, हत्थ चढ्यौ चहुआन।
के भोरी भर सुभर, लीन अप्पह पर आन ॥
केक किये परलोक, मुक्ति लब्भी गुर' जान।
पंचतत्त मिलि पच, सार धारह लग्गान ॥
चहुआन समर इकतन्नि मह, तहाँ सेन उत्तरि सुभर।
चालुक्क भीम पट्टन गयौ, करि चद कित्तिय अमर ॥ ३५ ॥

प्रा० पा० १, प्र० टि० (१)

शब्दार्थः—खेत=रणक्षेत्र। अप्पह=अपने। पर=पराये। एकतन्नि मह=एक होने में। उत्तरि=उतर पड़ी।

अर्थः—इस प्रकार चित्तौडेश्वर ने रणक्षेत्र को जीत लिया। इतने में विपक्षीदल चहूआन राजा के भी हाथ चढ़ गया (अर्थात् वह भी युद्ध में शरीक हो गया), जिससे कितने ही बहादुर योद्धा दोनों तरफ से घायल अवस्था में उठाये गये, कितनों ही ने परलोक में निवास कर मोक्ष को प्राप्त किया और कितने ही शस्त्र के लगने से पंच तत्व में मिल गये। इस प्रकार चाहुआन और रावल समर के एक होने से उनकी सेना के योद्धा शत्रुओं पर एक साथ उतर पड़े। जिससे चालुक्की भीम अपने स्थान पट्टन को चला गया। इस युद्ध को अमर कीर्ति मैंने (कवि चन्द ने) फैलाई।

कवित्त

तव रानिगर राव, झुमक्क धर रावर मंडिय।
रुकि सेन चहुआन, खग्ग मग्गह तन खंडिय॥
परिगहीय सव सथ्थ, गयौ चालुक्क वजाइय।
खभर खेह खग मिलिय, निरति पृथिराज न पाइय॥
वीरग वीर वज्जर विहर, भिरत वज्जि निय विप्पहर।
वज्जरत बीय बंभन परत, गयौ भीम तन वर कुसर॥ ३६॥

शब्दार्थः—चालुक्क वजाइय=दूसरा ही चालुक्य, चालुक्य का प्रतिनिधि। खभर=खदेड़कर। खेह=क्षय। वीरग=वीरधवल। वज्जर विहर=वज्र वेग से। बीय बंभन=दो ब्रह्म क्षत्रिय। कुसर=कुशल।

अर्थः—उस समय रानिगदेव झाला (मकवाना) ने रावल के भू भाग में युद्ध छेड़ा। यह देखकर चाहुआनी सेना ने डटकर सामना करते हुए तलवार द्वारा शत्रु शरीरों को खंडित करना प्रारम्भ किया। यद्यपि राज परिवार के वीर भाग गये थे, फिर भी चालुक्यराज के प्रतिनिधि ने शत्रुओं को खदेड़ने के लिये अपने खड्ग का प्रहार प्रारंभ किया, जिसके फलस्वरूप पृथ्वीराज भी विश्राम नहीं ले सका। वह वीरधवल वीर वज्र वेग से बढ़कर दो प्रहर तक लड़ता और तलवार चलाता रहा। वहाँ पर वज्र तुल्य दो ब्रह्म क्षत्रिय (चालुक्य) के धराशाई होने पर ही भीम का शरीर सकुशल लौट सका।

दोहा

तीस सहस बर तीस अग, गत चालुक रन मंडि ।
तिन में कोइ न ग्रह गयौ, सार धार तन खंडि ॥ ३६ ॥

शब्दार्थः—अग=आगे, सामने ।

अर्थः—तीस सहस्र चालुक्की सेना में से तीस वीर ही श्रेष्ठ थे, जिन्होंने चालुक्य-राज के लौटते समय आगे बढकर युद्ध किया। उन्होंने शस्त्र धारा से अपने शरीर को खण्ड २ करवा दिया, किन्तु (अपने शरीर को बचाकर) कोई भी घर नहीं लौटा ।

बावसूर कोइ न भयौ, धनि चालुक्की सेन ।
सामि काज तन तुंग सौ, त्रिन करि जान्यो जेन ॥ ३७ ॥

शब्दार्थः—बावसूर=सूरिया पवन, (वेगवान पवन)। जेन=जिनने ।

अर्थः—धन्य है (धिक्कार है) उस चालुक्की सेना को, जिसके तीस सहस्र योद्धाओं में से कोई भी सूरिया पवन (भीषण गति वाला वर्षा लाने वाला पवन) नहीं बन सका (अर्थात् सामना नहीं कर सका), उनमें से उतग शरीर वाले तीस वीरों ने ही स्वामी के लिये अपने शरीर को तृण तुल्य समझा ।

ढिल्ली नृप ढिल्ली गयौ, वजि निग्घात सु दंद ।
जिम जिम जस ग्रह राज करि, तिम तिम रचित कविंद ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ—कविंद=कवि चद, (कवि–इंद) ।

अर्थः—युद्ध के बाद दिल्लीश्वर ऊँची आवाज से युद्ध के नक्कारे बजवाता हुआ दिल्ली लौटा। उस राजा ने जो २ यश-कार्य किये, उनको मैंने (कवि- चन्द ने) वैसे ही छन्द बद्ध किये ।

जस धवलौ मन उज्जलौ,' निब्बी पहुमि न होइ ।
भूत भविच्छति त्रित्तमन, चित्रनहार न कोइ ॥ ३६ ॥

शब्दार्थः—जस=जैसा । धवलो=धवल, वीरधवल । निब्बी=निर्बीज । भविच्छति=भविष्य । त्रित्तमन=वर्तमान । चित्रनहार=रचना करने वाला ।

अर्थः—उज्ज्वल मन वाले वीरधवल (चालुक्य का प्रधान सामंत) के समान संसार में अन्य व्यक्ति भी मिल सकते हैं, क्योंकि पृथ्वी निर्बीज नहीं है (अर्थात् ऐसे व्यक्ति समय २ पर उत्पन्न होते रहते हैं), किन्तु उनके उज्ज्वल चरित्र का वर्णन करने वाले कवि का मिलना कठिन है।

खडौ सुनि पठयौ सु नृप, वज्जि निसानन घाइ।
वर इंद्रावति सुंदरी, बिय वर करि परनाइ ॥ ४० ॥

शब्दार्थः—खडौ=खांडा, खड्ग। बिय=दूसरे को। परनाइ=पाणिग्रहण।

अर्थः—उधर जब सारंगीपुर के राजा भीम ने सुना कि पृथ्वीराज ने इन्द्रावती को वरण करने के लिये अपना खड्ग भेजा है, तब उसने अपनी सुन्दरी कुमारी इन्द्रावती का विवाह अन्य व्यक्ति से करने का निश्चय कर नक्कारे पर डंका दिलवाया (युद्ध की तैयारियाँ प्रारम्भ की)।

—:-❀-—

इन्द्रावती विवाह

(समय ३१)

कवित्त

कहै भीम सुनि भट्ट, सूर बध्यौ सुर हि रित ।
दीना सों प्रति प्रीति, सामि करिहै जु सामिमित ॥
रत अरत्त विष होइ[1], अमृत रसु[2] रत्त उपज्जै ।
ग्राव ग्राव[3] सों प्रीति, सार सौं सार सपज्जै ॥
कट्ठ सौं कट्ठ वर बंधियै, नारि नरन सों व्याहियै ।
इह काज राज कविचद सुनि, त्यौं बरनी वर चाहियै ॥ १ ॥

प्रा० पा० १, ३ २, पा० ।

शब्दार्थः—भट्ट=बंदीजन । सूरहि=बहादुर से ही । रित=लीन या रीति । सामिमित=स्वामित्व । अरत्त=विरक्त । रसु=रस । ग्राव=पत्थर । सार=लोहा । सपज्जै=मिलता है, प्रेम करता है । कट्ठ=काठ, लकड़ी ।

अर्थः—सारगीपुर का प्रमार राजा भीम कवि चन्द से कहने लगा-हे वदीराज ! सुनो ! बहादुर और बहादुर की, स्वामी और स्वामी की, अमृत और रस की, पत्थर और पत्थर की, लोह और लोहे की, काठ और काठ की, नारी और नर की जोडी होती है । ये एक दूसरे के मित्र और परस्पर अनुरक्त होते हैं । यदि (उपर्युक्त अनुकूल विषय को छोड़कर) विरक्त से अनुरक्तता की जाय तो वह विष तुल्य होती है । इसीलिये राजा को चाहिये कि वे वरवधू के विषय मे भी उपर्युक्त बात का ध्यान रखें ।

सुनि भीमग पँवार, चढे प्रथिराज प्रपत्ते ।
समर दिसा चालुक्क, सजे चतुरग सपत्ते ॥
धन्नि मगन तन आनि, क्रित्ति चहुआन सुनिज्जै ।
साम दाम[1] अरु भेद, दृढ सुंदरि मह लिज्जै ॥
मौ मत्त सुनौ खरि जाइतौ, नृप वर महि कलहत भय ।
गुर गुरह सब्ब सामत ए, लज्ज बंधि तुव हथ्थ दिय ॥ २ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—प्रपत्ते=पहुँचे। सपत्ते=सहित पहुँचे, या पहुँचे। धन्नि=धन्य, प्रसन्न होते हुए, धन्यवाद देते हुए। मगन=मग्न, प्रसन्नता। तन आनि=शरीर में लाइये। गृह लिज्जै=ग्रह में लेगा, गृहदेवी बनायेगा। खरि जाइ=लौट जाय। कलहत=कलह। भय=होगा, डर। गुर गुरह=बड़े बड़े।

अर्थः—यह सुन कर कवि चन्द कहने लगा–हे भीम प्रमार! सुनो। रावल समर पर आक्रमण करने के लिए चालुक्यों ने चतुरंगिनी सेना सजाई है। वे वहाँ पर पहुँच गये हैं। इसीलिए पृथ्वीराज रावल–विक्रम की सहायता करने के लिए वहाँ पहुँचे हैं। अत उनके इस प्रशंसा योग्य कार्य को सुनकर आपको भी शरीर मे प्रसन्नता लानी चाहिये, क्योंकि चाहुआन नरेश की कीर्ति तो सर्वत्र सुनी जाती है। वह साम, दाम, भेद और दंड में से किसी एक के द्वारा सुन्दरी (इन्द्रावती) को गृह देवी बनायेगा ही–इसमें कोई संदेह नहीं है। मेरी सम्मति तो यह है कि यदि हम लौट जावेंगे तो आप दोनों राजाओं में कलह छिड़ेगा। अत अब यहाँ पर आये हुए बड़े बड़े सामन्तों की लज्जा तुम्हारे हाथ है (अर्थात् खड्‌ग के साथ राजकुमारी को ब्याह दो और कलह की इच्छा मत करो)।

कहै जोइ वरदाइ, मत कवि चद सुआ मन।
मनवा सौ मन मिलत, जीय तक्कै कठ[1] साम न॥
जो वासुर मुर पच, लग्ग मह‍ै चहुआन।
तो भाविक जिह लेख, तिही ह्वै है परिमान॥
भावी विगत्ति भजन गढन, दइय दुसकह जानि गति।
लिखि वाल सीस दुख सुक्ख दुह, सत्य होइ पर मान मति॥ ३॥

प्रा० पा० १ सशोधित।

शब्दार्थः—जोइ=देखकर, सोचकर। सुआ=यह, वह। तक्कै=देखता है। साम=सामने। वासुर=दिन। मुर=मुड़कर, लौटकर, बीतने पर। भाविक=भविष्य। तिहि=वही। परिमान=निश्चय हो। दसक्कह=विशेष शका से युक्त। बाल=बाला, कुमारी। पर मान मति=मेरी बुद्धि से सोची हुई।

अर्थः—भीम कहने लगा-हे वरदाई कविचद ! तुम्हें सोच समझ कर सम्मति देनी चाहिये। मन से मन मिलता है; वह काठ की ओर आकर्षित नहीं होता। यदि चहुआन नरेश कुछ दिनों तक खड्ग का मडन करता रहेगा तो जैसा भविष्य में लिखा होगा वैसा ही निश्चय रूप से होकर रहेगा, क्योंकि विधाता की गति दुरूह है। यदि भविष्य (भाग्य) वश हमारे दुर्गों का टूटना लिखा है तो वे टूट कर ही रहेंगे। इसी प्रकार कुमारी इन्द्रावती के सिर में (भाग्य में) दुःख या सुख जैसा भी लिखा होगा, वैसाही होगा, किन्तु मैंने अपनी बुद्धि से जो विचार किया है, वही सत्य और सही है (अर्थात् मैं खड्ग के साथ कुमारी का विवाह नहीं करूँगा)।

दोहा

सुनि इन्द्रावति सुंदरी, धरनि सरन सिर लाइ।
कै धरनी फट्टै कुहर, कै पावक जरि जाइ ॥ ४ ॥

शब्दार्थः—सरन=शरण। कुहर=छेद, दरार।

अर्थः—पिता की यह बात सुन कर सुंदरी इंद्रावती ने अपना मस्तक नीचा कर लिया और मन ही मन कहने लगी-हे पृथ्वी ! तू फटकर मुझे स्थान दे दे ताकि मैं उसमें समा जाऊँ अथवा अग्नि में जल कर भस्म हो जाऊँ।

इन भव न्रप सोमेस सुअ, जुध वधन सुरतान।
कै जलद्धि बूडवि मरैं, अवर न वछौ प्रान ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—इनभव=इस संसार मे, इस जन्म में। जुध=युद्ध। वधन=बाध लेने वाला। जलद्धि जलधि, समुन्द। बूडवि=डूबकर। अवर=और, अन्य।

अर्थः—मैं तो इस संसार में (या इस जन्म में) बादशाह को बाध लेने वाले राजा सोमेश्वर के पुत्र पृथ्वीराज को ही चाहती हू उसके बिना मेरे लिए समुद्र में डूब कर मरना ही श्रेष्ठ है।

कवित्त

सखी कहै सुनि वत्त, सुनौ दानव कुल कहियै।
अवर जाति अन्नेक, राइ गुर परनह लहियैं।

करे कौन परसग, पाइ म्रगमद घनसार ।
कोन करै कुष्टीन, सग लहि कामवतारं ।
तो पित्त अवर वर जो दियै, तो नन जपै अलिय वच्च ।
राचियै अप्प राचै तिनह, अनरच्चैं रच्चैं न सुच ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—दानवकुल=ढूढा दानव का वंशज (बीसल तृतीय का वशज) । राइ=राजा । गुर=बड़ा । परनह=शादी । मृगमद=कस्तूरी । घनसार=कर्पूर । कुष्टीन=कुष्टि कोढी । कामवतार=कामावतार, कामदेव तुल्य । पित्त=पिता । नन=नहीं । वच=वचन । राचियै=अनुराग करना चाहिये । अप्प=अपने से । अनरच्चै=अनुराग नहीं करने वाले से, प्रेम नही करने वाले से । सुचि=पवित्र, अच्छा ।

अर्थः—तब सखी इन्द्रावती से कहने लगी, हे कुमारी ! सुनो, चाहुआन नरेश ढूढा दानव का वशज कहा जाता है । उसके अतिरिक्त अन्य अनेक क्षत्रिय जातियाँ अत तुम्हारे लिए उनमे से किसी एक श्रेष्ठ राजा के साथ विवाह करना अच्छा है, क्यों कि कस्तूरी को प्राप्त करने पर कर्पूर को कोई नही चाहता, कामदेव तुल्य पुरुष का ससर्ग छोड कर कोढी पुरुष से कोई सपर्क नही करता । इसीलिये यदि तुम्हारे पिता किसी अन्य वर को तुम्हारा विवाह करदे तो तुम निषेध मत करना, क्योंकि जो व्यक्ति हम से अनुराग करता हो, हमे भी उसी से अनुराग करना चाहिये । जो हम से प्रेम नहीं करता हो उससे हमारा प्रेम करना अच्छा नहीं ।

दोहा

तुम दासी दासी सु मति, मो मति न्रप पुत्रीय ।
ब्रोलि विन चुक्कै न नर, जो वर मुक्के जीय ॥ ७ ॥

शब्दार्थः—ब्रिन=वचन । मुक्के=छोड़दे । जीय=जीव प्राण ।

अर्थः—यह सुनकर इन्द्रावती कहने लगी । दासी होने के कारण तुम्हारी बुद्धि भी उसी के अनुसार (तुच्छ) है, किन्तु मेरी बुद्धि तो राजकुमारी सी है जो प्राण के चले जाने पर भी अपने वचनों से नहीं टलती ।

कहै भीम कविचद सुन, स्वामि काम तुम अट्ट ।
सेन मगापन रीत नह, तुम दानव कुल चट्ट ॥ ८ ॥

शब्दार्थः—अङ्ग=आड़, अर्गला। चङ्ग=चडि पुत्र।

अर्थः—इधर भीम ने कविचद से कहा—हे चण्डी पुत्र! यद्यपि तुम अपने स्वामी के कार्य को करने के लिए अर्गला स्वरूप हो रहे हो किन्तु (क्या तुम्हें यह प्रतीत नहीं है कि) तुम्हारे दानव वंशी राजा पृथ्वीराज का विवाह के लिए खड्ग और सेना भेज देना (स्वय नहीं आकर) उपयुक्त नहीं है।

कवित्त

हौं सु भीम मालव नरिंद, मोहि धर[1] घर बर अच्छिय।
सवा लाख मो ग्राम, ठाम संपजि[2] बहु लच्छिय॥
विधि विधान त्रिम्मान, कोन मिट्टै इह वत्तिय।
होन हार होइहै, पुरुष जंपै गति मत्तिय॥
तुम कहो नाम वर दाइ वर, गुरू राज बंदे चरन।
ओछी सुवत्त कट्टौ कथन, एह सगप्पन व्रिध वर न॥ ६ ॥

ना० पा० १, पा० भीं। २, भीं०।

शब्दार्थः-मालव नरिंद=मालत्र प्रांतीय राजाओं में से (मालवा के छोटे बड़े राजाओं के लिये शिला लेखों आदि में भीमालवेश, मालनरिंद आदि लिखा मिलता है जिससे मालव प्रात के राजाओं में से ही मानना चाहिये)। सवा लाख मोग्राम=हमारे सवा लक्ष गांव हैं (हम प्रमारों के सवा लक्ष गांव है)। सपत्ति=पैदा होती है। बिधि=तरीका।

अर्थः—पुन. भीम कहने लगा-मैं मालव प्रांत के राजाओं में से एक हूं हमारी पृथ्वी गृह और सतति श्रेष्ठ है। हम-प्रमारों के सवा लक्ष गांव है, जिसके भूभाग से अत्यधिक लक्ष्मी प्राप्त होती है। विधि विधान से निर्मित हुई इस बात को कौन मिटा सकता है। भविष्य वेत्ता पुरुष कहते आये हैं कि होनहार होकर ही रहता है। तुम अपने नाम के साथ बरदाई लगाते हो और पुरोहित गुरुराम अपने चरणों की वंदना कराता है। अत' क्या तुम दोनों के मुह से छोटी बात कहना श्रेष्ठ माना जा सकता है? तुम ही कहो हमारे परस्पर सम्बन्ध की यह रीति कैसे श्रेष्ठ हो सकती है?

दोहा

अहो भीम सत्तह सुमति, तुम मतिमान प्रमान।
औसर तकि कीजै जु[1] रन, औसर लहिजै दान॥ १०॥

प्रा० पा० १ भीं।

शब्दार्थः- सतह=सत्य। सुमति=श्रेष्ठ मंत्रणा, अच्छे विचार। श्रोसर=अवसर, मौका।

अर्थः—तब चंद कहने लगा-तुम्हारा कहना ठीक है, क्योंकि तुम बुद्धिमान हो, किन्तु नीति कहती है कि अवसर आने पर युद्ध भी कर लेना चाहिये और दान भी स्वीकार कर लेना चाहिये (अवसर हो तो युद्ध द्वारा, नहीं तो दान द्वारा ही कार्य सिद्धि कर लेनी चाहिये)।

कवित्त

कहै भीम पज्जून, सुनौ पामर मति हीना।
अमत कियौ तुम मत, बरन बरनी खग लीना॥
तुम सहाब बलि बाध, गर्ब सिर उप्पर ल्यन्ना[1]।
गिनों और तिल मत्त, कथन सुन्नो[2] नह कन्ना॥
खित्रीन[3] वस छतीस कुल, सम समान गिनि यै अवर।
घरु जाहु राज मुक्कौ बरन, करन ब्याह उच्छाह उर[4]॥११॥

प्रा०पा०१, ३ भीं०, २ ४ पा०।

शब्दार्थ—अमत=कुमंत्रणा। सहाव=शहाबुद्दीन। ल्यन्ना=लिया, सवार किया। तिलमत्त=तिलमात्र। कन्ना=कानों से। खित्रीन=क्षत्रिय। राज=राजा का। मुक्कौ=छोड़दो।

अर्थः—तब भीम पज्जून से कहने लगा कि तुम लपट और तुच्छ बुद्धि वाले हो, क्योंकि तुमने क्षत्रिय होते हुए भी क्षत्रिय कुमारी का खड्ग से ब्याह कराने की कुमंत्रणा दी है तुम बलवान शहाबुद्दीन को बांध कर अभिमानी हो गये हो, इसी लिए दूसरों को तिल (तृण) मात्र समझते हो और किसी की बात कानों से नहीं सुनते। तुम्हें चाहिए कि तुम क्षत्रियों मे छतीस ही वशों को समान समझो। अत अब तुम अपने हृदय से राजा के खड्ग ब्याह का उत्साह दूर करके घर लौट जाओ। इसी में तुम्हारी भलाई (श्रेष्ठता) है।

जैतराव जम जैत, नैन लल्ले करि बुल्ले[1]।
अहो भीम करि नीम, चत्त पहली तुम भल्ले[2]।
बल बलिष्ट कहरिय, स्यार क्यों मुख वर घल्ले।
लोक भाप बुझझीन, न्योत वैरी को मिल्लै।
हम कज्ज लज्ज साई वरम, क्यो कढ्ढय मुख बत्तरिय।
सु विहान वरन थप्पै मरन, आज तुम्हारी रत्तरिय॥१२॥

प्रा० पा० १, २ पा०

शब्दार्थः—जम जैत=यमराज पर विजय पाने वाला। लल्ले=लाल। वुल्लै=बोला। नीम=नियम, प्रतिज्ञा। मुल्ले=भूल गये। चल्ले=चलावे। लोकमास=लोकोक्ति। न्योत=निमन्त्रण देकर। मिल्लै=मेल करता है। बत्तरिय=बातें। रत्तरिय=रात्रि।

अर्थः- यमराज पर विजय पाने वाला जैत्र प्रमार भी अरुण नैत्र करके बोला-हे भीम! तुमने कुमारी का पृथ्वीराज से वरण कर देने का नियम लिया था। क्या तुम उस बात को भूल गये? बलिष्ठ सिंह की ओर सियार को मुँह नहीं चलाना चाहिये (बकवाद नहीं करनी चाहिए), क्या तुम इस लोकोक्ति को नहीं समझे? ऐसा कौन है जो शत्रु को निमन्त्रण देकर फिर संधि का प्रस्ताव कर लेता है? हमारा मुख्य काम तो स्वामि-धर्म का पालन करना और उसकी लज्जा रखना है। तुम ऐसी बातें मुख से क्यों कहते हो? आज की रात तुम्हारी है, प्रातः काल होने पर हम खड्ग-विवाह के लिये मृत्यु का स्थापित कर देंगे (अर्थात् युद्ध छेड़ देंगे)।

दोहा

तब कहि भीम नरिंद सुनि, अहो दुज्ज[1] गुर राम[2]।
अमत मंत मडौ मरन, इह सु कौन ध्रम काम ॥१३॥

प्रा० पा० १, २ पा०।

शब्दार्थः—दुज्ज=द्विज। अमत मत=बुरे विचार। ध्रम=धर्म।

अर्थः—तब राजा भीम कहने लगा, हे द्विज गुरुराम! सुनो, तुम्हारा यह धर्म-कार्य कैसा है? जिसमें बुरे विचारों पर ही मृत्यु का मण्डन कर दिया जाता है।

कवित्त

त्रिया काज सुन भीम, मिल्यौ सुग्रीव राम जब।
कहिय बत्त पय लग्गि, नाथ मो वालि हत्यौ अब॥
हरी नारि तारिका, मास खट जुद्ध सु मड्यौ।
अस्त वस्त करि सिथल, मृतक सम वरकरि छंड्यौ॥
तुम देव सेव करुणा[1] महिय, अब सहाय तुम सारयौ।
बधियौ सात तारह सु जिय, वलिय बान इक मारियौ॥१४॥

प्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थ:—पग लगि=पैर छू कर। हत्यौ=नष्ट किया। तारिका=ताड़ना करने वाले। युद्ध=कलह। बरकरि=बलपूर्वक। सेव=शरण। तारह=ताड़ वृक्ष।

अर्थ:— तब गुरु राम कहने लगा—हे भीम! सुनो, स्त्री के कारण ही सुग्रीव राम से मिला और उसने राम के चरण छूकर कहा कि हे स्वामी! बालि ने मेरे गर्व को चूर्ण करके मुझसे मेरी स्त्री तक को छिन लिया है। छ माह तक निरन्तर कलह करते हुए उसने मेरे शरीर को अस्त व्यस्त और मृतक तुल्य शिथिल करके छोड़ दिया है। अत. हे देव! अब मैं आपकी शरण हूँ। आप मुझ पर करुणा करके अपनी सहायता द्वारा मेरी इच्छा पूर्ति कीजिये। उस बलवान बालि का जीवन इन सात ताड के वृक्षों से सम्बन्धित है (इन सात वृक्षों को एक बाण से बेंधने वाला ही उसे मार सकता है) तब राम ने उस बलवान बालि को एक बाण से ही मार गिराया। (अर्थात् स्त्री के कारण ही बालि मारा गया।

दोहा

तुम बम्भन बभन सु मति, पढि पुस्तक कहि सुस्त।
दो घर मगल मडियै. इह घर जानी बस्त ॥ १५ ॥

शब्दार्थ:—बमन=ब्राह्मण। सुस्त=स्वस्तिवाचन। घर जानो=घर नाश करने वाली। बस्त=वस्तु (खड्ग)।

अर्थ—भीम बोला—हे गुरु राम! तुम ब्राह्मण हो और तुम्हारी मति भी वैसी ही है। अत तुम पुस्तक पढ़ना और स्वस्तिवाचन करना ही जानते है। तुम्हें तो दोनों घरों में मगल हो, वैसा प्रयत्न चाहिये, किन्तु तुम जिस वस्तु (खडग विवाह की बात) को काम में ले रहे हो, वह तो गृह दोनों के नाश कराने वाली है।

अहो चद दद न करहु, तुम कुल दद सुभाव।
जैतराव मिलि राम गुरु, लै काने समझाव ॥ १६ ॥

शब्दार्थ:—दद=कलह, विघ्न। लै काने=एकान्त में ले जाकर।

अर्थ:—हे कवि चन्द! यद्यपि तुम्हारा वंश स्वभाव से ही कलह प्रिय है (अर्थात् वीर कविता का प्रेमी है) फिर भी तुम इस समय कलह कराने की चेष्टा मत करो और गुरुराम एवं जैत्र प्रमार को एकान्त ले जाकर समझाओ।

कहै चंद सुनि दद, त्रीय कज रावन खंड्यौ ।
वैरोचन नृप नद, मारि अप्पन ध्रम भंड्यौ ॥
कंस कन्ह सिसुपाल, कज्ज रुकमनि जुद्ध मड्यौ ।
ता वधव रुकमान, बंध मुंडवि सिर छंड्यौ ॥
सुर असुर नाग नर पखि पसु, जीव जत त्रिय कज भिरै ।
रे भीम सीम चहुआन की, ता बरनी को बर वरै ॥ १७ ॥

शब्दार्थः—कज=काज, के लिये । ध्रम भंड्यौ=धर्म का नाश किया । रुकमान=रुक्म । पंखि=पक्षी । जत=जतु । सीम=सीमा, भूभाग । बरनी=दुलहन ।

अर्थः—तब चंद कहने लगा—हे भीम ! स्त्री के कारण जो विघ्न उपस्थित हुए हैं, उनको सुनो—स्त्री के लिये ही रावण मारा गया; स्त्री के कारण ही वैरोचन का पुत्र मारा जाकर धर्म से च्युत हुआ, बहिन को दुःख देने के कारण ही कंस का नाश हुआ और रुक्मणी के कारण ही कृष्ण और शिशुपाल में कलह हुआ एव रुक्मणी के भाई रुक्मण का मुण्डन करके बांध दिया गया । इस तरह देवता, दानव, नाग, नर, पशु, पक्षी और जीव जंतु सभी स्त्री के कारण ही लड़ते रहे हैं । हे भीम ! चहुआन नरेश्वर की राज्य सीमा और वाग्दान में प्राप्त हुई कुमारी को उसके अतिरिक्त अन्य कौन वरण कर सकता है ?

दोहा

भीम पूछ परधान भर कहौ सु कीजै काम ।
जुद्ध जुरैं चहुआन सौं, ज्यों इल रक्खै नाम ॥ १८ ॥

शब्दार्थः—इल=पृथ्वी पर ।

अर्थः—तब भीम अपने मंत्री और योद्धाओं से मंत्रणा कर कहने लगा कि जैसा तुम कहो, वैसा ही किया जाय । यदि हमें पृथ्वी पर नाम रखना है, तो चहुआन से (चहुआनी सामंतों से) युद्ध करना ही श्रेष्ठ है ।

कवित्त

इह सुनाम अन्नाम, जेन नामह घर जाइय ।
इहे नहीं घर जोग, अगनि दीपक दिक्खाइय ॥
पच्छैं ही भज्जियैं, होइ दुज्जना हसाई ।
इंद्रावती सुन्दरी, देहु चहुआन प्रथाई ॥

सुनि भीम राज तत्तौ तमकि, गइ मत्ति[1] बुझ्झी सु तुम।
हक्कारि जैत गुरुराम कवि, खग्ग व्याह न न करै हम॥ १९॥

प्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थः—अन्नाम=बदनाम। जेन नामह=जिसके नाम पर, जिसके लिये। आइय=पैदा हुए। भज्जियै=स्वीकृत करोगे या युद्ध से हटोगे। दुज्जना=दुर्जनो मे। प्रथाई=पृथ्वीराज को। तत्तौ=तेज।

अर्थः—तब मन्त्री ने कहा कि इस समय नाम बदनाम का विचार करना वृथा है, क्योंकि ईश्वर ने इन्द्रावती को जिसके नाम पर (जिसके लिये) पैदा किया है, वह उसी को प्राप्त होगी। (हमारे शास्त्रो मे) कन्या घर मे रखने योग्य नहीं कही गई है, वह तो पराये के घर ही शोभा पाती है। आप व्यर्थ ही अग्नि को दीपक दिखाते हैं (अर्थात् पृथ्वीराज के अग्नि स्वरूपी प्रताप के सामने आपका प्रताप दीपक तुल्य है), क्योंकि आपको बाद मे भी यह प्रस्ताव स्वीकार करना ही होगा (या युद्ध का त्याग करोगे) और उससे शत्रुओं के सामने हमारी हँसी की सम्भावना है, इसलिये सुन्दरी इद्रावती को चहुआन के साथ व्याह देना ही अच्छा है। यह सुनकर भीम तीव्रता से आवेश मे आकर कहने लगा-हे मन्त्री! हमारी मति जाती रही थी, इसीलिये हमने तुमसे इस विषय मे पूछा। तुम जाकर जैत्र प्रमार, गुरुराम और कविचद को मेरी ओर से कह दो कि हम इन्द्रावती का खड्ग-व्याह कदापि नहीं करेंगे।

दोहा

उठि चल्लै सामत सब करन दृढ मति ठान[1]।
जो वरनी विन पच्छि फिरे, नृपति न मन्नै गान[2]॥ २०॥

प्रा० पा० १, २ पा०।

शब्दार्थः—गान=बात, प्रार्थना।

अर्थः—पृथ्वीराज के सामत भी युद्ध का निश्चय करके वहाँ से उठ कर चलते बने। उन्होंने सोचा, यदि हम खड्ग के साथ कुमारी का व्याह कराये बिना ही चले जाय तो पृथ्वीराज से प्रार्थना करने पर भी वह हमारी बात कदापि नहीं मानेगा।

कवित्त

फिरि जाना पाव-र राम रघुवस विचारी।
जीवन जो उव्वरै, मरन केवल सचारी।

महकाल वर तिथ्थ, तिथ्थ धारा उद्धारी ।
स्वामि ध्रम्म तिय तिथ्थ, मुकति संसो न विचारी ।
पांवार सुवल मालव नृपति, वर समुंद जिम भारयौ ।
वर नीति कीत्ति[१] सुर वर असुर, मुगति मथन संभारयौ ॥ २१ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शव्दार्थः—फिरि जानी=लौट जाने के विषय में । पांवार=जैत्र प्रमार । उव्वरैं=बचाले । संचारी=साथ में लगा है । तिय=तीन । मुकति=मोक्ष । संसो=संशय, सन्देह । भारयौ=भारी ।

अर्थः—जैत्र प्रमार और रघुवशी राय ने लौट जाने के विषय में सोच कर कहा कि यदि हम इस समय अपने प्राणों को बचालें तो उससे क्या होगा ? मृत्यु तो हमारे साथ लगी हुई है । हमे एक न एक दिन मरना ही है,तब इस समय युद्ध करके ही क्यों नहीं मरें, क्योंकि ऐसा अवसर अब न जाने कब मिलेगा ? हमें इस भूमि में महाकालेश्वर तीर्थ, धारा तीर्थ, और स्वामि-धर्म जैसे तीनों तीर्थ, एक ही साथ मिल गये हैं । अत हमारी मोक्ष प्राप्ति मे कोई सदेह नहीं है । यह मालव प्रांतीय-प्रमार राजा समुद्र तुल्य महान् है । हमें मोक्ष के लिये इसका मंथन करना चाहिये । देवता और दानवों की नीति के अनुसार कीर्ति ही सब से श्रेष्ठ है ।

मतौ मंडि सब सथ्थ, मत्त को वित्त विचारिय ।
वर पट्टन दम्मिझहै, घेन लै है हक्कारिय ।
वर बाहर पालि है,[१] स्वामि खिझिहै पांवारय ।
वर आतुर धाइ है, अप्प सम्हौं हक्कारय ।
धरदेहि[१] कोस अधकोस वर, फिरि चावद्दिसि रुंधही ।
करतार हथ्थ कित्ति[२] कला, तिहि दुज्जन फिरि बंधही ॥ २२ ॥

प्रा० पा० १, २, पा० ।

शब्दार्थः—वित्त=बात । दम्मिझहै=जलायेंगे, जलाने पर । घेन=गायें । हक्कारिय=घेरने पर । वहार=सहायता, मदद । अप्प=अपन । सम्हौं=सामने । हक्कारिय=ललकारेंगे । धरदेहि=युद्ध हट जायेंगे । कीत्ति=कितने ही ।

अर्थः — इस मत्रणा के अनुसार सबने मिलकर पट्टनपुर की गौओं को घेर लेने का निश्चय किया । उन्होंने सोचा कि जब गौओं को छुडाने के लिए प्रमार वीर

पीछा करते हुए हम पर आक्रमण करेंगे, तब हम भी कोस-आधा कोस पीछे हट कर हुँकार करते हुए सामना करके उनको शीघ्रता पूर्वक रोक लेंगे। ईश्वर के हाथ में अनेकों कलाए है। उसकी ही कृपा से हम इस प्रकार शत्रु को बन्धन मे लेने में सफल हो सकेंगे।

दोहा

पच कोस मेलान करि, लिय नृप पट्टन धेन।
कूक कहर अज्जिय, विषय चढिय भीम नृप सेन ॥ २३ ॥

शब्दार्थः—मेलान=डेरा, मुकाम। कूक कहर=विघ्न कारक कोलाहल। वज्जिय=हुआ।

अर्थः—यह निश्चय करके उन्होंने वहाँ से पाच कोस की दूरी पर डेरा डाला और पट्टन नरेश (भीम) की गौओं को घेरली, जिससे विघ्न कारक विषम कोलाहल मच गया। यह सुनकर राजा भीम ने भी ससैन्य चढाई करदी।

उच्च क्रन अनमिष नयन, प्रफु नत¹ पुच्छ सिरेन।
रग गग गौ निजरि लखि प्रज्जलि भीम उरेन ॥ २४ ॥

प्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थः—क्रन=कान। अनमिष=अनिमष। प्रफुनित=नासिका फुंकारती हुई। सिरेन=सिर पर, पीठ पर। गो=गायें। उरेन=उर मे।

अर्थः—घेरी हुई उन भयभीत गायों के कान ऊँचे, नैत्र अनिमेष, नासिका फुँकारती हुई और पूँछ सिर पर उठी हुई थी। उनका गगा के समान धवल रग देखकर भीम का हृदय क्रोध से जलने लगा।

कवित्त

ओमरि वसि सामत, धेन लुट्टिय पट्टनवै।
वर मडल उज्जैन, धाक वज्जिय वहनवै ॥
ग्राम ग्राम प्रज्जरहि, सूर मानव वर वज्जै।
सामता री धाक वार मुक्किय विवि भज्जै ॥
सभरिय वीर वाहर श्रवन, वाहर हर चढ्ढिय।
चतुरग सज्जि पावार वर, अगनहकिअगपतिवढिय ॥ २५ ॥

शब्दार्थः—मंडन उज्जैन=मंडल उज्जैन (उज्जैन प्रान्तीय राजवंशी भीम के भू भाग में)। धाक=आतङ्क। वज्जिय=हुई, फैली। वद्दनवै=शोर गुल। री=की। धार=खड्ग धारा द्वारा। मुक्किय=छूट पड़ी, फैलगई। वाहर=ऊंचा शोरगुल। वाहर हर=सहायता करने वाले। वाहर=सहायता के लिये।

अर्थः—सामन्तों के द्वारा इस प्रकार अवसर पाकर पट्टनपुर की गौओं को घेर लेने पर उज्जैन राजवंशी प्रमार (भीम) के प्रदेश में आतङ्क पूर्ण कोलाहल छागया। गाँव पर गाँव जलाये जाने लगे, जिससे वे वीरवर श्रेष्ठ मानव कहलाये। इन सामन्तों ने अपनी खड्ग धारा के बलपर चारों ओर भय का संचार कर दिया, जिससे विपक्षी प्रमार वीर 'दई दई' (हे देव ! हे देव ! या हाय हाय) करने लगे। सामन्त वीरों के उत्पात और कोलाहल को सुनते ही गौओं के रक्षक चढ़ दौडे और प्रमार राज भीम ने भी अपनी चतुरंगिनी सेना को सजाकर इस प्रकार आक्रमण किया, जैसे मृगों को विचलित करता हुआ मृगेन्द्र बढ़ रहा हो।

हय गय रथ चतुरंग, सज्जि साइक पाइक भर।
आइ मिले मुख मेल, दुहुन कढ्ढिय असि वरवर॥
तेग मार सिर झार, धुंम धुम्मर-हर लुक्किय।
परयौ घोर अँधियार, विछुरे निसि भ्रम चक चक्किय॥
को गिनै अप्प पर को गिनै, छोह छोह छक्कैय रन।
सामत सूर जैतह वलिय, कहत चंद जुगति लरन॥ २६॥

शब्दार्थः—साइक=धनुर्धारी। पाइक=पैदल। मुख=मुहाने पर, सामने। धुंम=धूम्र में, धूलि के धूम्र में। धुम्मर हर=धूम्रहर, तमहर (सूर्य)। चक चक्किय=चकवाक दम्पति। अप्प=अपने, पराये। छोह=उत्साह। छक्कैय=छकगये। जुगति=युक्ति।

अर्थः—हाथी, घोडे, रथ, धनुर्धारी और पैदल योद्धाओं से युक्त चतुरंगिनी सेना सजाकर दोनों ओर के योद्धा तलवारें निकालकर (लड़ने के लिए) आमने-सामने हो गये। तब वे परस्पर प्रहार करते हुए एक दूसरे के मस्तक काटने लगे। उस समय अत्यधिक धूल उडने से सूर्य छिपगया। चारों ओर घोर अंधकार के छाजाने से रात्रि होने का भ्रम पाकर चकवाक दम्पति एक दूसरे से बिछुड गये। बहादुरों को उस समय अपने-पराये का ज्ञान नहीं रहा, वे युद्ध मे शस्त्र

अर्थः—बहादुर प्रमार आदि काल से ही श्रेष्ठ कहे गये हैं, इसी के अनुसार भीम भी मृत्यु को तृण तुल्य मानता हुआ उमसर (उमड़२)कर सामना करके भिड़ने लगा। उस समय उसके खड्गत्व ने मोक्ष नहीं पाया (उसकी तलवार चलते चलते नहीं रुकी)।

संझ होत वहि सार, मार करि तुट्टि सनह रिझ।
सो ओपम कविचन्द, भ्रग छुट्टे कि वाल खिझ॥
टोप ओप उत्तरै, परै विपरीत विराजै।
मनों सु भाजन भौम, हथ्थ जोगिनि रुध काजै॥
यों भर्‌यौ सेन समवर सुवर, नन हार्‌यौ जित्यौ न कोइ।
दोउ सेन बीच सिप्रा नदी, निस कढ्ढी वर बीर होइ॥ २६॥

शब्दार्थः—साँझ=साझ। मार=वार। तुट्टि=टूट गये। सनह=सनाह धारी, कवच धारी। रिझ= प्रसन्नता पूर्वक। भ्र ग=भँवरे। छुट्टे=छूट कर, झपट कर। वाल=वाला। खिझ=क्रोधित। टोप= शिरस्त्राण। उत्तरे=गिर गये। भाजन=पात्र। भौम=भूमि पर। रुध=रुधिर। काजै=के लिये। समवर=समान ही।

अर्थः—युद्ध करते २ संध्या हो गई, फिर भी वीरगण प्रसन्नता पूर्वक तलवार चलाते हुए शत्रु सेना पर इस प्रकार टूट पड़े (कवि चन्द इसकी उपमा देता हुआ कहता है), मानों किसी वाला (शत्रु सेना) पर भ्रमरों (कवचधारी वीरों) ने झपट कर उसे क्रोधित कर दिया हो। उनके प्रहारों से शत्रुओं के शिरस्त्राण पृथ्वी पर उलटे गिर पडे, वे इस प्रकार सुशोभित हुए मानों योगिनियों के हाथ के रक्त पात्र (खप्पर) जमीन पर गिर पडे हों। इस प्रकार युद्ध में दोनों सेनाओं की शक्ति समान ही रही। उस दिन किसी की जय या पराजय नहीं हुई। दोनों सेनाओं के मध्य में सिप्रा नदी थी। उसके दोनों तटों पर दोनों सेनाओं ने रात्रि मे विश्राम किया।

होत प्रात सामत पान व्यूह जुध रच्चिय।
मोतो भर सामंत, पान कूरंभ रा सच्चिय॥
वर हिरण्यउ थट्ट, पत्ति मंडी गुरुराजै।
लाल रूप कवि चन्द, मद्धि कनइक दुनि साजै॥
नालीव रूप लीनो वरन, राम सुवर रघुवस भिरि।
कोदनि सुरंग पती करिय, वीय सहस पुण्डीर परि॥ ३०॥

शब्दार्थः—पान=हस्तपान, हस्तफूल (एक प्रकार का हाथ का भूषण)। मोती भर=समग्र मोती। पान=पाणि, हाथ। हिरण्यउ=सोने का। थट्ट=पतरा। पती=पंक्ति। गुरुराजै=गुरुराज, राज पुरोहित, गुरुराम। कनइक=कणिका। नालीव=नीलम। कोदनि=खुदाई। सुरंग=रगीले। बीय सहस= दो सहस्र।

अर्थः—प्रातःकाल होने पर पृथ्वीराज के सामंतों ने अपनी सेना को हस्त पान (कर भूषण) का रूप दे दिया। समस्त मोतियों के स्थान पर सामन्तगण, कर-पल्लव के स्थान पर कछवाहा राज पज्जून, हस्तापन के स्वर्णिम पतरे के स्थान पर गुरु-राम, लाल कणिका के स्थान पर मध्य में कविचद, नीलम के स्थान पर रामराय रघुवंशी और खुदाई के स्थान पर रगीले दो सहस्र पुंडीर योद्धा रखे गये।

दिन पलट्यौ पावार, सस्त्र बाहै सरत्रन पर।
चावद्दिसि सामन, भीम बीट्यौ सुरग नर।
तन सट्टे अरिसट्ट, बंधि लीने उज्जैनी।
बल छुट्यौ समह्यौ, दई बर भभर नैनी।
कविचद छडायौ बीच परि, बाल सुबर सुंदरवरी।
धनि सूर बीर सामत हौ, सुबर जुद्ध इत्तौ करी॥ ३१॥

शब्दार्थ—सुरग=रगीले। तन सट्टे=शरीर के बदले में (शरीर की परवाह न करके) अरिसट्ट= नजदीक भिड़कर। उज्जैनी=उज्जैन राज वंशी। समह्यौ=पकड़ लिया। भभर=भयातुर। छडायौ= छुडाया। सुबर=अपने बल पर।

अर्थः—प्रमार भीम का दिन पलट गया आघात-प्रत्याघात करते हुए भी चारों ओर से रगीले सामतों ने उसे घेर लिया। शरीर की परवाह न करके परस्पर नज-दीक भिड कर सामतों ने उज्जैन राजवशी भीम को बांध लिया। उसकी शक्ति नष्ट होगई। वह पकडा गया और भयातुर दृगों वाली (नवोढा स्त्री) राजकुमारी इंद्रावती पृथ्वीराज को समर्पित करदी गई। कविचद ने बीच मे पड कर राजा भीम को छुडाया। बाद मे वह सुन्दर बाला पृथ्वीराज के खडग से ब्याही गई। धन्य है, बहादुर सामतों को, जिन्होंने अपने बल के भरोसे पर ऐसा युद्ध किया।

दोहा

भीम[1] भयानक भै[2] ग्रह्यौ, सरन राम कविराज ।
वर इन्द्रावती सुन्दरी, मैं दीनी प्रथिराज ॥ ३२ ॥

प्रा० पा० १, २ भीं० ।

शब्दार्थ:—भै=भय ।

अर्थ:—भयानक प्रमार भीम ने भयभीत होकर गुरुराम और कविचन्द की शरण ग्रहण की और कहा कि मैं पृथ्वीराज को इंद्रावती समर्पित करता हूँ ।

जो मति पच्छै उप्पजै, सो मति पहले होइ ।
काज न विनसै अप्पनौ, दुज्जन हँसे न कोइ ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ:—पच्छै=पीछे । उप्पजै=उत्पन्न होती है ।

अर्थ:—कवि कहता है-जो बुद्धि पीछे उत्पन्न होती है, वह पहले ही उत्पन्न हो जाय तो अपने कार्य का विनाश भी नहीं हो और न कोई शत्रु ही परिहास कर सके ।

आदर करि आने सु ग्रह, भगति जुगति बहु कीन ।
जे भर घाइल उप्परै, जतन जिवाइ सु दीन ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ—जुगति=रचना । उप्परे=उठाये गये । जतन=यत्न ।

अर्थ:—आदर सहित भीम सामन्तों को अपनी राजधानी मे ले गया और तरह २ से स्वागत किया । जो योद्धा घायल उठाये गये थे, उनका उपचार कर बचा लिया गया ।

खग विवाह भीमग रुचि[1], बाजे बज्जन लग्गि ।
मंगल मिलि अलि गावहीं, गोख गोख निस जग्गि ॥ ३५ ॥

प्रा० पा० १ पा०

शब्दार्थ:—भीमग=भीम । अलि=सखियाँ । निस=निशा ।

अर्थ:—भीम के खड्ग विवाह की रचना की ओर बाजे बजने लगे । रात्रि में जाग कर झरोखों मे बैठी हुई सुन्दरियाँ मिल जुलकर मांगलिक गीत गाने लगीं ।

लिखि कग्गद चहुआन दिसि, दिय पुत्री भीमान ।
इद्रघरनि सम सुन्दरी, कलह कुसल बर बानि ॥ ३६ ॥

शब्दार्थः—इद्रघरनि=इद्राणी । कलह कुसल=कला में कुशल ।

अर्थः—सामतों ने पृथ्वीराज को पत्र लिखा कि भीम ने अपनी पुत्री आपको समर्पित करदी है। वह सुन्दरी इन्द्राणी तुल्य, कला कुशल और श्रेष्ठ बोलने वाली है।

करि शृङ्गार अलि अलिन सग, रिम झिम झुण्डन मझ्झ ।
बसन रग नवरग रगे, जानु कि फुल्लिय सझ्झ ॥ ३७ ॥

शब्दार्थः—अलि=सुन्दरी । अलिन=सखियें । सझ्झ=सध्या ।

अर्थः—विवाह के समय सुन्दरी इन्द्रावती रुन-झुन पायल बजाती हुई, सखियों की टोली के बीच विविध रग मे रगे हुए वस्त्रों से विभूषित ऐसी दीख पड़ी, मानों सध्या फूली हो।

सत हथ्थी हय सहस बिय, साकति साजि अनूप ।
हथलेवौ चहुआन कौं, दियौ भीम वर भूप ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ—सत=सात या सौ । बिय=दो । साकति=साज, सामान । हथलेवौ=कन्यादान दहेज ।

अर्थः—राजा भीम ने चहुआन राजा पृथ्वीराज को दहेज मे (पाणिग्रहण मे) अनुपम सजे हुए एक सौ हाथी (या सात हाथी) और दो सहस्र घोडे दिये।

नग्ग जरित¹ चौडोल सौ, मुर सत दासिय सथ्थ ।
दै पहुचाइय सुन्दरी, कही बने बर गथ्थ ॥ ३९ ॥

प्रा० पा० १ पा० भीं० ।

शब्दार्थः—नग्ग=नग । जरित=जटित । चौंडोल=पालकियाँ । मुर=मरोड़ करती हुई, इठलाती हुई, या मालव देशीय । कही बने=वर्णन करने योग्य । गथ्थ=गाथा, ख्याति ।

अर्थः—नग-जटित सौ पालकियों में इठलाती हुई सौ दासियों (या मालव देशीय दासिया) को साथ देकर सुन्दरी इन्द्रावती को विदा किया गया। उसकी ख्याति वर्णन करने योग्य है।

मात पुत्ति परठिय सुमँति[1], विधि विवेक विनयान।
पतिव्रत सेवा सुख धरम, इहै तत्त मति ठान॥ ४० ॥

प्रा० पा० १ भी०।

शब्दार्थः—मात=माता। पुत्ति=पुत्री। परठिय=विदाई के समय दी। विनयान=विनय। तत्त=तत्व।

अर्थः—इंद्रावती की माता ने विदाई के समय इंद्रावती को विनय-विवेक के तरीके की सुमन्त्रणा दी कि हे पुत्री! स्त्री का मुख्य धर्म पतिव्रत पालन और पति-सेवा ही है। अत. इसी तत्व युक्त वाणी को सदैव याद रखना।

पति लुप्पै लुप्पै जनम, पति वंचै वचाइ।
इहै सीख हम मन धरौ, ज्यों सुहाग सचवाइ॥ ४१ ॥

शब्दार्थः—लुप्पै=लोपना, प्रतिकूल होना। लुप्पै=विपरीत। वंचै=ठगना। वचाइ=ठगी जाना। इहै=यह। सीख=शिक्षा। सुहाग=सौभाग्य। सचवाइ=सचय हो, वृद्धि हो।

अर्थः—पति के प्रतिकूल होने में स्त्री का जन्म विपरीत हो जाता है। पति को ठगने से वह स्वय ठगी जाती है। यह मेरी दी हुई शिक्षा मन में धारण किये रहना, जिससे सौभाग्य की वृद्धि होगी।

वदिन दान प्रवाह दिय, त्रिय सुन्दरि जुध जीति।
दुहुँ जस त्रम्मल छंद गुन, पढ़न कविन इह रीति॥ ४२ ॥

शब्दार्थः—पढन=वर्णन किया। कविन=कवि ने। इह रीति=इसी रूप में।

अर्थः—विवाह के समय में वदीजनों को दान दिया गया और युद्ध विजय कर सुन्दरी को प्राप्त किया। इस प्रकार दोनों तरह से वीरों का यश निर्मल माना गया और कवि द्वारा उसी रूप में वर्णन किया गया।

कवित्त

धनि सामन्त समथ्थ, जेन नृप विन जुध जित्तो[1], ।
धनि सामन्त समथ्थ, जेन जस किद्धि विदित्तो[2]॥
धनि सामन्त समथ्थ, जेन वरनी वर सध्यौ।
धनि सामन्त समथ्थ, जेन भीमँग रन वंध्यौ॥

सामन्त धन्नि जिन किति वरि, ढिल्ली दिस पायान[3] करि ।
वैसाख मास अष्टमि सितह, किति सचरिय देस परि[4] ॥ ४३ ॥

ग्रा० पा० १, २, ३, ४ पा० ।

शब्दार्थः—धनि=धन्य । समथ्य=सामर्थ्यवान । जेन=जिनने । जित्तो=जीता, विजय की । किद्धि=किया । विदित्तो=विदित, प्रसिद्ध । बरनी=दुलहिन इद्रावती । वर=दुल्हा, पृथ्वीराज । सध्यौ=मिलाये । भीमग=भीम प्रमार । वरि=अपनाई । पायान=प्रयाण । सितह=शुक्लपक्ष । देसपरि=स्वदेश में ।

अर्थः—धन्य है सामर्थ्यवान सामन्तों को, जिन्होंने राजा के नहीं होते हुए भी युद्ध में विजय प्राप्त की और यश पाया। पृथ्वीराज और इन्द्रावती का सम्बन्ध जोड़ा, भीम को युद्ध मे बाँधा, कीर्ति का वरण किया (अपनाया) और दिल्ली की ओर रवाना हुए। उनकी यह कीर्ति स्वदेश मे वैशाख शुक्ला अष्टमी को फैल गई। (अर्थात् वै० शु० ८ को सामतगण इद्रावती को लेकर दिल्ली पहुँच गये)।

ढिल्लिय पति सिनगारि[1], हट्ट पट्टन की सोभा ।
गोख गोख जारीन, दिक्खि त्रिय नर सुर लोभा ॥
भूंगल भेरि नफेरि, नद्द नीसान म्रदंगा ।
नाना करत सँगीत, ताल सौ ताल उपगा ॥
गाजत नभ्भ गज्जिय गुहिर, नृप प्रवेस सुन्दरि करिय[2] ।
सामत जैत पय लग्गि प्रथ, प्रथक प्रथक परसस किय[3] ॥ ४४ ॥

ग्रा० पा० १, ३, पा०,। २ भो०, ।

शब्दार्थः—हट्ट=हाट, । जारीन=जालियें । उपगा=उपग एक प्रकार का बाजा । गुहिर=गहरा । पय लग्गि=पैर छूये । प्रथ=पृथ्वीराज । परसस=प्रशंसा ।

अर्थः—दिल्लीश्वर ने इन्द्रावती सहित सामतों के आने की सूचना पाकर अपने नगर को सजवाया। उस के प्रत्येक झरोखों और जालियों मे स्त्री-पुरुष दिखाई देने लगे, जिन्हें देखकर देवता भी मोहित हो जाते थे। भूंगल, भेरि, नफेरि, नक्कारे, मृदग, उपग आदि बाजों के साथ ताल से ताल मिलाकर विविध प्रकार के गीत गाये जाने लगे और विविध वाद्यों के बजने के कारण आकाश प्रतिध्वनित होगया। ऐसे मगलाचार

के साथ राजा ने इन्द्रावती को महल में प्रवेश कराया। उसी समय सब सामंतों सहित जैत्र प्रमार ने पृथ्वीराज के चरण छुये और पृथ्वीराज ने उन सब सामंतों की अलग-अलग प्रशंसा की।

दिस दच्छिन तच्छिन महल, सुंदरि समुद समप्पि।
सकल सत्त दासी अनुप, नृप इद्रावति अप्पि ॥ ४५ ॥

शब्दार्थः—दिस दच्छिन=दक्षिण दिशा। तच्छिन=उसी क्षण। सकल=कलायुक्त।

अर्थः—राज महलों में दक्षिण की ओर के महल इद्रावती सुंदरी के प्रमोद के लिये राजा ने दिये और एक सौ अनुपम कलायुक्त दासियाँ भी उसकी सेवा के लिये रक्खीं।

कवित्त

अगर कपूरति महल, सार घन सार सु रम्मिय।
धूप दीप सुग्गध, दीप दस दिसि वृत जम्मिय।
सेज सुरगति रग, हेम नग जरे जरान।
दिये भीम भूपाल, भोग साज सु सबानं।
नप देखि अचभ स मानि मन, मुख आतुर देखन महिल[1]।
आनिय सु सेज त्रिय अलिन मिल, अलि गुजत उप्पर चहिल ॥ ४६ ॥

[1] प्रा० पा० १ भौं।

शब्दार्थः—सार=तत्व। घन=विशेष रूप से। सार=सजाया। वृत=वृत्ताकार। जम्मिय=जमाये। हेम=स्वर्ण। जरे=जड़े हुए। जरान=जरीन। सबानं=सब प्रकार के। महिल=महिला को। अलिन=सखियों ने। मिल=मिलकर। चहिल=चहल, मडराते हुए।

अर्थः—वह महल अगर-कपूरादि तत्व युक्त पदार्थों से विशेष रूप से सजाया गया। धूप, दीप सुगंधादि वस्तुएँ और वृत्ताकार दसों दिशाओं में दीपक जमाये गये। अच्छे रग की जरीन शैया, जो स्वर्ण और नग से जड़ी हुई थी और जो राजा भीम ने दहेज में दी थी, वह विलास युक्त सब साजों से सजाई गई उस सजावट को देखकर राजा ने भी मन में आश्चर्य किया और इद्रावती का मुख देखने के लिये आतुर हुआ। उसी समय सखियाँ सुंदरी इद्रावती को, जिस पर भ्रमर मँडराते हुए गुन गुना रहे थे, शयन भवन में ले आईं।

हंस गवन हंसह सर न, गनि गति मति सारद्द ।
रूप देखि भूल्यो नृपति, रचिय विरंचि विहद्द ॥ ४७ ॥

शब्दार्थः—गवन=गामिनी । सर न=समान नहीं । सारद्द=शारदा । विहद्द=सीमा से परे ।

अर्थः—उस हंसगामिनी सुन्दरी के सौन्दर्य को हंस नहीं पहुँच सकते थे । उसकी बुद्धि की गति शारदा तुल्य थी । ब्रह्माने उस इन्द्रावती की सीमा से परे रचना की थी । उसे देख कर राजा स्वयं अपने को भूल गया ।

सुकी सरस सुक उच्चरिग, गध्रव गति सो ग्यान ।
इह अपुव्व गति संभरिय, कहि चरित्त चहुआन ॥ ४८ ॥

शब्दार्थः—सुकी=स्वकीया (चन्द की व्याहिता पत्नी) । सुक=स्वकीय, अनुकूल पति, (कवी चन्द) ।

अर्थः—शुक ने (कविचन्द ने) सरसता पूर्वक शुकी (अपनी पत्नी) से कहा कि यह ब्याह गन्धर्व विवाह की रीति से हुआ जानना चाहिये । इस तरह यह संभरेश्वर चहुआन के चरित्र का अपूर्व तरीका है, जो मेरे द्वारा कहा गया है ।

जैत्रराय

(समय ३२)

कवित्त

किहि भेखत प्रथिराज, किहित भेखत चिहु पासं ।
किहि भेखत दिसि विदिसि, कहौ मन-या उल्हासं ।।
किहि उमाह उच्छाह, कोन ओपम द्रग-राजै ।
सो उत्तर कविचद, देव-गुर राज विराजै ।।
सजि मान वीर चतुरंगिनी, कमल गहन सुरतान वर ।
नव रस विलास जस रस सकल, तपै तु ंग चहुआन वर ।। १ ।।

शब्दार्थ—भेखत=भेष, वेश, स्वरूप । चिहु पासं=उसके पास रहने वाले । दिसि विदिसि=देश विदेश । मन-या=मन में इसका । उल्हास=उल्लास, प्रसन्नता, अभिलाषा । उमाह=उमंग, तरंग । उच्छाह=उत्साह । ओपम=उपमा, तुलना । द्रग-राजै=देखने पर । देव गुरु=देवताओं का गुरु । सजि मान=मान करके, सगर्व । कमल=कर कमल । गहन=गृहण करने वाले । तु ग=उ ं, उन्नत ।

अर्थः—(चंद की स्त्री ने प्रश्न किया कि) पृथ्वीराज और उसके पास में रहने वालों का कैसा वेश (स्वरूप) है और वह देश विदेशों मे किस स्वरूप में माना जाता है। उसके उत्साह की तरगे किस भाति की हैं और देखने पर उसकी तुलना किससे की जा सकती है ? मेरा मन उसे सुनने को उत्सुक है । अतः आप उसका वर्णन करिये । कविचद ने उत्तर दिया कि पृथ्वीराज सब बातों में देवताओं के गुरु के समान शोभित होता है । वह वीर नरेश्वर सगर्व अपनी चतुरगिनी सेना को सजाता है और उसके कर-कमल शाह को बन्धन मे लेने वाले हैं । वह नव रस का विलासी और सब प्रकार से यश का प्रेमी है तथा वह उन्नत होकर तप रहा है (शासन कर रहा है)।

नीत राव खित्रीय, भेद लै ग्रह चहुआनं ।
दिल्ली कौ वर[1] भेद, लिख्यौ कग्गद सुरतानं ।।

वरख उभै खट मास, फेरि सुविहान पलान्यौ ।
खट्टूबन प्रथिराज, वहुरि आखेटक जान्यौ ॥
सामन्त सूर सथ्थह न को, बर बराह बर खिल्लइय ।
दैवान जोध चहुआन बर, भिरि दुज्जन भर ठिल्लइय[२] ॥ २ ॥

प्रा० पा० १ भीं० । २ दे० ।

शब्दार्थः—खट=छ । पलान्यौ=चढाई की, सजा । आखेट=शिकार करता हुआ । जान्यौ=जाना, ज्ञात हुआ । सथ्थह=साथ में । न को=कोई नहीं । बराह=वाराह । खिल्लइय=खेलता है । दैवान=देवताओं के समान । जोध=योद्धा, वीर । ठिल्लइय=ठेल देता है, धकेल देता है ।

अर्थः—नीतिराय खत्री ने चौहान के गृह तथा दिल्ली नगर के सम्बन्ध में भेद देकर सुलतान को पत्र लिखा । यह सूचना पाकर ढ़ाई वर्ष बाद मुसलमानों के खुदा-स्वरूपी गौरी शाह ने फिर चढाई की । उसे ज्ञात हुआ कि पृथ्वीराज खट्टूवन में शिकार खेल रहा है और उसके साथ कोई वीर सामन्त नहीं है । वह वीर वाराहों के साथ उत्तम रीति से खेल (शिकार) कर रहा है । वह चौहान वीर देवताओं के समान बलवान है । अकेला ही वह विपक्षी योद्धाओं से लड कर धकेल देने वाला है ।

सत चीता द्वादसति, स्वान अच्छे सुरग दह ।
बीय अग्ग च्यालीस, सीह-बर-गोस कहदह ॥
सत्त सत्त म्रग अच्छ, सत्त दह अग्गनि पाजी ।
आखेटक प्रथिराज, बीर ओपम अति राजी ॥
उप्पारति राय खट्टूति बर, मिली बसीठ गोरी सुबर ।
मगे हुसेन साहाबदी, पच देस बटन सु धर ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—सत=साथ । दह=दस । बीय=दो । कहदह=कहे जाते । सत्त=सात । अच्छ=अच्छे । पाजी=प्राजी, प्राजक, सारथी, रथ चलाने वाले, पदा टालने वाले, घेरा डालने वाले । राजी=सुन्दर । उप्परति=प्रारम्भ करने वाला था । बसीठ=दूत । मगे=मागा है । हुस्सैन=गाजीहुसैन । बटन=बांटने के लिये ।

अर्थ—पृथ्वीराज के साथ शिकार में सात चीते, सुन्दर देह वाले द्वादश शिकारी कुत्ते सिंह के समान श्रेष्ठ कान रखने वाले बयालीस सिगोश, अच्छे २ पालतू चौदह

मृग, तथा सत्रह रथ (या रथारोही) थे, वे आगे २ चल रहे थे! उस समय शिकारी वेश में देखने से पृथ्वीराज पर साक्षात् वीर रस की उपमा फबती थी। राजा जब वन में शिकार प्रारंभ करने ही वाला था, उसी समय गोरी द्वारा भेजे हुए श्रेष्ठ दूत राजा से आकर मिले और कहा कि शहाबुद्दीन ने आप से हुस्सैन (गाजी हुसेन) को मांगा है और पंजाब देश के भूभाग को बांटने के लिये कहा है।

मुक्कि राज आखेट, सूर सामंत बुलाइय।
सुव्वर साह गोरीस, आनि उप्पर खरि आइय॥
मगे धर पंजाब, खान हुस्सैन सु मग्गै।
इष्ट भ्रत्त अवसान, दिए कग्गद लिखि अग्गै॥
समुहे सूर सामंत सब[१], दै मिलान सम्हौ खरिय।
चालत जेम लग्गन[२] दिवस, मुक्कि लग्यौ गोरी गुरिय॥ ४॥

प्रा० पा० १, २, का०।

शब्दार्थः—मुक्कि=छोड़कर। सुव्वर=श्रेष्ठ। आनि उप्पर=अपने ऊपर। खरि आइय=चढ़ आया। अवसान=सचेत। समुहे=सँभल कर। गुरिय=भारी।

अर्थः—यह सुनकर पृथ्वीराज ने शिकार करना छोड़ अपने वीर सामन्तों को बुलाया और कहा कि बलवान गोरीशाह अपने ऊपर चढ़ आया है और वह पंजाब की भूमि एवं हुस्सैन (गाजी हुस्सैन) को मांगता है। उसने अपने इष्ट मित्रों को पत्र देकर पहले से ही सावधान कर दिया हैं। उसके सब वीर योद्धा अब भिड़ने के लिये भली प्रकार तत्पर होगये हैं। वह पड़ाव करता हुआ इस प्रकार बढ़ा है, जैसे कोई दुल्हा लग्न दिवस की उमग में आतुर होकर चलता है। वह भारी वीर गोरी अपने पीछे वक्र होकर लग गया है।

दोहा

वेगि सूर सामत सह, मिल जाइ चहुआन।
सिंध विहथ्थें दूत मिलि, गोरीवै सुरतान॥ ५॥

शब्दार्थः—वेगि=शीघ्र। सह=सब। सिंधु विहथ्थे=सिंधु से बहते हुए, सिंध से चलकर आते हुए। गोरी वै—सुरतान=गौरी शाह के।

अर्थः—यह जानकर रहे- सहे वीर सामन्त भी चौहान से जा मिले। इधर गौरी शाह के वे दूत, जो सिंध से चलकर आये थे, राजा से पुनः आकर मिले।

अनँगपाल तीरथ्थ गय, बंधव रण सुरतान।
बैर धीर ढिल्लिय तिनह, वर मगै चहुआन ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—बधव=बांध लिया। तिनह=से।

अर्थः— उन्होंने कहा-अनंग पाल तीर्थ यात्रा चले गये है और आपने शाह को युद्ध में बंदी बना लिया था, वही बैर दिल्ली से गौरी शाह लेना चाहता है।

कवित्त

वर बसीठ उच्चरै, साहि जानौ पहिलौ ना।
अप्पौ पहु हुस्सैन, साहि जानौ दस गु ना ॥
कंक बक करतें नरिंद, कबहुक घर छिज्जै।
भिर गौरी तिन भरह, रहट घट्टी घट भज्जै ॥
दुपरह छांह दीसै फिरत, भावी गति दिख्खी किनह।
मिलि थप्पि मत्त प्रथिराज वर, करहु एक बुद्धी सुनह ॥ ७ ॥

शब्दार्थः—बसीठ=दूत। जानौ=समझो। पहिलौ=पहले जैसा। अप्पो=अर्पितकरो, सोंपदो। पहु=राजा। कक=कलह, युद्ध। छिज्जै=नष्ट हो जाता। रहट=रहँट, अरहट। घट्टी=घटिका। घट घड़ा। भज्जै=फोड़देता। दीसै=देखी।. करहु-एक=एकता करिये। बुद्धी-सुनह=बुद्धिमत्ता सुनी गई।

अर्थः—दूतों ने आगे कहा- आप शाह की शक्ति को पहले जैसी मत मानिये। उसकी शक्ति इस समय पहले से दस गुनो अधिक बढ गई है। अत हे नरेश्वर! हुस्सैन (गाजी हुस्सेन) को दे दीजिये। अभिमान रखकर कलह करने से कभी २ घर नष्ट होने की सभावना आ उपस्थित होती है। अत आप गौरीशाह और उसके योद्धाओं से मत लड़िये। ऐसा भी देखा गया है कि कभी २ रहँट की घटिका घडे को फोड़ देती है। भविष्य की स्थिति को किसी से नहीं देखा गया है। क्या किसी ने दो प्रहर (मध्यान्ह) के समय अपनी छाया को देखा है ? इसलिये हे श्रेष्ठ राजा पृथ्वीराज! अपने सामतों से मिलकर आप ऐसी अच्छी मत्रणा निश्चित कीजिये, जिससे आप और शाह मे एकता हो जाय। इसी मे बुद्धिमत्ता है।

अरे ढीठ बस्सीठ, कौन हार्यौ को जित्त्यौ ।
किन वित्तग वित्तयौ, कौन वित्तग अब वित्त्यौ ॥
पच तत्त पुत्तरी, पंच-हथ्थन कर नच्चे ।
अजै विजै गुन वंधि, चित्त तामस रस रच्चै ॥
वंछै जु सुख्ख फल-राज गति, वह करतार सु नन करै ।
उच्चरै किति छल ना रहै, तब लगै गल-बल-परै ॥ ८ ॥

शब्दार्थः—ढीठ=धृष्ट । बस्सीठ=वसीठ, दूत । वित्तग=घटना । वित्तयौ=बीती, व्यतीत हुई । तच=तत्व । पुत्तरी=पुत्तलिका, शरीर । पंच-हृथ्थन=पांच हाथ की । कर-नच्चै=हाथ नचाती, हाथ चलाती । तामस=तमोगुण । गति=दशा । नन=नहीं । बल-परै=बल पर, शक्ति के सहारे ।

अर्थः—यह सुनकर पृथ्वीराज बोला ऐ ढीठ वसीठों —क्या तुम्हें ज्ञात नहीं है । पहले कौन पराजित हुआ और किसकी विजय हुई थी ? क्या बात बीत चुकी है । और अब भविष्य में क्या बीतेगी । इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता । यह पांच तत्वों द्वारा बनी हुई पांच हाथ की पुतली (शरीर) हाथ नचाती (चलाती) रहती है । पराजय और विजय के गुणों से आवद्ध इस पुतली का चित्त तमोगुण के रस में लीन रहता है । सांसारिक सुख और राज्य-फल की इच्छा हो, ऐसी लोलुप दशा ईश्वर हमारी कभी नहीं करे । हम छद्म रहित बनकर शक्ति के सहारे ही एक दूसरे के गले से लगें—और उसी के द्वारा हमारा कीर्ति गान होता रहे । (ईश्वर से केवल हम यही चाहते हैं और हमारा दृढ़ निश्चय भी यही है) ।

दोहा

कै कोसां ढिल्ली धरा, कै कोसां गज्जान ।
खडा सौं वर वधिया, चहुआना सुरतान ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—कै कोसां=कितने कोसों पर । गज्जन=गजनी । खंडा=खांडा, खड्ग, तलवार । सौं=से । वर बंधिया=श्रेष्ठ बंध गये, श्रेष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर लिया ।

अर्थः—दिल्ली और गजनी बहुत कोसों की दूरी पर है, किन्तु मैंने (दिल्ली पति चाहुवानने) और सुलतान ने तलवार का अच्छा सम्बन्ध स्थापित कर लिया है (वह टलने का नहीं) ।

मैं रक्खौ¹ हुस्सैन वर, वर वंधौ² सुरतान ।
उठ्ठाए बस्सीठ वर, वर वज्जै निस्सान ॥ १० ॥

प्रा० पा० १, २, सं० ।

शब्दार्थः—उठ्ठाये=उठा दिये, विदा किये ।

अर्थ·—मेरा यही दृढ निश्चय है कि हुस्सैन (गाजी हुसेन) को शरण मे रक्खूंगा, और सुलतान को बंधन में लूंगा। यह कहकर राजा ने दूतों को विदा किया और भारी नक्कारे बजवाये ।

गाथा

तं बीर जल गभीर, आव यों उप्पटी सेन ।
गोरी दिसि चहुआनं, चहुआनं गोरियं साही ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—त=तमोगुण । बीरं=बीरों । आव यों=प्रवाह के समान ।

अर्थः—उसी समय वीरों में तमोगुण रुपी गहरा जल-प्रवाह उमड़ पडा और चौहान ने गौरी की ओर तथा गौरी ने चहुआन की ओर प्रस्थान किया ।

चढत सिंध सुरतान पुल¹, दूत सपत्ते आइ ।
चर चरित्त चहुआन दल, कहै साह सों जाइ ॥ १२ ॥

शब्दार्थः—सिंध=सिंधु प्रदेश । सपत्ते=आये । चर=दूत । पुल=पहुचा । चरित्त=चरित्र ।

अर्थः—जिस समय सुलतात सिंधु प्रदेश तक पहुँचा, उसी समय शाही दूत दिल्लीश्वर के पास से रवाना होकर शाह के पास पहुँचे और उन्होंने चहुआन की सेना का सब हाल कहा ।

कवित्त

नहिन-इद्र प्रथिराज-सोम-नदन सिवर-दिसि ।
वर इद्रह दोनैन, महल मड्यौ सु दुहूं निसि ॥
जब ही हम सचरै, काल तब ही दिखि¹ पास ।
परत-वाह लक्खत, दिष्ट देखन सुख वास ॥
लन्छीन ग्रीव बसि² वीर-रसि³ दह दिसि भर⁴ दानव मिलिय ।
मेलान कोस पर पच को, गौरी वै सम्हो चलिय ॥ १३ ॥

प्रा० पा० १ से ४ का० ।

शब्दार्थः—नहिन-इंद्र=इंद्र कुछ भी नहीं। सोम-नंदन=सोमेश्वर का पुत्र। सिबरं-दिसि=शिविर में। दीसैन=देखा। महल-मंझ्यौ सभा की। दुहू=दोनों। संचरै=गये। दिसि=देखा। परत-वाहू=बाहु प्रहार, कर प्रहार। लख्खंत=दीख पड़ा। सुख वासं=सुख भोग। लच्छीन=लक्ष्मी। वसि=बस गई, लिपट गई। वीर-रसि=वीर रस। दह-दिसि=दसों दिशा। भर=भट, योद्धा, सामत। दानव=तृतीय वीसल, ढुंढा। मिलिय=मिले, एकत्रित हुए। मेलान=मुकाम। पर=पड़ा हुआ। सम्हौ=सामने।

अर्थः—वे दूत बोले—हम दो दिन तक वहाँ पर रहे और रात्रि में उसकी सभा देखी। उसके सामने इन्द्र कुछ भी नहीं है। वास्तविक इन्द्र तो इस समय हमने सैनिक-शिविर में देखा है; वह सोमेश्वर का पुत्र पृथ्वीराज ही हो सकता है। जब हम उसके पास गये, तब ही से हमको ज्ञात होरहा है कि यमराज हमारे पास हैं, उसके कर-प्रहार और सुख-भोग की ओर देखने से वह साक्षात् देवता ही दीख पड़ता है। उसकी ग्रीवा से (राज्य) लक्ष्मी और वीर रस (जय लक्ष्मी) लिपटी हुई है। ऐसे दानव (तृतीय वीसल) तुल्य उस वीर की सेवा मे दसों दिशाओं (चारों ओर) के योद्धा आकर एकत्रित होगये हैं। उसने पाच कोस पर पहला पड़ाव किया और पश्चात वह आपकी ओर चल पड़ा।

दोहा

इह अवाज चहुआन दल, वंटि सेन सुविहान।
काइर भर सह उच्चरै, कहि वंधन सुरतान ॥ १४ ॥

शब्दार्थः—इह आवाज=इस आवाज पर, ऐसा हाल सुनकर। वंटि=विभाजित की। काइर=कायर। सह=सब।

अर्थः—चौहान की सेना का ऐसा हाल सुनकर मुसलमानों के खुदा (गोरी) ने सेना को विभाजित किया, किन्तु जितने कायर थे, उनके मुख से यही निकला कि सुलतान पकड़ा जायगा।

कवित्त

हाइ हाइ कहि साहि, चरनि वरज्यौ सुनिहानं।
झुमम्क रहै कै जाइ, जु कछु पत्तौ चहुआन ॥
वरन मेच्छ वर हिंदु, सुनत रन पन करि हेरिय[1]।
जय जानी अन चप पंच चतरंग म ठेरिय[2] ॥

भुअ³ वीर रूप गोरी सु वर, मुक्कि भयानक नट्ट जिम ।
पलटयौ भेष देखत सयन, बर वज्ज्यौ नीसान तिम ॥ १५ ॥

प्रा० पा० १, २, भीं० का० । ३, स० ।

शब्दार्थ—सुविहान=खुदावद । चारनि=दूतों ने । वरज्यो=मना किया । झुम्भ्म=युद्ध । जुकछु पत्तौ=वह जैसा है वैसा । वर-मेछ=मुसलमानों से श्रेष्ठ । पन=प्रण । करि=करते हुए । हेरिय=देखे गये । जय=जयराय, जैत्रराय प्रमार । जानी=जाना गया, माना गया । अनचंप=नहीं दबाई जाने जैसी । पच चतुरग=पांचाल-देशीय सेना । भेरिय=भैरवी, भयानक । भुअ=भय, हुआ । मुक्कि-भयानक=भय छोड़कर । भेख=भेष, स्वांग ।

अर्थः—हाय २ करते हुए उन दूतों ने शाह को युद्ध करने से इन्कार किया और कहा–हे खुदाबद ! वह जैसा है वैसा आप उस चौहान को जानते ही हैं, उससे भिडने पर युद्ध अपने हाथ मे रहेगा या नहीं, क्योंकि मुसलमानों से हिन्दू-वीर श्रेष्ठ हैं जो युद्ध सुनकर प्रतिज्ञा करते हुए दिखाई देते हैं, इस युद्ध मे चुना गया सेनापति जयराय (जैत्र प्रमार) भी नहीं दबने जैसा वीर है और उसकी मदत पर पंचाल देशीय सेना है वह भी भयानक है अत उन्हीं की विजय निश्चित है। यह सुनते ही गौरी-शाह भय को छोडकर इस प्रकार साक्षात वीर रूप मे परिवर्तित हो गया मानों नट ने स्वाग बदला हो । उसे इस प्रकार वीर रूप मे देखकर सेना मे भारी नक्कारे बजने लगे ।

अट्ठ अट्ठ जोगिनिय, सुक्र सम्हौ सुरतान ।
दिसासूल दिसि वाम, वैर कन्हा चहुआन ॥
सिघ वाम भैरवी, गहक बोली गोरी दिसि ।
गुर पचम रवि नवों, राह ग्यारमों सुरग ससि ॥
ईसान मध्य देवी पहकि, गहक मभझ घूघू बहक ।
आकास मद्धि गज्यौ गयन, परी बूंद वेवग हक ॥ १६ ॥

प्रा० पा० १ पा० भीं० ।

शब्दार्थः—अट्ठ अट्ठ=चौंसठ । सुक्र=शुक्र, या शक्र, इन्द्र । सम्हौ=सामने । वैर=मेल, सहायता पर । कन्हा=कृष्ण, या काका कन्ह । भैरवी=चितकबरी चिड़िया (चीपटे) । गहक=गह-गहाकर, उच्चस्वर मे । दिसि=ओर, उसके प्रतिकूल । सुरग=युद्ध क्रीड़ा । पहकि=फैंकरी,

जम्मू मादा। मभ्भः=उसी मध्य, उसी के साथ २। घूघू=उल्लू पत्ती। वहक=वकना, बोला। गज्यौ=गोरभ, भूकंप। वेवंग=वंवा, स्रोत। हक=प्रवाहित हो चला।

अर्थः— उस समय चौंसठ ही योगिनियाँ और दैत्य-गुरु शुक्र, (या इंद्र) तुल्य पृथ्वीराज शाह को सामने दिखाई दिया। उस दिन पृथ्वीराज को दिशाशूल बायें था और चाहुवान की सहायता पर कृष्ण या (काका कन्ह) थे। गोरी के लिये निषिद्ध शकुन मे बायीं ओर सिंह और भैरवी (चितक बडी चिड़िया) उच्चर स्वर से बोल रही थी। पृथ्वीराज के गुरु पांचवें, रवि नवमें स्थान पर था और गोरी-शाह के राहु और चद्रमा ग्यारहवें स्थान पर अशुभ फल दायक थे। ईशान कोण में देवी स्वरूप फेकड़ी (जम्मू मादा) और साथ ही घू घू (उल्लू पत्ती) बोल रहा था। उसी समय आकाश तक गोरभ गर्जना करने लगा (भूकंप हुआ) और बूंदों के बरसने से जल-स्रोत प्रवाहित होने लगा। इस प्रकार एक (पृथ्वीराज) को शुभ और दूसरे (गोरीशाह) को अशुभ शकुन हुए।

त्रतिय पहुर पर पहुर, वीर घरियार ठनक्किय।
ग.रीवै से हथ्थ, चंपि चहुआन सु तक्किय॥
घरिय इक्क वनि सेन, सूर सामन्त परक्खिय।
धरि ओड़न करि वग्ग, वैर सुविहान खरक्किय॥
करवार धारि सिप्पिर करह, एक होइ उप्पर तरै।
दिसि वाम चंपि दुज्जन दलह, उसरि सेन सम्हौ भिरै॥ १७॥

शब्दार्थः—पहुर=प्रहर। पर=तक। वीर घरियार=वीर घन्ट। ठनक्किय=बजी। से हथ्थ=अपने हाथों से। चपि=दबाना, धर पकड़ना। तक्किय=सोचा। बनि-सेन=सेना को बनाई, व्यूह बद्ध किया। धरि-ओड़न=कमान को कन्धे में धर (डाल) कर। करि वग्ग=रास को हाथ में की (उठाई)। खरक्किय=खटका। करवार=करवाल, तलवार। धरि=गृहण की। सिप्पिर=शीघ्र, त्रिप्र। उसरि सेन=सेना को उकसाता हुआ, सेना को उत्साहित करता हुआ। सम्हौ भिरै=सामना किया।

अर्थः—प्रात काल से लेकर दिन के तृतीय प्रहर तक वीर घटायें बजती रही, उसी समय गोरी शाह को अपने ही हाथों से धर पकड़ने का विचार चाहुवान ने किया और अपने वीर सामन्तों को जाँचते हुए उसने एक घड़ी में अपनी सेना

को व्यूह बद्ध बना लिया। खुदाबन्द-गोरी चाहुआन को खटका जिससे उसने कामन को कन्धे पर डालकर अपने घोडे की राम हाथ मे उठाई और शीघ्रता पूर्वक हाथ मे तलवार पकडी जिससे शत्रु-सेना के वामपार्श्व को धर दबाया और सेना को उत्साहित कर बढाते हुए शत्रु से सामना किया।

खिझि नर्‍यौ है नरिंद, भूमि धुज्जिय खुरतार।
मनु बद्दर गज्जत, सद्द पर सद्द पहार॥
उड्डिय नाल चमकि, मभ्भ धुंधर छत्रि लग्गिय।
रवि ओपम कविचंद, चंद मावस घन उग्गिय॥
अरि सेन भग्गि दिसि विड्डुरिय, परे मध्य सेना-धनिय।
धनि धनि नरिंद सोमेस सुअ, इहु अरि ते तिन वर गनिय॥ १८॥

प्रा० पा० १, का० । २, स० ।

शब्दार्थः—है=हय, घोड़ा। नर्‍यौ=बढाया। सद्द पर सद्द=आवाज पर आवाज। पहार=प्रहार। धुंधर=धूली की धूंधल, अंधकार। रवि=रवि, सूर्य। मावस=अमावस्या। दिसि विड्डुरिय=दिशायें बिडुर पड़ी, दिशायें कम्पायमान होगई। सेना धनिय=सेनापति, जैत्रप्रमार। धनि धनि=धन्य है धन्य है। सुअ=सुत। इहु=इह, ऐसे। तें=तेने।

अर्थ—क्रोध मे आकर राजा पृथ्वीराज ने अपना घोडा बढाया जिसके खुरों के आघात से पृथ्वी कंपित हो उठी। वह प्रहार करता हुआ इस प्रकार आवाज पर आवाज (गर्जना) करने लगा मानों बादल गर्ज रहे हों। घोडे के चलने से उडने वाली धूल की धूंधल कृष्ण-रात्रि का आभास देने लगी और लगातार चमकती हुई नालों से ऐसा ज्ञात होने लगा मानों कितने ही सूर्य और चन्द्र उदित हुए हों। उसी समय सेनापति जैत्र प्रमार भी शत्रु सेना के मध्य मे प्रवेश कर गया जिससे शत्रु सेना भाग चली। दिशायें कम्पित होगई। यह देखकर कवि कहता है कि-हे सोमेश्वर के पुत्र वीर नरेश्वर! तुझको धन्य है। तुमने ऐसे शत्रु को तृण तुल्य माना है।

दूहा खान-मारूफ, फिरत उममान खान ढहि।
दून दुज्जन हय नचि, वाग आजान बाह गहि॥

इतै दीह अथ्थम्यौ, सूर वर सिंधु सपन्नौ।
मुकत तट्ट मिलि सूर, स्याम रन अप्प अपन्नौ ॥
साखला सूर सारंग ढहि, जुरि जुवान पचाइनौ।
केहरी गौर अजमेर पति, परयौ झुभिझ रन भाइनौ ॥ १६ ॥

शब्दार्थः—इत=इधर। फिरत=मुड़ने पर, मागने पर। ढहि=ढहा, गिरा। इन=उपरोक्त। दुज्जन=दुर्जन, शत्रू। हय-नखि=घोड़े को बढ़ाया। वाग=लगाम, रास। अतथम्यौ= अस्त हुआ। सूर= सूर्य। सपन्नौ=पहुचा, प्रवेश कर गया। मुक्त-तट्ट=मोक्ष सिंधु के तट पर। सूर=शूरवीर। स्याम=स्वामी। अप्प=अपने को। अप्पनौ=अर्पित कर दिये। जुरि=जुटकर। जुवान=जवान, युवक। झुभिझ=युद्ध करता हुआ, भिड़ता हुआ। रन-भाइनौ=युद्धेच्छु।

अर्थः—इधर आजान बाहु ने रास पकड़ कर अपना घोड़ा बढ़ाया और मारुफ खां को भगाकर उसमानखां को धराशाई कर दिया। इतने में दिनास्त हुआ और सूर्य समुद्र में प्रवेश कर गया, साथ ही मोक्ष-रूपी समुद्र के तट पर मिलकर वीरों ने भी स्वामी के लिये अपने (प्राणों) को अर्पित कर दिया। इस युद्ध में वीर सारंग देव-सांखला, युवक वीर पंचायन और वंश सूचक "अजमेर पति" विरुद धारण करने वाला युद्धेच्छुक केशरी गोड (क्षत्रिय) आदि विपक्षियों से लड़ते हुए धराशायी हुए।

दोहा

निसि घट्टिय घट्टिय तिमिर, दिसि रत्ती धवलाइ।
सैसव मे जुव्वन कछू, तुच्छ तुच्छ दरसाइ ॥ २० ॥

शब्दार्थ—घट्टिय=घटी, समाप्त हुई। दिसि=दिशा। रत्ती=अरुणिमा। धवलाइ=धवल, उज्जवल। सैसव=शैशवावस्था। जुव्वन=युवावस्था।

अर्थः—रात्रि समाप्त हुई। अँधेरा दूर हुआ और उज्ज्वल दिशा मे अरुणिमा इस प्रकार फैली जैसे शैशव और यौवनावस्था के संधिकाल में यौवन तनिक सी झलक दिखाई देत है।

कवित्त

जाम निसा पाछली, मेन सज्जिय दोउ बीरं।
सामंता चहुआन, आनि गोरी कछि मीरं ॥

भान-पयान न भयो, करे द्रिग रत्तह चढ्ढिय ।
ता पहिले पायान, जोध रन असुरन कढ्ढिय ॥
अदिहार वीर गोरी सुबर, चाहुआन दिन सुदिन घन ।
करतार हथ्थ कित्त कला, लरन मरन तक सीर नन ॥ २१ ॥

मा० पा० १, का० ।

शब्दार्थः—जाम=याम, प्रहर । पाछली=पिछली । आनि=आने गये, लाये । कम्मि=रम्मी, घोड़े । भान-पयानन=सूर्य न उठा, सूर्योदय न हुआ । पायान=प्रस्थान । जोध=योद्धा, हिन्दूवीर । असुरन=मुसलमान वीर । कढ्ढिय=निकले, चलपड़े । अदिहार=बुरे दिन । लरन-मरन=लड़ भिड़ने तक ही । सीर नन=साथी नहीं ।

अर्थः—प्रहर रात्रि शेष रहने पर दोनों ओर के वीरों ने सेना सजाई । उसी समय सामन्त, राजा पृथ्वीराज, गोरी और मीरों की सवारी के घोडे लाये गये । सूर्योदय नहीं हुआ उससे पहले ही उन्होंने अरुण नेत्र कर घोडों पर सवारी की और उनके प्रस्थान से पूर्व ही हिन्दू और मुसलमान वीरों ने रण स्थल की ओर कदम बढ़ाया । वह दिन सबल-वीर गोरी के लिये बुरा और चाहुआन (पृथ्वीराज) के लिये विशेष अच्छा था । योद्धओं का लड़कर मर जाने तक ही साथ नहीं होता आगे स्वर्ग तक के साथी होते हैं । अस्तु-कला पूर्ण कीर्ति देना ईश्वर के ही हाथ मे है [योद्धाओं के लड़ कर मरजाने पर भी जय पराजय ईश्वराधीन है] ।

दोहा

परत साहि गोरी सु धर, है गै भूमि भयान ।
रन रुध्यो सुरतान कों, परो बीटि चहुआन ॥ २२ ॥

शब्दार्थः—गै=गयन्द, हाथी । भयान=भयानक । रुध्यो=घेर लिया, रुध लिया । परी बीटि=घेरे में पड़ गया ।

अर्थः—गोरीशाह के भयावने हाथी-घोड़ों के धराशायी होते ही चहुआनी सेना ने घेरा डाला और शाह का रोध (रोक) लिया ।

कवित्त

गहि गोरी सु विहान, हथ्थ आयो चहुआन ।
चामर छत्र रपत्त, तखत लुट्टै सुरतान ॥

गोरीवै हुस्सैन, वीर तुट्टै आहुट्टिय ।
मान तुंग चहुआन, साहि मुख के-वल खुट्टिय ॥
मध्यान भान पृथिराज तप, वर समूह दिन दिन चढै ।
जस जोतिमंत संभर धनिय, चंद बीज जिम वर बढै ॥ २३ ॥

प्रा० पा० १, का० ।

शब्दार्थ:—अप्पौ=सौंपा । रखत=रसद सामान । तुट्टै=टूट गये, कट गये, नष्ट होगये । आहुट्टिय=भिड़कर । मानतुंग=सम्मान के शिखर स्वरूपी । मुख=मुहाना । के-वल=वल करके । खुट्टिय=नष्ट कर दिया । जोतिमंत=कला पूर्ण ।

अर्थ:—ठीक प्रातःकाल होते २ गौरीशाह को पकड़ कर सामन्तों ने पृथ्वीराज के हाथों में सौंपा और उसके चँवर, छत्र, रसद, तखत आदि लूट लिये । उस समय गौरीशाह और हुस्सैन (गाजी हुस्सैन) के वीर लड़कर नष्ट होगये । इस प्रकार सम्मान के शिखर स्वरूपी चाहुआन (पृथ्वीराज) ने शाही मुहाने को वल प्रदर्शित कर तोड़ दिया । संभरेश्वर पृथ्वीराज का श्रेष्ठ तप दिन प्रतिदिन फैलने और उसका कलापूर्ण यश द्वितीया के चन्द्रमा के समान वृद्धि पाने लगा ।

कांगुरा युद्ध

(समय ३३)

कवित्त

कितक दिवस निस मास, आइ जालंधर रानी।
कहै राज सू' बचन, हूं सु कगुर द्रग जानी॥
तो तुट्ठी कर-पान लेह, मैं वाचा दखिखय।
भोट भान धुर जीत्ति[२], पल्हू-पच्छै फिरि अखिखय॥
हम्मीर भीर अग्गैं करैं, दल भज्जै मति सत्ति करि।
बरनी सु लच्छ लच्छी सहज, परनि राज आवह सु घरि[३]॥ १॥

मा० पा० १, घ० का०। २, घ०। ३, पा०।

शब्दार्थ:—कितक दिवस=कितने दिनों में,कुछ समय बीतने पर। निस=निशि, रात्रि। मात=माता। आइ=आई। सू=से। हूँ सु-कगुर-द्रुग-जानी=मुझे कांगुरा दुग पर रहने वाली समझ। तुट्ठी=तुष्ट हूं, प्रसन्न हूँ। करपान-लेह=कृपाण ले, तलवार गृहण कर। वाचा दखिखय=वचन कहती हूँ, वर देती हूँ। भोट भान=भोट वंशीभान, या भोटियों का सूर्य। अखिखय=कहा। भीर=सहायता। अग्गै-करैं=आगे को करेगा या अग्रगण्य करगा। भज्जै=भंजे, नष्ट करेगा। मति=मंत्रणा, सम्मति। सत्ति करि=सत्य मान। बरनी=दुलहन, हम्मीर की राज कुमारी। लच्छ=लक्षण। लच्छी=लक्ष्मी। सहज=सहज में, या स्वाभाविक। परनि=विवाह कर।

अर्थ:—कुछ समय बीतने पर देवी-जालन्धर-रानी रात्रि में स्वप्नावस्था में राजा पृथ्वीराज के समक्ष आई और राजा से कहने लगी मैं कागुरा दुर्ग पर निवास करने वाली हूँ और तुझ पर प्रसन्न होकर वर देती हूँ, हाथ मे तलवार गृहण कर; निश्चय रूप से पहले तू भोटी-भान से फिर वीर पल्हन से विजय प्राप्त करेगा। मेरी इस सम्मति को तू सत्य मान। इस युद्ध में हमीर तेरा सहायक होकर सेना का नाश करेगा बाद मे जो लक्ष्मी के स्वाभाविक लक्षणों से युक्त (हम्मीर की) राजकुमारी है उससे विवाह कर सहज ही तू घर लौटेगा।

दोहा

चलिय राज कंगुर दिसा, दयौ भोट[1] फुरमान।
कै आवै हम सेव पय, कै जित्तों नृप भान ॥ २ ॥

पा० पा० १, टि० नं० ४।

शब्दार्थः—फुरमान=फरमान, आदेश। सेव पय=चरणों की सेवा करने को।

अर्थः—तब पृथ्वीराज ने काँगुरे की ओर प्रस्थान किया। और भोटी राजा को आदेश दिया कि या तो तुम हमारे चरणों की सेवा करने के लिये उपस्थित हो जाओ अन्यथा हे राजा भानु! तुमको जीत लिया जायगा।

कवित्त

तब सुनि भान नरिंद, सब्बद उभ्भार अतुरबर।
रे जगली जुवान, मोहि पुज्जे अप्पन बर ॥
जो खजुआ अति तेज, तोइ कांइ[1] दिनयर लोपै।
जोइ चना अति सूर, तोइ का भाठी कोपै ॥
हूं नीति जानि अनितन्न करि, तू लोभी आतुर अतुर।
इनि वात मोहि अग्गै[2] अवन, आई फुनि जैं हे सु तुर ॥ ३ ॥

पा० पा० १, घ० का०। २, पा०। ३, घ० मौ० का०।

शब्दार्थः—सब्बद=उसने कहा। उभ्भार=उभर कर, उमस कर, जोश में आकर। अतुरबर=अतुलित बली। जुवान=युवान, युवक। पुज्जै=पहुँच सकता, समानता कर सकता। अप्पन बर=अपने बलपर। खजुआ=खगुआ, तारा या खदुआ [खद्योत, जुगनू]। कांइ=क्या दिनयर=सूर्य। लोपै=लोप-सकता, दबा सकता। तोइ=तोभी। का=क्या। कोपै=क्रोध कर सकता। हू=मैं। अनितन्न करि=अनीति मत कर। अतुर=अतुल, अति। इनिवात=यह बात। मोहि=मेरी। अग्गै अवन=आगे आयगी, भविष्य में होकर रहेगी। फुनि=पुन। जैं हैं=जायगा। तुर=तुड़कर, नष्ट होकर।

अर्थः— यह संदेश सुनकर अतुलित बलवान राजा भानु उमस कर बोला, हे जगली युवक! तू अपने बल के भरोसे पर मुझसे कैसे समानता करता है। यदि खगुआ (तारे या जुगनू) में विशेष चमक हो तो क्या वह सूर्य को दबा सकता है। यदि चना अधिक शूरा (कठोर) हो जाय तो क्या वह भट्टा पर क्रुद्ध होकर उसका कुछ कर सकेगा? मैं नीतिज्ञ हूं मेरे सामने अनीति मत कर, किन्तु तू क्या करें तू तो

स्वार्थ वश अति आतुर है। अत मेरी यही बात भविष्य में पूरी होगी कि यदि तू मेरे सम्मुख आयगा तो नष्ट होकर ही लौटेगा।

दोहा

सुनि रु दूत पच्छौ फिर्यौ, कही राज सौ वत्त[1]।
तमकि तोन लिन्नौ[2] नृपति, मनों सुजोधन पथ्थ ॥ ४ ॥

प्रा० पा० १, २ पा०।

शब्दार्थः—पच्छौ=पीछा, वापस। वत्त=वत्त, बात। तमकि=तमस कर, तैप में आकर।

अर्थः—भोटीभान द्वारा कही हुई बात सुनकर पृथ्वीराज का दूत लौटा, और राजा से सब बात कह दी। जिसको सुनते ही राजा पृथ्वीराज ने क्रोध मे आकर इस प्रकार भाथे पर हाथ डाला, मानों दुर्योधन पर अर्जुन क्रोधित हुआ हो।

कवित्त

चढिग राज प्रथिराज[1], सथ्थ सामंत सूर भर।
है गै रथ चतुरग, गौरि जबूर नारि सर॥
कूच कूंच अरि भान, आइ अड्डौ खग वज्यौ।
जनु कि मेघ मे बीज, तमकि तत्तौ[2] होइ रज्यौ॥
आवृत्त भरत भारत परत, श्रोन धार धर पैर चलि।
इत उत्त सूर देखै लरत, घरी पच रवि रथ न हलि॥ ५॥

प्रा० पा० १, २ पा०।

शब्दार्थः—सथ्थ=साथ। है=हय, घोडा। गै=गय, हाथी। सर=शर, बाण। आइ-अड्डौ=आडा आ डटा, सामना किया। खग-वज्यौ=तलवार चलाई। तमखि=क्रोधित हो। तत्तो=तेज होकर, तेजी के साथ। आवृत=लगातार। भरत=कट २ कर। भारत=वार होने से। श्रोन=शोण। पैर-चलि=बह चली। सूर=शूर, बहादूर। न हलि=नहीं चलाया, रोक लिया।

अर्थः—फिर आग्नेशास्त्र और बाणादि से सज्जित सामत-गण और हाथी घोडे, रथादि चतुरग सेना सहित राजा पृथ्वीराज ने चढाई की। उधर कूच पर कूंच करता हुआ विपक्षी राजा भानु भी सामना करने के लिये आगया और क्रुद्ध होकर उसने तेजी से इस प्रकार तलवार चलाई मानों मेघ माला मे बिजली चमक उठी हो। उसके द्वारा लगानार वार होने से सेना कट कट कर पृथ्वी पर गिरने लगी। जिससे श्रोणित

धारा पृथ्वी पर वह चली। इधर उधर बहादुरों को लड़ते हुए देख कर सूर्य ने भी अपने रथ को पांच घड़ी तक थांभ लिया।

दोहा

भिरत भान अति छोह करि, जन-जन-मुख-मुख-जानि।
घोर विछुट्टी दामिनी, सब चक चौंधिय आनि ॥ ६ ॥

शब्दार्थ:—छोह=उत्साह के साथ। जन-जन-मुख-मुख-जानि=प्रत्येक के मुखसे यही निकला। विछुट्टी=गिरि, प्रपात हुआ।

अर्थ:—उत्साह पूर्वक राजा भानु को लड़ते हुए और उसकी तलवार को चमकते हुई देखकर सब चकाचौंध हो गये और प्रत्येक के मुख से यही निकला कि भयानक विद्युत पात होरहा है।

कवित्त

खग वाहिय भिरि भान, अरिन अद्धर धर किन्नौ।
जै जै[1] मुख उच्चार, सीस उमया पति[2] लिन्नौ ॥
रीझि[3] रुलिग उतमग, अमिय विख जंग सु ढरयौ।
टडव[4] मडि असंव, नदि[5] भौअग जु परयौ ॥
बीभच्छ भयानक भय उमा, रुद्र रुद्र मुख हास हुअ।
सिंगार वीर अच्छर वरन, नव रस सुनिहि[6] नरिंद दुअ ॥ ७ ॥

मा० पा० १, घ० का०। २, ४, ५, ६, भीं। ३, पा० घ० का०।

शब्दार्थ—खग-वाहिय=खड्ग चलाई, खड्गाघात किया। अद्धर=बिना सहारे के, उठाने योग्य। उमया पति=उमापति, शिव। रीझि=प्रपन्न होता हुआ, हँसता हुआ। रुलिग=झूलने लगा। उतमग=उत्तमांग, सिर। विख=विष। टडव=तांडव, नृत्य। मडि=करने लगा। असघ=टूटा हुआ, क्षत विक्षत शरीर। नंदि=नदीगण। भौअग=भुजग। अच्छर=अप्सरा। सुनिहि=चुने गये। नरिंद=राजा भानु। दुअ=उव, चल बसा।

अर्थ:—राजा भानु उत्साह पूर्वक भिड़ता हुआ खड्गाघात करने लगा (उस समय वीर) किन्तु विपक्षी (चाहुआन राजा और उसके सामंतों) ने उसके शरीर को आश्रय हीन (उठाने योग्य) कर दिया (तब करुण), उसके कटे हुए सिर को उमापति (शिव) ने

जय जय कार शब्द कर उठा लिया। वह सिर प्रसन्नता पूर्वक शंकर की मुण्ड माला मे भूलने लगा। उसके हिलने से शिव के भाल (स्थित चन्द्रमा) से अमृत और कंठ से जहर ढुलक पडा जिससे (अमृत के छींटे लगने से) भानु का क्षत विक्षत शरीर (धड़) नृत्य करने लगा और (विष नंदिगण पर पडा, इससे) नंदिगण की ओर तले को (विष-पान करने के लिये शिव के गले मे लिपटा हुआ) सर्प झपट पडा (जिससे अद्भुत),पार्वती भी उस समय (रुधिर पान करती हुई) वीभत्स और भयानक स्वरूप बन गई, एवं रुद्र के मुख पर रौद्र और हास्य दीख पडा, उस वीर का अप्सरा के साथ वरण होने मे शृंगार रस भासित हुआ, उसी समय राजा भानु के प्राणान्त हो गये (शांत रूप मे चल बसा)। इस प्रकार वहाँ पर नव रस भासित होते हुए सुने गये।

दोहा

समभिलाष[१] गंधर्व हुअ, नारद तुंबर[२] गान।
संकर कल किंचित भयौ, चाहुआन अप्रमान[३] ॥ ८ ॥

प्रा० पा० १, भीं० पा०। २, ३, पा० का० ध०।

शब्दार्थ:—समभिलाष=अभिलाषा युक्त, अभिलषित। तुंबर=वाद्य, विशेष। कलकिंचित= किल किंचित हाव, जिसमें भय-प्रसन्नता-प्रेम और क्रोध एकही बार हो आता है। अप्रमान=अतुल्य।

अर्थ:—इस प्रकार विपक्षो के साथ पृथ्वीराज को युद्ध करते देखकर गंधर्व और नारद तुम्बर द्वारा उसका गुण गान करने लगे और चाहुआन की प्रचण्ड वीरता देख कर शङ्कर को भी पृथ्वीराज के शत्रुओं पर उस समय किलकिंचित (हाव) भय, प्रसन्नता, प्रेम और क्रोध एक साथ ही हो आया।

कवित्त

जित्ति[१] समर सिरि भान, परयं[२] अरि मग्ग अदिट्ठह[३]।
रन मुक्कि न ग्रह गइय, वरत अच्छरि नन दिट्ठह ॥
कहुँ त[४] मस कहुँ अस, हस कहुँ सस्त्र वस्त्र कहँ।
ब्रह्मथान शिव थान, थान दिक्खिय[५] न जम्म जहँ ॥

दीयौ न अग्गि[६] रवि[७] भेद ननि, तत्व जोति जोतिहि[८] मिल्यौ।
इह दीख चरित प्रथिराज नैं, कवित एह जुग जुग चल्यौ ॥ ६ ॥

मा० पा० १, पा० घ० । २, ७, भीं० । ३, स० । ४, घ० । ५, पा० । ६, का०भीं० ।
८ पा० का० ।

शब्दार्थः—मग्ग=मग, रास्ता । अरिट्ठिह=अरिष्ट । मुक्कि=छोड़कर । वरत=वरण करते हुए, विवाह करते हुए । दिट्ठिह=देखा गया । हस=प्राण पखेरु । जम्म=यमराज । दीयो न अग्गि=आग नहीं दी, अग्नि संस्कार नहीं हुआ । ननि=नहीं । कवित=यश काव्य, यश गान ।

अर्थः—यद्यपि पृथ्वीराज की विजय हुई किन्तु भोटी राज युद्ध लड़कर विपक्षियों (पृथ्वीराज के साथियों) की राह में अरिष्ट बनकर ही धराशायी हुआ । वह युद्ध को छोड़कर घर नहीं लौटा । उसे अप्सरा के साथ विवाह करते हुए भी किसी ने नहीं देखा । उसके मास-भाग, प्राण-पक्षी तथा शस्त्र और वस्त्र आदि का कहीं पता नहीं लगा । उसकी आत्मा ने ब्रह्म-स्थान और शिव-स्थान को देखा; किन्तु वह यम-स्थान को नहीं देख सकी । उसके शरीर का अग्नि संस्कार न हो सका और न वह रवि-मण्डल को ही भेद पाया । उसकी तत्व पूर्ण ज्योति ज्योति में निहित हो गई । यह अपूर्व घटना देखकर पृथ्वीराज भी कह उठा कि इस भोटीराज का यश-गान युगों तक होता रहेगा ।

इह परत चहुआन, मोख लभ्यौ सु रत्थ[१] रवि ।
दिन पूरन पुनि भयौ, मिटे भंकुरन भान छवि ॥
हरह भग्गि उतकंठ, भग्गि मन्नौ रथरभति[२] ।
चतुरानन भगि चेत, टारि रथ मग्ग सुरंगति[३] ॥
भल हलत नीर काइर मुखन, प्रलय सुभर रन रत्त रह ।
दिनपति पतन्न सह पतन तन[४], भान भान-भेदन्न[५] तह ॥ १० ॥

मा० पा० १, पा० भीं० । २, भीं । ३, ४, ५, पा० ।

शब्दार्थः—इह परत=उस मोटी राजा के धराशाई होने पर । मोख=मोक्ष । लभ्यो=प्राप्त किया । रत्थ—रवि=रवि-रथ । दिन पूरन=दिनास्त । भंकुरन=सघन वृक्ष । भान=भानु, सूर्य । हरह=शिवकी । भग्गि=भग हो गई । उतकठ=अभिलाप । मन्नोरथ=मनोरथ । रभति=रमाका । भगि चेत=चेतना भंग

होगई (समाधिस्थ हो गये)। रथमग्ग=रथाङ्ग, चकवाक। सुरगति=रगत, विनोद, कीड़ा। नीर=नूर, कांति। रन-रत्तरह=युद्धरत। सह=साथ। भान=भोटी भान्। भान-भेदन्न=सूर्य मण्डल को भेद दिया।

अर्थः—भोटी राज के धराशायी होने पर चौहान ने रवि रथ को मोक्ष प्राप्त करते हुए [छिपते हुए] देखा। दिनास्त होगया और सूर्य तथा सघन वृक्षों की शोभा समाप्त होगई। शंकर की (मुण्ड प्राप्ति की) अभिलाषा, रंभा का मनोरथ, ब्रह्मा की चेतना और चक्रवाक दम्पति का विनोद भंग होगया। कायरों के मुखपर पुन कांति दिखाई देने लगी, किन्तु युद्ध रत योद्धा प्रलय स्वरूप बने रहे। सूर्य के पतन के साथ (सूर्यास्त के साथ) राजा भानु के शरीर का भी पतन (नाश) होगया, और वह भानु-मण्डल को भेदकर ऊर्ध्व लोक मे जा बसा।

तब कंगुर पाल्हन, चित्त चिंता उप्पन्नी।
सुनि भोटी भर मरन, सरन कोइ सुद्धि न मन्नी ॥
निसि अंतर करि ध्यान, मात कंगुर आराधी।
सो आई त्रप सुपन, कहै सुनि बात अगाधी ॥
मो मति[१] अनेक जानै न को, मो सेवा को परि लहै।
भावी विगत्ति हो प्रकृति हों, तो प्रधान भू ठह कहै ॥ ११ ॥

[१] पा० पा० १, पा० भीं।

शब्दार्थः—उप्पन्नी=पैदा हुई। सुद्धि न मन्नी=स्मृति में न आया, नहीं दिखाई दिया। अगाधी=अगाध। मो मति=मुझे। को परि लहै=कौन कर सके। भावी विगत्ति=भविष्य में मेरी गति, भविष्य की कहने वाली हू। तो-प्रधान=तब ही तो प्रधान हों, तब ही तो प्रकृति को प्रधान कहते हैं। भू ठह-कहै=क्या यह कहना झूठ है।

अर्थः—जब ऐसी स्थिति हुई तो भोटी राज के साथी वीर पल्हन कागुरे के चित्त मे चिंता उत्पन्न हुई। भोटी राज की मृत्यु सुन कर उसको किसी शरण दायक की याद नहीं आई और न कोई दिखाई दिया, तब उसने रात्रि मे ध्यान कर देवी कागुरा की आराधना की देवी राजा के स्वप्न मे आई और उसने कहा कि मेरी सम्पूर्ण बात सुन मुझे अनेक पुरुष नहीं जान पाये। ऐसा कौन है जो मेरी सेवा कर सके ? मैं

भविष्य को सूचित करने वाली प्रकति देवी हूं। इसीलिये मुझे प्रकृति प्रधान कहते हैं, क्या मेरे लिये यह कहा जाना असत्य है ?

सो सुपनंतर राज, नैंन दिट्ठौ सु कह्यौ रचि ।
वर वसी सिसपाल[1], पल्ह आयौ सु सेन सचि ॥
लख्ख इक्क[2] असवार, लख्ख इक[3] पाइल भारी ।
अप्प सेन उप्परैं, जुग जुग कहि[4] उच्चारी ॥
घरि अद्ध अद्ध अप सेन मुरि, पच्छि उररि दुज्जन परिय ।
चढि गयौ वीर प्रव्वत[5] गुहा, सामंता कुंडल फिरिय ॥ १२ ॥

प्रा० पा० १, ५, पा० का० घ० । २ से ४ पा० ।

शब्दार्थ—सो=वही, देवी । सुपनतर=स्वप्न में आई) । नैन दिट्ठौ=रात्रि में स्वप्न में जो देखा । सिसुपाल=शिशुपाल । सचि=सचय करके, एकत्रित करके । पाइल=पैदल । अप्प=अपनी । उप्परैं= उठावें, उकसावें । कहि=कही जायगी, कहेंगे । उच्चारि=उच्चारण करने वाले, कवि । उररि=उलट पड़ा । दुज्जन=दुर्जन, शत्रु । प्रव्वत=पर्वत । गुहा=गुफा । कुंडल-फिरिय=कुंडलाकृति होगये, घेर लिया ।

अर्थः— उस देवी ने पृथ्वीराज को भी स्वप्न दिया, राजा ने विस्तार पूर्वक स्वप्न के सम्बन्ध में सब कहा–कि शिशुपाल का वंशज पल्हन, सेना एकत्रित कर आया है। एक लाख सवार और एक लाख पैदल उसके साथ हैं। अत अपनी सेना भी तय्यार होनी चाहिये। जिससे युगों तक इसकी ख्याति का कथन कवियों द्वारा किया जाता रहे। मैंने स्वप्न में देखा कि अपनी आधी सेना आधी घडी तक मुड गई और पीछे से शत्रु झपट पडा, फिर वह वीर पर्वतीय गुफा में चढ़ गया और अपने सामन्तों ने उसे घेर लिया।

वर रघुवंस प्रधान, राज मंड्यौ विच्चारिय ।
वोलि वीर हम्मीर, भेद जानै घर सारिय ॥
वाट घाट वन जूह, घरा पद्धर नद घाटह[1] ।
अव्व जान त्रिमान, कोन पद्धर वन वाटह[2] ॥
अगिवान[3] देहु नारिन्न[4] वर, कलुक मंत जपौ सु तुम ।
जालधराज जंबू[5] धनी, स्वामि ध्रम्म-मडहित–हम ॥ १३ ॥

प्रा० पा० १, २ भीं० । ३, ५ पा० । ४, घ० ।

शब्दार्थः—भर भरिय=बल से भरपूर हो गये, जोश मे आगये। लियौ=प्राप्त करके, पाते ही। बिट्यौ=बाँट लिया, रक्षा की। जानि=मानों। पारस=घेरे, कुंडल। विचि=बीच मे। सुबल=सबल, बलवान। हनमतह=हनुमान। बियो=दूसरा ही। मझ्भव=मझेला, लक्ष्मण। कै=करने को, करके। सुरंग=सुन्दर, श्रेष्ठ। सत्तमे=सप्तमी। गुन प्रमान=गुण तुल्य, यथा नाम तथा गुणा। जबुअ= जम्बू द्वीप। खुल्यौ=सुशोभित हुआ, भासित हुआ।

अर्थः—पृथ्वीराज का फरमान पाते ही वे (नारेन और हम्मीर) जोश में आगये। उनके द्वारा राजा की लज्जा (यश) इस प्रकार रक्षित हुई, जैसे कुंडल में सुरक्षित चन्द्रमाँ हो। उनमे से एक रामचन्द्र के कार्य को सफल करने और सीता को खोज लेने वाले बलवान हनुमान जैसा और दूसरा अपने स्वामी (बडे भाई रामचन्द्र) के कार्य के लिये मझेले भाई (लक्ष्मण) सा था। उस समय वीर हम्मीर अग्रणी होकर शत्रुदल को जीतने और पृथ्वीराज के सिर पर अपने हाथ से यश का तिलक करने के लिये श्रेष्ठ रविवार सप्तमी के दिन चल पडा। जम्बूपति अपने शौर्य-गुण से जम्बू द्वीप के समान ही मालूम हुआ।

दोहा

हाँ कहतै ढीलन करी, हल्ल करी[1] अरि मत्थ।
तार्थे बिरद हमीर को, हाहुलिराव सु कत्थ ॥ १७ ॥

प्रा० पा० १ भीं।

शब्दार्थः—हल्ल करी=हमला किया। अरि मत्थ=शत्रु पर। तार्थे=इसीलिये,। कत्थ=कहा। सुशोभित किया।

अर्थः—राजा पृथ्वीराज के मुख से आक्रमण करने के लिये "हाँ" कहते ही हम्मीर ने शत्रु पर हमला कर दिया। इसीलिये राजा ने उसे हाहुलिराय के बिरद (उपाधि) से सुशोभित किया।

चढि चल्लै वदे[1] सुकन, भागह जे प्रिथिराज[2]।
बर प्रव्वतवै देस सधि, वीर बजी रनबाज ॥ १८ ॥

प्रा० पा० १ सर्वप्रति। २ पा०।

शब्दार्थः—सुकन=शकुन। भागह=भाग्य मे। जे=जे। प्रिथिराज=पृथ्वीराज। प्रव्वत वै=पहाड़ी। सधि=साध कर, साधन करके। बजे=बजवाये। रन-बाज=रण वाद्य।

अर्थः—पृथ्वीराज के सौभाग्य से अच्छे शकुन लेते हुए वे वीर चले और उन्होंने उस पहाड़ी प्रदेश पर युद्ध का साधन कर रणवाद्य बजवाये।

वंस दुजन घर गाहि फिरि, तब लगि दुजति सपन्न।
इकल्लै[१] रघुवंस ने, लैं[२] गढ सबर प्रपन्न ॥ १६ ॥

प्रा० पा० १, २, पा०

शब्दार्थः–घस=वंश, कुटुम्ब। दुजन=दुर्जन, शत्रु। गाहि=कुचल कर। फिरि=फिर या लाटा। तब लगि=तबतक। दुजति=द्विज, पुरोहित, गुरुराम। सपन्न=आ पहुचा। इकल्लै=अकेले। रघुवंस=रघुवंशी हम्मीर प्रतिहार। लैं-गढ=गढ पर अधिकार करके।

अर्थः—अकेले बलवान वीर रघुवंशी हम्मीर-प्रतिहार ने शत्रु के कुटुम्ब और घर को कुचल कर दुर्ग पर अधिकार कर लिया। इतने में पृथ्वीराज का भेजा हुआ गुरुराम पुरोहित कांगुरे दुर्ग पर उसे स्थापित करने के लिये उसके पास आ पहुँचा।

कवित्त

सबै सूर सामन्त, पल्लह बध्यौ गढ लिन्नौ।
थप्यौ राम नरिंद, हथ्थ फरमान सु दिन्नौ ॥
तुम रहयौ इन थान,[१] जाइ कंगूर सँपत्तौ।
मिलौ जाइ प्रथिराज, राज समहो प्रपत्तौ[१] ॥
आनंद फतै तप तुभ्भ बल, घन समूह आइय-सु-धर।
सुभ्भर सु घाइ तेरह परे, बिय दाहिम्म नरिंद बर ॥ २० ॥

प्रा पा १, पा।

शब्दार्थः–थप्यौ=स्थापित किया। राम=गुरुराम पुरोहित। नरिन्द=राजा के रूप में। हथ्थ=हाथ में। फुरमान=फरमान, परवाना, सनद। जाइ=जा। कगूर=कागुरे पर। सँपत्तौ=पहुचा। मिलौ=मिला। राज=राजा पृथ्वीराज। संमहौ-प्रपत्तौ=सामने गया, अगवानी की। तुभ्भ=तुझे, तेरे। घन समूह=धन्य है सामन्त समूह को। आइय-सु-धर=भूभाग अधिकार में आगया। घाइ=घायल होकर। बिय=दो।

अर्थः—तमाम वीर सामंतों ने पल्लहन को बांध कर उसके दुर्ग पर अधिकार कर लिया। पश्चात् राजा पृथ्वीराज के भेजे हुए गुरुराम पुरोहित ने हम्मीर को वहाँ का

(कागुरे का) राजा नियुक्त किया और पृथ्वीराज का भेजा हुआ फरमान (सनॅद) भी उसके हाथ मे देदिया और कहा–इस स्थान पर तुम्हीं रहो तब वह (हम्मीर) कांगुरे दुर्ग पर गया और बाद मे पृथ्वीराज से आकर मिला। राजा (पृथ्वीराज) ने उसकी अगवानी की और कहा, हे वीर हम्मीर! तेरे तपोबल से ही यह विजय का उत्सव मनाया गया है। यद्यपि इस युद्ध मे तेरह वीर और दो दाहिमे नरेश घायल होकर रण क्षेत्रमे रहे फिर भी धन्य है उस सामत–समूह को जिसने इस भूभाग को मेरे अधिकार में कर दिया।

सबै भुम्मि[1] अरि गाहि, आन फेरी चहुआन।
पर्‌यौ भान रघुवस, वीर वचै फुरमान॥
पाल्हन वास नरिंद, राज रख्यौ तिन थान।
बर बध्यौ अरि साहि, खून कढ्यौ परवान॥
बर वरनि वीर प्रिथिराज[2] बर, बर,रघुवस बुलाइयौ।
दिन देव दसमि बर भोम[3] वर, त दिन सुरगन पाइयौ॥ २१॥

प्रा० पा० १ से ३ पा०।

शब्दार्थ:—भुम्मि=पृथ्वी, भू भाग। गाहि=कुचलकर। आन=दुहाई। फेरी=फेर दी। पर्‌यौ-मान=भोटी मान धराशाई हुआ (मारा गया)। रघुवस=रघुवशी हम्मीर प्रतिहार। पाल्हन वास=पाल्हन को उसी के पास पाल्हन नामक स्थान पर (आज भी पालम घाटी कांगुरे के पास है वहा पर)। रख्यौ=रखा, नियुक्त किया। बर बध्यौ=बल बढा, बल में वृद्धि हुई। अरि साहि=शत्रु बादशाह के। खून=बदला। कढ्यौ=लिया। परवान=प्रमाना गया, माना गया। बरनि=दुलहन। तदिन=उस दिन। सुरगन=श्रेष्ठ रगीली दुलहन। पाइयौ=प्राप्त की।

अर्थ—शत्रु के सारे भू भाग को अधिकृत कर चाहुआन राजा (पृथ्वीराज) की दुहाई फेर दी गई। रघुवशी हम्मीर प्रतिहार ने राजा का फरमान पढ कर सबको सुनाया, जिसमें लिखा था कि भोटी भान मार दिया गया है और पल्हन को पाल्हम नामक स्थान पर सोच समझकर नियुक्त किया जाता है। यह सब इसलिये किया गया कि हमारे शत्रु बादशाह (गौरी) के बल मे इन्हीं के कारण से वृद्धि होती रही है और उसी का यह बदला लिया गया है। उसके पश्चात् दुलहन (हम्मीर की पुत्री) को वरण करने के लिये रघुवशी हम्मीर प्रतिहार ने पृथ्वीराज को निमन्त्रित

किया और देव दशमी के दिन जब वर पक्ष में श्रेष्ठ मंगल गृह था। तब उसने (पृथ्वीराज ने) सुन्दर दुलहन को प्राप्त किया (उससे शादी की)।

दोहा

परिनि वीर प्रथिराज वर, वर सुन्दरी सु लच्छि[1]।
देव व्याह दुज्जन-दवन, दिन पद्धरौ सु अच्छि[2] ॥ २२ ॥

मा० पा० १, २ सर्वप्रति।

शब्दार्थ:—परनि=वरण की। सु=वह, जो। लच्छि=लक्ष्मी। देव व्याह=देव विधि से विवाह। दुज्जन दवन=शत्रु का दमन, नाश। पद्धरौ=अच्छा। सु=वह, उस। अच्छि=यक्ष।

अर्थ:—वीर श्रेष्ट पृथ्वीराज ने लक्ष्मी तुल्य श्रेष्ठ सुन्दरी (हम्मीर पुत्री) से वरण किया। यक्ष तुल्य उस राजा के वे अच्छे दिन थे जिसका विवाह शत्रु-नाश के साथ साथ देव विधि से हुआ।

कवित्त

दिक्खिन[1] वृत्त सु नाभ, तुंग नासा गज्ज गमनी।
सासनि — गंध सरोज[2], कुटिल केसं, रति रमनी[3] ॥
वर जघन मृदु पथु[4] सुरंग[5] कुरंग लज्जै छवि हीनं।
इह उप्पम[6] कवि चंद, हथ्थ करतार सु कीनं ॥
वर वरनि वीर प्रिथिराज[7] वर, घन निसान वज्जै सु वर।
जवूअराव हम्मीर नैं, ध्रुम्म काज दिन्नौ — सु — कर ॥ २३ ॥

मा० पा० १ टि० २।, ३ से ८ पा०।

शब्दार्थ:—दिक्खिन वृत्त=दक्षिण वृत्त (दक्षिण की ओर चक्कर खाती हुई)। तुंग=उत्तंग, उठी हुई। सासनि-गंध=सुवास, सुगंध, सुख वास। सरोज=कमल। कुटिल-केस=गुच्छेदार केशपाश। रमनी=रमणी। मृदु=मृदुल, कोमल। पथु=पृथुल, स्थूल। सु-रंग=उसका अङ्ग रङ्ग। कुरंग=हिरण, कंचन मृग। ध्रुम्म काज=धर्म कार्य। दिन्नौ-सु कर=हाथ दिया, हाथ बढ़ाया।

अर्थ:—जिस रति तुल्य रमणी (हम्मीर-पुत्री) की नाभि दक्षिणावृत्त, (दक्षिण को चक्कर खाती हुई), उठी हुई नासिका (उत्तुंग), गज सी चाल, कमल तुल्य स्वासागंध (सुखवास), गुच्छेदार केशपाश, स्थूल और मृदुल जंघाएँ, कंचन मृग को लज्जित और छवि क्षीण करने जैसा उसका अङ्ग रङ्ग था। कवि (चन्द) उस पर तुलना करते हुए कहता है कि सृजन कर्ता ने उसका निर्माण स्वयं अपने

हाथों से किया है ऐसी उस श्रेष्ठ दुलहन को वीर पृथ्वीराज ने विशेष नक्कारे नजवाकर ब्याही और जम्बूपति हम्मीर ने कुमारी का विवाह पृथ्वीराज के साथ करके इस धर्म कार्य में अपना हाथ बढाया (उदारता प्रदर्शित की)।

वर बरनी दै हत्थ, गुट अप्पै जु इक्क[१] सो।
चौंर मृगम्मद मधुर, त्रम्म सुमत दीन[२] सो ॥
अट्ठ सुरंग गजराज, बाज पाजी[3] सो दासी।
बर लच्छी चतुरग, चन्द पिक्खिय सो भासी ॥
ढिल्लीव नाथ ढिल्ली दिसा, अरिन जित्ति[४] वर परनि कै[५]।
सजीव काम वेलिय[६] सु ढिंग, बर निसान वर वरनि के[७] ॥ २४ ॥

प्रा० पा० १ पा०। २, ६ सर्वप्रति। ३ पा० का०। ४ पा० भीं० घ०। , ७ घ०।

शब्दार्थः—दै हत्थ=हाथ में दे। गुट=गुठा ठिगना (छोटी कद) पहाड़ी टट्टू। मधुर=मधुर-सौरभ मय। त्रम्म=चर्म, त्वचा। सुसत=सौसे की (जिसकी ढालें सुन्दर और मजबूत होती हैं)। दीन=दी। सुरग=सुन्दर। बाज पाजी=बाजी, घोडे जुतने वाले रथ, अश्वरथ। चतुरग=चार प्रकार की। पिक्खिय=देखी। सो-भासी=वही कही, वही कहता हूं। सजीव=सजीवनी। ढिंग=पास, साथ। निसान=झंडे, पताका। वर-वरनि कै=विविध वर्ण की श्रेष्ठ।

अर्थः—कवि (चद) कहता है—कि मैं आँखों देखी बात कहता हू—कि हम्मीर ने श्रेष्ठ दुलहन का हाथ पृथ्वीराज के हाथ मे देते समय राजा को एक सौ पहाडी छोटी कद के (ठिंगने) घोडे, चामर, मधुर सौरभमय कस्तूरी, सौसे की एक सौ त्वचायें, आठ सुन्दर हाथी, अश्व-रथ और एक सौ दासियें एवं चार प्रकार की लक्ष्मी समर्पित की। इस प्रकार शत्रुओं पर विजय प्राप्तकर श्रेष्ठ दुलहन से विवाह कर सजीवनो या कामलता के समान कुमारी (हम्मीर पुत्री) के सहित दिल्लीश्वर ने विविध वर्ण की श्रेष्ठ पताकाये फहराते हुए दिल्ली की ओर प्रस्थान किया।

दोहा

आयौ नृप ढिल्ली पुरह, बर बज्जै त्रिघ्घोप।
डोला पच नरिंद संग, मधि सुन्दरी अदोप ॥ २५ ॥

शब्दार्थः—नृप ढिल्ली=दिल्लीश्वर। पुरह=दिल्ली नगर को। त्रिघोष=निर्घोष, जोरों से। डोला=पालकियां। मधि=में। अदोप=अदूषित, अविवाहित।

अर्थः—रानी हम्मीरनी (हम्मीर पुत्री) की पालकी के साथ उसकी पाच अविवाहित सहेलियों की डोलियों के साथ दिल्लीश्वर (पृथ्वीराज) दिल्ली पहुँचा और जोरों से नक्कारे बजने लगे।

※ समाप्त ※